रस बोध

शिवाजी के पथ प्रदर्शक और आध्यात्मिक गुरु, महाराष्ट्र के
संत शिरोमणि, समर्थ गुरु रामदास जी द्वारा प्रणीत

श्री दासबोध

के मूल मराठी ग्रन्थ से सरल हिन्दी में अनूदित
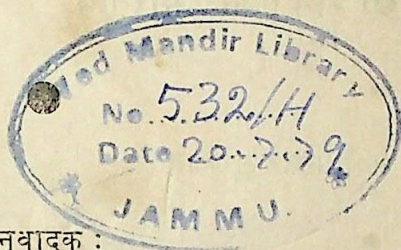
अनुवादक :

कविवर श्री रामकुमार भारतीय

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर), बरेली (उ० प्र०)

भूमिका

यह कहा गया है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' आशय यही है कि अधिकांश साहित्यिक रचनाएँ लोक रुचि के अनुसार प्रस्तुत की जाती हैं और उनमें उस समय के समाज की रीति-नीति, व्यवहार, अभिलाषा, प्रवृत्तियों आदि का ऐसा चित्रण किया जाता है कि सैकड़ों-हजारों वर्ष उपरान्त भी कोई पाठक उसके स्वरूप को समझ सकता है, उसकी वास्तविकताओं का अनुमान कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी रचनाएँ उत्तम श्रेणी की मानी जाती हैं और उनके रचयिताओं की गणना विद्वानों में की जाती है।

पर कुछ रचनाएँ ऐसी भी होती हैं जो लोकरुचि और उसकी तत्कालीन प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराने के बजाय लोगों को ऐसा मार्ग दिखलाती हैं जिसका अनुसरण करने से वे अपनी कठिनाइयों, विपत्तियों और त्रुटियों से बचकर प्रगति और उत्कर्ष के क्षेत्र में अग्रसर हो सकते हैं। यों कहने के लिए बहुसंख्यक लेखक ऐसे उपदेशात्मक और आदर्शवादी ग्रंथ लिख जाते हैं जिनमें बहुत-सी उत्तम शिक्षाएँ, धार्मिक सिद्धान्त और आध्यात्मिक तथ्य पाये जाते हैं, पर या तो सर्वसाधारण में उनका प्रचार ही नहीं हो पाता अथवा लोग उनको पढ़ने और उनकी प्रशंसा करने के पश्चात् भी उनके अनुसार व्यवहार और आचरण नहीं करते।

पर 'दासबोध' इस श्रेणी का ग्रंथ होने पर भी उन दस-बीस अमर-रचनाओं में से है जो सैकड़ों वर्ष से सर्व साधारण में पढ़ा जाता है और उनके जीवन को प्रभावित कर रहा है। यदि कहा जाय कि आज से तीन सौ वर्ष पहले उसने समस्त हिन्दू-समाज को और विशेषतया महाराष्ट्र को नवजीवन प्रदान किया था तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

समर्थ रामदास की राष्ट्रीय प्रवृत्तिः—

इसके रचयिता समर्थ रामदास केवल मरहठा-राज्य के संस्थापक महाराज शिवाजी के गुरू और मार्गदर्शक ही नहीं थे वरन् एक आदर्श साधु-संन्यासी थे। हमारे यहाँ अच्छे साधु-महात्माओं का कार्य भगवान का भजन करना और लोगों को सदुपदेश देना समझा जाता है। इसमें भी सन्देह नहीं कि इनमें से बहुत से 'सन्त' त्यागी, परोपकारी और शुद्ध, पवित्र आचरण वाले होते हैं। पर समर्थ रामदास में इन सब गुणों के अतिरिक्त राष्ट्र-रक्षा और देशोद्धार का भी एक महान् गुण था। अन्यथा अपनी आध्यात्मिक साधना और चमत्कारी शक्तियों के कारण वे लाखों व्यक्तियों द्वारा पूजित होने और बड़े-बड़े लोगों द्वारा सम्मानित किये जाने की स्थिति को तो प्राप्त कर ही चुके थे। पर उनको इससे संतोष नहीं हुआ और "आध्यात्मिक सन्त" की पदवी प्राप्त कर लेने पर भी उन्होंने किसी तीर्थ या मठ में महन्त बनकर सुख और शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा गाँव-गाँव और घर-घर में जाकर लोगों को आत्म-सुधार के साथ ही समाज को संगठित और सशक्त बनाने का मार्ग दिखलाया।

और केवल उपदेश देकर ही उन्होंने अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं समझ लिया वरन् एक विशाल संगठन तैयार किया और उसके द्वारा व्यक्तियों और समाज को इस प्रकार बदला कि विदेशियों की दासता और निर्बलता में ग्रसित देश एकाएक जागृत हो गया और कुछ ही समय में उसने शक्ति और संगठन का ऐसा प्रदर्शन किया जिससे विरोधियों और अत्याचारियों के होश ठिकाने आ गये।

'दासबोध' द्वारा प्रचार-कार्य :—

यद्यपि समर्थ रामदास ने अपना प्रचार और संगठन का कार्य विशेष रूप से मंदिरों की स्थापना और कीर्तन आदि द्वारा सम्पन्न किया, पर "दासबोध" भी उनके कार्यक्रम की पूर्ति का एक बड़ा साधन था। चाहे

पुस्तक रूप में यह उनके जीवन के अन्तिम भाग में ही तैयार हुआ हो, पर वे अपने कीर्तनों में आरम्भ से ही छन्दबद्ध उपदेशों को सुनाया करते थे। उनका एक शिष्य इस प्रकार समय-समय पर रचे "पद्यों" को लिखता जाता था और अन्त में उन्हीं के आधार पर या उनकी सहायता से ग्रन्थ रूप में "दासबोध" का निर्माण किया गया।

इस ग्रंथ का एक सबसे बड़ा गुण यही है कि इसमें जो शिक्षाएँ दी गई हैं वे केवल आदर्शों और सिद्धान्तों की उच्चता दिखलाने के लिए नहीं है, वरन् व्यावहारिक दृष्टि से भी उपयोगी हैं। कारण यही है कि समर्थ रामदास लोगों को साधु-संन्यासी बनाना नहीं चाहते थे वरन् समाज का ऐसा सदस्य बनाना चाहते थे, जो स्वावलम्बन पूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करता हुआ सामाजिक उत्कर्ष में भी सहयोग दे सके। इसलिए उन्होंने गृहस्थ-आश्रम को सर्वोपरि बतलाते हुए कहा—

"अनेक वेषों और आश्रमों का मूल गृहस्थाश्रम ही है, जिसमें तीनों लोकों के प्राणियों को विश्राम मिलता है। देव, ऋषि, मुनि, योगी, तापस, वीतराग, पितृ, अतिथि, अभ्यागत आदि सब इसी गृहस्थाश्रम से ही उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ये लोग अपना आश्रम छोड़कर निकल जाते हैं, फिर भी ये कीर्ति के रूप में गृहस्थ-घरों में भी घूमा करते हैं। इस लिये गृहस्थ आश्रम ही सबसे बढ़कर है।"

साथ ही उन्होंने गृहस्थों को परोपकार, समाज-सेवा, धर्म-सेवा, राष्ट्र-सेवा का उपदेश देते हुए यह भी कह दिया कि पहले उनको अपनी सेवा कर लेनी चाहिए। यदि वे इसका ध्यान न रखेंगे तो किसी प्रकार की सेवा के योग्य न बन सकेंगे—

"पहले स्वयम् आवश्यकतानुसार भोजन कर लेना और तब शेष अन्न दूसरों को बाँटना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य को पहले स्वयं ज्ञान से तृप्त होना चाहिए और तब वह ज्ञान दूसरों को देना चाहिये। जो तैरना जानता होगा वही दूसरों को डूबने से बचा सकता है। पहले स्वयम् उत्तम गुण ग्रहण करने चाहिए और तब वे गुण दूसरे को सिखाने

चाहिये। बिना स्वयम् आचरण किये जो बातें दूसरों को बतलाई जाती हैं वे मिथ्या और व्यर्थ होती हैं। अपनी शक्ति को परोपकार में लगाना चाहिये, जिससे बहुत से लोगों की भलाई हो सके।"

इस प्रकार समर्थ ने लोगों को वही उपदेश दिया जो एक सामान्य जन के लिए भी संभव हो। बहुत से सन्त, जो स्वयम् कष्ट सहकर अथवा अपना काम बिगाड़कर भी दूसरों का उपकार करने का उपदेश देते हैं, वह दिखावटी और अव्यवहारिक होता। सर्वोत्तम मार्ग तो यह है कि मनुष्य विवेक से काम ले और जैसी परिस्थिति हो उसी प्रकार काम करने को तैयार रहे। वैसे सामान्य अवस्था में पहले अपना निर्वाह रक्षा करके दूसरों की आवश्यकता में सहायक बना जा सकता है, पर जब राष्ट्र या समाज पर कोई भयंकर विपत्ति आवे तो मनुष्य को अपना निर्वाह तो क्या प्राणों का ख्याल भी छोड़ देना चाहिए। उस समय तो यही विचार करना चाहिये कि 'अगर समाज न रहा तो हम कहाँ रहेंगे ?'

देशोद्धार परम कर्तव्य है :—

उस समय देश पर सर्वत्र मुसलमानों का प्रभाव था और औरङ्गजेब जैसा कट्टर साम्प्रदायिक प्रवृत्ति का बादशाह शासन कर रहा था। उसके विरुद्ध महाराष्ट्र में शिवाजी ने हिन्दू-राज्य की स्थापना का झण्डा खड़ा किया। समर्थ ने इसके महत्व और आवश्यकता को समझा और अपने प्रचार द्वारा उस प्रदेश की समस्त जनता को इसके लिये समझाया और संघबद्ध किया कि वह शिवाजी महाराज की हर तरह से सहायता करे। राजस्थान के राजा शस्त्रबल और वीरता में जगत प्रसिद्ध थे पर वे औरङ्गजेब का अधिक मुकाबला न कर सके। कारण यही था कि वहाँ की जनता में राष्ट्रीयता की विचार-धारा का अस्तित्व प्रायः नगण्य था और वे अधिकांश में "कोउ नृप होय हमें का हानी" वाली मनोवृत्ति वाले होते थे। पर रामदासजी ने महाराष्ट्र में यह भावना फैलाई कि

हमारा कल्याण हिन्दू-राज्य से ही हो सकता है। मुसलमान ही नहीं, पोर्तु-गीज, डच, अँग्रेज आदि किसी भी विदेशी जाति का शासन हमको स्वीकार नहीं हो सकता। एक बार जब वे किसी देवी के मन्दिर में पहुँचे तो उन्होंने उसके सम्मुख यही प्रार्थना की—

तुझा तूं वाढवी राजा, शीघ्र आम्हांचि देखतां।
दुष्ट संहारिले भागें, ऐसे उदण्ड एकतो॥
परन्तु रोकड़े कोंही। मूल सामर्थ्ये दाखवीं॥

अर्थात्—"हे माता! इस राजा (शिवाजी महाराज) का उत्कर्ष-साधन तू शीघ्र ही हमारे सामने करदे। सुना है कि तूने प्राचीनकाल में अनेक दुष्टों का संहार किया था। परन्तु अपनी सामर्थ्य को कुछ इस समय तो प्रकट कर।"

वास्तविक आध्यात्मिकता का प्रतिपादनः—

"दासबोध" की महत्ता इसी में है कि उसमें इहलौकिक और पार-लौकिक दोनों प्रकार के कल्याण-साधन का मार्ग प्रदर्शित किया है। समाज और राष्ट्र की प्रगति किस प्रकार हो सकती है इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उन्होंने ऐसी ही समयानुकूल शिक्षाएँ दी हैं। उनका उद्देश्य जनता को समझाना था कि वे अगर चाहें तो विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करते रहें, पर साथ ही यह भाव बनाये रहें कि ये समस्त 'देवता' वास्तव में किसी एक ही शक्ति के विविध रूप हैं। यदि ऐसा न किया जायगा और शिव का उपासक विष्णु की निन्दा करेगा और शैव सम्प्र-दाय वाले वैष्णवों को अधर्मी अथवा मार्गभ्रष्ट बतलायेंगे, तो यह साम्प्र-दायिक वैमनस्य समस्त समाज के लिये विष रूप सिद्ध होगा। इसलिये उन्होंने समस्त देवताओं का समन्वय करते हुए कहा—

"हे गजवदन! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ छोटे-बड़े सभी को तुम्हीं विद्या-बुद्धि देते हो। हे सरस्वती! तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम्हीं से

चारों वाचाओं का स्फुरण होता है। हे चतुरानन ! तुम धन्य हो, तुम्हीं ने सृष्टि की रचना की और शास्त्र प्रकट किये। हे विष्णु ! तुम धन्य हो, तुम्हीं पालन करने वाले हो। हे भोले शंकर ! तुम धन्य हो, तुम्हारी देन का अन्त नहीं ! हे इन्द्र ! तुम धन्य हो, तुम देवताओं में मुख्य हो। हे धर्मराज ! तुम धन्य हो, तुम सब धर्म-अधर्म जानते हो। हे परम बलवान हनुमान् ! तुम धन्य हो, तुम उड़द के बड़ों की बहुत बड़ी माला धारण करते हो। हे पाण्डुरंग ! तुम धन्य हो, तुम्हारे यहाँ सदा कथा की धूम मची रहती है। हे क्षेत्रपाल ! तुम धन्य हो, तुमने बहुतों को भक्ति-मार्ग पर लगाया है। राम-कृष्ण आदि अवतारों की महिमा तो अपार ही है। उन्हीं के कारण बहुत से लोग उपासना में तत्पर हुए हैं।"

"पर इन सब देवताओं का मूल यह अन्तरात्मा है। भू-मण्डल के सब लोग इसी को प्राप्त होते हैं। यही अनेक प्रकार के देवताओं का रूप धारण करके बैठा है, यही अनेक शक्तियों के रूप में प्रकट हुआ है और यही सब वैभवों का भोग करने वाला है। विचार करने से जान पड़ता है कि इसका विस्तार बहुत अधिक है।"

'दासबोध' इसी प्रकार की हितकारी और जन-कल्याणकारी शिक्षाओं का भंडार है। समर्थ रामदास का सर्व साधारण पर यह एक बड़ा उपकार है कि उन्होंने धर्म और लोक-व्यवहार का जो समन्वय किया उससे हिन्दू-समाज को बहुत बल मिला और कुछ ही वर्षों में मराठा-शक्ति के सम्मुख मुगल-शक्ति परास्त हो गई। इस दृष्टि से "दासबोध" एक युगान्तरकारी रचना सिद्ध हुई और उसने एक बहुत बड़े लक्ष्य की पूर्ति कर दिखाई। जो पाठक ध्यान पूर्वक उसका अध्ययन करेंगे वे उससे निश्चय ही जीवन को सार्थक बनाने वाली अनेक शिक्षाएँ प्राप्त कर सकेंगे।

—चमनलाल गौतम

श्री दासबोध
की
विषय-सूची

* पहला दशक *

* दूसरा दशक *

* तीसरा दशक *

* चौथा दशक *

* पांचवां दशक *

* छठवां दशक *

* सातवां दशक *

* आठवां दशक *

*** नवां दशक ***

*** दसवां दशक ***

*** ग्यारहवां दशक ***

* बारहवां दशक *

* तेरहवां दशक *

*** चौदहवां दशक ***

*** पन्द्रहवां दशक ***

*** सोलहवां दशक ***

* सत्रहवां-दशक *

* अठारहवां-दशक *

*** उन्नीसवां दशक ***

*** बीसवां दशक ***

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

श्री दासबोध

पहला दशक

पहला समास

मंगलाचरण

श्रोता गण प्रश्न करते हैं—"महाराज, यह कौन सा ग्रन्थ है? इसमें क्या बताया गया है? और इसके श्रवण से क्या लाभ होता है? वक्ता उत्तर देते हैं—"इस ग्रन्थ का नाम 'दास बोध' हैं। इसमें गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में भक्ति-मार्ग का निरूपण किया गया है। इसमें नव विद्या भक्ति, और वैराग्य के लक्षण बतलाये गये हैं। तथा अधिकांश अध्यात्म का ही विचार किया गया है। भक्ति मार्ग से मनुष्य निश्चित रूप से ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है ऐसा इस ग्रन्थ का आशय है। इसमें मुख्य भक्ति, शुद्ध ज्ञान आत्म स्थिति, विशुद्ध उपदेश, सायुज्य मुक्ति, मोक्ष प्राप्ति, शुद्ध स्वरूप, विदेह स्थिति अलिप्तता आदि विषयों का निश्चयात्मक निरूपण किया गया है। माया का उद्भव, पंच महाभूत तथा कर्ता के लक्षण भी इसमें समझाये गये हैं। इस ग्रन्थ में अनेक शंकाओं का समाधान कर अपने प्रश्नों के समर्पक उत्तर दिये गये हैं। इस प्रकार इसमें अनेक विषयों का भली भांति निरूपण किया गया है। अतएव सम्पूर्ण 'दास बोध' के दशक के अनुसार अनेक विभाग किये

गये हैं और प्रत्येक दशक में एक एक विषय विस्तार पूर्वक समझाया गया है । इस ग्रन्थ के निरूपण में उपनिषद् वेदान्त, श्रुति आदि अनेक ग्रन्थों का आधार लिया गया है और मुख्य आधार शास्त्राधार युक्त स्वानुभव का है । इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी ग्रन्थ के अध्ययन और परिशीलन से पाठकों को स्वयं होगा ही ।

अस्तु अब यह कथन यहीं समाप्त करते हैं । प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार और योग्यता के अनुसार इसके उपदेश ग्रहण करेगा । अतः अभिमान का त्याग करना ही सर्वोत्तम है । इस ग्रन्थ में किन-किन विषयों का विवेचन किया जा रहा है । इस प्रश्न का अब तक संक्षेप में उत्तर दिया गया है ।

अब इस ग्रन्थ के श्रवण की फल श्रुति बतलायेंगे । इसके श्रवण से सब संशयों का एक बार ही समाधान होकर आचार-व्यवहार में तत्काल परिवर्तन होने लगता है । सायुज्य मुक्ति का रहस्य ज्ञात होकर उसकी प्राप्ति का सुलभ मार्ग उपलब्ध होता है । फिर अन्य विकट साधनों के करने की आवश्यकता नहीं रहती । अज्ञान, दुःख और भ्रांति का नाश होकर शीघ्र ज्ञान का लाभ होता है । योगियों का परम लाभ जो वैराग्य, वह मन में उपजता है, विवेक और चातुर्य यथा योग्य प्राप्त होते हैं । जो संशय ग्रस्त, दुर्गुणी और कुलक्षणी होंगे । वे सुलक्षणी, तत्वज्ञ, चतुर और सूहा बनेंगे । जो आलसी होंगे, वे उद्योगी बनेंगे । पापियों को पश्चाताप होकर वे शुद्ध होंगे और जो भक्ति मार्ग के निन्दक होंगे, वे उसकी वन्दना (प्रशंसा) करने लगेंगे । पतितों के अनेक दोषों का नाश होकर वे पवित्र होंगे । सारांश इस ग्रन्थ के श्रवण मात्र से प्राणि को उत्तम गति प्राप्त होगी । देह बुद्धि के कारण उत्पन्न होने वाले अनेक संकट, संशयों का जाल, संसार के अनेक उद्वेग इस ग्रन्थ के श्रवण-पठन से दूर होंगे । इस ग्रन्थ के श्रवण से अधोगति से मुक्त होकर मनुष्य के मन को शांति और समाधान मिलेगा । इस प्रकार इस ग्रन्थ

की महिमा है। जिसकी जैसी भावना होगी, वैसा ही उसे फल मिलेगा।

दूसरा समास

श्री गणेश-स्तवन

हे सर्व सिद्धियों के फल देने वाले, अज्ञान जब भ्रांति का नाश करने वाले ज्ञान स्वरूप गण नायक (गणेश जी) आपको नमस्कार है। आप मेरे अन्तः करण में व्याप्त होकर वहीं नित्य स्थित रहे। आप अपनी कृपा कटाक्ष से मुझ गूंगे, मूर्ख, दुर्बल को वाणी दीजिए। आपकी कृपा की सामर्थ्य से भ्रांति के बादल बिखर जाते हैं और सर्वभक्षक काल भी आपका दास बन जाता है। आपकी कृपा की छलांग लगते ही सारे विघ्न निर्बल होकर काँपने लगते हैं। इसीलिए आपको विघ्नहर्ता कहा गया है। हम अनाथों के आप आश्रय स्थान हैं। हरि हरादि देव आपको नमस्कार करते हैं। आप मंगल निधि अर्थात् कल्याण के सागर हैं। अतः आपको नमस्कार का कार्य आरम्भ करने से वह सफल होता है। आघात, प्रतिबन्ध, आदि की उसे बाधा नहीं होती। आपके स्वरूप का ध्यान करते ही अत्यन्त समाधान होता हैं और मन सब इन्द्रियों से हटकर केवल नेत्रों में स्थिर हो जाता है। आपका सगुण स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है और आप जब कौशल्य और चपलता से नृत्य करने लगते हैं, तब सब देव चकित हो जाते है। आप सदा ब्रह्मानन्द में मस्त रहते हैं। अति आनन्द के कारण आप उल्लास युक्त और प्रसन्न वदन दिखाई देते हैं। आपके विशाल मस्तक पर प्रचुर सिन्दूर चर्चित है। आप चौदह विद्याओं के स्वामी हैं। आपके रत्नजड़ित मुकुट की प्रभा, अनेक रंगों में प्रस्फुटित उसका तेज, तेजस्वी नील मणियों से जड़े आपके वर्ण-कुंडलों की चमक, आपके शुभ्र सुदृढ़ दांत, आपका विशाल स्थूल पेट, कमर में नाग सर्प की मेखला, आपकी चार भुजाएँ

और विशाल उदर तथा सुन्दर पीताम्बर की शोभा अवर्णनीय है। अनेक प्रकार की पुष्प मालाओं से आपका शरीर शोभायमान है। आपके वक्षस्थल पर रत्न खचित पदक सुशोभित है। आपके एक हाथ में परशु, दूसरे में कमल, तीसरे में तीक्ष्ण अंकुश और चौथे हाथ में आपका अत्यन्त प्रिय पदार्थ मोदक (लड्डू) है। आपके दिव्याम्बर का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। आपको सब प्रकार की सामग्री उपलब्ध करने के लिए अष्टनायिकाएँ तत्पर हैं। ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर और सब विद्याओं के भण्डार हे गणेश जी, आपको मेरा भक्तिभाव पूर्वक साष्टांग नमस्कार है। गणेश जी के ध्यान का वर्णन करने से अज्ञानी को सद्बुद्धि का लाभ होगा और उनका गुणानुवाद सुनने से सरस्वती प्रसन्न होगी। ब्रह्मादिक देवगण भी जिन्हें नमन करते हैं, उन्हें मनुष्य शरणागत होकर नमस्कार करे, इसमें क्या आश्चर्य ?

अस्तु, जो मंद बुद्धि हों, वे गणेश जी का ध्यान चिन्तन करते रहें। मूर्ख अज्ञानी, दीन हीन हों वे भी गणेश जी की कृपा से सब विषयों में प्रवीण होंगे। ऐसे श्री गणेश परम समर्थ एवं भक्तों के सब मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं। उनका भजन करने से तत्काल अनुभव प्राप्त होता है। अत: उनके भरन में ही अपना कल्याण है। 'कलौचंडी विनाय कौ' अर्थात कलियुग में चंडी (शारदा देवी) और श्री गणेश जी यही दो देवता जागृत हैं। मैंने मन में परमार्थ प्राप्ति की इच्छा रखकर मंगलमूर्ति श्री गणेश भगवान की यथामति स्तुति की है।

तीसरा समास

श्री शारदा-स्तवन

अब श्री शारदा को नमस्कार करता हूँ। श्री शारदा (सरस्वती) यह सब शब्द सृष्टी की जन्म दात्री अर्थात् वेदों की माता और वाणी की देवता है। मूल माया भी वही है। मूल ब्रह्म के 'एकोहं' इस संकल्प

के साथ ही मूल माया शारदा प्रकट हुई। इसलिए उसे 'ब्रह्मसुता' कहा गया है। वह परम वाणी के रूप से शब्दों को स्फुरित कर वैखरी वाणी के रूप से असंख्य शब्दों का उच्चारण करती है। और शब्दों के रहस्यों को खोलकर दिखाती है। वह योगियों की समाधि और धीर पुरुषों की निश्चय बुद्धि है। वह विद्या और अविद्या इन दोनों से मुक्त करती है। प्रकृति स्वरूप शारदा को पुरुष स्वरूप गणेश कीं पत्नी मानते हैं। वह तुर्यावस्था के अति समीप है उसी की सत्ता से साधु, सत्पुरुष श्रेष्ठ कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। उसी से संत महंतों को शान्ति मिलती है। वह भगवान श्री गणेश की बीजशक्ति है। ज्ञानी पुरुषों का वैराग्य उसी के कारण टिकता है। वह असंख्य ब्रह्माण्डों का सहज लीला से सृजन तथा संहार करती है और अन्ततः स्वयं मूल पुरुष में विलीन हो जाती है। बाह्य दृष्टि से हमें सृष्टि रूप में उसका कार्य दिखाई देता है पर अन्तर्भाव से विचार पूर्वक उसकी खोज करने पर वह अप्राप्त भासित होती है। ब्रह्मादिक देवताओं को भी वह अगम्य है। प्राणि मात्र की सारी चेष्टाओं की वह प्रेरक-शक्ति है। वही शुद्ध स्फूर्ति रूप ज्ञान है। वह ज्ञान शक्ति होने के कारण ही उसके प्रभाव से सब ब्रह्मानन्द का अनुपम रसास्वादन कर पाते हैं। 'तत्वमासि' आदि महावाक्यों का आधार लेकर वह सृष्टि का नाश अर्थात् संसार रूपी भ्रम का निरसन करती है। वह अत्यन्त कल्याण प्रद एवं मोक्ष लक्ष्मी है। वह ब्रह्म रन्ध्र से अमृत रूप में स्त्रवित होने वाली सत्रहवी जीवन-कला है। वह परम सत्वरूप शान्ति रूप लावण्यखानि है। अव्यक्त पुरुष (ब्रह्म) उसीके द्वारा व्यक्त होता है, सगुण साकार होता है। वह परमार्थ मार्ग के सार-आसार विचारों का विश्लेषण करती है और शब्द की सहायता से बुद्धिमानों का भव सागर से पार लगाती है।

परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैंखरी इन चार वाणियों के रूप में वह इस देह में प्रत्यक्ष खड़ी है। अन्तःकरण में तीन वाणियों के द्वारा जो कल्पना उत्पन्न होती है, उसे वैंखरी वाणी प्रकट काली है। अतः संसार

में जो भी कार्य होते हैं, वे सब श्री शारदा माता के ही कारण होते हैं। हरिहर-ब्रह्मादिकों की वह जन्मदात्री माता है। सत्व-रज-तम प्रधान त्रैलोक्य की सृष्टि रचना उसी की विस्तार है। वह परमार्थ का न केवल मूल हैं, अपितु स्वयं ब्रह्म विद्या है। निवान्त, निर्मल और निश्चल आत्मास्थिति ही शारदा है। योगीजन उसी का ध्यान करते हैं। साधकों के चिंतन और सिद्धों की समाधि में उसी का रूप है। निर्गुण के रूप की कल्पना भी उसी का रूप है। वह सब प्राणियों में व्यापक रूप से परिपूर्ण भरी हुई है। समस्त शास्त्र, पुराण, वेद, श्रुति उसी का अखण्ड स्तवन किया करते हैं। सब प्राणि मात्र विविध रूपों में उसी की स्तुति करते हैं। निरूपम परब्रह्म की उपमा भी वही है। उसी की सापेक्षता के कारण अनाम परब्रह्म को परमात्मा संबोधित किया जाता है। अनेक विद्या, चौंसठ कला, अष्ट महासिद्धि, बुद्धि के अनेक प्रकार के निश्चय परमात्म-वस्तु का सूक्ष्म ज्ञान यह सब उसी शारदा के स्वरूप हैं। भगवद् भक्तों की आत्म-रतिरूप भक्ति अन्तर्निष्ठों की आत्म-निष्ठा जीवन-मुक्तों की सायुज्य मुक्ति यह सब उसी के स्वरूप हैं। बड़े-बड़े विद्वानों को ज्ञानाभिमान में फँसाने वाली उसकी वैष्णवी माया अनन्त है। उसकी लीला अतर्क्य है। सारांश, दिखाई देने वाली शब्दों से ज्ञात होने वाली और मन से भासित होने वाली जो जो वस्तु है, वह सब उसी का रूप है। स्तवन, भजन, भक्ति भाव आदि कोई भी साधन बिना माया की सहायता के असंभव है। इस कथन का रहस्य अनुभवी पुरुष ही जान सकेंगे। अतएव हरि-हरादिक श्रेष्ठ देवतओं से भी सर्वश्रेष्ठ ईश्वर का भी ईश्वर ऐसी श्री शारदा माता को मैं उसीका अंश उससे तन्मय होकर नम्रभाव से नमस्कार करता हूँ।

चौथा समास

श्री सद्‌गुरु-स्तवन

अब सद्‌गुरु का स्तवन करना है पर जिस (ब्रह्म) स्वरूप को माया स्पर्श भी नहीं कर सकती। वह स्वरूप मुझ अज्ञानी को कैसे विदित होगा ? अतः मैं सद्‌गुरु स्वरूप का वर्णन कैसे कर सकूँगा ? जिस स्वरूप के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष श्रुति ने 'नेति नेति' (यही नहीं, यही नहीं) कहकर अपनी अज्ञता स्वीकार की है, वहाँ मुझ जैसे मूर्ख की बुद्धि का प्रवेश कैसे होगा ? उसका वर्णन कैसे किया जाय, यह मैं नहीं जानता, इसलिए यहीं से (देह बुद्धि से) ही नमस्कार करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि हे गुरुदेव, मुझे संसार-सागर से पार करो। सद्‌गुरु स्तवन की मिथ्या लालसा मन में थी पर अब माया का आधार टूट गया है। अतः सद्‌गुरु देव ! आप जैसे भी हों वैसे बने रहें। मुख्य परमात्मा का आकलन नहीं कर पाता, इसलिए, उपासना हेतु उसकी प्रतिमा बनाई जाती है। उसी प्रकार माया के आश्रय से सद्‌गुरु की महिमा मैं वर्णन करता हूँ। हमारे मन में जैसी भावना होती है,उसी प्रकार के देवता का ध्यान हम करते हैं। उसी भाँति मैं अब सद्‌गुरु की स्तुति करता हूँ।

सद्‌गुरु स्तवन की मिथ्या लालसा मन में थी पर अब माया का आधार टूट गया है। अतः सद्‌गुरुदेव ! आपकी जय हो। आप विश्व के मूल कारण हैं और विश्व का पोषण भी आप ही करते हैं। आप परम पुरुष और दीन बन्धु तथा मोक्ष ध्वज अर्थात शरणागत के मोक्ष दाता भी हैं। आपका अभय हस्त शरणागत के मस्तक पर पड़ते ही जैसे सूर्य प्रकाश से अंधकार का तत्काल नाश हो जाता है। यह अनि-वार्य माया भी तिरोहित हो जाती है। सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, पर सूर्यास्त के बाद रात्रि आते ही अंधकार से सारा ब्रह्माण्ड भर जाता है परन्तु सद्‌गुरुदेव, आप वैसे नहीं है। इसीलिए

आप दूसरे के अज्ञान का समूल नाश कर उसे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर देते हैं। पारस के स्पर्श से लोहे का सोना होने के बाद पुनः सोना लोहा नहीं बन सकता उसी भाँति जो गुरु-भक्त सद्‌गुरु कृपा से ब्रह्मरूप हो जाता है वह पुनः देह बुद्धि के संशय में नहीं पड़ सकता। सामान्य नदी गंगा में प्रविष्ठ होने के बाद वह गंगा ही हो जाती है। फिर उसे गंगा से अलग करना चाहें, तब भी वह कभी विलग नहीं हो सकती पर संगम के पूर्व उस नदी को लोग सामान्य ही मानते हैं। सद्‌गुरु को शरण जाने वाले शिष्य के लिए यह बात चरितार्थ नहीं होती। गुरुदेव कृपा के पात्र होते ही उसका शिष्यत्व समाप्त होकर वह स्वयं स्वामी ही बन जाता है। पारस लोहे को सोना बना देता है पर अपना गुण नहीं देता अर्थात लोहे को सोना नहीं बना सकता परन्तु जो सद्‌गुरु का सच्चा सेवक होता है, वह अनेक लोगों को ब्रह्मज्ञान के उपदेश देने का अधिकारी बन जाता है। अतः सद्‌गुरु की कृपा से शिष्य भी सद्‌गुरु बन सकता है इसलिए सद्‌गुरु को पारस की उपमा शोभा नहीं देती। सद्‌गुरु को सागर की उपमा दें तो सागर अत्यन्त खारा और सद्‌गुरु तो अमृत-मोक्ष स्वरूप अत्यन्त मधुर होते हैं। यदि उन्हें क्षीर-सागर कहें तो वह भी कल्पांत में नाशवान है, जब कि सद्‌गुरु स्वरूप सदा शाश्वत है। उन्हें सुमेरु पर्वत की उपमा दें, तो वह जड़ और कठोर पाषाण युक्त है, जब कि सद्‌गुरु दीनों के लिए अत्यन्त कोमल है। धैर्य और सहनशीलता के लिए यदि पृथ्वी से तुलना करें तो पृथ्वी भी कल्पांत में नष्ट हो जाती है। तेजस्वी की उपमा दें, तो सूर्य का प्रकाश मर्यादित है पर सद्‌गुरु का ज्ञान-प्रकाश अमर्याद है। जल की उपमा दें तो वह भी कालांतर में सूख कर नष्ट हो जाता है, जब कि सद्‌गुरु स्वरूप निश्चल और कभी न मिटने वाला है। सद्‌गुरु को अमृत की उपमा भी नहीं दी जा सकती क्योंकि अमृत प्राशन करने वाले देवता भी अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं पर सद्‌गुरु कृपा शिष्य को अमर बना देती है। उन्हें कल्पतरु कहें तो कल्पतरु केवल इच्छा-नुसार ही देता है, जब कि सद्‌गुरु इच्छाओं का अन्त कर निर्विकल्प पद

प्रदान करते हैं। फिर उस कल्पवृक्ष को स्वीकार कौन करेगा? सद्गुरु कृपा से मन बिलकुल चिन्ता मुक्त हो जाता है, फिर चिन्तामणि की इच्छा कौन करेगा? और जो निष्काम हो जाता है, उसे काम धेनु के दुग्धपान की भी आवश्यकता नहीं होती। सद्गुरु को लक्ष्मी वन्त कहें तो लक्ष्मी भी नाशवान है और सद्गुरु के द्वार पर तो मोक्ष-लक्ष्मी हाथ जोड़े खड़ी रहती है। स्वर्गलोक, इन्द्र का वैभव यह सब कालांतर में नष्ट हो जाते हैं पर सद्गुरु कृपा से प्राप्त होने वाला सुफल कभी नष्ट नहीं होता। सब सृष्टि नाशवत है, अतः उसके पदार्थों की उपमा सद्गुरु को कैसे दी जाय? पंच महाभूतों का क्रिया कलाप सद्गुरु पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। अतः सद्गुरु का वर्णन करना ही असंभव है। बस, सद्गुरु के चरणों में मेरी यही स्तुति अर्पित है। इस अन्त. स्थिति की पहिचान अन्तनिष्ठ ज्ञानी पुरुष ही कर सकेंगे।

पांचवां समास

संत-स्तवन

परमार्थ के आधार भूत ऐसे सत्पुरुषों को अब मैं नमस्कार करता हूँ। सर्वसाधारण के लिए गुप्त आत्मज्ञान उनके द्वारा प्रकट होता है। अत्यन्त दुर्लभ और अपूर्व पर ब्रह्म की प्राप्ति सत्संगति से ही सुलभ होती है। पर ब्रह्म वस्तु तो प्रकट ही है पर स्थून दृष्टि से वह किसी को भी नहीं दिखाई देती। अनेक कष्ट का साधन करने पर वह प्राप्त नहीं होती। बड़े बड़े परीक्षक भी यहाँ धोखा खा जाते हैं और आखें होने पर भी अन्धे बन जाते हैं। वह आत्म वस्तु को देखते हुए भी उसे प्राप्त नहीं कर पाते। दीपक के प्रकाश से भी वह दिखाई नहीं देती न वह अन्य किसी प्रकाश से ही दृश्य मान होती है और न आंखों में अंजन डालने पर भी उसे देखा जा सकता है। सोलह कलाओं से प्रकाशित पूर्ण चन्द्र अथवा कला राशि प्रखर सूर्य भी उसको दिखा सकने में अस-

मर्थ हैं। ऐसी परमात्म वस्तु साधुमन्तों के सत्संग से साधकों को सहज प्राप्त हो जाती है। जिस आत्मवस्तु की प्राप्ति के लिए अनुमान अपर्याप्त है, प्रयत्न और तर्क कुंठित हैं, और विवेक तथा शब्द असमर्थ हैं, जहां मन की चपलता काम नहीं देती है, सहस्त्र मुख वाला शेष भी जिसका वर्णन करते करते थक गया, सर्व ज्ञान के भण्डार वेद भी जिसे प्रकट नहीं कर सके, ऐसी आत्म वस्तु संत-संगति द्वारा स्वानुभव से ज्ञात हो जाती है। ऐसे सत्संग की महिमा शब्दों से कौन वर्णन कर सकता है ? माया की शक्ति बड़ी आश्चर्य जनक है पर वह भी इस वस्तु की पहिचान नहीं करा सकती। ऐसे मायातीत अनन्त परमात्मा का मार्ग संतजन दिखाते हैं। सारांश उस वस्तु का वर्णन करना असंभव है। वह परमात्म वस्तु संतों का स्वरूप ही है, इसलिए संतों का वर्णन करना भी कठिन है।

संत आनन्द के सागर हैं। संत केवल सुखरूप, अनेक संतोषों के मूल, विश्राम के विश्राम तृप्ति की निज तृप्ति और भक्ति की फलश्रुति हैं। संत धर्म के धर्म क्षेत्र हैं। पुण्य की पवित्रतम पुण्य भूति समाधान का पवित्र मंदिर, विवेक का भण्डार और सायुज्य मुक्ति का सदन संत है। सत्य का मूर्तिमान निश्चय, जन्म-साफल्य का स्वरूप और मोक्ष के ऐश्वर्य से विभूषित ये संत इतने श्री सम्पन्न हैं कि अगणित दरिद्री जीवों को वे परमार्थ के नृपति (राजा)बना देते हैं जो महान समर्थ और उदार हैं, जो अत्यन्त दानशूर हैं ऐसे श्रीमानों को भी संतों के समान आत्म-ज्ञान के सद् विचारों का दान करना संभव नहीं है। संतों की ऐसी अपार महिमा है।

छठवां समास

श्रोता-स्तवन

अब भक्त, ज्ञानी, संत सज्जन, विरक्त, योगी, गुणी, सत्यनिष्ठ, आदि अनेक प्रकार के अधिकारी श्रोताओं को नमस्कार करें। श्रोताओं में कोई सत्य के संसार, कोई महा बुद्धिमान और कोई अनेक शब्द-रत्नों की खान हैं। कोई अनेक भांति के अर्थ रूपी अमृत के भोक्ता हैं, तो कोई वक्ताओं के वक्ता अर्थात वक्ताओं को सूचना-स्फूर्ति देने वाले होते हैं। उनके कारण समा अति शोभायमान है। वे आत्म स्वरूप में अखण्ड सावधान, भूत भविष्य वर्तमान के ज्ञाता निरहंकारी और आत्म-निष्ठ हैं। उनके निरीक्षण से कोई चीज छूटी नहीं है। प्रत्येक पदार्थ का सूक्ष्म-विचार उन्होंने अपने मन में निश्चित कर रखा है। जो जो कुछ हम उन्हें बताना चाहते हैं, वह सब कुछ उन्हें पहले से ही विदित रहता रहता है। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न श्रोताओं के सन्मुख मैं ज्ञाता बनकर क्या निवेदन करूं? फिर भी वे गुण ग्राहक हैं, इसलिए मैं उनके सामने निशंक होकर बोलता हूं। बड़े लोग सब चीजों का संग्रह करते हैं। नित्य दिव्य पकवानों का सेवन करने वाले भी रुचि-परिवर्तन के लिए कभी-कभी सादा आहार किया करते हैं, तद्वत मेरे यह प्राकृत वचन हैं। अपनी शक्तिनुसार भक्ति पूर्वक हम परमेश्वर की पूजा अर्चा करें परन्तु सामग्री की कमी के कारण पूजा ही न करें यह नहीं कहा गया है। तदनुसार मैं एक वचन-दरिद्री हूँ और श्रोतागण साक्षात परमेश्वर स्वरूप हैं। यों ही कुछ बकने वाला मैं उनकी पूजा करना चाहता हूँ। विधिवत शास्त्राध्ययन, विद्या, कला, चातुरी, कवित्व, भक्ति ज्ञान, वैराग्य, बोलने की मधुरता इनमें से एक भी गुण मुझ में नहीं है। इस प्रकार का मेरा वाक्-विलास (भाषण) है फिर भी जगदीश भाव का भूखा है, यह जानकर मैं लम्बी चौड़ी बाते बघार रहा हूँ। हे

श्रोतागण आप लोग प्रत्यक्ष जगदीश्वर की मूर्तियाँ हैं। आपके सन्मुख मेरी विद्वता की क्या बिसात ? मैं निर्बुध और मति मन्द हूँ। फिर भी आपसे निकटता से बातें करने की चेष्टा कर रहा हूँ। किसी बड़े आदमी का लड़का मूर्ख होने पर भी बाप के बल पर उसमें भी कुछ सामर्थ्य तो होती ही है। इसी भाँति मैं आप संतों का बालक बनकर आपके निकट भाषण कर रहा हूँ। सिंह-शेर आदि भयंकर प्राणियों को देखकर लोग भागने लगते हैं पर उनके बच्चे उनके सामने निःशंक होकर खेला करते हैं। इसी प्रकार मैं संतों का अंकित (बालक) बनकर आप संत-जनों के सम्मुख बोल रहा हूँ। अतः मुझे निभा लेने की चिन्ता आपको रहेगी ही। अपना बालक यदि कुछ कम ज्यादा बोलने लगे तो हम उसको क्षमा कर देते हैं। यह प्रेम का लक्षण है। मन की यह सहज प्रवृत्ति हैं। आप संत सज्जन विश्व के माई-बाप हैं। अतः आप मेरा हेतु ध्यान में रखकर जैसा उचित समझें करें और मेरी आगे की बातों को लक्ष पूर्वक सुनें, यही मुझ वासानुदास की नम्र प्रार्थना है।

सातवां समास

कविश्वर-स्तवन

शब्द-सृष्टि के ईश्वर और वेद रूपी परमेश्वर के समान कवीश्वरों को अब मैं प्रणाम करता हूँ। कवि यथार्थ में सरस्वती के निवास-स्थानों अनेक कलाओं के जीवन और अनेक शब्दों के मंदिर हैं। परमेश्वर की अगाध लीला और सुयश का वर्णन करने के लिए कवियों का निर्माण हुआ है। शब्द-रत्नों के सागर मुक्ती रूपी मोतियों के सरोवर अथवा अनेक प्रकार की बुद्धि सम्पदा के भण्डार कवि रूप से निर्मित हुए हैं। कविगण अध्यात्म-ग्रन्थों की खानि और सवाक् चिंतामणि हैं। कामधेनु की दुग्ध-धारा का प्रवाह कवि के रूप में श्रोताओं की ओर प्रवाहित होता है। ज्ञानी पुरुषों का परमार्थ ही कवि के रूप से प्रत्यक्ष प्रकट हुआ है निर्गुण, निरंजन परब्रह्म की

पहिचान और माया से भिन्न परमात्मा के स्वरूप कवि ही हैं। वेदों का रहस्य अथवा परमेश्वर का अलभ्य लाभ अर्थात आत्म-बोध कवि रूप से सुलभ हो गया है। कवि मुमुक्षु की आँखें खोलने वाला अंजन है। वे साधकों को साधन मार्ग दिखाते हैं और सिद्धों का निश्चयात्मक समाधान करते हैं। कवि वैराग्य के संरक्षक और भक्तों के भूषण हैं। स्वधर्म का रक्षण भी कवियों द्वारा ही हुआ करता है। कवि प्रेम योगियों की प्रेम भावना ध्यान-धारकों की ध्यान मूर्ति और उपासकों की महाकीर्ति का विस्तार करते हैं।

कवियों से ही सभा को शोभा आती है। कवि देवताओं को नाम रूप देने वाले, ऋषियों की महिमा गाने वाले और शास्त्रों की सामर्थ्य का वर्णन करने वाले हैं। महाकवियों द्वारा उत्तमोत्तम काव्य-ग्रन्थ न रचे जाते तो जगत् का उद्धार कैसे होता ? इसलिए कवि इस सारी सृष्टि के आधार भूत हैं। अनेक विद्या और ज्ञान कविश्वरों के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। सब विषयों का ज्ञान कवियों से ही होता है। प्राचीन काल में व्यास-वालिमकी जैसे अनेक महान कवि हो गये हैं, उन्हीं से जन-साधारण को विवेक की प्रप्ति हुई है। बड़े-बड़े कवियों ने प्रचीन समय में महाकाव्यों की रचना की थी, इसीलिए पंडितों को व्युत्पत्ति प्राप्त होकर उनकी योग्यता बढ़ सकी। अस्तु, भूतकाल में जो असंख्य कवि हो गये हैं। वर्तमान में जो हैं और जो भविष्य में होंगे, उन सबको मेरा नमस्कार है। कवि चातुर्य की मूर्ति और साक्षात बृहस्पति ही हैं। वेद-श्रुति आदि भी उन्हीं के मुख से प्रकट होने की कामना करते हैं। कवियों के रूप से अमृत से पूर्ण मेघ ही पृथ्वी पर वर्षा करते हैं। अतः सर्वसृष्टि के आधारभूत इन कवीश्वरों को मैं साष्टांग भाव से नमस्कार करता हूँ।

आठवां समास

सभा-स्तवन

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये नय।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

जिस सभा में स्वयं जगदीश्वर प्रेमपूर्वक बाट जोहते खड़ा रहता है और इसीलिए जहाँमुक्ति सुलभ है,ऐसे कीर्तन पुराण निरूपणों की सर्व सभाओं को मेरा नमस्कार है। भगवान स्वयं कहते हैं कि 'हे नारद, मैं कदाचित बैकुंठ में न मिल सकूं, योगियों के हृदयों में भी शायद न मिलूं पर जिस जिस स्थान पर मेरे प्रेमी भक्त गायन करते हैं, वहां मैं अवश्य उपस्थित करता हूँ। इसलिए भक्त जहाँ भगवान के गुणानुवाद गाते हैं और उनके नामों का जय घोष करते हैं वही सभा श्रेष्ठ है। वह प्रत्यक्ष बैकुंठ ही है। ऐसी सभाओं में निरन्तर प्रेमी भक्तों के गायन, भगवद् कथा, हरि कीर्तन, वेदों के व्याख्यान, पुराण श्रवण, परमेश्वर के गुणानुवाद, अध्यात्म-निरुपण के सुख संवाद और आध्यात्म-शास्त्र के सुख-संवाद और अध्यात्म-शास्त्र के विभिन्न विषयों की चर्चायें हुआ करती हैं।

इन सभाओं में अनेक प्रकार की आशंकाओं का निरसन होकर समाधान और तृप्ति होती है। भक्तों की संभाषण-चातुरी से चित्त में ध्यान मूर्ति स्थिर होती है। भक्त प्रेमी, भाव सम्पन्न, सभ्य, गंभीर, सात्विक, रमणीय, रसिक, गीतकार, निष्ठावान, कर्म निष्ठ, आचारशील, दानशूर, धार्मिक, पवित्र, पुण्यवान, निर्मल अन्तःकरण के कृपावान, योगी, वैराग्य सम्पन्न, अनासक्त, नित्यनेमी, निग्रहही, तपस्वी, विरक्त, निस्पृह, अरण्यवासी, सन्यासी, उपासक, गुणग्राहक, संत, सज्जन, विद्वान, वेद वेत्ता, शास्त्री, महात्मा, सर्वज्ञ ऋषिश्वर, दूरदर्शी, तत्ववेत्ता, आदि अनेक सज्जन ऐसी सभाओं में आते हैं। इन सभाओं में नित्यानित्य

विवेक को जानने वाले कुछ प्रमुख सदस्य होते हैं। उनकी महिमा अपूर्व हैं। जहाँ जहाँ पर परमार्थ साधक समुदाय उपस्थित होता है, वहाँ लोगों का सहज ही उद्धार हो जाता है। विद्या कला आदि विशेष सद्गुणों से युक्त और भगवान के प्रिय अनेक भक्त वहाँ एकत्रित होते हैं। ऐसे भक्त कि जिनके सत्संग से अकस्मात समाधान प्राप्त होता है, उन्हें मेरा नमस्कार है। जहां सदा प्रभु कीर्तन होता है, ऐसी सभाओं को भी मेरा नमस्कार है।

नवाँ समास

परमार्थ-स्तवन

अब परमार्थ का स्तवन करें। परमार्थ ही सच्चे साधक का स्वहित है। सब योगों में श्रेष्ठ यह परमार्थ योग हैं। वैसे देखा जाय तो परमार्थ अत्यंत सुलभ है पर जनता को संत समागम का रहस्य अवगत न होने से वह विकट दिखाई देता है। अन्य अनेक साधन उधार हैं पर परमार्थ के द्वारा आत्म-साक्षात्कार शीघ्र होता है। वेद-शास्त्रों में जो सार बताया गया है, उसका परमार्थ में प्रत्यक्ष अनुभव होता है। परब्रह्म परमात्मा चारों ओर व्याप्त है पर चर्म चक्षुओं से वह जरा भी दिखाई नहीं देता। वह सबसे अलिप्त है, इसलिए उसे एकांगी दृष्टि से देखने पर दिखाई नहीं देता। परमार्थ आकाश-मार्ग का सूक्ष्म विवेक द्वारा अहंकार रहित होकर पार उतरने का गुप्त मार्ग है। परम श्रेष्ठ योगी ही इस मार्ग को जानते हैं। दूसरों को यह रहस्य सहज उपलब्ध नहीं होता। परमार्थ-तत्व यह सबका सार उत्तम से उत्तम तत्व है। वह अखण्ड, अक्षय और अपार है। उसको कोई चुरा नहीं सकता। उसे राजा का, अग्नि का हिंस्त्रश्वापदों का कोई भय नहीं होता। परब्रह्म अचल है। वह प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निधि है। अनन्त काल बीतने पर भी उसमें कमी नहीं हो सकती। पर वह बिना गुरू-कृपा रूपी अंजन को आँखों में डाले, वह दिखाई नहीं दे सकता। इस पर-

मार्थ की अपूर्वता क्या कही जाये ? उसका लाभ होने पर जन्म-मृत्यु के बन्धन कट जाते हैं और सायुज्य मुक्ति का आनन्द स्वयं अपने आप में होने लगता है। तव विवेक से मात्रा का निरसन हो जाता है। सारा सार का वोध होता है और परब्रह्म की झांकी अन्तः करण में दिखाई देने लगती है। सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई देने लगता है और उस ब्रह्माभास में सब ब्रह्माण्ड डूब कर पंच महाभूतों का सब खेल तुच्छ मालूम होता है। सारा संसार मिथ्या मालूम होता है। माया काल्पनिक भासती है और विवेक-बुद्धि द्वारा शुद्ध आत्मा का अन्तः करण में ही दर्शन होता है।

इस प्रकार ब्रह्मस्थिति का अनुभव होते ही सब संशय नष्ट हो जाते हैं। दृश्य सृष्टि का पुराना जीर्ण परदा दूर हो जाता है और योगी ब्रह्म स्वरूप में लीन हो जाते हैं। परमार्थ सवका विश्रांतति-स्थान है। परमार्थ ही जन्म का सार्थक है। परमार्थ ही संसार से तारने वाला है। तपस्वी और साधकों का आधार यह परमार्थ ही है,जीव मात्र को भव सागर से पार उतार सकता है। जिसे परमार्थ सध गया, वही सच्चा राजा वन गया। जिसे वह नहीं सधा वही दरिद्री, भिखारी है। इस परमार्थ की समता कौन कर सकता है ? अनन्त जन्मों के पुण्य-प्रताप से ही यह परमार्थ भाता है और उसी के द्वारा परमात्म तत्व का अनुभव होता है। जिसने इस परमार्थ को-परमात्म तत्व को पहचान लिया, उसी का जन्म सार्थक है।

अस्तु, भगवान की प्राप्ति का प्रयत्न न करते हुए, जो रात दिन केवल स्वार्थ साधन और प्रजनन में लगा रहा उसने सव जन्म व्यर्थ गंवाया। देव दुर्लभ मानव-देह को बेकार खोया। सारांश सूज्ञ विचारवान व्यक्ति को परमार्थ परम-तत्व परमात्मा की प्राप्ति में लगकर अपना जीवन सार्थक करना चाहिए।

दसवाँ समास

नरदेह-स्तवन

यह नरदेह अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसकी अपूर्वता तो देखिए। परमार्थ विषयक जो जो इच्छा धारण करें, वह इस नरदेह में सफल हो सकती है। इस नरदेह के आश्रय से कोई तत्काल भक्ति मार्ग में लग जाते हैं, कोई तीव्र वैराग्य धारण कर गिरि कंदरों में जाकर बैठते है। कोई तीर्थ यात्रा करते हैं, तो कोई पुरश्चरण करते हैं। कोई नाम स्मरण पर निष्ठा रख कर अखण्ड नाम करते हैं। कोई तप, योगाभ्यास करते हैं तो कोई अध्ययन कर वेद शास्त्रज्ञ बनते हैं। किसी ने ईश्वर प्राप्ति के लिए व्रत-उपवास अथवा हठयोग द्वारा शरीर कृश किया है और किसी ने भाव-सधना द्वारा ईश्वर-अनुसंधान कर लिया है। किसी को मनः सिद्धि, किसी को वाचासिद्धि और किसी को अन्य प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। अपनी अपनी उपसना पद्धति के अनुसार कोई स्वर्ग लोक में गये, कोई सत्य लोक में पहुँचे। इस प्रकार असंख्य साधु-संत और सिद्ध नरदेह के द्वारा अपना कल्याण कर चुके हैं। सब उद्धार नरदेह द्वारा ही हो सकता है। संत-महन्त, ऋषि-मुनि, सिद्ध-साधु, भक्त-मुक्त, ब्रह्मज्ञानी, विरक्त, योगी, तपस्वी, तत्ववेत्ता आदि सभी नरदेह धारी ही हैं। इसलिए नरदेह सर्वश्रेष्ठ है। इसके द्वारा जन्म-मृत्यु का संकट टल सकता है। नरदेह स्वाधीन है। अनायास पराधीन नहीं होता। अतः उसे परोपकार में लगाकर कीर्ति रूप से अमर बनाना चाहिए। मेरा मकान, मेरी धन-दौलत आदि का मोह मिथ्या है। यह सब छोड़कर सबको इस संसार से जाना है। यह तो केवल दो दिन का मुसाफिर-खाना है। देह भी अपना है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उस पर भी अनेक कृमि कीटकों का अधिकार है जुएँ हमारी खोपड़ी का रक्त पीती हैं। खटमल, पिस्सू, मच्छर आदि

हमारे शरीर का शोषण करते हैं। हमारे उदर, रक्त, कोष आदि में करोड़ों कीटाणु भरे हैं। दांत, आँख और कान में भी कीड़े लगते हैं। आजीवन हम जिसकी सेवा करते रहे, उस देह को अचानक शेर खा जाता है, चोर, हत्यारे डाकू समाप्त कर देते हैं। फिर भी हम मूर्खता वश इसे अपना मानकर उसको रातदिन संवारा करते हैं। यह देह परमार्थ में सदुपयोग करने से ही सार्थक हो सकती है। जो स्वार्थ में लिप्त हैं, उन मूर्खों को परमार्थ सुख की कल्पना ही कैसे हो सकती है ? ऐसे मूर्खों के लक्षण हम आगे बतायेंगे।

दूसरा दशक

पहला समास

मूर्खों के लक्षण

हे ओंकार रूप गजानन ! हे एकदंत ! हे त्रिनयन ! आप कृपा दृष्टि से इस भक्त की ओर अवलोकन करें। हे वेद माता शारदा ! तुम्हें भी नमस्कार है। हे दयाशीला, स्फूर्ति रूप से तुम भी मेरे अन्तःकरण में निवास करो। पर ब्रह्म श्री सद्गुण के चरण वन्दन कर और उपास्य भगवान श्री राम प्रभु का स्मरण कर अब मैं लोक हित के लिए मूर्खों के लक्षण कहूँगा। इसका उद्देश्य केवल यह है कि लोग इन्हें जानकर उनका त्याग करें।

इन मूर्खों में कुछ तो सामान्य मूर्ख और पढ़त मूर्ख होते हैं। मूर्खों के लक्षण अगणित हैं, जिनमें से कुछ ही बता रहा हूँ। जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है और जो केवल प्रपंच में ही लगे हुए हैं, ऐसे ही अज्ञानी लोगों को यहाँ मूर्ख कहा गया है और उन्हीं के लक्षण बताये गये हैं।

एक मूर्ख वह है, जो जन्मदाता माता-पिता का विरोध कर पत्नी को ही परम सखा मानकर उसका अंकित हो जाता है। एक मूर्ख वह

है, जो पर स्त्री से प्रेम करता है, ससुराल में रहता है, तथा कुलहीन कन्या से विवाह करता है। एक मूर्ख वह है, जो अपने से श्रेष्ठ पुरुषों के सामने अहंभाव से बराबरी का दावा करता है। और बिना सामर्थ्य के सत्ता पर आसीन होता है। एक मूर्ख वह है, जो स्वयं अपनी तारीफ करता है और अपने पूर्वजों की बढ़ाई बताते हुए अपने ही स्थान पर विपत्तियों को भोगते हुए पड़ा रहता है। एक मूर्ख वह है, जो बिना कारण हँसता है, दूसरों की बात अनसुनी करता है तथा अनेक लोगों से से वैर रखता है। एक मूर्ख वह है, जो अपने आप्तजनों की उपेक्षा कर पराये लोगों से प्रेम करता है और रात में दूसरों के छिद्रान्वेषण और निन्दा में व्यस्त रहा करता है। एक मूर्ख वह है जो सब जागते हों, तब स्वयं पांव पसार कर सो जाता है और पराये स्थान पर ठूंस ठूंस कर अधिक भोजन करता है। एक मूर्ख वह है जो अपने मानापमान की बातें करता है और जारण-मारण आदि हीन व्यसनों में निमग्न रहता हैं। एक मूर्ख वह है, जो दूसरों पर निर्भर रहकर स्वयं प्रयत्न करने करने से मुँह मोड़ता है और प्रमादी बनकर आलसी जीवन में ही आनन्द मानता है।

जो विषय भोगों में निर्लज्ज होकर लिप्त रहता है, रोगी होकर भी औषधि-उपचार नहीं करता और न पथ्य का पालन करता है, वह भी मूर्ख है। एक मूर्ख वह है, जो बिना साथी के परदेश भ्रमण करता है, अपरिचित की संगति करता है। एक मूर्ख वह है, जो किसी के यहाँ अकारण बार बार जाता है, जो अपनी प्रतिष्ठा की परवाह नहीं करता और सदा चंचल रहता है। जो परोपकारी नहीं है बल्कि कृतघ्न है, जो काम कम और बातें बहुत करता है वह भी मूर्ख है। क्रोधी, पेटू, आलसी, गन्दा, कुटिल एवं जिसमें धीरज नहीं ऐसे सब व्यक्ति मूर्ख ही हैं। विद्या, वैभव, धन, पराक्रम, सामर्थ्य, प्रतिष्ठा आदि से शून्य होते हुए भी जो अहंकार बताता है, वह मूर्ख ही है। डरपोक, झूठा, चालाक, दुष्कर्मी, लापरवाह, उद्धत अति सोने वाला, आत्मीयों

से प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हुए नीच वृति लोगों से दवने वाला, परिवार को ही सब कुछ मानकर प्रभु को भूलने वाला, अनेक स्त्रियों से विवाह करने वाला देव-गुरु माता-पिता ब्राह्मण एवं स्वामी से कपटाचरण करने वाला, परपीड़ा में सुख और पराये सुख में दुःख मानने वाला और गत वस्तु के लिए शोक करने वाला मूर्ख ही है।

मद्य, पर स्त्री आदि निंद्य वस्तुओं का सेवन करने वाला, दूसरों को नीचा दिखाने वाला, कुमार्ग गामी, दुराचारियों से मैत्री करने वाला, अप्रामाणिक, हमेशा हँसी मजाक करने वाला, श्रेष्ठ जनों से ईर्ष्या करने वाला, अलाभ वस्तु की इच्छा करने वाला, घर में ही चोरी करने वाला, जीवन सार्थक न कर व्यर्थ गंवाने वाला दुःख प्राप्त होने पर ईश्वर को दोष देने वाला मूर्ख है। एक मूर्ख वह भी हैं. जो विश्वासघात करता है, पापमार्ग से धन संचय करता है, धर्म एवं न्याय नीति के विपरीत व्यवहार करता है, छल-कपट करता है और सदाचिंतित रहता है। दोनों के संभाषण के बीच जाकर बैठने वाला, जल में कुल्ला करने वाला, नीचों की सेवा चाकरी करने वाला, मूर्खों से मैत्री करने वाला, मूक प्राणियों पर शस्त्र प्रहार करने वाला, धनी होने पर पुरानी परिस्थिति को भूलने वाला, देव-ब्राह्मणों पर अधिकार जताने वाला, अच्छी पुस्तकों को सुरक्षित न रखने वाला और अपने पास की पुस्तकों का स्वयं अध्ययन न करने तथा दूसरों को भी पढ़ने को न देने वाला मूर्ख ही है। मूर्खों के और भी अगणित लक्षण हैं, उनका कहाँ तक वर्णन करें। उनमें से कुछ त्यागने योग्य लक्षण यहाँ बताये हैं। इन्हें त्याग कर उत्तम लक्षणों को अंगीकार करें।

दूसरा समास

श्रेष्ठ लक्षण

अब हम उत्तम लक्षणों को बतायेंगे। बिना पूछताछ किये अपरिचित मार्ग से न जाय। कोई अपरिचित फल न खायें, कहीं किसी की पड़ी हुए वस्तु को लोभ वश अपने पास न रखें (ऐसा करने से कभी

कभी चोरी का फँदा गले में पड़ने का संशय है) अतिवाद-विवाद न करें। ऐसा करने से कभी-कभी दीर्घ कालीन स्नेह-संबंध टूटकर विरोध पैदा हो जाता है। कपट-भाव न रखें। बिना कुल-शील की जाँच किये वधू पसंद न करें। सभा में नम्रता और सरलता से पूछें। सर्व सम्मति से कोई निर्णय लिया जाता हो, तो उसमें मत भेद द्वारा बाधा न डालें। अन्तर्यामी सत्संग का त्याग न करे अर्थात सच्चे सद्‌गुरु, संत आदि से प्रेम न घटायें। कोई अच्छी बातें बताता हो तो उसे अवश्य सुनें और गुनें। कभी किसी की निन्दा न करें और न किसी का तिरस्कार या उपहास ही करें। किसी की निन्दा-चुगली न सुनें और सुनाई पड़े तक भी उस पर कोई ध्यान न दें। शरीर को आलसी और सुखाधीन न बनायें। परिश्रम और प्रयत्न सदा करते रहें। किसी के ऋणी न हों और यदि होना ही पड़े तो उससे उऋण होने से न चूकें। व्यापक दृष्टि से सब काम करें। कभी पराधीन बन कर न रहें। किसी पर अपना बोझ न डालें। बिना लिखा-पढ़ी के देन लेन का व्यवहार न करें। ओछे लोगों से कर्ज न लें। बिना गवाह के कोर्ट कचहरी या राज दरबार में न जायें। गलत पक्ष का समर्थन न करे। अपने दुराग्रह के लिए सभा-भंग न करें। जहाँ आदर न हो वहाँ भाषण न करे। किसी से ईर्ष्या, द्वेष न करें। शरीर के बल का अन्याय के लिए दुरुपयोग न करें। अति भोजन तथा अति निन्द्रा न करें। धूम्रपान तथा शराब गांजा भांग आदि उन्मत्त करने वाली मादक चीजें सेवन न करें। खुशामदी, बहुत बोलने वाले व्यक्ति से मैत्री न करें। निरुद्योगी न रहे, अपमान सहन न करें और बिना परिश्रम के किसी का अपने परिवार का अन्न भी न खायें। कभी अपशब्द न बोलें, दूसरों की हँसी न करें, और न किसी के दोष देखें। मर्यादा छोड़कर न चलें, कुल का आचार धर्म न त्यागें, दुराग्रह और मनमानी न करें और विना गुरु के न रहें। सत्य मार्ग को न छोड़ें। अपकीर्ति न होने दें। इन गुणों एवं लक्षणों को जो ग्रहण नहीं करते हैं। वे अधर्मी हैं। ऐसे लोगों के कुलक्षण आगे बतायेंगे।

तीसरा समास

कुविद्या-निरूपण

अब त्यागने योग्य कुलक्षणों को बताते हैं। कुलक्षणी प्राणि नरदेह व्यर्थ खोता है। उसके लक्षण सुनिये। उसे सद् ग्रन्थ सुनना संकट के समान प्रतीत होता है। वेद, वेदान्त, उपनिषद, शास्त्र आदि जन्म साफुल्य का मार्ग दर्शन करने वाले ग्रन्थों का निरूपण कष्ट दायक मालूम होता है। इसके विपरीत नाटक, उपन्यास एवं विकारोत्तेजक साहित्य का वह बड़ी तन्मयता से वाचन करता है। उस व्यक्ति में दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान, चिन्ता, कामना, अतृप्ति, विषयासक्ति, अनीति, आदि आसुरी संपत्ति के लक्षण दिखाई देते हैं। वह व्यक्ति दरिद्री और कृपण आलसी और पेटू, पापी और निंदक, हीन और हिंसक, ढोंगी और बनावटी जपशब्दों से दूसरों को दुःख देने वाला होता है। उसकी वाणी कठोर, असत्य, व्यर्थ और धिक्कार युक्त होता है। वह क्रोधी, कपटी, क्षुद्रमति, काम चोर, दुर्वर्तनी, निंदक, मूढ़, कायर, निर्लज्ज, ठग, झगड़ालू, नास्तिक होता है। भाव-भक्ति, ज्ञान, आचार, वैराग्य क्षमा आदि दैवी गुणों का उसमें सर्वथा अभाव होता है। इस प्रकार नाना विकारों से पूरित, कुलक्षणी व्यक्ति स्वयं अपने लिए तथा दूसरों के लिए अनुपयोगी होता है। ऐसे व्यक्ति का मनुष्य जन्म व्यर्थ ही है।

चौथा समास

भक्ति विवेचन

अनेक शुभ कर्मों के फलस्वरूप यह नरदेह प्राप्त हुआ है। तिस पर भी सन्मार्ग का लाभ होना अत्यन्त सौभाग्य की बात है। नरदेह में भी ब्राह्मण जन्म दुर्लभ है उसमें भी स्नान संध्या आदि सत्कर्म

एवं भगवद् भजन की रुचि होना कठिन। यह सब पूर्व जन्म के पुण्य से ही संभव है। इसके साथ ही सत्संग का लाभ हो तो जीवन सार्थक हुआ ऐसा मानना चाहिए। विधि युक्त ब्रह्म कर्म करें, दया दान धर्म और हरिभजन करते रहें, अनुताप युक्त त्याग करें, भक्तियोग, सत्संग, शास्त्र-ग्रन्थों का स्वाध्याय, तीर्थाटन और गायत्री पुरश्चरण आदि करते रहें। परोपकारमय जीवन बितायें, तथा संत-सद्गुरु से श्रवण किए गए ज्ञान का मनन चिंतन करें। तात्पर्य जन्म-साफल्य के लिए कुछ न कुछ सत्कार्म करते रहें। व्यर्थ भूमि का भार बनकर न रहें। जो इनमें से किसी सत्कार्य को नहीं करता वह जीवित होकर भी मृतक के समान है। उसने व्यर्थ ही माता की कोख कलंकित की। स्नान-संध्या, भजन-देवार्मनि, मंत्र-जप, ध्यान, मानस-पूजा इनमें से जो कुछ भी नहीं करता, जिसमें प्रभु के प्रति प्रेम, भक्ति, निष्ठा नहीं, दान, अतिथि सेवा, हरि कथा श्रवण और अध्यात्म—निरुपण नहीं, सत्संग नहीं, चित्त-शुद्धि नहीं, जो झूठे अहंकार से मोक्ष मार्ग को भूल कर न्याय-नीति से चलता नहीं. जिसमें विद्या, वैभव, चातुर्य, कौशल्य कुछ भी नहीं, जिसमें शान्ति. क्षमा, भूतदया नहीं, स्वधर्माचरण नहीं और जो मन-माना आचरण कर कर्म, उपासना, ज्ञान, वैराग्य का साधन जानता नहीं। उपरति, समता, त्याग, प्रभु प्रेम, परोपकार का सुख आदि का जिसे ज्ञान नहीं, ऐसा प्राणि जीवित होकर भी मृत ही है। जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है।

पांचवां समास

रजो गुण लक्षण

सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से युक्त यह देह है। इनमें सत्व गुण श्रेष्ठ है। प्राणियों को सत्वगुण की अधिकता से हरि भक्ति, रजो गुण से जन्म मरण की परम्परा और तमोगुण से अधोगति प्राप्ति होती है। (गीता अध्याय १४ के १८ वें श्लोक

में भी यही कहा गया है) इनमें भी शुद्ध और सबल अर्थात पारमार्थिक और सांसारिक ऐसे भेद हैं। जो परमार्थ साधन करे वह शुद्ध और जो संसार में लिप्त रहे वह सबल है। सांमारिक लोगों में तीनों गुण रहते हैं पर एक के प्रबल होने से दूसरे दोनों हट जाते हैं। तीनों गुणों के संयोग से ही मनुष्य जीवन चलता है। इस समास में रजो गुण का ही वर्णन करेंगे।

देह में रजो गुण की प्रधानता होने पर मनुष्य कैसे व्यवहार करता है, इसे देखें। घर मेरा, सब कुछ मेरा, ईश्वर कोई नहीं, मैं ही बड़ा हूँ, ऐसा मानना रजोगुण का लक्षण है। जो केवल अपने परिवार की ही चिन्ता करता है. वह रजो गुणी है। 'खाओ, पिओ और मौज करो' का सिद्धान्त मानने वाले, धन-धान्य का संचय बढ़ाते जाने वाले, देह का अभिमान करने वाले सब रजोगुणी है। विषयासक्त दुर्व्यसनी और नित्य नियम का पालन न करने वाले भी रजोगुणी हैं रजोगुगी व्यक्ति व्रत-उपवास की अनिच्छा और मिष्ठान्न की तीव्र लालसा रजोगुण का लक्षण है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, परमात्मा के लिए उदासीनता और अन्य सब सांसारिक वस्तुओं की अभिलाषा यह रजोगुण है, जो जन्म-मृत्यु के फेरे का कारण बनता है। संसारिक इच्छा एवं वासनाओं से मुक्त होने का उपाय भगवद्भक्ति ही है। संसार का संपूर्णतः त्याग कर वैराग्य प्राप्त न हो सके तब भी भजन-कीर्तन द्वारा प्रभु से अनन्य प्रेम भाव बढ़ाना चाहिए। प्रारब्धानुसार सुख दुःख भोगते हुए परमेश्वर का चिंतन करते रहें। आदि और अन्त में एक ही परमात्मा है। मध्य में ही संसार का आभास होता है और उसमें ममत्व पैदा हो जाता है। अतः आदि मध्य और अन्त में जो सतत परमात्म-तत्व है,उस पर पूरी निष्ठा रखनी चाहिए।

ऊपर बताया गया रजोगुण सबल रजोगुण कहा जाता है, जो केवल सांसारिक बातों की ही चिन्ता करता है। दूसरा शुद्ध रजोगुण परमार्थिक हुआ करता है। उसका परिचय सत्व-गुण के वर्णन में करेंगे। वह

शुद्ध रजोगुण भगवद् भजन का आधार है। क्योंकि 'रज: कर्माणि वर्तंते' कर्म मात्र रजोगुण का कार्य है पर रजोगुण सत्व गुण के साथ मिलकर जब कार्य करने लगता हैं, तब वह शुद्ध कहलाता है।

छटवां समास

तमोगुण लक्षण

पिछले समास में रजोगुण के लक्ष और कार्य बतलाये गये। अब तमोगुण के लक्षण बतलायेंगे। सांसारिक दु:खों के कारण चित्त में उद्विग्नता आती है अथवा क्रोध उत्पन्न होता है, यह तमोगुण का लक्षण है। जब क्रोध का आवेश बढ़ जाता है, तब माता-पिता, बहिन-भाई, पत्नी किसी की पहिचान नही रहती। जो सामने दिखाई दे उसी को मारने या स्वयं मरने को उद्यत हो जाता है। इस तरह जो आपे से बाहर कर देता है, वह तमोगुण है। तमोगुणी व्यक्ति पर हर दम पागलपन सवार रहता है। इसलिए उसका कोई निश्चय नही होता। उसे नींद प्यारी लगती है, वह प्राणियों की हिंसा में प्रसन्नता का अनुभव करता है और जो दया माया नहीं जानता वह तमोगुणी है। जो मन में कपट रखकर दूसरे के अहित की इच्छा करता है तथा उन्मत्त रहता है, वह तमोगुणी कहलाता है। जिसे सत्कर्म की इच्छा नहीं होती और जिसे पाप कर्म का भय नहीं होता, वह तमोगुणी है। दूसरे का दु:ख देखकर जिसे संतोष होता है, और जिसे सांसारिक कार्यों से कभी ऊबता नहीं. वह तमोगुणी है जिसे भक्ति-भाव, स्नान पूजा पाठ आदि में रुचि न हो तथा जो धर्म विरहित कार्यों में प्रवृत्त होता है, वह भी तमोगुणी है। किसी कार्य सिद्धि के लिए उपवास करना, पंचाग्नि साधन करना धूम्रपान करना और भूमि में समाधि लेना आदि तमोगुण के लक्षण हैं। किसी कामना से कोई अनुष्ठान करना, अनेक प्रकार के निग्रह कर देह को दंड देना और दु:ख सहन न होने पर रोना-

चिल्लाना तमोगुण है। जो परमात्मा की न्दिा करता है और जो सत्संग का प्रेमी नहीं है, वह भी तमोगुणी है। इस प्रकार तमोगुण में अनेक बुराइयाँ हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय। उनका त्याग किया जाय, इसलिये थोड़े में खेल संकेत मात्र किया है। तमोगुण से अधोगति होती है। तमोगुण से जितने निंद्य कर्म किये जायेंगे। उनका वड़ा भयङ्कर परिणाम भोगना पड़ेगा और हमें बार-बार अनेक नीच योनियों में जन्म लेना होगा। इसलिये हमें तमोगुण एवम् रजोगुण का त्याग कर सत्वगुण को अपनाना चाहिए। सत्वगुण से हम जन्म-मरण के चक्र से छूट कर मोक्ष के अधिकारी हो सकेंगे। उस सत्वगुण की महिमा तथ्य उसके लक्षण हम आगे के समास में बतायेंगे। श्रोतागण ध्यानपूर्वक सुनें।

सातवां समास

सत्वगुण-लक्षण

दुखदायक और भयङ्कर तमोगुण के लक्षण आप सुन चुके अब सत्वगुण का वर्णन करेंगे, जो अत्यन्त दुर्लभ है। सत्व-गुण भक्तियोग का आधार है। दुख रूप संसार का यह निरसन करता है और इससे उत्तम गति प्राप्त होती है। यह अत्यन्त सुखकारक और चित्त में आनन्द-लहरी उत्पन्न करने वाला तथा जन्म-मरण के भय से मुक्त करने वाला है। इससे अज्ञान का नाश होता है और परमार्थ का मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसा यह सद्गुण जब देह में प्रकट होता है, तब उसके क्या लक्षण होते हैं, वह बतायेंगे। सर्वसामान्य लोगों के समान ही सांसारिक कार्य करते हुए ईश्वर के प्रति असीम प्रेम होना, विचारों में सदा जागृत रहना, संसार दुःख की विस्मृति होकर स्वच्छ भक्तिमार्ग दिखाई देना, परोपकार में तत्पर रहना अन्तर-बाह्य शुचिता, यजन, याजन, अध्ययन एवं अध्यापन में प्रीति होना, अध्यात्मनिरूपण की लालसा, दान-धर्म में रुचि

आदि सत्वगुण के लक्षण हैं। सत्वगुणी लोगों का चित्त विकार रहित होता है और उनमें प्रभु:प्रेम की उत्कटता पायी जाती है। उनका मन विषय-भोगों से हट जाता है, नानाविध पदार्थों से विरक्ति हो जाती है और परमात्मा ही प्रिय लगने लगता है। सत्वगुणी व्यक्ति शरीर को सार्थक बनाने के लिये उद्योगी होता है। शान्ति, क्षमा, दया आदि सद्गुणों से भरा हुआ उसका हृदय दूसरों को सुखी बनाने के लिये निरंतर प्रयत्नशील रहता है। वह अतिथि-अभ्यागत को कभी विन्मुख नहीं जाने देता। ओ कुछ होता है मब ईश्वरी इच्छा से होता है, ऐसा मान कर दु.ख-सुख को धीरज के साथ सहन करता है। उसका चित्त चलायमान नहीं होता, वासना विषयों की ओर जाती हो तो उसे रोक लेता है। स्वयं आपदाओं को सहन करते हुए दूसरों के लिये करुणा उसके स्वभाव का अङ्ग बन जाता है। नम्र भाषण, परोपकार, उदारता, सहिष्णुता इन्द्रिय निग्रह, सत्कार्य, प्रीति और दुष्कृत्यों का त्याग, स्नान-पूजन भजन आदि की उत्कण्ठा, साधु सन्तों के प्रति परम आदर आदि सद्गुण सत्वगुणी व्यक्ति में सहज रूप से दिखाई देने लगते हैं। अज्ञानियों को ज्ञान देना, लोगों को सन्मार्ग दिखाना और उन्हें ईश्वर भक्ति के लिये प्रेरित करना यही सत्वगुणी सज्जनों का मुख्य कार्य होता है। वह दूसरों के दुःख से दुःखी और दूसरों के सुख से सुखी होता है। उसकी प्रभु पर अटल श्रद्धा होती है और वह उसकी निष्काम भक्ति करता है। ऐसा सद्गुणी सत्वगुण सम्पन्न व्यक्ति ही संसार-सागर से तर कर मोक्ष प्राप्त करता है। उसे सच्चा ज्ञान-विवेक प्राप्त होकर भक्ति-सुख का आनन्द मिलता है।

आठवां समास

सद्विद्या-लक्षण

हमने पिछले समास में कुविद्या के लक्षण भी बतलाये थे। अब सद्विद्या के लक्षणों का वर्णन करेंगे। ये लक्षण अत्यन्त शुद्ध हैं और इनका विचार करते-करते ही वे आत्मसात हो जाते हैं। सद्विद्या विभूषित पुरुष सुन्दर, चतुर, बलवान, धैर्यवान, उदार, ज्ञानी, भक्त, विरक्त, तपस्वी और शान्त होता है। वह आशा रहित, सर्वज्ञ, श्रेष्ठ होकर भी नम्र. सत्ताधारी होकर भी धार्मिक. शूर होकर भी विवेकी होता है। यहां ज्ञानी और भक्त के विषय में थोड़ा स्पष्टीकरण करेंगे। संसार में ज्ञान और भक्ति का समन्वय बहुत कम दिखाई देता है। जो ज्ञानी होता है वह भक्त नहीं होता। वह भक्ति को एक प्रकार का खिलवाड़ समझता है। और जो भक्त होता है, वह ज्ञानी को अहङ्कारी मानकर उसके ज्ञान का उपहास करता है। पर सद्विद्या सम्पन्न पुरुष ज्ञान और भक्ति का रहस्य भली-भांति जानता है अतः वह एक साथ ज्ञानी और भक्त दोनों की भूमिका निभाता है। ऐसा पुरुष कार्यकर्ता होकर भी निरहङ्कारी होता है। सर्वज्ञ होकर भी नीतिवान होता है। वह पुण्यशील, अन्तर शुद्ध, स्वधर्म कर्म-निरत. श्रुतिस्मृति का भोक्ता एवम् लोक प्रशंसा और लोक-बुद्धि का परीक्षक होता है। सद्विद्या सम्पन्न पुरुष दूसरों का आदर-सम्मान करता है। वह निरपेक्ष, सबसे स्नेहपूर्वक आचरण करने वाला और लोक संग्रही होता हैं। धन, परिवार, और परमार्थ के कार्यों को करता हुआ निर्लिप्त रहता है। वह मित्र बनकर दूसरों का कल्याण करता है, मधुर वाणी से दूसरों का शोक दूर करता है और समर्थ होकर भी अपने पराक्रम से जनता का आदर-पात्र बनता है। वह सुख-सम्वाद करता है पर व्यर्थ का विवाद नहीं। उसमें क्रोध और ईर्ष्या नहीं होती। उसमें सुख, सन्तोष,

हास्य, सुयश, विद्या, कला, लक्ष्मी, युक्ति, बुद्धि आदि सद्गुणों का समावेश रहता है। इन सद्गुणों का श्रोतागण अभ्यास करें, इसलिए यह संक्षिप्त निरुपण किया है। यह सद्गुण सबको अपनाना चाहिये पर विरक्त और समाज-सेवक कार्यकर्ताओं को तो इन्हें अवश्य ही अपने जीवन में उतारना चाहिये। अब अगले समास में हम विरक्तों के लक्षण वतायेंगे।

नवां समास

विरक्त निरूपण

सद्विद्या का अभ्यास विरक्त पुरुषों को अवश्य करना चाहिये, यह हम पिछले समास में बता ही चुके हैं। अब इस समास में विरक्त के लक्षण वताये जायेंगे। विरक्त अर्थात् संसार-पाश से मुक्त निस्पृहवृत्ती से लोक कार्य करने वाला पुरुष। अब हम विरक्तों के उन गुणों का वर्णन करेंगे, जिन्हें प्राप्त कर उसमें योग-सामर्थ्य बढ़कर उसका परमार्थ सफल होगा, उसके आनन्द और वैराग्य में वृद्धि होगी, सङ्कल्प मनोरथ पूर्ण होंगे और उसकी जिह्वा पर सरस्वती नाचेगी।

विरक्तों को निम्न सद्गुण धारण करने चाहिये ताकि वह भूमण्डल में विख्यात हो। उसमें विवेक, अध्यात्म, इन्द्रिय जय अवश्य होना चाहिये। वह सदा शान्त रह कर अपनी विरक्त भावना का विस्तार करे। वह सदाचारी और निवृत्ति परायण हो। विरक्त क्षमावृत्ति द्वारा सबको अपनी ओर आकर्षित करे। विरक्त सब कामों में दक्ष और दूसरों के हृदयों को जीत कर उन्हें परमार्थ मार्ग की ओर अग्रसर करें। विरक्त पुरुष धीर, गम्भीर और उदार हो। वह परोपकारी जीवन बिताकर संसार में अपना सुयश फैलाये। विरक्त अपने समान ही दूसरे विरक्तों की खोज करे और साधु-सन्तों से मैत्री करे। विरक्त पुरश्चरण कर अत्यन्त रमणीय स्थानों का निर्माण करे। विरक्त सब काम करते

हुए भी सबसे निर्लिप्त रहे। वह किसी का अङ्कित एवम् पराधीन न रहे। उसे सब प्रकार के विचारों का अभ्यास करना चाहिए। वह एक देशीय न बने। प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव व धर्म के अनुसार वह उनके साथ समता और सहिष्णुता के साथ बर्ताव करे। वह सगुण और निर्गुण इन दोनों उपासना पद्धति में निष्णात हो। उसे पिंड-ब्रह्माण्ड और तत्वज्ञान अर्थात् पञ्चीकरण विद्या अवगत हो। कर्म उपासना, ज्ञान, प्रवृत्ति-निवृति आदि सब विषयों का उसे पर्याप्त अनुभव होना चाहिये। प्रेमावस्था, योगावस्था, ध्यानावस्था, सहजावस्था सब उसे भली भांति ज्ञात हों। ध्यान, लक्ष्य, आसन, मुद्रा, मन्त्र-तन्त्र, अनेक मत मतान्तरों का रहस्य उसे विदित होना चाहिए। बिरक्त सबका मित्र होगा। वह स्वतन्त्र, बहुगुणी और ईश्वर-भक्त होकर भी असङ्ग होगा। वह अनेक शास्त्रों का पठन-पाठन कर पाखण्ड का खण्डन और मुमुक्षुजनों को शुद्ध परमार्थ का मार्गदर्शन करे। वह सबकी शङ्काओं का समाधान करे ओर सबको अपना माने। वह निंदा करने वालों का भी बन्दन करे। जो सांसारिक बन्धनों में फँसे हों, उन्हें मुमुक्षु के गुण बतलाकर जागृत करना चाहिये और जो साधन-मार्ग में प्रवृत्त हों उन्हें पूर्ण ज्ञान देना चाहिये। विरक्तों में दूसरों के उत्तम सद्गुणों का त्याग करने की बृत्ति होनी चाहिये। इस प्रकार के उत्तम लक्षणों को सुनकर विरक्त उनका अङ्गीकार करें, उनकी उपेक्षा न करें। इन लक्षणों को स्वीकार न करते हुए विपरीत कुलक्षणों को जो अपनाता है, वह पढ़त मूर्ख है। ऐसे पढ़त मूर्ख के लक्षण हम आगे बतायेंगे।

दसवां समास

पढ़त-मूर्ख निरूपण

अब तक सद्विद्या के और विरक्त के लक्षण बनाये। उन्हें सुनकर मूर्ख भी बुद्धिमान बनेगा। अब बुद्धिमान कहलाने वाले कैसे मूर्ख होते हैं,

यह बतलायेंगे। बुद्धि वादी होकर जो मूर्ख हैं, उन्हें पढ़त मूर्ख कहते हैं। पढ़त मूर्ख अर्थात् पढ़े हुई मूर्खों के अवगुण सुनकर श्रोतागण नाराज न हों क्योंकि अवगुणों का त्याग करने पर ही सुख प्राप्त हो सकता है। जिसका शास्त्राध्ययन पर्याप्त है, बहुश्रुत और ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादन करने में भी कुशल है पर जिसके अन्तर में दुराशा और अभिमान है, वह पढ़तमूर्ख है। मुक्त क्रिया अर्थात् स्वच्छन्द और निर्बन्ध होकर जीवन बिताने का जो उपदेश करता है, ज्ञान की बातें बताकर सगुण भक्ति का जो उपहास करता है, तथा स्वधर्म एवम् साधन मार्ग की जो निन्दा करता है, वह भी पढ़त मूर्ख है। अपने ज्ञान का अहङ्कार करते हुए जो सबको तुच्छ समझता है और प्राणिमात्र का अहित चाहता है, वह एक पढ़त मूर्ख ही है। जिसका आदेश पालन करने पर शिष्य सङ्कट में पड़ जाए, वह भी पढ़त मूर्ख है। रजोगुण, तमोगुण और कुविद्या के जो दोष पिछले समासों में बताये गये हैं, वे जिस विद्वान के आचरण में हों, वह एक पढ़त मूर्ख। दूसरों का वैभव देखकर उसकी तारीफ करना, पूरा ग्रन्थ पढ़े बिना उसकी निन्दा करना, किसी का गुण न देखकर दोष ही ढूँढ़ते रहना, सद्गुणों का तिरस्कार करना, मत्सर बुद्धि से भले आदमी को पराभूत करने की चेष्टा करना, न्याय-नीति का विचार न करना, ज्ञान के अहङ्कार से दुराग्रही बनना, क्रोध के आवेग को न रोक सकना, कथनीं और करनी में अन्तर होना, बिना अधिकार के किसी विषय पर भाषण करना, वाचालता के बल पर दूसरे वक्ता का पराभव करना, सांसारिक विषयों में ही निमग्न रहना, महिलाओं से मैत्री कर उन्हें उपदेश देना, मद्य मांस आदि का सेवन करना, देहाभिमान रखना, परमात्मा का स्तवन न करते हुए मनुष्यों की ही स्तुति करते रहना धन के अभिमान में दूसरों को तुच्छ समझना, पाखण्ड-मतों का प्रतिपादन करना यह सब पढ़त मूर्खों के लक्षण हैं।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की कोई भी क्रिया आचरण में होते हुए केवल ब्रह्मज्ञान की बातें लोगों को सुनाना, तीर्थ क्षेत्र, एवम् वेदशास्त्रों के

प्रति आदर न होना, पवित्र कुल में जन्म लेने पर भी अपवित्रता से जीवन बिताना, अपने आदर-सम्मान की लालसा रखना. किसी की पीठ पीछे निन्दा करना, साँसारिक कार्यों का आदर और परमार्थ का अनादर करना, पराधीन बन कर रहना यह सब पढ़त मूर्ख के ही लक्षण हैं।

अपने दोषों को जानते हुए भी उनका त्याग न करना, स्वहित का मान न होना, किसी पर व्यंग या तानाकशी करना, सद्गुरु की उपेक्षा करना, कृपण के समान हमेशा धन-सञ्चय की चिन्ता करना, स्वयं अज्ञानी रह कर दूसरों को ब्रह्मज्ञान बताना, यह भी पढ़त मूर्ख के ही लक्षण हैं।

अवगुणों को त्याग कर मनुष्य सद्गुणी बनें इसलिए ये पढ़त मूर्ख के लक्षण बताये गये हैं। इनमें कुछ न्यूनाधिक शब्द कहे गये हों तो सूज्ञ श्रोता क्षमा करें। मूर्खों और पढ़त मूर्खों के लक्षण हम बता चुके पर इन सबसे परम मूर्ख वह है, जो संसार में ही सुख मानता है, यद्यपि संसार दुःख के समान दूसरा दुःख नहीं है। उसी के कारण जन्म मरण का दारुण दुःख भोगना पड़ता है।

तीसरा दशक

पहला समास

जन्म दुःख वर्णन

जन्म यह दुःख का अंकुर, शोक का सागर और भय का अचल पर्वत है। जन्म यह कर्म का कलेवर पाप की खान और कला का नित्य नूतन परिताप है। जन्म यह कुविद्या अर्थात् अज्ञान का फल और भ्रान्ति का पटल है। यह जीवन का बन्धन और मृत्यु का कारण है।

जीव के पीछे यह निष्कारण उपद्रव लगा हुआ है। आत्म-सुख की विस्मृति और चिन्ता का चक्र जन्म के कारण ही लगा हुआ है। जन्म यह अनन्त वासनाओं का विस्तार है। जीव की दुर्दशा का नाम ही जन्म है जन्म यह ममता रूपी पिशाचिनी का फन्दा है। जन्म यह माया का भ्रम जाल है। मोक्ष मार्ग में विघ्न जन्म ही है। जन्म यह जीव का अहङ्कार और परमात्मा का विस्मरण है। जन्म विषयों की दुर्दशा काल की ककड़ी है। जन्म यह अत्यन्त विषम काल और घृणित नरक पतन है नानाविध पातकों से ही देह की उत्पत्ति होती है और जन्म से ही अनेक प्रकार के दुःख जीव का पीछा करते हैं। शरीर के समान अपवित्र कुछ भी नहीं है। अत्यन्त दूषित रजस्वला स्त्री के रज से इसका जन्म होता है। उस रज से बना हुआ पिण्ड ही यह शरीर है ऐसे अशुद्ध रक्त से बना हुआ यह देह कहां तक शुद्ध और पवित्र हो सकेगा ? वस्त्र और अलङ्कारों से सजाकर रखने पर भी जैसे चमड़े से मढ़े हुए कुण्ड का आवरण दूर नहीं किया जा सकता, वैसे ही शरीर रूपी कुण्ड में नरक की पोटली भरी हुई है। कुण्ड तो धोया भी जा सकता है पर इस देह को प्रतिदिन धोने पर भी उसकी दुर्गन्ध ज्यों की त्यों रहती है। हाड़ों का अस्थि पंजर नाडी-जाल से लिपटा हुआ, मेद-माँस रक्त से पूरित अनेक व्याधियों का आगर, मल-मूत्र का भण्डार, जिसमें कृमि और अन्तड़ियों की भर मार है ऐसे लार, थूक, पित्त कफ आदि से युक्त शरीर की क्या बड़ाई की जाय ? अच्छे से अच्छे भोजन का भी जहाँ मल बनता है, निर्मल पवित्र गङ्गा जल का भी गन्दा मूत्र बनता है, ऐसे मल-मूत्र वमन से बढ़ने वाले शरीर का क्या अभिमान ? यदि शरीर में मल-मूत्र न हो तो वह जीवित नहीं रह सकता। राजा-रङ्क किसी का भी पेट बिना मल-मूत्र के नहीं रह सकता। शरीर स्वस्थ रहते हुए उसकी यह दशा, फिर उसके अस्वस्थ होने पर उसकी क्या दशा होती होगी, यह कहने का साहस नहीं होता। इस देह को माता के उदर में—कारागृह में—नौ महिने अनन्त कष्ट भुगतने पड़ते हैं। वहां शरीर

के सभी नौ द्वार बन्द रहने से श्वास लेने योग्य हवा भी नहीं मिल पाती। गर्भ में चमड़ी का पिंड मल से लिपटा रहता है और उसे नाल के द्वारा रस की पूर्ति की जाती है। मल-मूत्र, वमन, पित्त और कृमि-जन्तुओं से गर्भस्थ बालक अत्यन्त भयभीत होकर भगवान से प्रार्थना करता है कि 'हे चक्रपाणि! इस नरक के इस बन्दीगृह से अब छुड़ाइये। हे भगवान, यदि आप मुझे इस दु:ख से मुक्त कर दोगे तो मैं अपने कल्याण का मार्ग अपना कर इस गर्भ वास से पिंड छुड़ाऊँगा और पुनः इस गर्भ के कारागृह में नहीं आऊँगा।' अत्यन्त दु:ख से पीड़ित होकर गर्भस्थ शिशु यह प्रतिज्ञा करता ही है कि इतने में उसके जन्म की घड़ी आ पहुँचती है। पर जन्म होते ही वह अपनी प्रतिज्ञा भूल जाता है गर्भ में रहते हुए वह 'सोऽहं सोऽहं' अर्थात् मैं वही हूँ। मैं वही हूं कहता है पर गर्भ से बाहर आते ही 'कोऽहं, कोऽहं' मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ कहता हुआ अपने आपको और अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाता है। इस प्रकार गर्भवास के घोर दु:खों को वह बाहर आते ही भूलकर अज्ञान भ्रांति को सुख मानने लगता है। फिर देह को बाल्यावस्था, युवावस्था आदि प्राप्त होती है और मन सुख-दु:खों का बारबार अनुभव लिया करता है। इस प्रकार जीव माया जाल में फँस जाता है। गर्भवास का यह दु:ख प्रत्येक प्राणिमात्र को भोगना पड़ता है। अतः इस सङ्कट से छुटकारा पाने के लिये भगवान की शरण लेनी चाहिये। भगवद् भक्त जन्म से ही मुक्त रहता है। आत्मज्ञान के बल से वह सदा सर्वदा सबसे उदासीन रहता है। गर्भवास के दारूण दु:खों का इस तरह हमने यथा-मति वर्णन किया। अब हम प्राणि के जीवन का चरित्र-निरूपण करेंगे, जिसे श्रोतागण सावधान चित्त से सुनें।

दूसरा समास

सगुण-परीक्षा

संसार यह सब दुःखों का मूल है। इसलिये दुःख के अङ्गारे जीव के अङ्ग-अङ्ग को जलाते रहते हैं। पिछले समास में गर्भ वास की कहानी सुनाई। अब आगे की बात सुने। बालक जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी कोमल चमड़ी को कष्ट होने लगता है पर उसे वह प्रकट नहीं कर सकता और माता उसके कष्ट को समझ नहीं पाती। वह उसे जब तक दुलारती रहती है पर उसकी मानसिक व्यथा वह जान नहीं पाती। छोटा शिशु अपने शरीर की रक्षा भी नहीं कर सकता। वह आग से जल जाता है, कभी किसी दुर्घटना से उसका कोई अवयव भङ्ग हो जाता है। कुछ दिनों बाद वह अपनी माता को पहचान ने लगता है। फिर वह माता के न दिखाई देने पर रोने लगता है। उसे तब मां के समान और कोई प्रिय नहीं लगता। उसके बिना वह बेचैन हो जाता है। तब चाहे ब्रह्मा आकर उसे समझावें या प्रत्यक्ष लक्ष्मी उस पर कृपा दृष्टि करे फिर भी वह माँ के बिना चुप नहीं रह पाती उसे केवल माता के पास रहने से ही सुख और उसके वियोग में दुःख होता है। बालक कुछ बड़ा होने पर मां को भूल कर खेल कूद में रम जाता है। फिर वह समवयस्क बालकों के साथ खेलता हुआ हार जीत में खेद या आनन्द का अनुभव करने लगता है। तब माता-पिता के उपदेश उसे अच्छे नहीं लगते। खेलने में वह मां-बाप को भूल जाता है। खेल में भी कई अकस्मात होते हैं। कभी दाँत टूटते हैं, कभी आँख फूटती है। कभी पाँव टूट कर लङ्गड़ा हो जाता हैं। कभी बुखार, महामारी, चेचक, भूत बाधा से आदि से पीड़ित हो जाता है। इतने पर भी यदि वह जीवित रहा तो बड़ा होने पर मां-बाप उसका बड़ी धूमधाम से विवाह कर देते हैं। वह भी इस मान-सम्मान और दहेज आदि से प्रसन्न होकर ससुराल से अधिक प्रेम करने लगता है। बिचारे माँ-बाप

दुःखी होकर रहते हैं पर अब उनको कौन पूछता है ? उनका काम समाप्त हो गया। पत्नी के आने पर गृहस्थी का सुख भोगने में चूर हो जाता है और अपने समान भाग्यवान किसी को नहीं समझता। फिर वह पत्नी के सामने माँ-बाप, भाई-बहन सब को तुच्छ मानता है। स्त्री के विना बेचैन रहता है। उसके मञ्जुल कोमल शब्द, सुन्दर मोहक मुख कमल को देखकर उसकी पशु वासना प्रबल हो जाती है। परिणाम स्वरूप उसका शरीर दिन प्रतिदिन कमजोर होता जाता है। अत्यन्त कामुकता के कारण उसका किसी काम में मन नहीं लगता और पत्नी का वियोग उसे असह्य हो जाता है। सदा पत्नी का ही चिन्तन चलता रहता है। पत्नी को कोई कार्यवश भला-बुरा कहने लगे तो उसे क्रोध आ जाता है और पत्नी का पक्ष लेकर माता-पिता को अपमान जनक बातें सुनाते हुए उनसे अलग हो जाता है। पत्नी के मोह वश स्नेह और लाज-लज्जा छोड़कर सारे आत्मीय जनों से वैर कर लेता है । वह कामान्ध स्त्री को अपना देह बेचकर उसका गुलाम बन जाता है। स्वधर्म, तीर्थ यात्रा, परमार्थ, आत्म कल्याण, शुभाशुभ आदि का कोई ध्यान न रख कर तन-मन-धन से सर्वथा पत्नी को अर्पण कर देता है। स्त्री की आसक्ती के कारण परमात्मा को भी भूल जाता है। उसके कारण वैराग्य, भक्ति, मोक्ष आदि की उपेक्षा करता है। इस प्रकार स्त्री पर अपार आसक्ति कर अपने सर्वस्व को लुटा देता है और एक दिन उसकी स्त्री भी अचानक मर जाती है। तब वह शोक से पागल हो जाता है। लोक लाज छोड़ कर पत्नी के गुणों का बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करने लगता है और 'अब पुनः गृहस्थी के फँदे में नहीं पडूँग। ' ऐसा कहते हुए बड़े जोर-जोर से विलाप करने लगता है। इस विरह शोक के कारण वह संसार से ऊब कर साधु बैरागी बन जाता है या पुनः विवाह-बन्धन में जकड़ा जाकर गृहस्थी की गर्त में जा गिरता है। दूसरा विवाह करने पर उसकी फिर क्या दशा होती है, यह हम आगामी समास में विस्तार पूर्वक बतायेंगे।

तीसरा समास

सगुण-परीक्षा

प्रथम पत्नी के मृत्यु के बाद वह पुरुष द्वितीय विवाह करता है। पत्नी के वियोग और दुःख को भूलकर वह अब नये संसार और गृहस्थी के सुख में मग्न हो जाता है। पहले वह बड़ा उड़ाऊ था पर अब कंजूस बन गया। एक'एक पैसे को खर्च करने में विचार करने लगा। धन-सञ्चय की तृष्णा और लालसा बढ़ी। धर्म वासना समाप्त हुई। स्वयं दान धर्म या पुण्य कार्य से विमुख हो गया और दूसरों के पुण्यकार्य की निन्दा करने लगा। ईश्वर-भक्तों का उन्मत होकर कठोर शब्दों से उपहास करने लगा। विषय भोगों में रात-दिन लिप्त होने से अनेक प्रकार के रोगों का शिकार बनता गया। अन्ततः उसे क्षय की बीमारी हो गयी और प्राणों से हाथ धोने की नौबत आ पहुँची तब धाड़ मार कर रोने लगा। सब कुछ नष्ट हो गया चोरों ने सारे धन का अपहरण कर लिया। धन सम्पत्ति न स्वार्थ के काम आयी न परमार्थ के। पापों का भोग भोगने के बाद किसी प्रकार जब पुनः स्वस्थ हुआ तब उसने अति स्वार्थ बुद्धि से फिर धन-संग्रह किया पर सन्तान न होने से दुःखी रहने लगा। पुत्र-प्राप्ति के लिये अनेक व्रत-उपवास और मनौतियां करने लगा। ईश्वर कृपा से जब उसे पुत्र लाभ हुआ तो वह उस पर असीम स्नेह करने लगा। उसे क्षण भर भी छोड़ना नहीं चाहता था। अकस्मात बालक बीमार होकर उसकी मृत्यु हो गयी तब फिर वह शोकाकुल होकर परमेश्वर से याचना करने लगा कि प्रभु हमें निस्संतान न कर। संतान के लिये मैं सब कुछ त्यागने को तैयार हूँ। अतः फिर एक बार मुझे पुत्र का मुख देखने का अवसर दे। इस प्रकार रात दिन पुत्र के लिये याचना करता रहा। अनेक देवी-देवताओं कीं मनौती की व्रत-उपवास अनुष्ठान आदि भी किये पर पुनः पुत्र प्राप्ति न हो सकी।

पुत्र लाभ के लिए अनेक तन्त्र मंत्र के प्रयोग भी किये। उसे सब कुछ सूना लगने लगा और वह रात दिन उदासीन रहने लगा। अंततः प्रारब्धवश पुनः उसके मनोरथ पूर्ण होकर उसे संतान प्राप्ति हुई और पति-पत्नी दोनों फिर आनन्द से जीवन बिताने लगे।

चौथा समास

सगुण-परीक्षा

अब उस गृहस्थ की आगे की दशा सुनिये। अब उसे एक नहीं कई संतान हो गयीं, जिसके कारण उसकी आर्थिक स्थिति डांवाडोल होकर लड़के भिखारी बन गये। उन्हें पेट भर भोजन तक नहीं मिलता था। आय से खर्च अधिक होने लगा। लड़कियां विवाह योग्य हो गयीं। पर उनके विवाह के लिए धन का अभाव था। कर्ज ले लेकर गृहस्थी की गाड़ी खींच रहा था फिर विवाह के लिए और अधिक ऋण कौन देता। तब घर गृहस्थी का सामान और गाय-बैल आदि बेचकर कन्याओं के विवाह किये। कर्ज भार से उसका जीना दूभर हो गया। साहूकार लोग रात दिन तंग करने लगे तब वह परदेश चला गया। अन्य प्रदेश में दो साल तक हलके धाम किये और बहुत शरीर कष्ट सहते रहा। कुछ पैसा हाथ में आने पर उसे घर की याद सताने लगी। तब वह स्वदेश लौट आया। घर में उसे सब परिवार के लोग दुखी दिखाई दिये, मानो उसके आने की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। सब को अपने अपने सुख की चिन्ता थी। उसके दुःख की किसी को भी परवाह नहीं थी। जब शरीर दुर्बल हो जाता है, तो कोई मदद करने नहीं आता। उस पुरुष के लौटकर आने पर स्त्री को आनन्द हुआ। बाल बच्चे भी नये नये कपड़े आदि मिलने से खुश हुए। चार दिन आनन्द से बीते। फिर उसके बाद पुनः खाने पीने की तंगी होने लगी। स्त्री सहित सभी परिवार के लोगों की इच्छा थी कि वह लाये हुए धन को यहीं रखकर पुनः धन प्राप्ति के लिए परदेश चला जाये। सब मतलब के साथी हैं,

यही बात सत्य है। इतने दिनों तक कष्ट सहकर घर में कुछ आराम पाने के लिए आया था पर आराम कहाँ। पुनः उसे परदेश जाने को बाध्य होना पड़ा। पर घर का मोह छूटता न था। अन्त में उसे लाचार होकर बाहर जाना ही पड़ा। उसे स्त्री तथा परिवार का वियोग अत्यन्त दुखदायी प्रतीत हो रहा था पर विवश था। इस सांसारिक ताप से अब उसका मन उद्विग्न होने लगा। उस समय उसे अपनी माता का स्मरण हो गया। मन ही मन कहने लगा—'धन्य थी मेरी माता। उसने मेरे लिए कितने कष्ट उठाये पर मैं मूर्ख ने उसकी जरा भी कद्र न की। वह यदि आज जीवित होती तो कभी मुझे अपने से विलग न होने देती। मेरे दूर जाने की बात सुनकर ही वह वियोग की कल्पना से चिल्ला चिल्लाकर रोने लगती। अतड़ी की माया ही और होती है। लड़का चाहे भिखारी दरिद्री कैसा भी हो, माता के लिए वह प्रिय ही होता है। उसके कष्टों को देखकर माता को बड़ी पीड़ा होती है। इस संसार में प्रयत्न करने पर सब चीजें प्राप्त हो सकती हैं पर माता कभी दुबारा नहीं मिल सकती। वह कैसी भी कर्मशा हो फिर भी माता माता ही है। हजार पत्नियाँ होने पर भी क्या लाभ है? पर मैं विषय लम्पट होकर अपना जीवन व्यर्थ खो बैठा। विषय भोग के लिए आत्मीयजनों से लड़ाई की, सच्चे मित्रों से बैरभाव किया। वास्तव में वे ही पुरुष धन्य हैं जो माता-पिता की सेवा और उनका आदर करते है तथा आत्मीयजनों से प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं। स्त्री एवं पुत्र-पौत्रादिकों का संग तो आजीवन मिलेगा पर मां बाप पुनः कभी नहीं मिल सकते। यह मैं पहले से सुनता आया हूँ पर मैंने उस पर आज तक ध्यान नहीं दिय[illegible]ति-सुख के डबरे में डूबकर अन्धा हो गया। पुत्र कलत्रादि जीव[illegible]प्यारे लगते हैं पर वे सब ठग हैं। केवल धन के लिए एकत्र हुए हैं। अस्तु, अब बाहर निकला ही हूँ तो कहीं न कहीं काम कर धन पैदा करूं, तब ही घर लौटूं तो अच्छा है, वरना मेरी सब निन्दा करेंगे, जो मेरे लिए अति दुखदायी होगी।" इस प्रकार

के विचार मन में आने से वह बड़ा दुःखी और चिंता ग्रस्त हो गया। देह को पराधीन कर वह ईश्वर के विमुख ही न हुआ, आपितु परिवार का गुलाम बन गया। इस प्रकार एक मात्र विषय भोग के कारण उसका जन्म कष्टमय हो गया। आयु समाप्त होने पर जीव को अंत में सब छोड़कर अकेले ही इस संसार से विदा होना पड़ता है, ऐसा सोच-कर वह कुछ देर तक उदासीन हुआ पर फिर सांसारिक माया जाल में फँस गया। परिवार का स्मरण होकर रुदन करने लगा। उस दुखी प्राणि का परदेश में आखिर क्या हुआ यह आगामी समास में बतायेंगे।

पांचवां समास

सगुण-परीक्षा

पश्चात् वह परदेश में जाकर उद्योग करने लगा और वहाँ हर प्रकार के कष्टों को सहते हुए उसने दो चार साल में कुछ धन उपार्जित कर वह पुनः घर लौट आया। यहाँ आकर देखता है कि घोर अकाल के कारण उसके परिवार के सब लोग बड़ी मुसीबत में पड़े हुए हैं। किसी लड़के के गाल सूख गये थे तो किसी की आँखें सूज गयी थी। किसी के हाथ पैर कांप रहे थे, तो किसी का शरीर रोगी था। और कोई मर गया था। इस प्रकार परिवार की भयानक दुर्दशा देखकर उसका गला भर आया और दीन होकर जोर जोर से रोने लगा। कुछ देर बाद लड़के 'रोटी रोटी' चिल्लाने लगे। वे भूख से व्याकुल हो रहे थे। उतावले बनकर उन्होंने बाप की लायी हुई गठड़ी खोली और जो मिला सो जल्दी जल्दी खाने लगे। एक बार में ही अधिक खा लेने से कुछ बालक बीमार हुए और कुछ मर भी गये। जो एक दो थे माता के न रहने से दीन और अनाथ जैसे हो गये। इस प्रकार अकाल के कारण उसके परिवार का सर्वनाश हो गया।

अगले वर्ष अच्छी वर्षा होने से गाँव सुखी हुआ। पर अब बाल-बच्चों का संगोपन करने के लिए घर में दूसरा कोई न रहा। उसे अपने हाथ से रसोई बनानी पड़ती था। इससे वह बेजार हो गया। लोगों के आग्रह से उसने पुन: तीसरा विवाह किया और जो कुछ धन उसके पास था, वह सब उसमें खर्च कर डाला। अत: पुन: उसे व्यार्जन के लिए परदेश में जाना पड़ा। वहाँ से जब धन पैदा कर घर लौटा तो क्या देखता है कि परिवार में सौतेली माता और बड़े लड़कों में झगड़े चल रहे हैं। पत्नी तरुण, लड़कों से उसकी रात दिन की लड़ाई और यह शक्ति हीन। वृद्ध सबका एक साथ रहना असंभव हो गया तब चार पड़ोसी बुलाकर बटबारा किया पर लड़कों को संतोष न हुआ और लड़कों ने पिता को मारना शुरू किया तब माता चिल्लाने लगी। लोग तमाशा देखने लगे और रहने लगे। "बूढ़ापे में लड़के बाप को अच्छी सहायता कर रहे हैं।" जिन लड़कों के लिए पिता ने कितनी मनौतियां कीं जीवन भर कितने कष्ट उठाये और उसका यह परिणाम निकला कि बुढ़ापे में वे उसे मारने पीटने लगे। कितना आश्चर्य है।

अब पिता अपनी कुटिया अलग बनाकर उसमें रहने लगा। और पत्नी के साथ पुन: सारे दु:खों को भूलकर शेष जीवन बिताने लगा। इसी दरमियान वहाँ डाका पड़ा और डाकू उसका सारा धन और पत्नी को लेकर भाग गये। कितना भीषण प्रसंग ! अब वह पत्नी के लिए पुन: शोक करने लगा। परदेश से पैसा पैदा कर लाया था वह पत्नी के लिए खर्च कर दिया था। अब पैसा गया, पत्नी भी गई और लड़के भी अलग होकर उसकी उपेक्षा करके लगे। तब वह परमात्मा से दीन होकर प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो ! अब तुम्हारे बिना मेरा कोई सहारा नहीं। युवावस्था में ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त होकर भगवान का भजन पूजन नहीं किया, इसलिये अब बुढ़ापे में उसे पश्चाताप करने की नौबत आयी। बुढ़ापे की यातनाओं का क्या ठिकाना ? उसका शरीर बिलकुल निर्बल हो गया, वात-पित्त से बेजार रात दिन खाँसने लगा।

गर्दन हिलने लगी, सब दाँत टूटने से मुख पोपला हो गया, आँखो से भी दिखायी नहीं देता और न कान से सुनाई पड़ता है। न चलने की ताकत है और न सीधे बैठने की।

सब लोग दूर से ही उसे देख कर घृणा करने लगे। अनेक दु:खों के कारण वह सठिया कर पागल हो गया फिर भी उसकी आयु समाप्त नहीं हो रही थी। सारा शरीर अस्थिपंजर होकर पराधीन हो गया। कोई मित्र नहीं रहा। सब कोई उसके मरने की इच्छा करने लगे। जिसका जन्म से पालन पोषण किया वे ही उसके खिलाफ हो गये। शरीर, सम्पत्ति, परिवार, सब तहस-नहस हो गये। जिसका 'मेरा-मेरा कहकर आजतक संग्रह किया, वह सब व्यर्थ गया। सुख के लिए आजीवन कष्ट करते रहने पर भी अन्त: में दु:ख दुर्दशा दैन्यावस्था ही भोगनी पड़ी। अत: जन्म ही सारे दु:खों का मूल है। जन्म से ही दु:ख के अङ्गारे प्राणी को जलाते रहते हैं, यह सोचकर मनुष्य को तत्काल अपना आत्महित एवम् आत्म कल्याण के मार्ग में अग्रसर होना चाहिये। इस अति कष्टदायक बुढ़ापे से कोई नहीं बच सकता। अत: भगवान की शरण लेना ही श्रेयस्कर है। इस वृद्ध को अपनी गर्भावस्था में ही पश्चाताप हुआ था, वही पश्चाताप का प्रसङ्ग उसके अन्त समय भी आया। भगवद् भक्ति के बिना यह जन्म-मरण की व्याधि नहीं मिट सकती। अब जन्म से मृत्यु तक जीव को जो अनन्त क्लेश भोगने पड़ते है, उन विविध तापों का वर्णन हम आगे करेंगे।

छठवां समास

आध्यात्मिक ताप

अब संसार में होने वाले ताप-त्रय (तीन प्रकार के तापों) के लक्षण सावधान होकर सुनिये। जैसे किसी आर्त पुरुष को उसकी मनोवांछित वस्तु प्राप्त होने से सन्तोष होता है वैसे ही ताप-त्रय से पीड़ित

व्यक्ति को सत्सङ्गती से शान्ति मिलती है। जिस प्रकार भूखे को अन्न से, प्यासे को जल से, पराधीन को स्वतन्त्रता से, डूबने वाले को किनारे से, आसन्नमरण को जीवदान से, संकटग्रस्त को मुक्ति से एवं रोगी को औषधि की प्राप्ति से आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार ताप-त्रय से सन्तप्त व्यक्ति को सत्संग से परमानन्द की प्राप्ति होती है। जो सांसारिक दुःख एवम् तापत्रय से पीड़ित होता है, वही परमार्थ का अधिकारी हो सकता है।

अस्तु, अब ताप-त्रय के लक्षण ग्रन्थों के आधार से बतलाते हैं। ताप आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ऐसे तीन प्रकार के होते हैं। उनके लक्षण तीन अलग-अलग समासों में बताये जायेंगे।

श्लोक— देहेंद्रियमनः प्राणैः सुखं दुःखं यदाप्यते।
इममाध्यात्मिकं तापं विजानीयाद्विदेहिनाम् ॥१॥
सर्वभूतैर्देहयोगात् सुखं दुःखं यदाप्यते।
द्वितीयं तं विजानीयात्सतापं चाधिभौतिकम् ॥२॥
शुभाशुभैः कर्ममिश्च देहांते यमयातना।
स्वर्गनरकादि भोक्तव्यर्मिदं विद्ध्याधिदैविकम् ॥३॥

अर्थात् देह, इन्द्रिय, मन और प्राण द्वारा जो सुख, दुःख, भय, यातनायें सहन करनी पड़ती हैं, उन्हें आध्यात्मिकताप कहा गया है। सब पञ्चमहाभूतों के संयोग से सुख दुःख प्राप्त होकर जो मन स्ताप होता है, उसे आधिभौतिक ताप कहा जाता है और प्राणियों के पुण्य या पाप कर्मों के अनुसार देहावसान के बाद जो स्वर्ग भोग या नरक यातना उन्हें भोगनी पड़ती हैं, वे आधिदैविक ताप कहलाती हैं।

अब हम संक्षेप में आध्यात्मिक ताप के लक्षण बतलायेंगे। इस ताप में अनेक शारीरिक आधि-व्याधियों का समावेश होता है:—

जैसे खुजली, फोड़े, फुन्सी, नजला, चेचक, मोतीझरा, कांख में होने वाली गांठ, बाल तोड़, मेह बवासीर, नहरुआ, मसूड़ों का दर्द, दन्तशूल, सूजन, गठिया, कमर दर्द,, दाद, उदर शूल, तालूका दर्द, कान

बहना, श्वेत या गलित कोढ़, पांडु रोग, अति कष्टदायक यक्ष्मा अर्थात् क्षयरोग, बालकों के दूध का अजीर्ण होना, वायुगोला, हाथ-पैर की ऐंठन, सिर चकराना, अर्धशिशी (आधाकपाल दुखना) कमर और गले का दर्द, पीठ, गला, मुख और जोड़ों की पीड़ा, पेचिश, वमन, मुँहासे, जलोदर, जूड़ी-ताप, आंखों के सामने अन्धेरा छा जाना, सरदी, जुखाम, अग्निमांद्य, अनिद्रा, संग्रहणी ये सब आध्यात्मिक ताप हैं। आलस, मनमें भय उत्पन्न, होना, विस्मरण, चिन्ताग्रस्त रहना, मूत्र का रुक जाना, प्रमेह, रक्त-पित्त, आतें उतरना, पेट में कृमि होना, अपचन, अफरा, हिचकी आना, खांसी, दमा, कफ विकार आदि आध्यात्मिक ताप हैं। कण्ठमाला (गले के फोड़े) दांतों में कीड़े लगना, पथरी, कान, आँख आदि की पीड़ा, नपुसङ्कता, आँखों में फूली या मोतियाविन्द होना, रतौंधी और पागलपन ये आध्यात्मिक ताप के लक्षण हैं। गूंगा-बहरा होना, पङ्गु, काना या कुरूप होना, बड़े दाँत वाला होना, अति दुर्बल होना या बहुत मोटा होना, हकलाना, तुतलाना, निर्बल, रोगी, कुटिल या चालाक होना, ईर्ष्यालु, क्रोधी, कामी होना आध्यात्मिक ताप है। गर्भ विरोध, गर्भपात होना, स्तन पक जाना, सन्निपात, अकाल मृत्यु, शरीर में अनेक प्रकार की सूजन या गांठें होना, चमड़ी पर काले या नीले धब्बे पड़ना, अधिक तिल होना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, लार टपकना आदि आध्यात्मिक ताप हैं। अनेक प्रकार की चिन्तायें, बिना बीमारी के ही बेचैनी, वृद्धावस्था के सङ्कट, हमेशा रोगग्रस्त रहना, सदा दुर्बल रहना आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ आध्यात्मिक ताप पूर्व जन्म के पापों के फल होते हैं। यह संसार अपार दुःखों का सागर है। अतः उन सब दुःखों का कहाँ तक वर्णन करें। श्रोतागण संकेत मात्र से सब समझलें अब इसके आगे हम आधिभौतिक तापों का वर्णन करेंगे।

सातवां समास

आधिभौतिक ताप

सर्वभूतेन संयोगात् सुखं दुःखं च जायते।
द्वितीयताप सन्तापः सत्यं चैवाधिभौतिकः ॥

सब पञ्च महाभूतों के संयोग से (अथवा प्राणिमात्र से) जो सुख दुःख होते हैं, अथवा उनके उपसर्ग से कष्ट होता है उनका नाम आधिभौतिक ताप है। अब हम आधिभौतिक ताप के लक्षणों को संक्षेप में बतायेंगे। ठोकर लगना, काँटे चुभना, किसी शरअकी चोट लगना; फांस या कांच गड़ना, जहरीली पत्ती या जहरीले कीड़े आदि का स्पर्श, बर्रे का दंश, मधु मक्खी, मच्छर, पिस्सू, खटमल आदि का काटना, जोंक, का चिपटना, कनखजूरे, सांप, बिच्छू, चीता, सुअर, भेड़िया, सांभर, भालू, जङ्गली हाथी आदि से होने वाली पीड़ा, जल में मगर से खींचा जाना या डूब जाना, घोड़े, बैल, गधे, कुत्ते, बिल्ली आदि प्राणियों से होने वाला कष्ट ये सब आदिभौतिक ताप हैं। इस प्रकार के अन्य भयङ्कर एवम् दुखदायक प्राणियों से जो अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं, वे भी सब आधिभौतिक ताप हैं। दीवार या छत से गिरना, चट्टानों तथा तहखानों के नीचे दब जाना, वृक्षों के टूटने से उनके नीचे दब जाना, पागल हो जाना, किसीं के द्वारा परेशान या भ्रष्ट किया जाना, कलङ्क लगना यह भी आधिभौतिक ताप है। सर्दी से शरीर के किसी अङ्ग का फटना, पानी या कीचड़ के कारण पाँवों में बिवाई आदि होना, बाल पन में गालियाँ या झिड़कियाँ सुनना, मार खाना, अन्न, वस्त्र आदि के लिए तरसना, स्त्रियों को ससुराल में ताड़ना होना ये सब आधिभौतिक ताप के लक्षण हैं। रोग होने पर अनेक प्रकार की कडुवी दवाइयाँ पीना, शरीर से रक्त निकालना या दागना, चोर या डाकुओं द्वारा दी गई यातनायें, आग लगने से होने वाला नुकसान, बहुमूल्य चीजों का खोजाना

या टूट फूट हो जाना, बालकों का खो जाना, फसल का लूटा या जलाया जाना, गिरह कटी होना, बिजली या पाले से होने वाली हानि, भारी वर्षा या बाढ़ से होने वाला नुकसान, कुरूप कर्कशा स्त्री का मिलना, कन्या का विधवा हो जाना, पुत्र का नालायक होना ये सब आधिभौतिक ताप कहे जाते हैं ।

भूत-पिशाच आदि का लगना, साढ़े साती का होना, क्रूर या अशुभ ग्रहों का योग, अप शकुन से होने वाली चिन्ता, किसी ज्योतिषी द्वारा बताये गये अशुभ भविष्य के कारण मन में होने वाला भय, राज दण्ड, जेल यातनायें, दुष्ट लोगों द्वारा दिए जावे वाने अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट ये सब आधिभौतिक आपत्तियाँ हैं ।

मनुष्य की धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, पशु धन और अन्य वस्तुओं की जो हानि होती है, वह आधिभौतिक ताप ही है । बचपन में माता-पिता की मृत्यु, युवावस्था में पत्नी का वियोग, वृद्धावस्था में सन्तान का निधन ये सब आधिभौनिक ताप हैं । दुःख, दारिद्रता, कर्ज, घर छोड़कर अन्यत्र भाग जाना, लूटा जाना, आपत्तियों से घिरे रहना, खाने के लिये पर्याप्त एवम् अच्छा अन्न न मिलना, युद्ध में पराजय और प्रियजनों का वियोग ये भी आधिभौतिक ताप के लक्षण हैं ।

कठिन समय आना अकाल से पीड़ित होना शङ्कित होना, उद्वेग या चिन्ता में रहना, अनेक प्रकार के यन्त्रों से होने वाली शारीरिक पीड़ा, अग्नि से जलना, शस्त्र-प्रहार से शरीर का अङ्ग-भङ्ग होना, अनेक प्रकार के जहरीले जन्तुओं या हिंसक वन-पशुओं से आहत होना, अनेक प्रकार के बन्धनों या कारावास से होने वाले कष्ट, बुरे स्थानों में रहने से होने वाला शारीरिक कष्ट या मानसिक सन्ताप, अनेक प्रकार के अपमानों से लज्जित होने की दशा, अनेक प्रकार के शोक-सन्ताप आदि सभी आधिभौतिक ताप कहे गये हैं ।

इसी भाँति और भी अनेक आधिभौतिक ताप के लक्षण हैं, जो दुःख के मानों पर्वत ही हैं । उनका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता ।

पर श्रोतागण उतने से ही अनुमान करलें कि आधिभौतिक ताप कितने प्रकार के और कैसे-कैसे हो सकते हैं। सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करना असंभव है अब हम आगे के समास में आधिदैविक ताप का वर्णन करेंगे।

आठवां समास

आधिदैविक ताप

अब आधिदैविक ताप के लक्षण सुनिये। प्राणियों द्वारा किए गये पुण्य या पाप कर्मों के अनुसार देह पतन के पश्चात जो स्वर्ग भोग या नरक-यातनायें भोगनी पड़ती है, उन्हें आधिदैविक ताप कहा जाता है। मनुष्य मदांध होकर अविवेक से अनेक पाप कर्म करता है और वे ही धर्मबाह्य निषिद्ध कर्म उसे यम यातना भोगने के लिए बाध्य किया करते हैं। शक्ति मद, द्रव्य मद, मनुष्य बल का मद, राजबल का मद आदि अनेक प्रकार के सामर्थ्य मद से मदान्ध होकर मनुष्य बुरे काम करने लगता है, नीतिमार्ग छोड़कर स्वच्छन्द बन जाता है और फिर यम-यातनाओं को भोगते समय दुखी होकर भगवान को भला बुरा कहने लगता है। आंख मूंदकर दुर्बुद्धि और स्वार्थ भाव से दूसरों के परम्परागत व्यवसाय और भूमि का अपहरण कर उनसे प्राप्त सम्पत्ति या पदार्थों का वे स्वयं उपयोग करते हैं। ऐसे लोग मदोन्मत्त होकर दूसरों का प्राण-हरण करने अथवा परिवार का नाश करने में भी नहीं सकुचाते। फलतः ऐसे अमानुष व्यवहार का अन्त यमयातना भोगने में होता है। जैसे किसी गांव का अधिकारी मर्यादा एवम् कानून का उलङ्घन होने पर गांव के पटेल को, किसी प्रदेश में अराजकता होने पर उस प्रदेश के शासक को उत्तरदायी मानकर उसे दण्ड देता है, उसी प्रकार यदि राजा नीति-न्याय त्याग कर मनमानी करने लगे तो उसे भी यम-यातनायें सहन करनी पड़ती हैं। राजा के अन्याय करने पर जैसे यम

उसे दण्ड देता है, वैसे ही यदि मय से कोई अन्याय हो जाये तो उसे दंड देने वाले देवता-गण भी हैं। भगवान ने यह सब पूरी व्यवस्था कर रखी है। भगवान ने यम को यह दण्ड नीति निवेदन की थी. इसलिए इसे आधिदैविक ताप कहते हैं। यम-यातनाओं के दुःखों का शास्त्रों में विस्तार से वर्णन किया गया है, उन पर हमें पूरा विश्वास रखना चाहिए। जो लोग ईश्वर-भक्ति से विमुख रहते हैं उन्हें यमयात-नायें भोगनी पड़ती हैं। उन यातनाओं के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं: —

अक्षोभ नरक में अनेक प्रकार के जन्तु बद्ध प्राणि को भयङ्कर पीड़ा देते हैं। भीतर विस्तीर्ण परन्तु मुँह छोटा, ऐसे कुम्भाकार कुण्ड को कुम्भ पाक नरक कहते हैं। इस कुण्ड में दुर्गन्धि युक्त मल-मूत्र भरा रहता है, जिसमें प्राणियों को ठूँस दिया जाता है। नरक-लोक में कहीं तप्त भूमि पर सुलाया जाता है, कहीं जलते हुए खम्भे से लिपटाया जाता है। कहीं शरीर को चमीटों से दागा जाता है, तो कहीं कोड़ों से खाल उधेड़ी जाती हैं। पापी जीवों को इस प्रकार अनेक यमयातनायें सहनी पड़ती हैं। इस लोक में जो शारीरिक दण्ड दिये जाते हैं, उनसे यमलोक के दण्ड अत्यन्त भयानक और कठोर हैं। वहाँ चारों ओर से यमदूत प्राणि पर आक्रमण करते हैं. जिसके कारण न वह उठ सकता है, न बैठ सकता है. न सो सकता है और न रो सकता है। यातनाओं का क्रम अबाधित जारी रहता है, जिससे जीवात्मा बड़ी विह्वल हो जाती है और उसका शरीर केवल अस्थिपंजर मात्र रह जाता है। पिछले समासों में बताये गये आध्यात्मिक और आधिभौतिक तापों से यह आधिदैविक ताप बहुत अधिक उग्र होते हैं, जिनका यहां केवल संक्षेप में संकेत मात्र किया गया है।

नवां समास

मृत्यु-विवेचन

संसार वास्तव में प्राणि के जन्म से ही उसका पीछा करने वाला मृत्यु का दूत है। मृत्यु उधार नहीं है। प्रत्येक पल शरीर का भक्षण कर रहा है और वह प्रतिपल घटता जा रहा है। शरीर को काल निरन्तर घेरे हुए है और किस क्षण इस शरीर का क्या हाल होगा, नहीं बताया जा सकता। कर्म के अनुसार प्राणि की स्वदेश या विदेश में मृत्यु होती है। सञ्चित कर्म के समाप्त होते ही काल का अचानक आक्रमण होता है और फिर वह जरा भी ठहरने को अवकाश नहीं देता। मृत्यु की मार सब को सहनी पड़ती है। उसके पास महान पराक्रमी, शूर, लड़ाकू, क्रोधी, प्रतापी, उग्र, बलवान, धनवान, गुणवान, भूपति, चक्रवर्ती, कलावान, राजनीतिज्ञ, राजा या सेवक सब समान हैं। सम्पन्न, पण्डित, धूर्त, बहुश्रुत, पुराणवेत्ता, वैदिक, याज्ञिक, तत्वज्ञानी, योगाभ्यासी, सन्यासी, वैद्य, पञ्चाक्षरी, तपस्वी, सिद्ध, कवीश्वर, हठयोगी, राजयोगी, वीतरागी, ब्रह्मचारी, सन्त, महन्त, किसी का भी मृत्यु से छुटकारा नहीं है। मृत्यु ब्रह्म हत्या से नहीं डरता, उसे गौ-हत्या का भी भय नहीं, अबला स्त्री और बालकों के लिये उसमें करुणा नहीं। उसके पास स्वतन्त्र और परतन्त्र का भेदभाव भी नहीं है। मृत्यु सब जीवों का संहार कर देता है। कोई मृत्यु पंथ को पार कर चुके हैं, कोई आधी मंजिल पर हैं और किसी ने उस पर अभी-अभी चलना आरम्भ किया है। मृत्यु बाल, तरुण और वृद्ध में भेद भाव नहीं करता। वह उदार, सुन्दर, हरिभक्त, पुण्यशील आदि का भी विचार नहीं करता। आगे पीछे वह सबको अपने साथ ले जाता है। प्राणि मरण धर्मा है। उसके भय से कोई भागकर कहीं नहीं जा सकता। उसे भुलावे में डालना सर्वथा असम्भव है। और क्या कहा जाय? प्रत्यक्ष हरि-हर और भगवान के

सब अवतार भी मृत्यु से नहीं बच पाये। इसीलिए इस लोक को 'मृत्यु लोक' कहा गया है। जो जन्म लेगा, उसे मरना ही पड़ेगा, यह जानकर प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन सार्थक और सफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि लोग उसका यश-गान करते रहें। इस संसार में जो-जो आये, सब गये। कुबेर के समान सम्पत्ति और वैभव सम्पन्न व्यक्ति भी गये, बड़े-बड़े महात्मा पुरुष, योगी, महापराक्रमी, महा पंडित, अकाच्य बुद्धिवान सब चलते बने। पुरुषार्थी, परोपकारी, नीतिवान, प्रतापी सब मरणाधीन हैं। नाना उद्योग छल-कपट करने वाले, महान अहङ्कारी, महा विद्वान, बड़े-बड़े आचार्य, धर्मावतार सबके सब काल के ग्रास बने और नित्य बन रहे हैं। इस 'मृत्यु लोक' में कोई प्राणी अमर नहीं है। अतएव हमको शरीर बल, धन बल या अन्य किसी भी कला का अहङ्कार न करते हुए अपना जीवन भगवद् भक्ति और सबके साथ आत्मीयता और प्रेमपूर्वक बिताना चाहिये। यों तो शरीर से कोई अमर नहीं रह पाता परन्तु जो प्रभु-परायण होकर ईश्वर के स्वरूपकार हो जाते हैं ऐसे आत्मज्ञानी ही केवल मृत्यु पर विजय पाकर अमर हो जाते हैं अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। जन्म-मरण के फेरे से मुक्त हो जाते हैं।

दसवां समास

वैराग्य लक्षण

यह संसार एक महासागर है, जिसमें विकार रूपी अनेक जलचर रहते हैं। विषारी काल सर्प जगह-जगह दंश करने के लिए आंखें गड़ाये बैठे हैं। इस देह में बसने वाले आशा ममता रूपी मगरमच्छ प्रिय पदार्थों के वियोग से होने वाले दुःख को भोगने के लिए बाध्य करते हैं। अहंकार रूपी मगर प्राणि को ऊंचा चढ़ाकर तत्काल रसातल में ला डुबा देता है। फिर वहाँ से काम की सुदृढ़ पकड़ ढीली नहीं होती, द्वेष

भाव नहीं हटता और प्राणि भ्रम वश होकर मद-मत्सर को छोड़ नहीं पाता। वासना रूपी नागिन उसके गले में लिपटी हुई अपनी भयानक जिह्वा से विष-वमन करती है और वह इस भीषण अवस्था में भी गृहस्थी का बोझ 'मेरा-मेरा' कहते हुऐ अपने सिर पर लादे रहता है तथा स्वयं डूबते हुए भी कुल के अभिमान को नहीं त्यागता। उसके चारों ओर भ्रम का गहन अंधकार फैला हुआ है। अहंकार रूपी चोर ने उसे लूट लिया है और मैं रूपी भूत बाधा से पीड़ित होकर वह भ्रम में डूब गया है। बहुतेरे प्राणी इसी प्रकार के भंवरों में फँसकर प्रवाह के साथ बहते बहते डूब गये हैं। जिन थोड़े से भाग्यशाली जीवों ने भक्ति भाव से ईश्वर की करुण पुकार की है, उनके लिए भक्तवत्सल भगवान स्वयं दौड़कर उन भक्तों को भवसागर से पार उतार लिया है। शेष अभक्त प्राणि प्रवाह में वह गये हैं। ईश्वर भावना का भूखा है। वह भावना से वश होता है और कठिन समय में अपने भक्तों की रक्षा करता है। जिसे भगवान से प्रेम है उसके संकट निवारण का भार भगवान उठा लेते हैं और भक्तों के सारे संसार-दुःखों का नाश करते हैं। जो परमेश्वर के अंकित हैं, उन्हें स्वानन्द-सुख का उपभोग मिलता है। इसलिए भक्तजन परम धन्य हैं।

जिसकी जैसीं भावना होती है, परमात्मा उसके लिए वैसा ही बन जाता है। प्राणि मात्र के अन्त:करण को जानने वाला परमात्मा सबके अन्तरंग भाव को समझता है। यदि भावना कलुषित है, तो परमात्मा भी जैसे को तैसा महाठग है। जैसा भजन वैसा समाधान देता है। भावना कम होते ही परमात्मा भी दूर हो जाता है। जैसा बिंब होगा, वैसा ही प्रतिबिंब दर्पण में दिखाई देगा। उसका सूत्र हमारे ही पास है यदि हम क्रोध से आँखें फाड़कर आइने में देखेंगे तो हमारा प्रतिबिंब भी वैसा ही दिखाई देगा। यदि हम हँसेगें तो प्रतिबिंब भी हंस देगा। इसी प्रकार अपनी भावना का प्रतिबिंब ही परमात्म रूप से हमें प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है। परमार्थ में भाव ही प्रधान है। भाव-भक्ति से यदि हम परमार्थ

मार्ग पर चलने लगें तो हम ईश्वर के दरबार में उपस्थित हो जाते हैं और संत-समागम से हम ठीक मोक्ष के मुकाम पर पहुँच जाते हैं। ऐसे लोग स्वयं पावन होकर अपनी भावना शक्ति से अपने पूर्वजों का भी उद्धार कर लेते हैं। उनकी कीर्ति सुनकर अन्य अभाविक भी भाविक बन जाते हैं। जो हरि भजन में मग्न हो गये, उनकी मातायें धन्य हैं। उन्हीं का जन्म सार्थक है। इसलिए जीवन रूपी रत्न मंजूषामें दिव्य भजन रत्नों का संग्रह कर उस मंजूषा को भगवद् अर्पण करने का स्वानन्द सुख लूटने का हम अवसर न खोयें। जिसने ईश्वर का पल्ला पकड़कर संसार से विराग किया, ऐसे भक्त की परमात्मा अन्तर और बाह्य परितापों से पूरी तरह रक्षा करता है। उसकी विवेक बुद्धि जागृत होने से संसार के दुःख भी उसे सुखमय प्रतीत होने लगते हैं। जिसका प्रभू पर अन्तरंग प्रेम है, उसे स्वानन्द सुख का जो अनुपम अनुभव होता है, वह सामान्य जन के भाग्य में कहाँ ? अभक्त सामान्य जन तो अपना देव दुर्लभ नरदेह यों ही व्यर्थ गंवा देते हैं। इस नरदेह के द्वारा अनेक पुरुषों ने अपना उद्धार कर लिया है और अनेक जन्म-मृत्यु के चक्र में आवागमन कर रहे हैं अतः सत्सग से इस जीवन को सार्थक कर लेना चाहिए। पिछले जन्मों में हम न जाने कितने दुःख भोगते हुए इस मनुष्य योनि में आये हैं, अतएव हमें अब सावधान होकर रहना चाहिए। आँगन में एकत्र हुए पक्षी कुछ ही देर में दस दिशाओं में उड़ जाते है, वैसे ही इस संसार में प्राप्त धन वैभव, पुत्र परिवार एवं मित्रों का वियोग कब हो जायेगा, कहा नहीं जा सकता। जो समय बीत गया, सो बीत गया। अब शेष बचा है उसीका सदुपयोग करें। पिछले जन्मों में भी अनेक आप्त स्वकीय थे पर सबको छोड़ कर हमें जाना पड़ा ऐसा ही आगे भी होगा। इस संसार में कोई किसी का नहीं है। मां-बाप, बहिन भाई, इष्ट मित्र पुत्र परिवार सब सुख के साथी हैं, दुःख के भागीदार कोई नहीं। धन-सम्पत्ति, वैभव सब नाशवान है ? 'मेरा घर' 'मेरी गृहस्थी' का व्यर्थ अभिमान क्यों करता है ? जिनकी तूने जीवन भर चिंता

की, वे सब अन्त में तुझे छोड़ने पड़ेंगे। यौवन वैभव विलास सब माया है। अतः अब भी सावधान होकर भगवान को सच्ची भावना से अपना ले। इसी में तेरी भलाई है। उदर पोषण के लिए तू अनेक नीच मनुष्यों की खुशामद करता है, उनकी सेवा करता है, उनके गुण-गान करता है और जिसने तुझे यह परम दुर्लभ नरदेह दिया, उसको भूल रहा है। कैसा आश्चर्य है? जो परमात्म रात दिन सारे जीवों की चिन्ता करता है, जिसकी सत्ता से मेघ वर्षा करते हैं, समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता, सूर्य नियमित प्रकाश देता है और जिसकी केवल सत्ता मात्र से सारा ब्रह्माण्ड संचालित होता है, जिसकी चतुराई और कुशलता की कल्पना भी नही की जा सकती, ऐसे सर्वात्मा श्रीराम प्रभु को भूल कर जो प्राणी रात दिन विषयों का चिंतन करते रहते है, वे प्राणि दुरात्मा और निकृष्टतम ही हैं।

जो 'मेरा-मेरा' करता रहेगा. उसे अन्त में दु:ख ही भोगना पड़ेगा। आनन्द धन श्रीराम को छोड़कर जिसका मन विषय चिंतन में निमग्न होगा, ऐसे लंपट पुरुष को समाधान कैसे मिल सकता है? जिसे केवल सुख की ही कामना हो, उसे परिणाम में दुःख दायी स्वजनों की संगति छोड़कर श्रीराम प्रभु के भजन में लग जाना चाहिए। वासना का लोप होते ही सारे दु.ख दूर होकर सच्चे, सुख का लाभ होता है। विषय की संगति से जो सुख मिलता है, वही अन्त में दु ख का कारण बनता है। सेवन करते समय सुख और अन्त में दुःख यह विषय सुख का निश्चित स्वभाव है। जैसे काँटे का चारा खाते समय मछली को आनंद होता है पर जब काँटा ऊपर खीच लिया जाता है तो मछली का गला फटकर उसकी मृत्यु हो जाती है। ऐसा ही विषय सुख का हाल है। इसलिए उससे बच करराम भजन में ही अपने को रंग लेना चाहिए।

यह सब निरूपण सुनकर एक भाविक श्रोता ने प्रश्न किया कि 'महाराज, यह सब बातें ठीक हैं पर ईश्वर कहां हैं? वह कैसे मिलता है? इस दुःख मूल संसार और यमयातनाओं स बचते हुए जन्म कैसे

सफल किया जा सकता है ? यह सब कृपा कर विस्तार पूर्वक निवेदन कीजिए ।' वक्ता ने कहा—' निष्ठा पूर्वक भगवद् भजन करने से ही इन सब प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होकर समाधान मिलेगा ।" तब श्रोता ने पुनः जिज्ञासा से पूछा—'महाराज, भगवद् भजन किस तरह किया जाय ? मन को कहाँ लगायें ? भजन के लक्षण क्या हैं ?' आदि बातें स्पष्ट बताइये । अत्यन्त दीन भाव से उसने गुरुदेव के चरणों पर सिर रख दिया और उसका गला भर आया । उसके नेत्रों से अश्रु धाराएँ बहने लगीं । शिष्य का यह अनन्य भाव देखकर कैवल्य दाता श्री गुरुदेव प्रसन्न हुए और उन्होंने नव विद्या भक्ति का निरुपण किया । अब उस भक्ति के प्रकारों का मधुर विवरण हम आगे के समास में करेंगे । श्रोतागण सावधान होकर सुनें ।

चौथा दशक

पहला समास

श्रवण-भक्ति

हे गणेश जी ! आप विद्या वैभव से सम्पन्न हैं । अतः अध्यात्म-विद्या का रहस्य मेरे मुख से निवेदन करायें । हे बेदमाता शारदा ! सब सिद्धियां तुम्हारे प्रसाद से प्राप्त होती हैं । तुम्हीं ने दयाकर मेरे मन को मनन मार्ग में प्रेरित किया है । अतः तुम्हें नमस्कार है । अब परात्पर सद्‌गुरु का चिन्तन करते हैं, जिनकी कृपा से ज्ञान-विचार की प्रेरणा होती है ।

श्रोताओं ने यह प्रश्न किया है कि भगवद् भजन कैसे किया जाय । इसका ग्रन्थों में जो वर्णन किया गया है, वही बतायेंगे । श्री मद्‌भागवत यह सत्‌शास्त्र है । उसमें प्रल्हाद द्वारा भक्ति के नव विद्या प्रकार बताये गये हैं, उन्हें एकाग्रता से श्रवण करें ।

श्रोक -श्रा वष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यं आत्म-नियेदनम् ॥

श्रवण, कीर्तन, विष्णु स्मरण, पाद सेवव, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य व आत्म-निवेदन ऐसे भक्ति के नौ प्रकार हैं। इसे ही नवधा-भक्ति कहते हैं।

प्रथम श्रवण-भक्ति। हरि कथा पुराण श्रवण अथवा अध्यात्म-निरूपण यह श्रवण-भक्ति है। परमात्मा, सगुण, निर्गुण, उभय रूप है। इसलिये उसकी सगुण लीलाओं का श्रवण करें और अध्यात्म-निरूपण भी सुनें ताकि सगुण चरित श्रवण से भक्ति-भावना उत्पन्न हो और अध्यात्म-श्रवण से ज्ञान बोध भी हो। इस भाँति ज्ञान और भक्ति का सुखद लाभ मिल सके। यह श्रवण भक्ति है। हम कर्म मार्ग, उपासना मार्ग, ज्ञान मार्ग, गुरुभक्ति मार्ग, योगमार्ग, वैराग्य मार्ग आदि सभी मार्गों को श्रवण करें। अनेक व्रतों, तीर्थों आदि की महिमा सुनें, अनेक मन्त्र, साधन तप, पुरश्चरण आदि का महात्म्य श्रवण करें। दुग्धाहारी, निराहारी, फलाहारी, पर्णाहारी, तृणाहारी कैसे होते हैं, यह भी सुनें। उष्णवास, जलवास, शीतवास, अरण्यवास, आकाशवास, भू-गर्भवास आदि कैसे होते हैं, यह भी जानें जपी, तपी, हठयोगी, तत्वज्ञानी, भूगोल रचना, सृष्टि रचना, चन्द्र-सूर्य, तारा मण्डल, ग्रह मण्डल, मेघ मण्डल आदि का वर्णन करने वाले अनेक ग्रन्थ नौ खंड और चौदह भुवन आदि का वर्णन सुनकर उनकी जानकारी भी प्राप्त करें।

सङ्गीत, राग-रागिणियों का ज्ञान, तालज्ञान, नृत्यज्ञान, वाद्यगान, शुभाशुभ समय का ज्ञान, नाना प्रसङ्ग ज्ञान, सामुद्रिक ज्ञान, ज्योतिष मन्त्रौषधि, नाना रोगों की चिकित्सा का ज्ञान, नाड़ी परीक्षा ज्ञान आदि चौदह विद्या और चौंसठ कलाओं को भी सुनें समझें। नवविद्या भक्ति, चतुर्विद्या मुक्ति, उत्तम गति आदि के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करें। पिंड ब्रह्माण्ड रचना, नाना तत्वों का विचार, ब्रह्ममाया निरूपण, मोक्ष

प्राप्ति के साधन आदि का भी ज्ञान प्राप्त करें और इसके लिए आर्हनिश श्रवण द्वारा ज्ञान अर्जन करते रहें वेद, शास्त्र, पुराण, महा वाक्यों का विवरण आदि सब सुनते रहें और उनमें से सार वस्तु को ग्रहण कर असार को त्याग दें। इसका नाम है श्रवण-भक्ति। सगुण चरित्रों को श्रवण करें और निर्गुण अध्यात्म का संशोधन एवम् मनन करें। ये दोनों क्रियायें परम पवित्र हैं। जयंतियां, उपवास, जप, ध्यान, भजन, स्तवन आदि करते रहें और सुनते रहें इस प्रकार विभक्ति अर्थात् अलगाव को छोड़कर भक्ति अर्थात् तादात्म्य की ओर चित्त वृत्ति को बढ़ायें।

दूसरा समास

कीर्तन-भक्ति

पिछले समास में श्रवण भक्ति का निरूपण किया अब कीर्तन-भक्ति सुनिए। सगुण हरि-कथा कहना, भगवद् गुणानुवाद करना, वाणी से नित्य हरिनाम स्मरण करना कीर्तन भक्ति कहलाती है। अनेक ग्रन्थ पढ़ें, नित्य हरि कथा सुनाते रहें, नित्य नया पाठान्तर करते रहें और अधिक से अधिक कीर्तन-भजन द्वारा ब्रह्माण्ड को प्रभावित करें। कीर्तन की मनमें आतुरता और लालसा बढ़ानी चाहिये। कीर्तन से प्रभु सन्तुष्ट होते हैं, स्वयं अपने को समाधान होता है और अन्य लोगों को उद्धार का मार्ग उपलब्ध होता है। इस कलियुग में ये तीनों लाभ कीर्तन से प्राप्त होते हैं। कीर्तन द्वारा प्रभु के अनेक रूपों, गुणों, अलङ्कारों आदि का ऐसा भावपूर्ण वर्णन करें, जिसको सुनकर भगवद् भक्तों का हृदय सुख से दोलायमान (आन्दोलित) हो। भक्ति कथा प्रसङ्ग का विवेचन करते हुए भक्ति की कुछ ऐसी सच्ची और कल्पित कथाओं का उल्लेख करें ताकि लोगों में भक्ति भावना जागृत हो।

कीर्तन में सङ्गीत का भी समावेश हो और सङ्गीत के प्रवाह में कीर्तन करते हुए श्रोताओं को तल्लीन कर दें। कीर्तन में अनेक भक्तों

के भजन, पद, दोहे, चौपाइयाँ, श्लोक, सवैये आदि को सुनाते रहें और कहीं-कहीं प्रसङ्गानुसार विनोद भी करें। कीर्तन में भक्ति ज्ञान, वैराग्य आदि के लक्षण, नीति न्याय की बातें, स्वधर्म निष्ठा और साधन मार्ग का निर्वाह करते हुए अध्यात्म का निरूपण करें। यह सब निरूपण सरल स्पष्ट और सन्देह रहित हो। सगुण, निर्गुण या अध्यात्म का निरूपण अवसर के अनुरूप करना चाहिये। विवेचन सिद्धान्त को लेकर हो। अव्यवस्थित और सिद्धान्त को छोड़कर कोई बात न करें। वेदों का अध्ययन करे और माया-ब्रह्म का स्वरूप समझावें आदरपूर्वक ब्राह्मण धर्म की रक्षा करें। उपासना मार्ग से गुरु परम्परा का निर्वाह करें। ज्ञान के लक्षणों को आचरण में उतारें।

सगुणों का चरित्र-वर्णन का नाम कीर्तन और अद्वैत का प्रतिपादन का नाम निरूपण है। अद्वैत का निरूपण करते हुए भी सगुण-उपासना का खण्डन न करें।

वक्ता अधिकारी होना चाहिये ताकि वह ज्ञान-चर्चा में वेदाज्ञा भङ्ग न करे और मनुष्य मात्र को सच्चा सन्मार्ग बतला सके। यह जिससे न बन सके उसे केवल भगवान का सप्रेम गुणानुवाद ही करना चाहिए। यह भी कीर्तन-भक्ति ही है। कीर्तन से महापातक नष्ट हो जाता है, उत्तम गति प्राप्त होती है और अन्ततः भगवत् प्राप्ति हो जाती है। कीर्तन से वाणी पवित्र होती है, मनुष्य की पात्रता बढ़ती है, प्राणिमात्र सुशील होते हैं। कीर्तन से चित्त की व्यग्रता, अशान्ति दूर होकर वह एकाग्र एवं शान्त होता है। कीर्तन से आत्म-बुद्धि का निश्चय होता है। श्रोता-वक्ता दोनों का सन्देह दूर होता है। देवर्षि नारद सदा-सर्वदा कीर्तन में ही निमग्न रहते थे, इसीलिये वे नारायण स्वरूप माने जाते हैं। अतः कीर्तन की महिमा अपार है। कीर्तन से परमात्मा शीघ्र संतुष्ट होता है। सारे तीर्थ, धाम, देवी-देवता कीर्तन में उपस्थित रहते हैं। अतः कीर्तन का हम सदा अभ्यास और क्रम जारी रखें।

तीसरा समास

नाम-स्मरण-भक्ति

कीर्तन-भक्ति के बाद अब नाम-स्मरण-भक्ति को सुनिये । जिसको भगवान का जो नाम प्रिय हो, उस नाम का अखण्ड स्मरण तथा जप करते हुए समाधान प्राप्त करना स्मरण-भक्ति है । नित्य प्रति प्रातः आनन्दपूर्वक नाम-स्मरण करना तो कभी चूकना ही नहीं चाहिए । सुख में, दुख में, कार्यारम्भ में, निद्रा-विश्रान्ति के समय नाम-स्मरण करते रहें । किसी सङ्कट के आने पर, गृहस्थी के जंजाल में रहते हुए और निराशावस्था में भी नाम-स्मरण को न भूलें । सब काम करते हुए, भोग विलास में भी नाम-स्मरण न छोड़ें । सम्पत्ति-विपत्ति का चक्र चलता ही रहेगा पर हम प्रभु नाम स्मरण का कभी विस्मरण न होने दें । सत्ता सामर्थ्य होने पर या भाग्य श्री का उत्कट लाभ होने पर भी नाम-स्मरण न भूलें । नाम स्मरण से अनेक विघ्न-सङ्कट दूर होते हैं और परम-पद की प्राप्ति होती है । भूत-पिशाच बाधा, मन्त्र प्रयोग की त्रुटि के कारण हुआ पागलपन अथवा किसी भी प्रकार की व्यग्रता नाम-निष्ठा से दूर हो जाती है । नामस्मरण से विषबाधा तथा सब प्रकार के रोग नष्ट होकर अन्त में उत्तम गति प्राप्त होती है। बालपन, यौवन और वृद्धावस्था सबमें सदा नाम स्मरण करते रहें । राम की बजाय 'मरा-मरा' का उलटा जप करते हुए भी वाल्मिकी महर्षि बन गये और उन्होंने शतकोटि रामायण रामावतार के पहले ही लिखकर रख दी । हरि नाम से प्रह्लाद अनेक सङ्कटों से बच-कर तर गये । नारायण के नाम से अजामिल जैसा पापी भी पावन हो गया । राम नाम के प्रताप से सेतुबन्ध के समय पाषाण समुद्र पर तैरने लगे । नाम के प्रभाव से असंख्य भक्तों का उद्धार हो गया । महापापी भी नाम स्मरण की शक्ति से पुण्यवान बन गये । भगवान के अनन्त नाम हैं । उनके हजार नामों में से किसी भी प्रिय नाम का जप करने से

जीवन सार्थक हो जाता है। पुण्य श्लोक का नाम जपने वाला भी पुण्य-श्लोक बन जाता हैं। अन्य किसी साधन को न करते हुए केवल नाम स्मरण द्वारा भी परमात्मा को सन्तुष्ट किया जा सकता है और फिर वह चक्रपाणि अपने भक्तों की रक्षा के लिये सदा तत्पर रहता है। अनेक दोषों के पर्वत नाम के प्रताप से भस्म हो जाते हैं। नाम-महिमा अगाध है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्ष शङ्कर भगवान राम नाम के प्रताप से हलाहल विष की बाधा से मुक्त हो गये। चारों वर्ग के सभी लोगों को नाम-स्मरण का अधिकार है। इसके लिए छोटे बड़े, ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं है। जड़ मूढ़ प्राणि भी नाम स्मरण से भवसागर पार कर लेते हैं। अतः हम सदैव प्रभु के रूप का मन में चिन्तन करते हुए अखण्ड नाम-स्मरण करते रहें।

चौथा समास

पाद-सेवन-भक्ति के गुण

काया वाचा मन से मोक्ष प्राप्ति के लिए सद्गुरु की सेवा करना यह 'पाद सेवन' भक्ति कहलाती है। जन्म-मृत्यु की यातनाओं से मुक्त होने के लिये सद्गुरु की अनन्य भाव से शरण जाना चाहिए। सद्गुरु की कृपा के अतिरिक्त संसार-सागर से पार होने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसलिए हर दम सद्गुरु चरणों की सेवा करें। ब्रह्म स्वरूप का परिचय सद्गुरु द्वारा ही हो सकता है। उन्हीं की कृपा से सार असार विचार के द्वारा परब्रह्म वस्तु का निर्धार होता है। वह वस्तु चर्म-चक्षु को दिखाई नहीं देती और न उसका मन को ही आकलन होता है। बिना असङ्ग हुए उसका अनुभव नहीं हो सकता। सङ्ग-त्याग, आत्म-निवेदन, विदेह-स्थिति, अलिप्तता, सहजावस्था, उन्मनावस्था, विज्ञानावस्था यह सातों एक रूप ही हैं। समाधान अर्थात समाधि-सुख अथवा स्वरूप स्थिति दर्शन वाले ये संकेत-चिह्न हैं। समाधान स्थिति के

ही ये सात नाम है। अनुभव के यह सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग पाद-सेवन भक्ति द्वारा ज्ञात होते हैं और गुह्य ज्ञान का परिचय होता है। इसलिए इसे गुरु-गम्य मार्ग कहा जाता है। यह मार्ग खुला रहते हुए भी दिखाई नहीं देता इसलिये इसे प्रकट ना गुप्त अर्थात् आन्तरिक्ष मार्ग कहते हैं। स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण और कारण से ज्ञान, ज्ञान के पार दृष्टा और उसके भी उस पार सद्वस्तु की पहिचान करा देने वाला यह मार्ग है अतः इसे आन्तरिक्ष अर्थात् आकाश पंथी गुप्त मार्ग कहा जाता है, सत्य अर्थात ब्रह्म का दर्शन होने पर असत्य अर्थात माया का लोप हो जाता है और माया को देखते रहने पर सत्य का दर्शन नहीं। सत्य या असत्य का सम्बन्ध देखने वाले की दृष्टि पर निर्भर है। देखने वाला अर्थात दृष्टा और देखना अर्थात दर्शन, जब दर्शन दृष्टा में विलीन हो जाता है, तब उसे तत्काल समाधान प्राप्त होता है। सभी साधन सद्गुरु के सत्सङ्ग से ही सफल हो सकते हैं। सद्गुरु बिना कोई अन्य सन्मार्ग नहीं है। अनेक प्रयोग, साधन करें, सतत परिश्रम से विद्याध्ययन करें तब भी उसे गुरु गम्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जो साधन और अभ्यास से असाध्य है, वह गुरु कृपा से सहज साध्य हो जाता है। इसलिए सन्मार्ग के इच्छुक सत्सङ्ग का लाभ लें। सत्सङ्ग के बिना कुछ भी साध्य नहीं होगा। देव, ब्राह्मण और सन्त सज्जन के समागम से हरि भजन का मार्ग उपलब्ध होता है। अतः उनके प्रतिपूर्ण सद्भाव रखना चाहिए। यह कथन तो लोकाचार मात्र है। सच तो यह है कि मनुष्य को, सच्चे मुमुक्षु को सद्गुरु चरणों का दृढ़ आश्रय लेना चाहिए। यही पाद-सेवन भक्ति है। इसी चौथी भक्ति से तीनों लोक पावन हुए हैं। सायुज्य मुक्ति तक पहुँचाने वाली यही भक्ति है। अतएव यह सर्वश्रेष्ठ भक्ति मानी गयी है। इस पाद-सेवन भक्ति से अगणित प्राणी भव-सागर से पार उतर गये हैं।

पांचवां समास

अर्चन-भक्ति के गुण

चतुर्थ भक्ति पाद-सेवन का निरूपण हो गया। अब पांचवीं अर्चन भक्ति को सुनिये। अर्चन अर्थात देवताओं की पूजा अर्चना। पूजा शास्त्र-विधि के अनुसार की जाय। अनेक प्रकार के आसन, उपकरण, वस्त्रा-लंकार, आभूषण, मानसपूजा, मूर्ति ध्यान आदि सब विधि-विधान से करना चाहिए। देव, ब्राह्मण साधु-संत, अतिथि, सन्यासी, गायत्री (गौमाता) का यथोचित पूजा सत्कार करें। धातु पाषाण आदि की देवता मूर्ति, तसवीर आदि का भी आदर पूर्वक पूजन करें। शालिग्राम, चक्र, लिंग, बाण, भैरव, भगवती आदि जिस देवी-देवता का अपने परिवार में यजन-पूजन होता हो उसे भक्ति भाव पूर्वक करें। गणेश, शारदा, विष्णु, शंकर, हनुमान, केशव नारायण, सूर्य, लक्ष्मी, हरिहर आदि परमात्मा की जो अनन्त मूर्तियां हैं, उनका भी पूजन करें। इसके अतिरिक्त कुल धर्म के अनुसार जिस देवी-देवता का परिवार में पूजन किया जाता हो, उसे भी करते रहें। अनेक तीर्थ-क्षेत्रों के दर्शन कर वहाँ के देवी-देवताओं का भी पूजन करें। सब मूर्तियों में एक ही परमेश्वर का दर्शन करें।

पूजन में पंचामृत, गंध, अक्षत, पुष्प, सुगन्ध द्रव्य, धूप दीप कर्पुर आरती, फल, नैवेद्य, तांबूल, दक्षिणा, वस्त्र अलंकार आदि साहित्य का यथानुकूल उपयोग करें। भक्त-भाविक मित्रों को एकत्रित कर सामूहिक रूप से महोत्सव का आयोजन करें। मंदिरों के आस-पास कुंए, सरो-वर, मठ-मंडप, बाग-बगीचे आदि निर्माण करें और नाना प्रकार के वस्त्राभूषण, परदे, छत्र, चाँदनी, बंदनवार आदि जो जो वस्तुएं अनु-कूल हों मंदिरों को अर्पण करें। तोता-मैना, मोर, चकोर, कोकिल आदि पक्षी तथा गाय, भैंस आदि पशु भी देवालयों को समर्पित करें।

सारांश काया वाचा मनसा चित्त-वित्त-जीव-प्राण द्वारा जो जो चीजें सद्भावपूर्वक भगवान को अर्पण की जा सकती हों, उन्हें अर्पण करें। यही अर्चन-भक्ति है। देवताओं के अनुसार ही गुरु की भी अनन्य भक्ति करना चाहिए। भगवान को मानस पूजा भी अति प्रिय है। अतः उनका मनः पूर्वक पूजन करें और जो जो वस्तु हमें प्रिय है, वह कल्पना द्वारा भगवान को अर्पण करें। यह मानस पूजा कहलाती है। इस प्रकार सर्वत्र भगवान की अनुभूति द्वारा उसकी मानस पूजा से भी हमें परम-शांति और समाधान प्राप्त हो सकता है।

छटवां समास

वंदन-भक्ति के गुण

अब वंदन-भक्ति को सुनिये। देवता, साधु-संत और सज्जन पुरुषों को वंदन करना यह वंदन-भक्ति कहलाती है। सूर्य, भगवान, और सद्गुरु को साष्टांग नमस्कार करना चाहिए और अन्य व्यक्तियों को यथा अधिकार नमन करें। देवताओं के रूप में परमात्मा की जो अनन्त मूर्तियाँ हैं उन सबको आदर पूर्वक साष्टांग नमस्कार करना चाहिए। शिव, विष्णु, सूर्य इनके दर्शनों से दोष-निवृत्ति होकर पुण्य लाभ होता है। अतः इनका नित्य दर्शन कर दण्डवत प्रणाम करना चाहिए कहा गया है—

> शंकरः शेषशायी च मार्तण्डा मारुतिस्तथा।
> एतेषां दर्शनं पुण्यं नित्यने मे विशेषतः॥

भक्त, ज्ञानी, वैराग्यशील पुरुष, महात्मागण, तापसी, योगी वेद-शास्त्रज्ञ, पंडित, विद्वान आदि जिन जिन महानुभावों में हमें विशेषगुण दिखाई दें, वहां सद्गुरु का ही अधिष्ठान है ऐसा जानकर उन्हें साष्टांग नमस्कार करना चाहिए। गणेश, शारदा, विष्णु, शंकर तथा सब देवी-देवताओं को भक्ति भाव पूर्वक सादर नमस्कार करें। यथा—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरं ।
सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥

सब देवताओं को किये गये नमस्कार अन्ततः एक ही पर ब्रह्म परमतमा को ही प्राप्त होते हैं। नमस्कारों से नम्रता आती है। विकल्पों का नाश होता है और मन को समाधान मिलता है। नमस्कार से अहंकार मिटता है और दोष-दुर्गुणों की राशि भस्म होकर हम परमेश्वर के कृपापात्र बनते हैं। नमस्कार से पतित पावन हो जाते हैं। संतों को को अनन्यता की प्राप्ति होकर वे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। अपराध होने पर भी नमस्कार करने पर समर्थों को क्षमा करनी ही पड़ती है। अतः शरणागतों के लिए नमस्कार के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है। नमस्कार से सद्‌बुद्धि का विकास होता है। नमस्कार के लिए न कोई व्यय करना पड़ता है, न कोई कष्ट उठाना पड़ता है और न किसी सामग्री की ही आवश्यकता होती है। इसके समान सरल मार्ग दूसरा कोई नहीं। परन्तु नमस्कार अनन्य भाव से निष्कपट होकर करना चाहिए। नमस्कार द्वारा शरणागति होने पर सारी चिन्ता का भार साधु अपने ऊपर ले लेते हैं।

सातवां समास

दास्य-भक्ति के गुण

अब सातवीं दास्य-भक्ति का विवरण सुनिये। सदा मंदिर में सेवा के लिए उपस्थित रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार जो भी काम सौंपा जाय, उसे तत्परता और उत्साह पूर्वक सम्पन्न करना चाहिए। देव-मंदिरों का जीर्णोद्धार करना, तालाबों की मरम्मत कराना, धर्मशालाओं का निर्माण करना अथवा उनका जीर्णोद्धार करना यह सब दास्य भक्ति है। मंदिरों के लिए अनेक प्रकार की पूजन, शृंगार सामग्री प्रदान करना, बड़े-बड़े बर्तन, कोठियां, चाँदी-सोने के पात्र आदि भेंट

करना यह भी दास्य-भक्ति के ही प्रकार हैं। मंदिरों के चारों ओर पुष्प वाटिकायें निर्माण करना, कूप-तड़ाग खुदवाना, अनेक पशु-पक्षियों के निवास बनवाना, अनेक वाद्य एव नाट्यशालाओं की व्यवस्था कर वहां संगीतज्ञ एवं अन्य गुण सम्पन्न व्यक्तियों को आश्रय देना, रसोई घर, भोज-घर, भोजनालय आदि का निर्माण करना आदि अनेक साधनों द्वारा देवताओं के वैभव की वृद्धि करना यह सब दास्य-भक्ति के लक्षण हैं। संक्षेप में यह सब यहां बताया गया है। उनका विस्तार कहाँ तक किया जाये? भगवान की हर प्रकार की सेवा के लिए हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए। और बड़प्पन का अहंकार छोड़कर छोटे से छोटे सेवा कार्य में आनन्द का अनुभव करना चाहिए। जयंतियाँ, पर्व, महोत्सव आदि बड़े सजधज के साथ विशाल रूप में आयोजित करना चाहिए। ताकि उन्हें देखकर स्वर्ग के देवतागण भी हर्षोल्लास से आश्चर्य चकित हों। इस प्रकार देवताओं के ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए अति क्षुद्र कार्य भी बड़े प्रेम और भक्ति भाव से उत्साह पूर्वक करना चाहिए। पूजन, स्नान, आचमन, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि की पूरी व्यवस्था करनी चाहिए। मंदिरों में स्वच्छता और साफ-सफाई का काम, पानी भरना, पूजन के वस्त्र पात्र आदि धोना-मांजना तथा दर्शन के लिए आने वाले भक्त-जनों का आदर पूर्वक आतिथ्य-सम्मान करना यह भी दास्य-भक्ति है। मंदिरों में भगवान के सन्मुख बैठकर भक्ति भाव पूर्वक प्रार्थना, करुणा-स्तोत्र, गीत आदि गाकर लोगों के अन्तः करणों को भाव-विभोर एवं प्रसन्न करना यह सब दास्य-पूजा भक्ति के लक्षण हैं। यह सब न पायें तो मानस द्वारा ही प्रभु तथ्य सद्गुरु का चिंतन करते रहना चाहिए। वह भी दास्य भक्ति है।

आठवां समास

सख्य-भक्ति के गुण

अब आठवीं सख्य-भक्ति के लक्षण सुनिये। हम ईश्वर या देवता की सखा भाव से सेवा-भक्ति करें, इसका नाम सख्य भक्ति हैं। प्रभु को जो बातें प्रिय हैं। उन्हीं को हम श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करें और तदनुसार व्यवहार करें। भगवान को क्या प्रिय है? भक्ति भाव, भजन, निरुपण, प्रेम पूर्वक कीर्तन यह भगवान को प्रिय है। अत: हमें अपने जीवन में इनका नित्य प्रयोग करना चाहिए। किसी की इच्छानुसार कार्य करने पर निश्चय ही सख्य-भावना बढ़ती है। अत: भगवान से सख्य-भाव करना हो तो अपने स्वार्थ एवं सुख का ध्यान नहीं करना चाहिए और अनन्य भाव से तन-मन धन से प्रभु की इच्छा को ही अपनी इच्छा बना लेना चाहिए। सांसारिक बातों की चिंता न करते हुए हमेशा हमेशा प्रभु का ही चिंतन करने रहना चाहिए तथा प्रभु की कथा वार्ता में रुचि लेना चाहिए प्रभु के साथ सखा-भाव स्थापित करने में आप्तजनों का विरोध भी सहन करना चाहिए। इसके लिए हम सबका त्याग करने और समय आने पर अन्ततः प्राण भी अर्पण करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

प्रभु को ही अपना सर्वस्व मानकर उससे कभी विलग न हों। इस प्रकार यदि हम अनन्य भाव से प्रभु से सख्य करते हैं तो वह हम भक्तों की सारी चिन्ताओं का भार अपने ऊपर ले लेता है। क्या आप नहीं जानते कि पाँडवों को जलते हुए लाक्षागृह से भगवान ने किस युक्ति से बाहर निकाला था? प्रभु से सखा भाव से भक्ति कर उन्हें अपना बना लेने की कुंजी हमारे पास है। हम जैसे शब्द बोलेंगे वैसी ही प्रतिध्वनि होंगी। इसी भाँति हम यदि प्रभु के अनन्य सखा बनकर रहें तो प्रभु भी हमें तत्काल वश हो सकते हैं। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्त थैव

भजाम्यहम् ॥" हमारी जैसी भावना होगी, प्रभु उसी प्रकार हमें प्राप्त होंगे। अर्थात प्रभु को वश करना सर्वथा हमारे हाथ में है। हमारी इच्छानुकूल कार्य न होने पर यदि हमारी ईश्वर निष्ठा में कमी आती हो तो वह हमारा ही दोष है। प्रभु पर हमारी अनन्य दृढ़निष्ठा होनी चाहिए। हम केवल प्रभु को ही अपने माता-पिता, बंधु-सखा, कुटुम्ब परिवार,धन-सम्पत्ति सब कुछ समझें। हमारी मनोकामना पूरी न होने पर भगबान से रूठ जाना यह सख्य-भक्ति का लक्षण नहीं हो सकता। हम अपनी इच्छा पूर्ति के लिए भगवान का साथ न छोड़ें अपितु भगवान की इच्छा बना लें। हम अपनी स्वतंत्र इच्छा का त्याग कर भगवद् इच्छा को ही शिरोधार्य करेंगे और उसकी इच्छानुकूल जीवन बिताने का संकल्प करेंगे तो प्रभु हमारी अनन्य भक्ति से सहज ही हमारा सच्चा सखा बन जायेगा। प्रभु की कृपा के सम्मुख माता का प्रेम भी नगण्य है। महा आपत्काल में कभी कोई माता भी अपने पुत्र का प्राण हरण कर सकती है पर क्या कभी किसी भक्त को मारने की घटना आपने कहीं देखी या सुनी है ? भगवान अनन्य भाव से भक्ति करने वाले भक्तों के सदा पीछे पीछे रहते हैं, उनके संकट निवारण करते हैं और अन्त में उनका उद्धार कर देते हैं। प्रभु अनाथों के, पतितों के उद्धार कर्ता है। भगवान कृपा के सागर और करुणा की निधि हैं वे कभी भक्त की उपेक्षा नहीं करते। भगवान सच्चे प्रेम के भूखे है। अतः उनसे अनन्य प्रेम द्वारा सख्य-भाव बढ़ाना चाहिए भगवान से ही हम अपनी अन्तरंग की बातें करें, यही सख्य भक्ति का लक्षण है। प्रभु के समान ही हम गुरु से भी अनन्य सख्य भाव रखें।

नवाँ समास

आत्म-भक्ति समर्पण

अब अन्तिम अर्थात नवमी भक्ति आत्म-निवेदन का विवेचन ध्यान पूर्वक सुनिये। आत्म-निवेदन यानी ईश्वर के प्रति आत्मा-समर्पण भगवान से विभक्त हो जाना। भक्त होकर विभक्त होना बड़ा विचित्र से मालूम होता है। इसके लिए हमें गहराई में जाना होगा। ईश्वर की प्रचीति एवं प्रतीति के लिए अन्तर्यामी शोध करना होगा और 'मैं कौन' इनका निश्चय करने के लिए जिन तत्वों से पिंड-ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ है, उन पर विचार करना होगा। जिन जिन तत्वों का पिंड (शरीर) बना है, उन उन तत्वों की आत्म-तत्व से मिलान करने पर यह साफ दिखाई देगा कि 'मैं' उन तत्वों से अलिप्त हूँ। इस प्रकार आत्म-तत्व का सहज बोध हो जाता है। यही आत्म-निवेदन है। यह दृश्य जगत पंच महाभूत से निर्मित हैं, प्रकृति का खेल है, यह ज्ञान होने पर 'एक मेवा द्वितीय' आत्मा ही शेष रह जाता है। और आत्म-बोध होने पर 'मैं' का लोप हो जाता है। पिंड ब्रह्माण्ड की रचना और तत्व-विचार का शोध करने पर यह सिद्ध होता है कि तत्वों से ही व्यक्ति का निर्माण हुआ है। 'मैं' उन तत्वों का केवल साक्षी हूँ अर्थात उनसे अलग हूँ और अलगपन (साक्षित्व) भी तत्व रूप होने के कारण आत्म प्रभीति में वह भी अशेष हो जाता है। तात्पर्य आदि अन्त में केवल आत्मा ही शेष रहता है, 'मैं' पन नहीं। आत्मा निर्गुण निरंजन एवं अद्वैत है। आत्मा गुणातीत है, वहाँ 'मैं' का अहंकार कहाँ? 'मैं' पन मिथ्या है और परमात्मा ही सत्य है तथा आत्म और परमात्मा का अभेद सम्बन्ध है, इसका रहस्य अनुभवी ज्ञानी ही जान सकते हैं। इसे ही आत्म-निवेदन की संज्ञा दी गयी है। जैसे पंच महाभूतों में आकाश और सब देवताओं में परमेश्वर प्रधान है, उसी प्रकार नव विद्या भक्ति में आत्म-निवेदन भक्ति ही मुख्य

है। आत्म-निवेदन का बोध हुए बिना जन्म मरण की श्रृङ्खला नहीं टूट सकती। इस मुख्य भक्ति से सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। सायुज्य मुक्ति का कल्पांत में भी नाश नहीं होता। अन्य तीन मुक्तियाँ सलोकता समीपता व सरूपता चंचल अर्थात नाशवान है पर तीनों लोक का नाश होने पर भी सागुज्यता मुक्ति का नाश नहीं हो सकता।

दसवां समास

चारों मुक्तियां

अब नवविद्या भक्ति के बाद सृष्टि-उत्पत्ति और चारों मुक्तियों के बारे में विवेचन करेंगे। 'ब्रह्म' यह मूलतः निराकार है पर 'एकोहं बहु-स्याम्' के स्फुरण मात्र से अहंकार का उद्भव हुआ और उससे पंच महा-भूत उत्पन्न हुए। ये पंच महाभूत प्रथम सूक्ष्म और पश्चात स्थूल रूप में प्रकट हुए, जिनका वर्णन हम आठवें दशक में करेंगे। यह अहंकार प्रथम वायु रूप में, बाद में तेज रूप में और फिर आप (जल) रूप में प्रकट हुआ। उस जल आवरण के आधार से शेष ने इस पृथ्वी को धारण किया और फिर इस पृथ्वी पर छप्पन करोड़ जीवों का विस्तार हुआ। पृथ्वी को सप्त सागरों ने घेर लिया। बीच में सुमेरु पर्वत खड़ा है. जिसके आठों दिशाओं में अष्ट दिकपाल स्थित है। पृथ्वी के आधार भूत विशाल सुमेरु पर्वत की चौड़ाई ८४ हजार योजन और गहराई १६ हजार योजन है। ऊचाई की तो सीमा नहीं। उसके चारों ओर लोका-लोक पर्वतों का घेरा है और उसके इस पार हिमालय पर्वत है, जहां पांडवों ने अपना देह-त्याग लिया था। केवल धर्मराज युधिष्ठिर और भगवान श्रीकृष्ण ही उसे पार कर आगे निकल सके थे। उस मार्ग में भयानक सर्प विचरण करते है। हिमालय के इस पार बद्रीकाश्रम है, जहाँ बड़े, बड़े तपस्वी अन्त समय देह त्याग करने जाया करते हैं। उससे कुछ दूरी पर इसी पार बद्री केदार है, जहाँ तक

सब लोग पहुँच पाते हैं। यह सब सुमेरू पर्वत का ही विस्तार है। सुमेरू के मैदानी प्रदेश में तीन विशाल शिखर हैं, जिन पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश सपरिवार विराजते हैं। ब्रह्म-शिखर को सत्य लोक, विष्णु शिखर को वैकुण्ड और शिव-शिखर को कैलाश कहते हैं। सत्य लोक के नीचे अमरावती (इन्द्रपुरी) है, जहां देव गण, गन्धर्व, अष्ट लोकपाल, तैंतीस जाति के देवता निवास करते हैं। इनमें आठ वसु, बारा आदित्य ग्यारह रुद्र, प्रजापति तथा वषट्कार हैं। सप्त स्वर्ग और सप्त पाताल यह सब उसी सुमेरू पर्वत को घेरे हुए हैं। वहां कल्प वृक्ष के वन, काम धेनु के झुण्ड, अमृत के सरोवर एवं चिता मणि और हीरे-पारस की खानि है। वहाँ की सारी भूमि ही सुवर्ण की है। वहाँ सब प्राणी आनन्द मग्न हैं। उस स्वर्ग पुरी अमरावती में अमृतमय भोजन, दिव्य सुगन्ध युक्त सुमन, अष्ट नायिकाओं के सुमधुर गायन की भरमार रहती है। वहां यौवन का नाश नहीं होता, आधि-व्याधियों का नाम नहीं, वृद्धावस्था और मृत्यु का भी भय नहीं। वहां एक से एक बढ़कर वीर, चतुर धीर, उदार और सुन्दर शरीर धारी देवतुल्य नर-रत्न रहते हैं वहाँ सब देवताओं का निवास है। उस स्वर्ग लोक के वैभव का कहाँ तक वर्णन किया जाय।

जिस देवता का भजन-पूजन उसी देवता के स्थान पर निवास, इसे सलोकता मुक्ति कहा जाता है। समीप होना अर्थात समीपता और प्रिय देवता के समान रूप प्राप्त होना यह सरूपता है। स्वर्ग लोक में पुण्य के समाप्त होने पर प्राणि को पुनः मृत्यु लोक में ढकेल दिया जाता है। अतः ये तीनों मुक्तियाँ विनाशी हैं। केवल सायुज्यता मुक्ति अविनाशी एवं शाश्वत है। महाप्रलय में ब्रह्माण्ड डूब जाएगा, तब पृथ्वी, सुमेरु पर्वत, देवता और उनके लोक आदि सब नष्ट हो जायेंगे। ये सब चंचल हैं। निश्चल परब्रह्म मात्र शाश्वत है। उसके साथ तन्मयता अर्थात सायुज्यता ही शाश्वत है। सगुण भक्ति चंचल और निर्गुण भक्ति निश्चल है।

पाँचवां दशक

पहला समास

गुरु-निरूपण

हे पूर्ण काम, परम पुरुष, आत्माराम सद्गुरु तुम्हें नमस्कार है। आपकी महिमा अवर्णनीय है। योगी जनों का निजधाम, शिव का विश्राम स्थल एवम् वेदशास्त्रों को अगम्य जो ब्रह्म है. वह आपकी कृपा से शिष्य को सहज उपलब्ध हो जाता है और वह सांसारिक जंजालों से मुक्त हो जाता है। अब हम गुरु-शिष्य के लक्षण बतायेंगे, उनको मनन कर सुमुक्षु स्वयं मैं शिष्य के गुणों का अङ्गीकार कर सद्गुरु की शरण जायें।

गुरु ब्राह्मण ही होना चाहिए। ब्राह्मणों के लिये विष्णु भगवान् ने अवतार लिया और भृगु ऋषि के लत्ता-प्रहार को भी श्रीवत्स के रूप में हृदय में धारण किया। ब्राह्मण-मुख से निकले हुए मन्त्रों द्वारा शूद्रों के ब्राह्मण होते हैं और धातु पाषाणो की मूर्तियों में देवत्व की प्रतीष्ठा होती है। योगयाग, ब्रत, दान, तीर्थ यात्रा आदि कोई विधान बिना ब्राह्मण के सफल नहीं होते। सच्चे ब्राह्मण साक्षात् वेदो नारायण हैं। उनके आशीर्वाद से मनोरथपूर्ण होते हैं और उनके पूजन से चित्त निर्मल होकर भगवान की ओर आकर्षित होता है।

अब यदि कोई कहे कि यदि केवल ब्राह्मणों के पूजन से ही भगवान का मिलन हो सकता है तो सद्गुरु की क्या आवश्यकता है ? तो उसका उत्तर यह है कि ब्रह्मज्ञान मात्र सद्गुरु के बिना नहीं प्राप्त हो सकता। धर्म-कर्म में ब्राह्मणों की पूज्यता बताई गई है पर ब्रह्म ज्ञान के लिये तो सद्गुरु ही चाहिए। बिना सद्गुरु के सचा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और बिना ज्ञान के जन्म-मरण का बन्धन नहीं कट सकता। बिना ब्रह्म-

ज्ञान के सब कर्म जन्म के लिये कारण होते हैं। अतः इससे छुटकारा पाने के लिये सद्गुरु को ही शरण जाना चाहिये। अनेक व्रत-नियम, जप-तप, यज्ञ-याग, कथा-पुराण श्रवण आदि सभी सत्कर्मों का फल अवश्य मिलता है पर उनके साथ जन्म-मरण लगा ही रहता है। बिना सद्गुरु का आश्रय लिये आप चाहे जितने साधन करते रहें. मोक्ष का लाभ नहीं मिल सकता। बिना ब्रह्म-ज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति नहीं और ब्रह्मज्ञान बिना सद्गुरु की कृपा के सम्भव नहीं। सीधा मार्ग छोड़ देने से जैसे कोई अन्धा गड्ढे में जा गिरता है, ऐसे ही सद्-गुरु का पल्ला न पकड़ते हुए लोग वृथा साधनों के फेर में भटकते रहते हैं। जिस प्रकार आँखों में अंजन लगाने से जमीन में छिपा हुआ धन दिखाई देने लगता है, वैसे ही सद्गुरु के उपदेश से शिष्य के अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। सद्गुरु की कृपा न होने पर जन्म निरर्थक हो जाता है और चित्त की छटपटाहट दूर नहीं होती। सद्गुरु का वरद-हस्त मस्तक पर पड़ते ही ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है और सब दुःखों से निवृत्ति हो जाती है। अब तक जितने महान सन्त-महन्त हो गये हैं, उन सबको ज्ञान-विज्ञान का लाभ सद्गुरु द्वारा ही हुआ हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि ईश्वर के अवतार भी गुरु-सेवा में तत्पर रहे। अखिल सृष्टि के सञ्चालक ब्रह्मा, विष्णु, महेश सद्गुरु की सेवा से ही महान् पद को प्राप्त हो सके हैं। अर्थात् जिन्हें मोक्ष की इच्छा हो, उन्हें सद्गुरु की शरण लेनी ही चाहिए। बिना सद्गुरु के कल्पांत तक भी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। पर हमें यह खूब समझ लेना चाहिये कि सद्गुरु सामान्य गुरु के समान नहीं हुआ करते। जिनके कृपा-कटाक्ष से अवर्णनीय ब्रह्मज्ञान का लाभ हो जाता है, ऐसे सद्गुरु के लक्षण हम आगामी समास में बतायेंगे।

दूसरा समास

गुरु की पहिचान

जो नाना करतब दिखाते हैं, वे भी गुरु कहलाते हैं, पर वे मोक्ष दाता सद्गुरु नहीं हो सकते। करामात से मनोरंजन करने वाले, नजर बन्दी या जादू का खेल करने वाले, अनेक चमत्कारों की बातें बताने वाले, औषधि-प्रयोग या सुवर्ण बनाने की प्रक्रिया बताने वाले, केवल दृष्टिपात द्वारा इष्ट वस्तु की प्राप्ति का लालच दिखाने वाले, साहित्य सङ्गीत आदि सिखाने वाले, पञ्चाक्षरी विद्या या मन्त्र-तन्त्र से सिद्धि का मार्ग बताने वाले, उदर पोषण के अनेक उद्योग सिखाने वाले गुरु अनेक मिलेंगे, पर मोक्ष दाता सद्गुरु इन सबसे अलग होता है। वैसे तो हमारे माता-पिता भी हमारे गुरु ही हैं परन्तु भवसागर से पार उतारने वाला सद्गुरु और ही होता है। यज्ञोपवीत संस्कार के समय गायत्री मन्त्र देने वाले कुलगुरु भी गुरु ही हैं पर वे भी सद्गुरु नहीं कहलाते। अब हम सद्गुरु के लक्षण बतलाते हैं।

जो ब्रह्मज्ञान के उपदेश द्वारा शिष्य का अज्ञान मिटाता है और आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध करता है, वह सद्गुरु है। जो जीव और शिव, भक्त और ईश्वर का भेद दूर कर भक्त का परमेश्वर से संयोग करादे, वही सद्गुरु है। इस संसार रूपी शेर ने जीव रूपी बछड़े को भयभीत कर परमात्मा रूपी गौ से छीन लिया है। अतः उस बछड़े का गौ से मिलाप करा देने वाला ही सद्गुरु है। माया जाल से फँसकर संसार के दुःखों से तत्पर हुए जीवों को शान्ति प्रदान करने वाला सद्गुरु ही है। वासना रूपी महा नदी की बाढ़ में डूबते हुए दीन जनों को सद्गुरु ही बचाते हैं। गर्भवास के दारुण दुःख से तथा नाना विष वासनाओं के शिकार हुए भयभीत जीवों को ज्ञान देकर सद्गुरु ही सन्मार्ग पर लगाते हैं। शब्दार्थों का अचूक विश्लेषण कर उनके सारभूत

परमात्म वस्तु का दर्शन कराने वाले अनाथों के नाथ सद्गुरु ही हैं। जो एक देशीय कल्पना से दीन जीव को तत्काल 'तत्वमसि' इस महावाक्य का रहस्य समझाकर ब्रह्मरूपता प्रदान करते हैं वे ही सद्गुरु हैं। वेदों के अन्तरङ्ग में जो गूढ़ परमामृत ज्ञान है, उसका वचन मात्र से शिष्य को पान कराने वाले सद्गुरु के सिवा और कौन हो सकते हैं? वेदशास्त्र और सन्त दोनों के अनुभव समान हैं और उन अनुभवों की एकरूपता प्राप्त करना यही सद्गुरु स्वरूप है। सद्गुरु सकल सन्देह नष्ट कर स्वयं स्वधर्माचरण किया करते हैं जो शास्त्र वचनों को छोड़कर मनमाना वर्ताव करता है, वह गुरु नहीं बल्कि विषय-लालची भिखारी है। जो गुरु शिष्य को साधन-मार्ग के लिए प्रेरित नहीं कर सकते और उनसे इन्द्रियदमन नहीं करा सकते वे त्याज्य हैं। जो ज्ञान-बोध से अविद्या का उच्छेद कर इन्द्रिय-जय कराता है, वही सद्गुरु है। शिष्यों से धन-प्राप्त कर उनके अङ्कित होने वाले और उनकी खुशामद के कारण उनकी मनचाही बातें बताने वाले आशा के गुलाम गुरु अत्यन्त अधम, चोर और ठग हैं। जिसके पासवि मल ब्रह्मज्ञान है और जिनका बाह्य आचरण भी पवित्र है, ऐसा सद्गुरु ही स्वसुखनिधान ब्रह्मज्ञान की शिष्य के साथ एकता करने में समर्थ हो सकता है। ऊपरी टीमटाम दिखाकर कान में मन्त्र फूँकने के अलावा जिन्हें कोई ज्ञान न हो, ऐसे पामर गुरु स्वयं ही ईश्वर से दूर रहते हैं। गुरु-प्रभीति, शास्त्र-प्रभीति और आत्म-प्रभीति ये तीनों सद्गुरु के समीप एकरूप हो जाती हैं। अतः ऐसे ही सद्गुरु की शरण लेनी चाहिये। जो अद्वैत का निरूपण तो भली भाँति करता हो पर जिसका चित्त विषयासक्त है, ऐसे गुरु से सार्थकता का मार्ग उपलब्ध नहीं होगा। निरूपण-सामर्थ्य तथा वक्तृत्व कला भी है पर जो सिद्ध पुरुषों के समान चमत्कार करने की शक्ति प्राप्त करने के पीछे पड़ा हो ऐसे व्यक्ति को परमात्म-लाभ नहीं हो सकता। भगवत्-प्राप्ति तो केवल उन्हें ही हो सकती है, जिनके मनमें किसी प्रकार की दुराशा या कामना न हो। अनेक ज्ञाता कामनाओं से पीड़ित होकर पागल हो गये हैं और

कामनाओं के चिन्तन में ही मर गये हैं । निष्काम सन्त-महात्मा बहुत कम हैं आत्मस्वरूप का धन सबके पास है पर देह बुद्धि के कारण हम उस आत्म-तत्व को भूल गये हैं । सिद्धि-सामर्थ्य से केवल देहाभिमान बढ़ता है तथा उससे देह बुद्धि और मजबूत होती है । शाश्वत निजानन्द को छोड़कर सामर्थ्य के पीछे दौड़ने वाले लोग मूर्ख हैं । कामना दुःखों का भण्डार है । उसके समान दूसरा दुःख नहीं है । कामना केवल परमेश्वर की ही करना चाहिए । अन्य कामनायें केवल दुःखों का कारण बनती हैं । अथक प्रयत्न करने के बाद सामर्थ्य प्राप्त होने पर भी देह का नाश होते ही सामर्थ्य समाप्त हो जाता है और मनुष्य का असली लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति अर्थात् मोक्ष से वह वञ्चित रह जाता है । सारांश निष्काम एवम् दृढ़ आत्म-बुद्धि सम्पन्न पुरुष ही सद्‌गुरु है और वही भवसागर से पार उतार सकता है । सद्‌गुरु का मुख्य लक्षण यह है कि वह विमल ब्रह्मज्ञान से परिपूर्ण, आत्म-निश्चयी, समाधानी और अखंड-स्वरूपाकार होता है । उसकी वैराग्य-वृत्ति अतितीव्र होती है तथा वह पूर्ण कामना रहित एवं निर्मल स्वधर्माचरणी होता है । नवविद्या भक्ति से बहुतेरों का उद्धार हो जाता है और इसका साधन-मार्ग सद्‌गुरु से प्राप्त होता है । भीतर से ब्रह्मज्ञान और बाहर से निष्ठापूर्वक क्रिया साधन इन दोनों का जहाँ समन्वय होता है. वहाँ भक्तों को शान्ति प्राप्त होती है । जिसमें उपासना का आधार नहीं हैं, ऐसा परमार्थ निराधार है । सत्कर्मों का यदि आचरण न हो तो अनाचार फैलकर प्राणि भ्रष्ट हो जाते हैं । इसलिए ब्रह्मज्ञान, वैराग्य, भजन, स्वधर्माचार, साधन, कथा निरूपण, श्रवण-मनन, नीति-न्याय आदि में कमी न्यूनता का लक्षण है । सद्‌गुरु में यह सब बातें परिपूर्ण होती हैं । सद्‌गुरु अनेक शिष्यों का उद्धार कर्ता होने के कारण उसे सबकी चिन्ता रहती है और शिष्यों के अधिकार के अनुसार उनका मार्ग-दर्शन करने के सभी साधन सद्‌गुरु के पास होते हैं । सदाचार और उपासना को छोड़ परमार्थ की डींग हांकने वाले लोग भ्रष्ट और अभक्त ही है । ऐसे सन्त महंतों का क्या मूल्य है ?

कर्म एवम् उपासना त्यागने पर स्वेच्छाचार का मार्ग खुला हो जाता है।

सब श्रेष्ठ गुणों का सागर सद्गुरु ही है यों तो अनेक प्रकार के गुरु होते हैं। कोई अक्षर-ज्ञान कराने वाला गुरु, कोई मन्त्रदाता गुरु, कोई यन्त्र विद्या सिखाने वाला गुरु कोई तन्त्र-गुरु, कोई मल्ल विद्या अर्थात् व्यायाम सिखाने वाला गुरु, कोई राजगुरु, कोई कुलगुरु, कोई मान्य-गुरु, (जैसे एकलव्य ने द्रोणाचार्य को गुरु मान लिया था) कोई विद्या गुरु, कोई अधम-गुरु (पाप कर्मों के लिए प्रयत्न करने वाला) कोई गुरु (जाति का सरपञ्च) माता गुरु, पिता गुरु, राजा गुरु, देवगुरु, जगद्गुरु (जैसे शङ्कराचार्य) इस प्रकार अनेक गुरु कहलाते हैं पर मोक्षदाता सद्गुरु इन सबसे निराला होता है। जिसमें सद्विद्या के अनन्त गुण हैं और जो शिष्य के प्रति अत्यन्त आत्मीयता रखता है, वही सद्गुरु है। जैसे सद्गुरु का लाभ जिस शिष्य को मिल जाय, उसका ही जीवन सार्थक है और वही इस संसार में धन्य है। प्रत्येक मुमुक्षु एवम् भक्त को ऐसे ही सदाचारी, पूर्णज्ञानी और लोक मङ्गल के लिये सेवारत सद्गुरु का आश्रय लेना चाहिए।

तीसरा समास

आदर्श शिष्य निरूपण

पिछले समास से सद्गुरु के लक्षणों का विपाद वर्णन किया गया है। अब सद्-शिष्य के लक्षण सुनिये। यदि सद्-शिष्य को सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती, तो उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है, उसी प्रकार यदि सद्गुरु को सत्-शिष्य नहीं मिलता तो उसको भी बड़ी निराशा होती है। भूमि अच्छी उपजाऊ हो पर उसमें बीज घुना हुआ हो तो अथवा बीज उत्तम हो पर उसे पथरीली भूमि पर बोया गया हो तो दोनों ही प्रयत्न असफल ही सिद्ध होंगे। इसी प्रकार शिष्य अधिकारी एवम् सूयोग्य होने पर भी यदि गुरु केवल मंत्र-तन्त्रों से बहकाने वाला मिले

या गुरु पूर्ण ज्ञान देने में समर्थ हो पर उसे शिष्य अनाधिकारी अर्थात अबोध मिले, तब भी उससे कोई लाभ नहीं। सद्‌गुरु और सद्-शिष्य के संयोग के बिना परमार्थ का आनन्द नहीं मिल सकता। अब यदि भूमि उत्तम हो और बीज भी बढ़िया हो फिर भी वर्षा की आवश्यकता तो होती ही है। इसी प्रकार गुरु-शिष्य सुयोग्य होने पर भी अध्यात्म निरूपण के बिना उनका कोई लाभ नहीं हो सकता।

उत्तम भूमि, उत्तम बीज और उत्तम वर्षा के संयोग से अन्न की उपज होने पर भी उसकी यदि निगरानी नहीं की गयी तो क्या लाभ? इसी भाँति सद्‌गुरु, सद् शिष्य और अध्यात्म-श्रवण का संयोग होने पर भी सिद्ध-वस्तु की प्राप्ति होने तक साधनों को करते ही रहना चाहिए। अपितु साध्य प्राप्त होने पर अर्थात् आत्म-ज्ञान होने पर भी साधन-त्याग नही करना चाहिए। एक वार भोजन कर लेने पर भी सामग्री का त्याग नहीं करना चाहिए। वैसे ही सद्‌शिष्य, सद्‌गुरु, सत्‌शास्त्र विचार और सायनाभ्यास इन सबका समुचय होने पर ही भव सागर से पार होन का उपाय अवगत होता है। परब्रह्म परमात्मा की उपासना, स्वधर्माचरण, सदाचार, सत्कर्म, सत्सङ्ग और नित्य उपासना इन सबके सम्मिलित साधनों द्वारा ही शुद्ध ज्ञान का उदय होता है। अन्यथा समाज में पाखण्ड फैलता है। शिष्य की अपेक्षा गुरु की जिम्मेदारी अधिक है। सद्‌गुरु शिष्य को अनेक समयोचित उपदेशों द्वारा सुयोग्य बना देते हैं अब सद्‌शिष्य कैसा होना चाहिये, उसमें क्या-क्या गुण होने चाहिए इसका विवेचन करेंगे।

सत् शिष्य का मुख्य लक्षण यह है कि वह अनन्य होना चाहिये अर्थात उसकी सद्‌गुरु के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये। उसमें सद् विद्या के सब गुण होने चाहिये। वह काया-वाचा-मन से निर्मल, विरक्त और अनुतापी हो। वह मर्यादाशील, साधनाभ्यासी, दक्ष और परब्रह्म का परम आकांक्षी होना चाहिये। वह प्रज्ञावान, प्रेमी, विवेकी, दृढ़ निश्चयी और तपोनिष्ठ अर्थात् शारीरिक कष्टों की परवाह न करने

वाला होना चाहिए। वह विलासी न हो अपितु साँसारिक तापों से विदग्ध हो। जो साँसारिक दुःखों के त्रिविधा तापों से पीड़ित होगा, वही परमार्थ का अधिकारी होता है, क्योंकि उसे फिर सासारिक वस्तुओं से वैराग्य हो जाता है। वैराग्य के बिना अनन्य शरणागति नहीं होती और न ज्ञान ही दृढ़ होता है। संसार में अविश्वास और सन्देह से ग्रस्त होकर गुरु का परित्याग करने वाले अनेक लोग दिखाई देते हैं। अतएव सद्गुरु के प्रति पूर्ण विश्वास यह सद्शिष्य का प्रथम और प्रमुख लक्षण है। सद्गुरु और उसके वचनों पर पूर्ण विश्वास होने पर ही शिष्य सामुज्य मुक्ति अर्थात् मोक्ष का अधिकारी होकर साँसारिक दुःखों से छुटकारा पा सकता है जो शिष्य सद्गुरु या परब्रह्म परमात्मा से अन्य देवी-देवताओं को श्रेष्ठ समझता है, वह शिष्य अभागी है क्योंकि ऐसा होने पर वह गुरु की अनन्य सेवा छोड़कर अन्य देवता की सामर्थ्य पर भरोसा करेगा। वस्तुतः सद्गुरु का स्वरूप और सामर्थ्य शाश्वत है और अन्य देवता कल्पान्त में माया में विलीन हो जाते हैं, अतः उनकी सामर्थ्य अशाश्वत है। इसलिये सभी देवताओं से सद्गुरु की सामर्थ्य अधिक है। अन्य सब देवी-देवता मनुष्य के कल्पित हैं और मन्त्रों द्वारा ही उन्हें प्रतिष्ठित किया गया है पर सद्गुरु का स्वरूप तो निर्विकल्प है। इसलिये सद्गुरु देवताओं से करोड़ गुना श्रेष्ठ है। उनके स्वरूप का वेदशास्त्र भी वर्णन नहीं कर सकते। जिस पर सद्गुयु की कृपा है, उस पर किसी का जोर नहीं चल सकता। सद्शिष्य अपने स्वरूप ज्ञान के प्रकाश में संसार के सारे वैभवों को तुच्छ समझता है। सद्गुरु की कृपा सामर्थ्य और स्वानुभव के उल्लास से सद्शिष्य के ऐश्वर्य में अपार वृद्धि होती है। यहाँ तक कि वह सद्गुरु स्वरूप हो जाता है। ऐसे सद्शिष्य परम दुर्लभ हैं, जो अनुताप से चित्त शुद्धि के पश्चात सद्गुरु पर अनन्य और अखण्ड श्रद्धा रखते हुए आत्म-लाभ कर सामुज्ग मुक्ति को प्राप्त हो गये, वरना ऊपरी रङ्ग-ढङ्ग देख कर लोकाचार के लिए शरण जाने वाले शिष्य लाखों हैं। ऐसे सर्वसाधारण शिण्यों के विषय बलवान होते

है और वे उनकी परमार्थ की इच्छा को शीघ्र दबा देते हैं। परिणाम स्वरूप ऐसे लोग पुनः सांसारिक कार्यों में मग्न होकर एक दिन इस असार संसार से विदा हो जाते हैं। जिनके मन में अनेक विषय-वासना भरी रहती हैं, उन्हें परमार्थ की चर्चा तो केवल कोतुहल और विनोद का विषय ही प्रतीत होता है। जैसे शूकरों को गन्धादि का लेपन किया जाय या भैंसों के शरीर पर चंदन पोता जाय अथवा कचरा-घर में (घूरे में) लोटने वाले गधों पर सुगन्धी द्रव्यों का छिड़काव किया जाय तो वह निरर्थक है, वैसे ही विषया सक्त व्यक्तियों के लिए ब्रह्म-ज्ञान का बोध निरुपयोगी होता है। विषयों का सदा चिंतन करने वाले विषय लोलुपों को परमार्थ, सत्संग, ईश्वर आदि की बातें नहीं सुहातीं। जैसे कुत्ते को खीर नहीं हजम होती, वैसे ही विषया सक्त पुरुष को सद्ज्ञान का लाभ नहीं मिल सकता।

जैसे कोई कुटिल कौआ हँस की पंक्ति में बैठकर अपने को हँस मानने लगता है, वैसे ही विषयी पुरुष सज्जनों के सत्संग में बैठकर सज्जन होने का स्वांग रचता है, पर उसकी वासना विषय रूपी मल में ही लगी रहती है। जिस प्रकार पत्नी को साथ में रखते हुए कोई व्यक्ति सन्यासी बनने की बात करता हो, वैसे ही चित्त में विषयों की इच्छा रखते हुए वह ब्रह्मज्ञान की बातें बघारता है। इससे क्या लाभ ? मल-मूत्र में रहने वाले ये कीड़े, नरक-भोगने वाले ये पढ़त-मूर्ख, इन्हें अद्वैत आनन्द की क्या कल्पना ? विषयों का दास कभी परमात्मा का भक्त नहीं हो सकता। शाब्दिक वेदांत और अध्यात्म की व्यर्थ बड़-बड़ करने वाले व्यक्ति को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। गुरु का उपदेश लेने पर शिष्य यदि ऐसा विषय लंपट, कुमार्ग गामी, दुष्ट और पापी हो गया तो उसके पाप वज्रलेप (अमिट) हो जाते हैं। परन्तु पूर्ण पश्चांताप होकर यदि वह पुनः सद्गुरु की शरण जाता है. तो गुरु-कृपा से उसका उद्धार हो सकता है। जो सद्गुरु से

स्वामी से द्रोह करता है, वह जब तक सूर्य चन्द्र है, तब तक नरक का भागी होता है।

जिसे केवल क्षणिक वैराग्य हो जाता है, ऐसा व्यक्ति सद्गुरु की शरण में जाने पर भी ज्ञान का पात्र नहीं बन सकता, क्योंकि ज्ञान उसके पास टिक नहीं सकता। जो मन में श्रद्धा न रखते हुए केवल दिखावे के लिए गुरु मंत्र लेता है, वह पाखंडी है। वह अनेक गुरु बना लेता है और पाखंड भरी बातें सीख लेता है। वह कभी भाव-विह्वल होकर रोने, गिरने-पड़ने या नाचने का अभिनय करता है कभी वैराग्य की लम्बी चौड़ी बातें हाँकता है और कभी ज्ञाता बनकर अभिमान से फूल जाता है। इस प्रकार वह पागलों की भाँति अनेक स्वांग रचता है। उसके मन में काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ, मोह, अभिमान, कपट तथा घृणा आदि विकार भरे रहते हैं। उसके चित्त में अपने शरीर के प्रति अति आसक्ति, अनाचार, विषय-लोलुपता और सांसारिक प्रपंचों की दिन रात चिंता लगी रहती है। वह दीर्घ सूत्री कृतज्ञ, कुकर्मी, कुतर्की, क्रोधी, निष्ठुर, आलसी, अविवेकी, अधीर अविश्वासी होता है। उसके हृदय में आशा, ममता, तृष्णा, कल्पना, कुबुद्धि, दुर्वासना, मूर्खता आदि दुर्गुणों का डेरा रहता है। वह सदा औरों की निंदा और तिरस्कार करता है। उसमें तितीक्षा नहीं होती। उसमें भक्ति, विरक्ति और शान्ति नहीं होती और न सद्भाव, नम्रता या इन्दिय-दमन कृपा, दया, तृप्ति आदि सद्गुणों का उसमें लवलेश होता है। हह शरीर श्रम से जी चुराता है, दान-धर्म में बड़ा कंजूस होता है। वह सदा दूसरों के दोष ही देखा करता है, झूठ बोलता है और छल-कपट से औरों को फँसाता है। उसके आचार-विचारों में साम्य नहीं होता। ऐसा व्यक्ति कभी दूसरों के दुःख को नहीं समझता बल्कि दूसरों के दुःख में सुख का अनुभव करता है। ऐसे लोग भला ईश्वर को कैसे प्रसन्न कर सकते हैं? उनकी आंखें तब ही खुलेंगी, जब वे बूढ़ापे में अशक्त और असहाय होकर सगे सम्बन्धियों द्वारा उपेक्षित और अपमानित होंगे।

जिन लोगों में उपरोक्त दोष-दुर्गुण नहीं होते, वे ही सद्शिष्य कहलाते हैं। संसार में वास्तविक सुख नहीं है। जो पढ़े लिखे मूर्ख सांसारिक सुखों में ही लिप्त रहते हैं, वे अभागे हैं। सांसारिक और घर गृहस्थी के कामों को अलिप्त भाव से करते रहने में कोई बुराई नहीं है परमार्थ का भी ध्यान रखना चाहिए। परमार्थ से विमुख रहना कदापि उचित नहीं।

चौथा समास

मंत्र-विवेंचन

अब उपदेश या मंत्रों के लक्षण सुनिये। नाना मंत्रों के उपदेश देने वाले गुरु अनेक मिलते हैं। कोई प्रणव मंत्र ऊँकार का जप कराते हैं। कोई शिव, भवानी, विष्णु, गणेश, सूर्य आदि देवताओं के मंत्र देते हैं। जितने देवता उतने उनके अलग अलग मंत्र हैं। कुछ मंत्र सरल कुछ कठिन और वेद मंत्रौं के समान दुरुह हैं। कुछ मंत्रों से भूत प्रेत बाधा दूर होती है, कुछ रोग निवारक हैं और कुछ सर्प बिच्छू आदि के जहर को उतारने वाले हैं। ऐसे मंत्र कानों में बताये जाते हैं और उनकी सिद्धि के लिए जप, ध्यान, पूजा आदि विधान करने पड़ते हैं। कोई खेचरी, भूचरी, चाचरी तथा अगोचरी मुद्राओं का साधन बतलाते हैं और कोई अनेक प्रकार के आसनों एवं प्राणायामों का प्रयोग बतलाता है। कोई विलक्षण दृश्य दिखलाता है तो कोई अनहद नाद सुनने की शिक्षा देता है। कोई शरीर-ज्ञान की बात करता है तो कोई कर्म मार्ग उपसाना मार्ग को श्रेष्ठ बतलाता है। कोई अष्टाँग योग का तो कोई तप-साधना, कोई अजपाजप कोई सगुण उपासना और कोई निर्गुण का ध्यान, करने का उपदेश देता है। कोई वशीकरण, जारण-मारण मंत्र सिखाता है। इस प्रकार उपदेश, मंत्र और साधनों के अनेक प्रकार हैं परन्तु शुद्ध ज्ञान के बिना ये सब निरर्थक हैं। स्वयं भगवान कहते है—

नाना शास्त्रं पठे ल्लोको नाना दैवत पूजनम् ।
आत्म-ज्ञानं विना पार्थ सर्व कर्म निरर्थकम् ।।
शैव शाक्तागमाद्या ये अन्ये च बहवो मताः ।
अपभ्रंश समासोऽपि जीवानां भ्रांत चेतसाम् ।।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिद मुत्तमम् ।।

ज्ञान अर्थात आत्म-ज्ञान के समान पवित्र वस्तु अन्य कोई नहीं है। अतः सर्व प्रथम आत्म-ज्ञान का उपदेश ही प्रधान है। आत्म-ज्ञान की महिमा चतुर्मुख ब्रह्मा देव को भी अगम्य है। फिर सामान्य जीवात्मा प्राणी उसे क्या जान सकता है? समस्त तीर्थों में स्नान और दान का जो फल है, उससे ब्रह्म ज्ञान का फल करोड़ गुना अधिक है। कहा है—

पृथिव्यां यानि तीर्थं निस्नान दानेषु यत्फलम् ।
तत्फलं कोटि गुणितं ब्रह्म ज्ञान समोपमम् ।।

पांचवां समास

बहुधा ज्ञान निरूपण

अब नाना विध ज्ञान के लक्षण बतालायेंगे। जब तक विशुद्ध आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक अन्य सब ज्ञान व्यर्थ है। बिना आत्म-ज्ञान के अन्तरात्मा की छटपटाहट शान्त नहीं हो सकती। अतः अब हम जो वास्तविक ज्ञान नहीं हैं, उनका वर्णन करेंगे।

भूत, भविष्य, वर्तमान की बातें बताना भी ज्ञान कहलाता है, पर वह ज्ञान नहीं है। बहुतेरी विद्याएँ, संगीत, साहित्य, वेद-शास्त्र आदि का अध्ययन, वैदिक कर्मों का संगोपांग पांडित्य भी ज्ञान नहीं है। अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धों का ज्ञान, अनेक दीक्षाओं का ज्ञान, स्त्री-परीक्षा, पुरुष-परीक्षा, अश्व-गज परीक्षा, पशु-पक्षी परीक्षा, भूत-परीक्षा, वाहन-परीक्षा, अस्त्र-शस्त्र परीक्षा, धातु सिक्के, रत्न, पाषाण, काष्ठ, भूमि,

जल, रस, बीजांकुर, फल पुष्प आदि की परीक्षा का ज्ञान भी सच्चा ज्ञान नहीं है। दुःखों की, रोगों की, रोग-चिह्नों की, मंत्र-यंत्रों की, क्षेत्रों की, गृहों की और पात्रों की परीक्षा करना भी ज्ञान नहीं है। ज्योतिष, समय ज्ञान, तर्क शास्त्र, कला कौशल, शब्द वेध, नजरबन्दी, जादूगरी, नाना भाषाओं का ज्ञान यह सब भी ज्ञान नहीं है।

स्वर परीक्षा, वर्ण-परीक्षा, लेखन-परीक्षा, नानामत परीक्षा, शास्त्र-ज्ञान की परीक्षा, वृत्ति-परीक्षा, रूप-रस-गंध परीक्षा, चतुर्विध सृष्टि की परीक्षा, नाना पदार्थों की परीक्षा, शीघ्र कवित्व यह सब कुछ भी सच्चा ज्ञान नहीं है। गीत-नृत्य आदि कला, सभाचातुर्य, वाग-विलास, मोहिनी-शक्ति, हास्य-विनोद कला, चित्र कला, एवं चौदह विद्याएँ तथा चौंसठ कलाएँ भी ज्ञान के लक्षण नहीं हैं। सकल कला प्रवीण और सकल विद्यापारंगत होना यह कुशलता के लक्षण हैं पर ज्ञान के नहीं। इनमें ज्ञान का भ्रम होता है पर यह सच्चा ज्ञान नहीं है। जहाँ प्रकृति और उसके सारे कार्यों का लोप हो जाता है, वही सच्चा ज्ञान है। दूसरों के मन के विचार जान लेना भी आत्म-ज्ञान का लक्षण नहीं है। यों तो अनेक प्रकार की असाधारण विद्यायें संसार में उपलब्ध हैं पर सायुज्यता प्रदान करने वाला मोक्षदाता ज्ञान कुछ और ही होता है। ऐसा अखण्ड आनन्द और समाधान प्रदान करने वाला शुद्ध ज्ञान कैसा होता है, इसका वर्णन अगले समास में करेंगे।

छठवां समास

ज्ञान के लक्षण

अब शुद्ध ज्ञान का लक्षण सुनिये। शुद्ध ज्ञान अर्थात आत्म ज्ञान। अपने आपको जानना, इसका नाम शुद्ध ज्ञान है। घट घटवासी परब्रह्म परमात्मा का अनुभव प्राप्त करना अर्थात नित्य-अनित्य का विचार करते हुए अनित्य का त्याग कर नित्य शाश्वत स्वरूप को पहिचानना

इसका नाम ज्ञान है। जहाँ दृश्य प्रकृति का लोप हो जाता है। पंच भौतिक वस्तुओं की सत्ता नहीं रहती और द्वैत का सम्पूर्ण नाश हो जाता है, वही ज्ञान है, जहाँ मन बुद्धि का प्रवेश नहीं, जहाँ तर्क कुंठित हो जाता है और जो परावाणी के उस पार है, उसको ज्ञान कहते हैं। जहाँ दृश्य वस्तु का मान ही नहीं होता, जहाँ 'मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ' यह भावना भी अज्ञान का लक्षण माना जाता है, ऐसे शुद्ध स्वरूप को ही 'ज्ञान' यह संज्ञा है। कोई सर्व साक्षीणी तुर्यावस्था को ही ज्ञान कहते हैं। दृश्य पदार्थों का ज्ञान पदार्थ-विज्ञान और शुद्ध स्वरूप का ज्ञान स्वरूप ज्ञान है। जहाँ किसी चीज का अस्तित्व ही नहीं है, वहां 'सर्व' और 'साक्षित्व' की बात ही क्या ? अतएव तुर्यावस्था को भी शुद्ध ज्ञान नहीं कहा जा सकता। अर्थात शुद्ध ज्ञान साक्षित्व से भी भिन्न है। शुद्ध तो एक स्वरूप मात्र है अर्थात शुद्ध ज्ञान याने स्वरूप ज्ञान। 'तत्वमसि' इस महावाक्य का उपदेश उचित है, पर साधक को उस पर भी विचार करना चाहिए उसका जप करने को कहीं नहीं कहा गया है। उस महा-वाक्य का अर्थ मन में रखने पर हम स्वयं भी पदार्थ ही सिद्ध होते हैं। अतएव उसका जप करना वृथा है। महावाक्य का विवरण ही ज्ञान का मुख्य लक्षण है और उसके लक्ष्यांश का निरीक्षण करने पर हम परब्रह्म ही प्रतीत होते हैं। स्वस्वरूप के ज्ञान से अधिक शुद्ध ज्ञान और कौन सा होगा ? अनादि स्वयं सिद्ध वस्तु जो परब्रह्म वह हम ही हैं, यह ज्ञान परम दुर्लभ है। जहाँ से इस सारे संसार का उद्‌भव हुआ और जहाँ इसका लय हुआ, उसका ज्ञान होते ही सब बंधन टूट जाते हैं और सब मत-मताँतरों से मन निर्विकार हो जाता है। अति सूक्ष्म विचार करने पर ज्ञात होगा कि सब मत-मतान्तरों में सैद्धाँतिक एकता है। इस चराचर सृष्टि का मूल विमल ब्रह्म है. जिसे वेदांत में ज्ञान कहा गया है। अपनी मूल स्थिति का भान होते ही अज्ञान का सहज लोप हो जाता है और स्वस्वरूप ब्रह्म ज्ञान की अनुभूति हो जाती है अपने आपको पूर्णतः पहचान लेने से सर्वज्ञता सहज हो जाती है। और एक

देशीय दृष्टि का नाश हो जाता है। 'मैं कौन हूँ' इसका विचार करते करते यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि मैं देहातीत शुद्ध आत्मा हूं। प्राचीन काल में व्यास, वसिष्ठ, नारद, जनक, वामदेव, बाल्मिकि, अत्रि, शुक-शौनक, सनकादिक, आदिनाथ, मच्छिद्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि बड़े बड़े सिद्ध ऋषि-मुनि ज्ञान प्राप्त कर धन्य हो गये। वेद, शास्त्र, गुरु प्रचीति और आत्मानुभव सबका यही सार है। सब साधनों का फल और ज्ञान का अन्तिम स्वरूप यही आत्मज्ञान है। इसको प्राप्त कर लेने पर सारे संशयों की निवृत्ति हो जाती है।

अब मैं आपको अपने स्वामी के उन वचनों को सुनाऊँगा जिनसे मुझे अत्यन्त शान्ति मिली है। आप लोग सावधान होकर सुनें। शिष्य ने जब गुरुदेव के चरण कमलों में सिर नवाकर पूछा कि मुझे ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दीजिए, तब सद्गुरु ने कहना आरम्भ किया—

'हे शिष्य, तुम स्वयं ब्रह्म-स्वरूप हो, इसमें जरा भी संदेह न रखो। नवविद्या भक्ति में मुख्य भक्ति आत्म-निवेदन है। यह सारे पंच महाभूत कल्पांत में क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। और जिनसे उनका उद्गम हुआ है, वे प्रकृति-पुरुष भी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। विवेक द्वारा सारे दृश्यों का लोप होने पर 'अहं' का भी नाश हो जाता है क्यों कि वह भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है। सृष्टि अर्थात दृश्य वस्तुओं का मिथ्यात्व सिद्ध होने पर ब्रह्म की एकरूपता स्वयं सिद्ध है। फिर पिंड और ब्रह्माण्ड का अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है। ज्ञानाग्नि की ज्वाला में दृश्य वस्तुओं का कूड़ा भस्म हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म की तदाकार वृत्ति में भिन्नता नहीं रह पाती। शुद्ध स्वरूप ही गुरुपद है। उससे अनन्य होकर अपना अलग आस्तित्व भूल जाओ। सद्गुरु-भजन से यह भाव दृढ़ हो जाना ही आत्मज्ञान है। फिर कहाँ संसार और कहाँ उसका बंधन ? 'अहं ब्रह्मास्मि' का सच्चा अनुभव और अर्थ यही है।

सद्गुरु आगे कहते हैं—'मैं ब्रह्म हूँ इसका अनुभव होने पर जीवन सफल हो जाता है और मैं देह हूँ ऐसा मानने पर उसका पतन होता है। देहाभिमानी जीव आत्मघात की है। उसे जन्म-मरण

के भोग बार बार भोगने पड़ते हैं। हे शिष्य, तुम स्थूल, सूक्ष्य, कारण और महाकारण इन चारों प्रकार के देहों से अलग हो। जन्म-कर्म से भी तुम अलिप्त हो और सब चर-अचर सृष्टि के अन्तर्बाह्य तुम्हें भरे हुए है। वस्तुत: कोई बंधन में नहीं है। जीव भ्रांति के कारण अपने आपको बद्ध मानता है। तुम एकान्त में बैठकर स्वस्वरूप का ध्यान करोगे तो परमार्थ-मार्ग स्व दृढ़यं होगा। अखण्ड श्रवण मनन से समाधान प्राप्त होता है और ब्रह्मज्ञान पूर्ण होने पर न चाहने पर भी वैराग्य हो जाता है। यदि तुम 'मैं अब तो मुक्त हूँ' ऐसा मानकर इन्द्रियों को यदि स्वच्छन्द छोड़ दोगे, तो तुम्हारी छटपटाहट दूर नहीं होगी। क्षुद्र विषयों के संग करने पर कभी आत्म-समाधान नहीं होगा। हम जिस वस्तु का ध्यान करेंगे,वही प्राप्त होगी यह अटल नियम है। अत: हम अविद्या का ध्यान करना छोड़ ब्रह्म विद्या का संग करें तो ब्रह्म प्राप्ति अवश्य होगी। सन्निपात ज्वर में मनुष्य अनेक भयानक दृश्य देखकर घबड़ाने लगता है पर औषधि लेने के बाद उसे शान्ति मिलती है। उसी प्रकार मिथ्या सृष्टि अज्ञान ज्वर के कारण सत्य प्रतीत होती है पर ज्ञान रूपी औषधि का प्रयोग होने पर सृष्टि के दृश्य दिखाई ही नहीं देते।

मिथ्या स्वप्न जागृत होने पर जैसे मनुष्य निर्भय हो जाता है। वैसे ही मिथ्या सृष्टि को ज्ञान दृष्टि से अवलोकन करने पर उसकी व्यर्थता और असत्यता का भान होकर मनुष्य निर्भय हो जाता है। अत: हमें अविद्या अर्थात अज्ञान रूपी निद्रा से श्रवण मनन चिंतन आदि साधनों द्वारा जागृत होकर ज्ञान का प्रकाश ग्रहण करना चाहिए। अब हम जागृति के लक्षण बतायेंगे—

जागृत पुरुष चित्त से ही विषयों के प्रति विरक्त रहता है। जो विरक्त नहीं हो पाया है, उसे अहंकार छोड़कर साधन-मार्ग में लग जाना चाहिए। जो विरक्त भी नहीं और साधन भी नहीं करना चाहता, वह स्वयं को सिद्ध भले मानता हो पर यह उसके लिए बड़ा घातक बंधन है। जो सिद्ध के रूप में बद्ध है, उससे तो मुमुक्षु साधक

भक्त ही श्रेष्ठ है। ऐसा भक्त ज्ञान का अधिकारी होता है। अब हम इसी प्रसंग में बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध इन सबको पहचान कराने के लिए उनके अलग अलग लक्षण बतायेंगे आगामी समास में उनको सावधान होकर सुनें।

सातवां समास

बद्ध कौन

इस सृष्टि में अनन्त जीव वास करते हैं। उनके बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध ऐसे चार वर्ण हैं। अब इन चारों के क्रमशः लक्षण बतायेंगे। प्रथम बद्ध के लक्षण सुनिये। अन्धे व्यक्ति को अन्धेरे में चलने पर जैसे सब दिशायें शून्य प्रतीत होती है, वैसी दशा बद्ध की होती है। भक्त, ज्ञानी, तपस्वी, योगी, विरक्त, सन्यासी आदि उसकी आंखों से दिखाई ही नहीं देते। कर्म-अकर्म, धर्म-अधर्म भी उसे नहीं सूझते। और सुगम परमार्थ मार्ग का भी वह अवलोकन नहीं कर सकता। सत्-शास्त्र, सत्संग, सज्जन एवं सन्मार्ग इनमें से कुछ भी उसे दृष्टि गोचर नहीं होता। बद्ध व्यक्ति सार-असार का विचार, स्वधर्म का आचार, दान-पुण्य, परोपकार आदि ज्ञान नहीं होता। उसमें मन में प्राणियों के प्रति दया नहीं होती। दूसरों को सुखी करने के लिए मीठे वचन बोलना भी उसे नहीं आता। न उसमें भक्ति होती है, न ज्ञान। उसमें वैराग्य, ध्यान, मोक्ष और उसके साधन आदि का सर्वथा अभाव होता है। उसे ईश्वर की कल्पना भी नहीं। संतों का विवेक, माया का खेल, परमार्थ की महिमा आदि किसी बात का ज्ञान नहीं होता। जिसने कभी अध्यात्म-निरूपण सुना तक नहीं, जो अपने आपको पहचानता नहीं, जिसे जीव के आदि-अन्त का ज्ञान नहीं, वही बद्ध है। बद्ध व्यक्ति तत्व की बात, सांसारिक बन्धन, मुक्ति का अर्थ या ब्रह्म वस्तु के बारे में कुछ भी नहीं जानता। वह शास्त्रों का अर्थ भी नहीं समझ पाता और

न वह अपने सच्चे कल्याण की बात ही सोचता है। बद्ध का मुख्य लक्षण यही है कि उसे अपनी आत्मा का ही ज्ञान नहीं होता। वह तीर्थ, व्रत, दान-पुण्य, आदि में विश्वास नहीं रखता। उसमें दया, करुणा, मैत्री, क्षमा शान्ति आदि गुणों का वास नहीं होता। जिसमें अनेक कुलक्षण अर्थात् दुर्गुण हों वही बद्ध हैं। उसे अनेक प्रकार के दुष्कर्म करने में ही आनन्द आता है। उसमें काम, क्रोध, लोभ मद, दर्प आदि भरे रहते हैं और वह अत्यन्त कठोर, भ्रष्ट, अनाचारी, स्वार्थी, कुटिल, मूर्ख वाचाल, पाखण्डी, कृपण आदि दोष-दुर्गुणों से भरा होता है। साँसारिक प्रपञ्चों का आदर और परमार्थ का अनादर करने वाला यह मूढ़ बद्ध देह बुद्धि में ही हमेशा बद्ध रहा करता है। उसे सदा कामिनी और काँचन अर्थात पैसा और पत्नी का ही ध्यान रहना है। सांसारिक बातों के अतिरिक्त अन्य उसे कुछ नहीं सुहाता। उसके लिये वही कथा-वार्ता है। वह अनेक प्रकार की चिन्ताओं, वासनाओं, उद्वेगों और दुःखों में डूबा रहता है और परमार्थ को बिलकुल भूला रहता है। वह एक पल भर के लिए भी परमार्थ की बात नहीं सोचता और सदा द्रव्य और दारा-पैसा और परिवार की चिन्ता में ही घुला करता है। उसके लिये वही तीर्थ, यात्रा दान, पुण्य, भक्ति, कथा, मन्त्र, पूजा, जप, ध्यान आदि सब कुछ होते हैं। वह सोते-जागते रात-दिन विषय वासनाओं का ही चिन्तन किया करता है और अन्य किसी साधन-मार्ग के लिये उसे क्षण भर का भी अवकाश नहीं रहता। पर सद्गुरु कृपा से बद्ध के ये सारे अशुभ लक्षण बदलकर वह व्यक्ति सच्चा मुमुक्षु भी बन जाता है। अब हम अगले समास में मुमुक्षु के लक्षण बतायेंगे, जो अध्यात्म-मार्ग का इच्छुक और वैराग्य से अभिभूत होता है। मुमुक्षु ही आत्म-तत्व एवम् ब्रह्मज्ञान का अधिकारी हो सकता है। उसके लक्षण अब श्रोतागण सावधान होकर सुनें।

आठवां समास

मुमुक्षु कौन ?

संसार का अभिमान बढ़ने से मनुष्य में अनेक हीन लक्षण आ जाते हैं। ऐसे व्यक्ति का मुँह देखने में भी दोष लगता है। ऐसे मूढ़ प्राणी को अपने मूर्खतापूर्ण कार्यों का कुछ दिनों बाद पश्चात्ताप होने लगता है। तब वह साँसारिक तापों से पीड़ित होकर अध्यात्म की चर्चा सुनने में दिलचस्पी लेने लगता है। और सांसारिक झमेलों से उद्विग्न होने लगता है। उसका मन विषयों से ऊब जाता है और कहने लगता है कि घर गृहस्थी के मेरे मनसूबे पूरे हो गये। सोचने लगता है कि यहाँ का सारा सामान यहीं पड़ा रह जायगा और मेरा सारा परिश्रम यों ही व्यर्थ जायगा। इसलिये अपना शेष समय सार्थक करने का उपाय करना चाहिये। इस प्रकार के विचार आने पर उसे बड़ी ग्लानि होती है और उसे अपने पुराने सारे दुष्कृत्य याद आते हैं। उसे यम यातनाओं का ध्यान आता है और उनसे भयभीत होकर वह अपने पापों का स्मरण करता है। पुण्य कर्मों के अभाव में वह भवसागर से कैसे पार हो सकेगा, इसकी उसे चिन्ता होती है। वह सोचता है मैंने आज तक साधु-सन्तों की सदा निन्दा ही की है। अतिथि-अभ्यागतों का कभी आदर नहीं किया। मन में सदा दुर्भाव ही भरे रहे। काम, क्रोध, मद, मत्सर से ही सदा लिप्त रहा। परोपकार के अवसरों से लाभ नहीं उठाया। भगवान का भजन-पूजन भी कभी नहीं किया और निरर्थक पाप कर्मों में ही लगा रहा। अब क्या उपाय करूँ ताकि भगवत् कृपा प्राप्त हो सके। आज तक मैंने कुछ देवताओं का पूजन किया भी हो तो वह केवल लोकाचार और दम्भ का ही लक्षण था। केवल उदर-पोषण के लिये ही मैंने भगवान के नाम का उपयोग किया। अहङ्कार के आड़ में ही निरभिमान और नम्रता का ढोंग रचता रहा। ध्यान-धारणा में भी मेरा

अन्तरङ्ग हेतु धनोपार्जन का ही रहा। मैं छल, कपट से अनेक लोगों को ठगता रहा। पेट के खातिर सन्तों का उपहास किया। सत्य का उच्छेद कर असत्य का प्रतिपादन किया इत्यादि बातों का स्मरण कर उस बद्ध मूढ़ प्राणी को अपने पूर्व कर्मों के लिये घोर पश्चाताप होता है और सत्सङ्ग और कथा-पुराणों के श्रवण-मनन से उसके विचार शुद्ध होकर मनमें प्रखर वैराग्य प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति ही मुमुक्षु कहलाता है।

जिसे सांसारिक कार्यों से विराग हो गया हो और जिसमें सत्सङ्ग एवम् पुण्य-मार्ग की इच्छा उत्पन्न हो गयी हो, वही मुमुक्षु है। जिसे अपने सारे अवगुणों का भान हो गया हो और जो वैराग्य के कारण उन्हें जानकर उनकी स्वय ही निन्दा करता हो, वह मुमुक्षु है। जो सत्सङ्ग, सन्मार्ग और जन्म को सार्थक करने के उद्देश्य से तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करता हो, शम दम आदि साधनों का अवलम्ब करता हो. परमार्थ-ग्रंथों का सदा स्वाध्याय करता हो। मनन-चिन्तन में समय का सदुपयोग करता हो और यह सब करते रहने पर भी पूर्ण समाधान के लिए सन्तों की शरण लेता हो, वह सच्चा मुमुक्षु है। अपने देह, कुल, धन, प्रतिष्ठा आदि का सार अभिमान छोड़ कर जो अनन्य भाव से सन्तों की शरणागति में लीन होता है, उसे ही मुमुक्षु समझना चाहिए। सारांश साँसारिक उहापोह और गृहस्थी का स्वार्थ छोड़ कर जिसने परमार्थ को ही अपना उद्दिष्ट माना है, ऐसे और उसके लिये सदा सत्सङ्ग में प्रवृत्त रहता है, उसे ही मुमुक्षु मानना चाहिए।

नवां समास

उपासक-लक्षण

पिछले समास में संक्षेप में मुमुक्षु के लक्षण बतलाये गये हैं। अब साधक के लक्षण सावधान होकर सुनिये। जो अपने अवगुण त्याग कर सत्सङ्ग करने लगता है, जो सन्तों की शरण जाता है और जिसे सन्त-जन आश्वासन देते हैं। सन्त-सद्गुरु के उपदेशों से आत्म-ज्ञान का लाभ प्राप्त कर सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है और दृढ़ता से साधन मार्ग में लग जाता है। जिसे अध्यातम-चर्चा में रुचि होने लगती है। अद्वैत के निरूपण में उसकी प्रवृत्ति होती है और जो उसके तथ्य को समझने का प्रयत्न करता है, वह साधक है। ऐसा साधक अपने सन्देहों के समाधान के लिये सत्सङ्ग करता है तथा अपने स्वयं के, शास्त्र वचनों के और गुरु के अनुभवों में सामंजस्य करने की चेष्टा करता है। वह अपने विवेक से देह बुद्धि का नियन्त्रण करता है और आत्म बुद्धि को सुदृढ़ करता है। वह दृश्य संसार, प्रकृति और माया का विचार त्याग कर आत्म ज्ञान में प्रवृत्त होता है और उसी से विचारपूर्वक अपने को सन्तुष्ट करता है। ऐसा साधक द्वैत बुद्धि को त्यागकर अद्वैत की साधना में लीन हो जाता है। वह आत्म-ज्ञान का सम्बल पकड़ कर विवेक की सहायता से भवसागर से पार उतर जाता है। वह सन्त-महात्माओं के शुभ लक्षणों को धारण करता है और परम ब्रह्म के स्वरूप की प्राप्ति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहता है। वह असत् कर्म छोड़कर सत्कर्मों में प्रवृत्त होता है और अपनी स्वरूप स्थिति अर्थात् आत्म-ज्ञान को दृढ़ करता है। वह प्रतिदिन अपने अवगुणों को छोड़ता हुआ सद्गुणों का विकास करता है और आत्म-स्वरूप में ही सदा रममाण रहता है। वह अपने संकल्प बल के कारण दृश्य जगत् अर्थात माया को देखते हुए भी उससे सदा अलिप्त रहता है और सदा ईश्वर के स्वरूप में प्रविष्ठ होने

का प्रयत्न करता है। वह शरीर की उपेक्षा कर हृदय में आत्म स्थिति का चिन्तन करता है। जो अलभ्य आत्म-वस्तु सर्वसाधारण लोगों को अपरिचित हैं और जो कल्पनातीत है, उसे ही वह मनमें धारण करता है। जो वस्तु अनिर्वचनीय और अलक्ष्य है, उसे साधक अपनी साधना से प्राप्त कर लेता है। जो वस्तु साधनों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती और जो स्पष्ट दृष्टिगोचर भी नहीं होती, उसको साधक अपने अन्त.करण में अनुभव करने लगता है। जहाँ मन की भी पहुँच नहीं है, जहाँ तर्क भी पंगु हो जाता है, ऐसी अचित्य आत्मस्थिति का साधक को अनुभव होता है। वह स्वानुभव से अनिर्वचनीय वस्तु को न केवल जान ही लेता है अपितु स्वयं ही वह वस्तु बन जाता है। वह अपने आप में योगीजनों के लक्षण प्रस्थापित करता है और संसार की माया से अलिप्त रह कर अपने उद्‌देश्य-सिद्धि में सफल हो जाता है। साधक संसार की उपाधियों से दूर रहकर असाध्य वस्तु को भी साधनों द्वारा साध्य कर लेता है और स्वस्वरूप में स्थिर रहता है। नित्य और अनित्य का भेद जानने वाली शक्ति का नाम विवेक है। ऐसे विवेक द्वारा देहादिक अनित्य वस्तुओं का त्यागकर साधक नित्य स्वरूप परब्रह्म में लवलीन होकर रहता है और स्थूल देह से यद्यपि सर्वसाधारण लोगों को वह सामान्य दिखाई देता है पर वास्तव में उसके अन्त: स्वरूप की कोई कल्पना नहीं कर सकता।

ऐसा साधक अहङ्कार का त्याग कर स्वयं अपने आपको तुरियावस्था से उस पार उन्मनी अवस्था में स्थित कर अखण्ड-आनन्द का उपभोग करता है। वह द्वैत भाव का सम्बन्ध विच्छेद कर इस देह में विदेह-स्थिति का अनुभव करती है। वह सर्वसन्देहों से मुक्त होकर अखण्ड-स्वरूप में निमग्न हो जाता है। उसे पञ्च महाभूतों का विस्तार स्वप्नवत जान पड़ता है और परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का उसे निश्चय हो जाता है। जैसे स्वप्न का भय जागृतावस्था में दूर हो जाता है, वैसे ही आत्म-जागृति से उसका संसार का भय नष्ठ हो जाता है। अन्य लोगों

को सृष्टि प्रत्यक्ष दिखाई देती है, इसलिये सत्य मालूम होती है पर साधक को स्वानुभव से वह मिथ्या प्रतीत होती है। इस प्रकार की अन्तर-स्थिति होने पर वह बाह्याचरण में पूर्ण निःस्पृह हो जाता है और साँसारिक प्रपञ्चों से अलिप्त रहता है। सच्चा साधक काम-क्रोध आदि षड्‌रिपुओं एवं अन्य सभी विकारों से अछूता रहता है। कलाभिमान और लोक-लाज को छोड़कर वैराग्य-बल से वह परमार्थ में अग्रसर होता है। भेद, अहङ्कार, सङ्कल्प-विकल्प, स्वार्थ, अनर्थ-द्वेष, कुतर्क, क्रोध, नास्तिकता आदि परमार्थ के शत्रुओं का वह पूरा सफाया कर देता है। प्रवृत्ति का त्याग कर, मित्रों का सङ्ग छोड़ वह निवृत्ति-पंथ से ज्ञानयोग की साधना करता है। माया-ममता, दुराशा उसके पास तक नहीं फटकने पाती। वह अभ्यास व वैराग्य से आन्तरिक शुद्धि कर बाहर से सज्जनों का सत्सङ्ग करता है और अपनी साधना में नित्य तत्पर रहता है। अर्थात् वह सभी वासनाओं एवम् प्रवृत्तियों का मनः पूर्वक त्याग कर स्वस्वरूप में ही रममाण रहता है। वही साधक है। जो इस प्रकार सब अवगुणों को छोड़कर आत्मानन्द में लीन रहता है, वही सच्चा साधक कहलाता है। यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि क्या केवल सर्वसङ्ग परित्यागी निस्पृह ही साधक हो सकता है और सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त पुरुष साधक नहीं हो सकता? इस शङ्का का समाधान अगले समास में करेंगे। श्रोतागण सावधान होकर सुनें।

दसवाँ समास

सिद्ध के गुण

पिछले समास में श्रोताओं द्वारा यह प्रश्न किया गया था कि क्या सांसारिक कार्यों में लगा हुआ पुरुष विना उनके त्याग किए साधक नहीं हो सकता? अब यहाँ इस प्रश्न पर विचार करना है। यदि सांसारिक कार्यों को करते हुए कोई गृहस्थ भी चाहे तो साधक बन

सकता है पर उसे कुमार्ग और कुप्रवृत्तियों का त्याग कर सन्मार्ग और सत्प्रवृत्तियों को अपनाना पड़ेगा। बिना कुविचारों का त्याग किए सुविचार नहीं आ सकते और कुबुद्धि अर्थात कुविचारों तथा बुरे मार्ग का त्याग ही सांसारिक मनुष्य के त्याग हैं। जब कुविचारों और दुर्वासनाओं का त्याग किया जाता है, तभी परमार्थ मार्ग प्रशस्त हो सकता है। इस प्रकार का सूक्ष्म आंतरिक त्याग गृहस्थ और विरक्त दोनों के लिए आवश्यक है पर निस्पृह और विरक्त के लिए तो बाह्य वस्तुओं एवं विषयों का त्याग नितान्त आवश्यक है। गृहस्थों में भी कुछ मर्यादा तक बाह्य त्याग भी अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना नित्य नियम एवं सद्ग्रन्थों का श्रवण नहीं किया जा सकता। अर्थात यह सिद्ध हुआ कि बिना बाह्य विषयों के त्याग के कोई भी सच्चा साधक नहीं हो सकता।

अस्तु, अब इस समास में सिद्धों के विशेष लक्षण बतलायेंगे। जिनसे मनुष्य बंधन में जकडा जाता है अर्थात बद्ध होता है, उन अवगुणों का परित्याग करने पर वह मुमुक्ष बन जाता है और मुमुक्षु के लक्षणों को पार कर साधक आगे बढ़ जाता है और अन्ततः साधक की संदेह वृत्ति क्रमशः निवृत्त होकर वह जब निस्संदेह हो जाता है, तब उसे सिद्ध कहते हैं। संदेह-रहित शुद्ध ज्ञान, निश्चल वस्तुरूपता यह सिद्ध पुरुष के मुख्य लक्षण हैं। जो निस्संदेह ज्ञान से परिपूर्ण है, वही सिद्ध है कर्म-मार्ग सदेहों से भरपूर रहता है, साधन-मार्ग में भी संदेहों का सामना होता है पर सिद्ध हमेशा निस्संदेह रहता है। संदेहावस्था सर्वथा असत्य, संशय ग्रस्त ज्ञान झूठा, सदेह पूर्ण वैराग्य, भजन, कर्म काण्ड व्रत, तीर्थ, भक्ति, ज्ञान, कर्म, विद्या-व्युत्पत्ति, प्रीति, मोक्ष, आदि सारा घटाटोप व्यर्थ है। संदेहजनित भाषण, प्रवचन आदि भी व्यर्थ हैं क्योंकि उनसे किसी का पूर्ण समाधान नहीं हो पाता, अपितु वक्ता का ही उपहास होता है। अतः निस्संदेहता और समाधान सिद्ध पुरुष के मुख्य लक्षण हैं। जिसे संदेह हो वह संत, पंडित और बहुश्रुत भी

बेकार है। ये सब व्यर्थ ही संदेह के प्रवाह में पड़े रहते हैं। बिना निश्चय के जो भी बात कही जाये, सब व्यर्थ है। वह केवल व्यर्थ की वाचालता ही है। संशय में समाधान के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता। अतएव सन्देह-रहित ज्ञान और निश्चय सम्बन्धी समाधान ही सिद्ध पुरुष के लक्षण हैं।

तब श्रोता पूछते हैं कि निश्चय कैसा किया जाय और निश्चय के लक्षण क्या हैं? इसका उत्तर यह है कि परब्रह्म परमात्मा के सच्चे स्वरूप को जान लेना और अन्य देवी-देवताओं के फेर में न पड़ना ही निश्चय कहलाता है। जिस परमात्मा ने सृष्टि में सब चर और अचर वस्तुओं का निर्माण किया, उसी 'एक मेवा द्वितीय' शुद्ध परब्रह्म को विवेक-बुद्धि द्वारा पहचानना चाहिए। उसे सारे असत्य पदार्थों को छोड़ सत्य को ग्रहण करना चाहिए। उसे ईश्वर के साथ साथ आत्म-परीक्षण भी करना चाहिए कि वास्तव में मैं कौन हूँ? उसे सर्व संग-परित्याग करते हुए ब्रह्म स्वरूप होकर विचरना चाहिए। सिद्ध पुरुष को सब बंधनों को तोड़कर मोक्ष-प्राप्ति का अथक प्रयत्न करना चाहिए। उसे अष्टधा प्रकृति अर्थात पूर्व-पक्ष की सिद्धान्त के साथ तुलना करते हुए त्रिगुण और पंचमहाभूतों से भिन्न परमात्मा को पहचान कर स्वयं में उसकी प्रतीति करनी चाहिए। देहाभिमान के कारण मनुष्य के मन में अनेक संशय उत्पन्न हुआ करते हैं। अतः आत्मा का ही चिंतन करना चाहिए। आत्म ज्ञान स्वयं सिद्ध है। संशय रूपी मेघों का पटल दूर होते ही निश्चिय-बुद्धि का विकास होता है। 'अहमात्मा' का महामंत्र कभी न भूलें। संशय-निवृत्ति के लिए सिद्ध पुरुष को सत्संग का लाभ लेते रहना चाहिए। सिद्ध पुरुष देहातीत और निस्संदेह होता है अतएव उसके लक्षणों का क्या वर्णन करें?

जो संदेह-रहित और देहातीत है, उसके क्या लक्षण बतलाये जाँय। लक्षण वस्तु या गुण के होते हैं परन्तु सिद्ध तो गुणातीत अर्थात निर्गुण (ब्रह्म) ही हुआ करता है। निर्गुण ब्रह्म के समान होना ही सिद्ध पुरुषों

का लक्षण है। फिर भी ज्ञान-दशक में सिद्धों के सब लक्षण विस्तार से बतला ही दिये गये हैं। अलक्ष्य, अनिवर्चनीय सिद्ध वस्तु ही सिद्ध पुरुष का स्वरूप है। अब इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं। निरूपण में जो कुछ त्रुटियां रह गयी हों, उन्हें श्रोतागण क्षमा करें। अब आगे के दशक में अध्यात्म-निरुपण को प्रारम्भ करेंगे। उसे सावधान होकर सुनें।

छठवां दशक

पहला समास

देव-शोधन

अब इस दशक से अध्यात्म का निरूपण किया जायगा। अतः श्रोतागण पूर्ण सावधान होकर सुनें। यदि हम किसी नगर या देश में रहना चाहते हों तो उस स्थान के स्वामी की भेंट करना उचित है। अन्यथा हमारी प्रतिष्ठा को केवल धक्का ही नहीं लगेगा अपितु हमारा अपमान भी हो सकता है। यदि हम स्वामी से भेंट न करें तो उनके अधीनस्थ कर्मचारी हमें बेगार में पकड़ लेंगे या फिर चोरी का अभियोग लगायेंगे। प्रभू से साक्षात्कार न होने पर सारा संसार तुच्छ प्रतीत होगा और अनेक संकटों का सामना करना पड़ेगा। नरपति, गजपति एवं भूपति इन सबसे श्रेष्ठ सम्राट होता है। इन सबका निर्माता ब्रह्म देव सबसे बड़ा और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों का निर्माता परमेश्वर इन सबसे श्रेष्ठ है। अतः उस परमेश्वर का हमें हर संभव उपाय से परिचय कर लेना चाहिए। यदि हमने उस परब्रह्म परमात्मा को नहीं पहचाना तो हमारा यम-यातनाओं से छुटकारा नहीं हो सकता। जिसने जन्मदाता विश्वनाथ प्रभु को नहीं जाना वह पतित है। इसलिए प्रभु का परिचय प्राप्त कर जन्म सफल करना चाहिए और इसके लिए

सतों का सत्संग करना अतीव आवश्यक है। अब हम संत को कैसे पहचानें यह प्रश्न खड़ा होता है। जिसने प्रभु को पा लिया वही संत है। जो शाश्वत और अशाश्वत का निर्णय कर शाश्वत परब्रह्म को पहचानता है, वही संत है। जो संसार में रहकर भी सांसारिक लोगों से अनभिज्ञ रहता है और जिसके अन्तर में आत्मज्ञान जागृत है अर्थात जिसे निर्गुण परमात्मा का परिचय है, वही संत परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है और इसके अतिरिक्त जो कुछ ज्ञान है, वह सब अज्ञान ही है। उदर पोषण के लिए प्राप्त की हुई विद्या ज्ञान नहीं है। यह पेट भरने की विद्या अन्त समय में काम नहीं देगी। सर्वव्यापक परमात्म-वस्तु की तत्काल प्राप्ति जिससे हो सके, वही ज्ञान है। यह वस्तु-ज्ञान जिसके पास है, वे ही संत हैं और ऐसे ही संतों का समागम करना चाहिए ताकि ईश्वर प्राप्ति होकर समाधान मिल सके। अन्य दिखाऊ संतो के पास जाने से क्या लाभ ? अज्ञानी के साथ अज्ञानी की भेंट होने मे ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? दरिद्र के पास जाने से धन-लाभ कैसे होगा ? यदि रोगी के पास दूसरा रोगी जावे,तो उसे आरोग्य-लाभ कदापि नहीं हो सकता। और यदि निर्बल के पास निर्बल जाए तो उसे क्या सहायता मिल सकती है ? जैसे भिखारी के पास जाने से भीख नहीं मिल सकती, दीक्षा हीन से दीक्षा नहीं मिल सकती, कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का प्रकाश नहीं मिल सकता, मूर्ख के पास जाने से बुद्धि का विकास नहीं हो सकता और बद्ध पुरुष के पास बद्ध व्यक्ति के जाने से वह मुक्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार नामधारी ज्ञान शून्य सन्तों के पास जाने से हमारा कल्याण नहीं हो सकता। इसलिये हमें अपने पथ-प्रदर्शन के लिये सुयोग्य ज्ञाता सन्त का ही शोध करना चाहिए। जो स्वयं ज्ञाता न हो वह दूसरे को ज्ञान-मार्ग कैसे बतला सकता है। अतएव पूर्णज्ञानी, निस्पृह, आत्मलीन एवम् विवेकी सन्तों का ही अनुग्रह प्राप्त कर हमें सार-असार बातों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। तभी

हम इस संसार के अनेक कष्टों और आपदाओं से छुटकारा पाकर भव-सागर को पार करते हुए सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा का सानिध्य अर्थात मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरा समास

ब्रह्म-पावन

अब उस सत्सङ्ग के उपदेश को सुनिये, जिससे सायुज्य मुक्ति प्राप्त हो सकती है। अनेक मत-मतान्तरों को निरीक्षण-परीक्षण करने से कोई लाभ नहीं है। जिस उपदेश में परमातम,ज्ञान न हो वह व्यर्थ ही है। ऐसा ज्ञान बिना बीज के भूसे के समान है। भूसे से अन्न या छाछ से मक्खन नहीं निकल सकता अथवा चावल के धोवन में दूध का स्वाद नहीं आ सकता। पेड़ों की छाल खाने या चूसने से भी पेट नहीं भर सकता और न नारियल की गिरी छोड़कर छिलका ही भोजन हो सकता है। इसी भाँति जिसमें ब्रह्मज्ञान न हो ऐसा उपदेश बेकार है।

अब हम निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करेंगे। श्रोतागण स्थिर होकर सुनें। यह सारा संसार पञ्च महाभूतों का खेल है पर यह खेल सदा बना नहीं रहेगा। इस संसार के आदि और अन्त में वही निर्गुण ब्रह्म है और वही एकमात्र शाश्वत परमातम तत्व है। पञ्च महाभूत सब नाशवन्त हैं। अतः उन्हें परमात्मा कैसे कहा जा सकता है? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश सबके बाहर और भीतर वही परमात्मा व्याप्त है। ये पञ्च महाभूत तो नष्ट हो जाते हैं पाप आत्मा अमर है। नामरूप केवल भ्रम मात्र है। नाम-रूप से परे जो परब्रह्म परमात्मा है उसे अनुभव से ही जाना जा सकता है। पञ्च महाभूत और तीन गुणों से अष्ठधा प्रवृति अर्थात इस दृश्य संसार की उत्पत्ति हुई है। वेद एवम् श्रुतियों में कहा गया है। कि ये सब दृश्य एक दिन नष्ट होने वाले हैं।

ज्ञानी इस तथ्य को समझते हैं कि यह संसार मिथ्या है और केवल निर्गुण ब्रह्म ही सत्य एवं शाश्वत है। वह परम-तत्व न शस्त्र से कट सकता है न अग्नि से जल सकता है। वह न जल में गल सकता है और न वायु में उड़ सकता है। वह सदा ज्यों का त्यों बना रहता है। यद्यपि वह हमारी इन चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता परन्तु वह अति सूक्ष्म तम रूप से सर्वत्र विद्यमान है। हमारी चर्म दृष्टि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु का ही अस्तित्व मानती है और अदृश्य वस्तु को वह गुह्य अर्थात रहस्य पूर्ण मानती है।

वस्तव में जो प्रकट दिखाई देती है, वही वस्तु असार है और जो गुह्य है, वही सार है। यह रहस्य सद्गुरु द्वारा ही भली भांति समझा जा सकता है। जो बात हमें न आवे, उसे विवेक बुद्धि से समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। जो गुह्य वस्तु दिखाई न दे, उसे भी अन्तर दृष्टि विवेक दृष्टि से देखना चाहिए। असाध्य एवं गुप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए सतत साधन करते रहना चाहिए और जो कठिन प्रतीत हो, उसके लिए नित्य अभ्यास करना चाहिए। यदि साधना की तीव्र इच्छा हो तो उसके लिए अध्यात्म चर्चा को सुनना एवं मनन करना आवश्यक है। परब्रह्म परमात्मा पृथ्वी, जल, तेज, वायु या आकाश से अभिन्न एवं रंग रूप आदि से अव्यक्त है। हमने तो प्रत्येक गाँव के अलग अलग देवता बना रखे हैं। जब हमें परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में निश्चय हो जाय और उसके निर्गुण निराकार होने का पूर्ण विश्वास हो जाय, तब स्वयं अपने आपमें उसका साक्षात्कार करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि आत्मा शरीर को अपना अङ्ग मानती है, तो वह अज्ञान है। शरीर आत्मा से अलग स्थूल वस्तु मात्र है। मन भी आत्मा से भिन्न है। शरीर तो केवल पंच तत्वों का पुतला है। उन तत्वों को अलग करने से जो बनता है, वह आत्मा है। जिसे हम 'मैं' कहते हैं वह तो शरीर है, जो अन्त में नष्ट होकर पंचतत्वों में विलीन हो जाता है। इस विनाशी शरीर में रहने वाला आत्मा ही

केवल अविनाशी है। उस अविनाशी आत्मा का जन्म और मृत्यु कहाँ ? वह पाप-पुण्य से भी मुक्त है। वह जीवात्मा केवल देह बुद्धि के कारण अपने को बंधा हुआ मानता है। यदि विवेक बुद्धि से उसका बन्धन काट दिया जाय तो वह देहातीत होकर मोक्ष-पद को प्राप्त कर सकता है। यही जीवन की सार्थकता है।

जैसा जागृत होने पर स्वप्न मिट जाता है, वैसे ही विवेक बुद्धि द्वारा देखने पर यह दृश्य जगत भी अदृश्य हो जाता है। अपने स्वस्वरूप का अनुसंधान करना ही प्राणी मात्र का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि उसी से उसका उद्धार हो सकता है। इसके लिए हमें प्रथम गुरु-जनों से अध्यात्म-सम्बन्धी विचार गम्भीरता पूर्वक सुनना चाहिए और सद्गुरु की मनसा वाचा कर्मणा तत्परता से सेवा करनी चाहिए। सद्गुरु की कृपा मात्र से आत्म-बोध हो जाता है और आत्म-बोध होने पर यह प्रकट हो ही जाता है कि वह परब्रह्म निर्मल, अलिप्त एवं शाश्वत है। और 'मैं' भी स्वयं वैसा ही हूँ। इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान से जीव स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और वह अपने शरीर को प्रसन्नता पूर्वक प्रारब्ध के भरोसे छोड़ देता है। इसी को अध्यात्म-ज्ञान या आत्म-ज्ञान कहते हैं। इसी सद्-ज्ञान से मनुष्य को समाधान और परम-शान्ति का लाभ होता है। इसी ज्ञान के द्वारा वह पुरुष परब्रह्म से अभिन्न भक्ति में उसी में विलीन हो जाता हैं। वह बिलकुल निर्द्वंद्व और निश्चित बन जाता है। अब जो कुछ होना हो, वह होता रहे और जो कुछ जाना हो, जाता रहे। उसे इसकी जरा भी परवाह नहीं होती। उसके मन से जन्म-मरण का भय चला जाता है। इस प्रकार संसार के सारे प्रपंचों से मुक्त होकर वह ईश्वर में एक रूप हो जाता है। यह सब सत्सङ्ग की महिमा है।

तीसरा समास

माया उद्भव-निरूपण

निर्गुण आत्मा आकाश के समान निर्मल, निश्चल और सर्वव्यापी है। वह आकाश से महान महान (बृहत् अर्थात ब्रह्म) और सूक्ष्म है। यह ब्रह्मस्वरूप आत्मा न आँखों से दिखाई दे सकता है और न उसका मान ही होता है। आत्मा जन्म-मरण एवं आवागमन से मुक्त है। वह न कभी भंग होता है, न नष्ट होता है। वह सदा सर्वथा सन्मुख निष्कलंक पूर्ण और सर्व व्यापी है। ब्रह्म अविनाश व निर्गुण है तथा माया नाशवान और सगुण है इन दोनों का मिलाप हुआ है पर जैसे राजहंस दूध और पानी अलग अलग कर लेती है, उसी भाँति ज्ञानी जन नित्य-विवेक द्वारा जड़, मिश्र और पंचभूतों में व्याप्त आत्मा को निर्लेप और निराला अनुभव करते हैं। जैसे कोई गन्ने का रस लेकर उसकी छोई फेंक देता है, वैसे ही हमें इस जगत से जगदीश को प्राप्त कर पंचभौतिक और त्रिगुणात्मक वस्तुओं को त्याग देना चाहिए। लोग पूछते हैं कि आत्म स्थित निर्गुण ब्रह्म से माया की उत्पत्ति कैसे हुई? इसका उत्तर यह है कि जैसे आकाश में वायु की लहर आती है, उसी भाँति वायु से तेज (अग्नि) तेज से भाप (जल) भाप से पृथ्वी और पृथ्वी से असंख्य प्राणी उत्पन्न हुए। इन सबके आदि अन्त में ब्रह्म व्यप्त है, इसे न भूलें। जो जो प्राणी या पदार्थ उत्पन्न होता है उसका नाश भी हो जाता है परब्रह्म ज्यों का त्यों वना रहता है। जंसे घट के पहले भी आकाश रहता है। घट के होने पर उसमें भी आकाश रहता है और घट के फूटने पर भी आकाश रहता है, उसी प्रकार चर-अचर संसार के रहने वा न रहने से ब्रह्ममें कोई अन्तर नहीं आता। वह अचल है और ज्यों का त्यों बना रहता है ज्ञाता पुरुष उसी को स्वीकार करते हैं। यह देह पं-तत्वों की पोटली है। अतः ज्ञानी लोग इन पंचतत्वों से अपने को अलिप्त और भिन्न

मानकर ब्रह्म स्वरूप में लीन रहने हैं। अपने आपकी पहचान इसी का नाम है। इसी को आत्म-लाभ कहते हैं। अपना मन छोड़कार ब्रह्म से अभिन्न तथा एक रस होना ही आत्म-निवेदन का मर्म है। पंचतत्वों की पोटली है। अतः ज्ञानी लोग इन पंचतत्वों से अपने को अलिप्त और भिन्न मानकर ब्रह्म स्वरूप में लीन रहते हैं। अपने आपकी पहचान इसी का नाम है। इसी को आत्म-लाभ कहते हैं। अपना मन छोड़कर ब्रह्म से अभिन्न तथा एक रस होना ही आत्म-निवेदन का मर्म है। पंच तत्वों का निराकरण होने पर मैं-तू का भ्रम दूर हो जाता है। फिर 'मैं' का अस्तित्व ही नहीं रहता और मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसा अनुभव होता है पर यह बिना सद्गुरु की कृपा के नहीं हो सकता। यही अनन्य भक्ति है और यही अनन्यता सायुज्य मुक्ति है। पंच तत्वों से जकड़ा हुआ प्राणी 'कोऽहं' अर्थात 'मैं कौन ?' कहता है पर विवेक-ज्ञान होने पर वही 'सोऽहं' अर्थात वह निर्गुण ब्रह्म मैं ही हूँ, ऐसा कहने लगता है और अन्ततः निर्गुण ब्रह्म से प्राणी अनन्य समरस होने पर 'अहं-सोहं' दोनों को भूल आता है। फिर केवल शाश्वत ब्रह्म ही शेष रहता है और उससे अभिन्न यह देही होकर भी देहातीत होने का अनुभव करने लगता है। यह सारासार विवेक भली भाँति ज्ञात हो इसलिए मैं कौन, ब्रह्म कौन और उससे अभिन्नता कैसे प्राप्त हो सकती है, इसकी चर्चा यहाँ बार बार की गयी है, ताकि श्रोताओं का संदेह दूर होकर वे वस्तु स्थिति को यथार्थ रूप में समझ सकें। इस चर्चा में एक ही बात को बार-बार दुहराया गया। इसके लिये श्रोतागण क्षमा करें।

चौथा समास

ब्रह्म-निरूपण

मृत युग अथवा सतयुग के सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्ष, त्रेता युग के बारह लाख छियानवे हजार वर्ष, द्वापर के आठ लाख चौंसठ

हजार वर्ष और कलियुग के चार लाख बत्तीस हजार वर्ष होते हैं। इस प्रकार चारों युगों के तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं इन चारों युगों के वर्षों को मिलाकर ब्रह्मा का एक दिन होता है और ऐसे हजार ब्रह्मा होने पर विष्णु की एक घटिका (घड़ी) होती है और हजार विष्णु के चले जाने पर शिवजी का एक पल होता है तथा हजार महेश्वरों के पश्चात आदि माया का आधा पल होता है। इस प्रकार की काल-गणना शास्त्रों में बताई गयी है।

चतुर्युगसहस्राणि दिनमेकं पितामहम्।
पितामहसहस्राणि विष्णोर्घटिकमेव च ॥
विष्णोरेकसहस्राणि पलमेकं महेश्वरम।
महेश्वरसहस्राणि शक्तिरर्द्धपलं भवेत् ॥

ऐसी आदि शक्तियाँ भी अनन्त हुआ करती है और ब्रह्माण्ड भी अनन्त हैं। इन सबका अनन्त काल तक आवागमन चलता है, फिर भी परब्रह्म की स्थिति अखण्ड बनी रहती है। उसे 'स्थिति' भी कैसे कहा जाय पर शब्दों द्वारा व्यक्त करने के लिये ऐसा कहा गया है। वेद, श्रुति आदि ने भी उस परमात्म स्वरूप का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अन्त में 'नेति नेति' (अर्थात इतनी ही नहीं,इतना ही नहीं) कहकर चुप्पी साध ली है।

यह कालावधि मूल ग्रन्थ की रचना के समय की—अनुवादक अब तक कलियुग के ४७६० वर्ष बीत चुके हैं। अभी कलिकाल के हजारों साल शेष हैं पर अभी से वर्ण संकट होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इस चराचर सृष्टि में एक से एक बढ़कर देवगण हैं। कोई विष्णु को बड़ा मानता है तो कोई शिव को और कोई शक्ति को। लोग अपनी अपनी उपासना के अनुसार ऐसा कहा करते है परन्तु 'य दृष्टं तन्नष्टम्' इस श्रुति वचन के अनुसार जो जो दिखाई देता है, सब नाशवान है और यह सारा चर-अचर संसार केवल माया का खेल है। एक आत्मा मात्र सर्व व्यापी और अविनाशी है, ऐसा साधुसंतों का निश्चय होता है।

चित्र में चित्रित सेना में कौन छोटा और कौन बड़ा ? स्वप्न में देखे गये राजा और रङ्क जागृत होने पर एक समान ही मिथ्या हैं। यह तथ्य अज्ञानियों को ज्ञात नहीं होता पर ज्ञानी जन इसे भली भाँति जानते हैं। जो जन्म लेता है वह अपने को बड़ा मानते हुए ही मरता है। वास्तव में जिन्हें आत्मज्ञान हो चुका है, वे ही बड़े हैं। और सबसे महान है एकमात्र परब्रह्म परमात्मा। उसमें सब देवी-देवताओं का समावेश हो जाता है। वह परमात्मा निर्गुण और निराकार है। वहाँ उत्पत्ति स्थिति और लय का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। देश-स्थान-काल, नाम-रूप यह सब अनुमान और कल्पना मात्र है। ये सब विचार ब्रह्म-प्रलय के समय समाप्त हो जाते हैं। ब्रह्मप्रलय अर्थात ब्रह्म-साक्षात्कार के समय जो अशेष कल्पनाओं का लय होता है, वह। ब्रह्म का नाम-रूप नहीं और उसे प्रलय आदि का भी भय नहीं। ब्रह्म सदा सर्वदा नित्य और एकरसात्मक है। जो इस ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं और लोक-मङ्गल के लिए—लोकोद्धार के लिये उसका यथार्थ निरूपण करते हैं, वे ही सच्चे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हैं।

पांचवां समास

माया ब्रह्म निरूपण

अब श्रोतागण माया और ब्रह्म के बारे में जानना चाहते हैं। अतः उनका विवेचन सुनिए। ब्रह्म निर्गुण निराकार है, जब कि माया सगुण और साकार है। ब्रह्म अनन्त है तो माया सान्त है अर्थात माया का अन्त है। ब्रह्म निर्मल, निश्चल और निरूपाधिक है जब कि माया चञ्चल, चपल और उपाधिरूप है। माया दृश्य मान और भासमान है, जब कि ब्रह्म ऐसा नहीं। माया जन्म-मृत्यु और विकार से ग्रसित है पर ब्रह्म सदा निर्विकारी और जन्म-मरण से रहित है। माया सब कुछ करती धरती

है, ब्रह्म सदा निर्लेप और निष्काम है। धारणा शक्ति से माया का आकलन होता है ब्रह्म का नहीं। माया को नाम रूप है, ब्रह्म को कुछ भी नहीं। माया पञ्च भौतिक और अनेक, माया शाश्वत और एक। माया लघु और आसर, ब्रह्म महान तथा सार रूप। इस प्रकार माया और ब्रह्म में बहुत भिन्नता है। साधु सन्त सज्जन इस भेद को पहचान कर जैसे पानी छोड़ कर दूध पीता है वैसे ही माया का परदा हटाकर ब्रह्म का अनुभव-पान करते हैं।

ब्रह्म आकाश के समान निर्मल है, जब कि माया पृथ्वी के समान मलिन है। ब्रह्म सूक्ष्म है, माया स्थूल। ब्रह्म अप्रत्यक्ष अर्थात नेत्रादि इन्द्रियों के लिए अगोचर है, जब कि माया प्रत्यक्ष अर्थात इन्द्रिय गोचर है। ब्रह्म सदारूप है और माया विषम अर्थात नानारूप वाली है। ब्रह्म अलक्ष्य, अमाक्षी जब कि माया लक्ष्य और साक्षी (देखने वाली है) माया में जीव-शिव, बन्ध-मोक्ष, पाप-पुण्य, प्रवृत्ति-निवृत्ति इस प्रकार दो पक्ष हुआ करते है, ब्रह्म में कोई पक्ष नहीं। माया खण्डन-मण्डन रूपी पूर्व पक्ष है तो ब्रह्म केवल सिद्धान्तरूप है। ब्रह्म निरन्तर परिपूर्ण और माया अपूर्व ब्रह्म सत्य नित्य सनातन 'है, माया असत और अनित्य। ब्रह्म के लिए मौन ही पर्याप्त है, माया के बारे में जितना कहा जाय उतना कम है। अनेक रूप, असंख्य रङ्ग और कल्पनाएं सब माया का खेल है। तात्पर्य चर-अचर सारी सृष्टि में जो कुछ हलचल और प्रवृत्तियाँ चलती है, सब माया ही है। ब्रह्म इन सब में अन्तर्बाध्य परिपूर्ण रहता है। जैसे आकाश जल में रहते हुए भी उसे जल का स्पर्श नहीं होता, वैसे ही सब प्रवृत्तियों में समाया हुआ होते हुए भी सबसे वह अलिप्त है।

अब इन बातों को अधिक बिस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है। यदि माया और ब्रह्म का गूढ़ रहस्य भली भाँत समझ लिया जाय और उसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जाय तो जन्म-मरण की उपाधि का अन्त हो जाता हैं। केवल सन्त महात्माओं की शरणागति से यह रहस्य ज्ञात होकर मोक्ष का सच्चा मार्ग अवगत हो सकता है। सन्तों की महिम

का क्या बखान करें ! उनकी महिमा का कोई पार नहीं है । ऐसे ब्रह्म-स्वरूप सन्तों का सत्सङ्ग करने पर उनके कृपा-कटाक्ष से सच्चे भुमुक्षु का कल्याण होकर वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है और अन्ततः स्वयं परमातम स्वरूप में लीन हो जाता है ।

छटवां समास

सृष्ठि-कथन

श्रोतागण प्रश्न करते हैं—आरके कथानुसार सृष्टि के पहले ब्रह्म था और है तथा सृष्टि मिथ्या है पर हमें तो सृष्टि प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है । अतः वह मिथ्या कैसी ? इसके उत्तर में 'भमैंवाँशो जीवलोके जीव-भूतः सनातनः ।' यह गीता का वचन ही पर्याप्त है । इसके अनुमार ही सृष्टि सत्य प्रतीत होती है परन्तु 'यद्दृष्टं तन्नष्टं' का विचार करने पर उमका मिथ्यात्व सिद्ध होता है । दोनों वचन प्रमाण मानने पर सृष्टि सत्य या मिथ्या यह भ्रम होने लगता है । अतः इसका निर्णय कौन करे ? सत्य कहें तो सृष्टि नाशवान है और सत्य वस्तु का कभी नाश नहीं होता और असत्य कहें तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है । तात्पर्य सृष्टि को न सत्य कह सकते हैं और न असत्य ही अपितु वह ब्रह्म के सभान ही अनिर्व-चनीय है ।

सृष्टि में अज्ञानी और ज्ञानी इस प्रकार दो वर्ग हैं । इनमें से जो अज्ञानी हैं, वे सृष्टि को सत्य और शाश्वत मानकर तद्नुसार व्यबहार करते हैं । उनके विचारों में देव-धर्म, तीर्थ-व्रत सब कुछ सत्य है । इसके विपरीत ज्ञानी पुरुष सृष्टि को मिथ्था मानकर शाश्वत ब्रह्म का अङ्गी-कार करते हैं । ज्ञानी कहता है—'मूर्ति पूजा मूर्ख अर्थात अज्ञानी जीवों को यद्यपि प्रिय है तथापि ब्रह्म-प्रलय के समय, जब कि सारे विश्व का विनाश हो जाता है, उस समय वह क्या काम देगी ? देवता का ही अस्तित्व नहीं रहेगा, फिर उन मूर्तियों का कहाँ ? अतः जो अपना

कल्याण चाहते हों, वे ज्ञानी पुरुषों के, सन्त-सद्गुरु के वचनानुसार आचरण करें, यही श्रेयस्कर है। चन्द्रचूड् का यह वचन है:—

तीर्थे तीर्थे निर्मलं ब्रह्म वृन्दा वृंदे वृंन्दे तत्वचिंतानुवादः।
वादे वादे जायते तत्वबोधः। बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः॥

अर्थात तीर्थ स्थानों में ब्रह्म वन्दों के बीच बैठकर तत्वचिन्तन कर मुमुक्षु भाव से प्रश्नों द्वारा शङ्का-समाधान कर लेना चाहिये। इससे तत्व-बोध होता है और तत्व-बोध होने पर ईश्वर-प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

श्री सद्गुरु की उपासना की महिमा श्री शङ्कराचार्य जी ने गुरु-गीता में बतायी है। सद्गुरु की उपासना का पहला नियम उसकी पहचान करना है। और पहचान हो जाने पर अपने सत्-असत् विवेक बुद्धि की सहायता से सद्गुरु द्वारा अपना समाधान कर लेना चाहिये। श्री सद्गुरु की महिमा में कहा गया है—

ब्रह्मानन्द परम सुखदं केवलं ज्ञान-मूर्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तावमस्यादि लक्ष्यम्॥
एवं नित्यं विपलपचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरु तं नमामि॥

सद्गुरु के ऐसे भावातीत स्वरूप में सृष्टि का मिथ्या भान रहना असम्भव है। इस भाँति जब ज्ञानी पुरुष सद्गुरु का वास्तविक स्वरूप बतलाकर सृष्टि को मिथ्या बतलाता है, तब श्रोतागण पुनः जिज्ञासुभाव से प्रश्न करते हैं कि सृष्टि को मिथ्या बतलाने पर तीर्थाटन और गुरु-उपासना भी मिथ्या ही है, फिर गुरु-वचन को ही हम सत्य कैसे मानें? इसका उत्तर यह है कि तुम्हारी कल्पना का गुरु केबल हाड़-मांस का पुतला मात्र है. पर गुरु का वास्तविक स्वरूप 'ब्रह्मानन्द परम सुखदं' के अनुसार 'द्वन्द्वातीत, तत्वमस्यादिलक्ष्य, एक, नित्य अचल' ऐसा है। ऐसे सद्गुरु के शुद्ध स्वरूप का ध्यान करने पर सृष्टि का मिथ्याभिमान

नष्ट होकर तुम्हारा उद्धार हो जाएगा। तात्पर्य सृष्टि मिथ्या है, यह सुनिश्चित तथ्य हैं।

पुनः श्रोता प्रश्न करते है—आपने अभी कहा था कि "जीवभूतः सनातनः।" भगवान के इस वचनानुसार सृष्टि का अस्तित्व सिद्ध होता है। तो क्या भगवान के वचन मिथ्या हैं ? इसका उत्तर यह है कि भगवान ने जो कुछ कहा है, उसका रहस्य तुम लोग नहीं जानते। श्री कृष्ण ने कहा है—'अश्वत्थः सर्ववृक्षानां।' अर्थात सब वृक्षों में मैं अश्वत्थ याने पीपल का वृक्ष हूँ। पर वृक्ष तो काटने से कटकर टुकड़े-टुकड़े हो सकता है जब कि भगवान आगे चल कर गीता में कहते हैं—

नैनं छिन्दन्ति शरआणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्जेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

अर्थात मेरे आत्म-स्वरूप को न शस्त्र काट सकता है, न उसे अग्नि जला सकती है न वह पानी में गल सकता है और न वायु ही उसे सुखा सकती है। पर पीपल का पेड़ तो कट सकता है, जल सकता है पानी में गल सकता है और हवा से सूख सकता है अर्थात वह नाशवान है। अतः इन दो विरोधी कथनों में साम्य कैसे होगा ! पर इसका समाधान सद्गुरु द्वारा ही हो सकता है।

अब दूसरा उदाहरण लीजिए। श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में यह भी कहा है—'इन्द्रियाणां मनश्चास्मि' अर्थात मैं इन्द्रियों में मन हूँ। तब इस चञ्चल मनमें पैदा होने वाली तरङ्ग कैसे रोकी जाय ? उत्तर में कहा जा सकता है कि जैसे छोटे बच्चों को जैसे कङ्कड़ आदि रख कर 'ओ३म् नमः' आदि सिखाया जाता है, वैसे ही श्री कृष्ण भगवान ने अबोध साधकों को गीता के माध्यम से साधन मार्ग दिखाया है। इन ऊपरी विरोधाभास के लिये वाद-विवाद करना व्यर्थ है। वेद शास्त्र, श्रुति-स्मृति आदि में भी ऐसे अनेक विरोधाभास हैं। उनका रहस्य एवं

निर्णय सद्‌गुरु द्वारा ही जाना जा सकता है। शास्त्रों में तो पूर्व पक्ष और सिद्धान्तों का केवल संकेत रहता है। उसका निश्चित समाधान सद्‌गुरु एवम् सन्त जन ही कर सकते हैं।

इसलिए वाद-विवाद छोड़कर सत्सङ्ग का लाभ लेना चाहिए। कल्पना के ही पेट से अनेक प्रकार की सृष्टियों का आभास होता है और फिर उनका अन्त भी होता है अतः ये सब मिथ्या आभास मात्र हैं, इसे निश्चित समझो। भक्त कल्पना से किसी देवता को सत्य मानकर उस पर दृढ़ विश्वास कर लेता है और जब उस देवता का अङ्ग-भङ्ग होता है, तो वह बड़ा दुःखी होता है। वह पत्थर की मूर्ति का पूजन करता है और किसी दिन उसके खण्डित होने पर रोने लगता है। किसी मूर्ति के खो जाने मे चोरी हो जाने से या दुराचारी द्वारा अपहरण किये जाने से भ्रष्ट किये जाने से हम कहा करते हैं कि उसकी बड़ी महिमा थी पर दुष्टों ने उसे नष्ट कर दिया। अब न मालूम उस देवता की महिमा कहाँ गई ? किसी देव मूर्ति को सुनार बनाते हैं। किसी को ढाला जाता है और किसी को पत्थर से तराश कर तैयार किया जाता है नर्मदा एवं गण्ड की नदी की रेत में भी लाखों शालिग्राम और शङ्कर जी पाये जाते हैं, जिनकी कोई गणना नहीं। चक्रतीर्थ में असंख्य चक्र-चिह्न वाले पत्थर मिले हैं। इस प्रकार किसी एक देवता पर मन दृढ़ नहीं होता। अनेक भाँति के पत्थर एवम् स्फटिक आदि की मूर्तियाँ एवम् तांबे आदि के सिक्के पूजे जाते हैं। अब इन देवताओं को कैसे सच्चा माना जाय ? कोई कहता है—"हमारे देवता तो बड़े सच्चे थे। उनसे सङ्कट के समय हमें बड़ी सहायता मिलती थी और वे सदा हमारी मनोकामना पूरी करते थे पर अब उनकी शक्ति-सामर्थ्य लोप हो गयी। अब क्या करें, होना था सो हो गया। होनहार को कौन रोक सकता है ?" बड़े खेद की बात है कहीं धातु, पाषाण, मिट्टी, काठ आदि भी देवता हो सकते हैं। यह तो हमारी कोई कल्पना मात्र है। हम चाहे किसी को भी देवता मान कर उसकी पूजा करें, किए हुए कार्यों का फल हमें भोगना

ही पड़ेगा। सच्चा ईश्वर और ही है। वेद शास्त्र आदि कहते हैं कि यह सारा संसार मिथ्या और माया का खेल है। साधु-सन्त और महानुभावों का भी यही अनुभव है। वास्तविक परमात्मा पञ्चमहाभूतों से निर्मित इस मिथ्या सृष्टि से सर्वथा अलग है। वह सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व भी था, वर्तमान में भी है और उसके नष्ट होने पर भी बना रहेगा। वह सर्वव्यापक अबिनाशी ईश्वर शाश्वत तथा आदि अन्त से रहित है। यही सत्य सिद्धान्त है और माया और ब्रह्म का व्यतिरेक और अन्वय केवल कल्पना मात्र है।

इसी कल्पना से सृष्टि का भास होता है। कल्पना से निर्मित आठ प्रकार की सृष्टियां बताई गई हैं, जो इस प्रकार हैं --

एक कल्पना-सृष्टि, दूसरी शब्द-सृष्टि और तीसरी प्रत्यक्ष-सृष्टि जिन्हें सब लोग जानते हैं। चौथी चित्रों द्वारा अङ्कित सृष्टि, पाँचवीं स्वप्न-सृष्टि, छठवीं गन्धर्व-सृष्टि, सातवीं ज्वर-सृष्टि और आठवीं दृष्टि बन्धन-सृष्टि। अब हम किस सृष्टि को सत्य मानें और किसे मिथ्या? ये सभी सृष्टियां काल्पनिक अर्थात भ्रम मात्र हैं और सब की सब नाशवान हैं। इस तथ्य को सज्जन भली प्रकार जानते हैं। फिर भी अज्ञजनों को अपनी श्रद्धानुसार सगुण भक्ति अवश्य करनी चाहिये। सगुण के आधार से निर्गुण ब्रह्म की उपलब्धि हो सकती हैं और सन्त-समागम से सार-असार तत्वों का विचार होता है। अब आगे के समास में सगुण-भक्ति कैसे की जाय, इसका निरूपण करेंगे।

सातवां समास

सगुण-भजन

श्रोता प्रश्न करते हैं—जब ज्ञान-दृष्टि से यह सिद्ध हो चुका कि दृश्य मान सब मिथ्या है, फिर सगुण-उपासना और भजन-पूजन की क्या आवश्यकता हैं? जब ज्ञान से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है, फिर उपासना

की झंझट क्यों ? निर्गुण-उपासना से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है फिर सगुण की भक्ति और भजन से क्या लाभ ?

श्रोता की इस शंका का समाधान करते हुए वक्ता ने कहा—गुरु के आदेश का पालन परमार्थ का प्रमुख लक्षण है। गुरु-वचन का निषेध करने से हानि होती है अतः यदि गुरु सगुणोपासना का उपदेश करें तो उसे शिरोधार्य करना ही चाहिए। फिर श्रोता प्रश्न करते हैं—सद्गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करें यह तो ठीक है पर सद्गुरु भी ऐसा क्यों कहें ? एक ओर सगुण को मिथ्या निरूपित करें और दूसरी ओर सगुण-उपासना का आग्रह करें, यह कैसी विचित्र बात है ? सगुण यदि मिथ्या है तो उसके भजन-पूजन से क्या होगा ? प्रारब्ध में जो बदा होगा सो होगा ही। यदि सगुण-देवता की उपासना से वह बदला नहीं जा सकता, तो यह घटाटोप किस लिए ?

वक्ता कहते हैं—क्या ज्ञान की महिमा बतलाते ही ज्ञान के सब लक्षण तुम्हारे आचरण में आगये, ऐसा तुम्हें लगता है ? क्या सगुण मिथ्या कहते ही तुम निर्गुण पद पर पहुँच गये और तुम्हारे सारे सांसारिक कार्य बन्द हो गये ? यदि सचमुच बंद हो गये हों तो बड़ी अच्छी बात है। पर ऐसा होता नहीं है। तुम्हें देह के सभी कार्य करने ही पड़ते हैं। भोजन जल पान आदि बन्द नहीं हुआ। मल-मूत्र त्याग बन्द नहीं हुआ। अपना पराया का भेद नहीं मिटा। स्वार्थ के लिए लोगों की खुशामद करना नहीं छूटा पर केवल भजन छोड़ने के लिए शीघ्र तैयार हो गया। यद्यपि ज्ञान-विवेक से सब दृश्य जगत मिथ्या है। पर तुम तो अपने मतलब से केवल भजन को मिथ्या मान कर उससे पिंड छुड़ाना चाहते हो और अन्य सब व्यवहार सत्य मानकर करते जाते हो। क्या वे सब व्यवहार भी मिथ्या नहीं हैं ? अपने अधिकारी की कनिष्ट से सेवा भी स्वार्थ के लिए करना नहीं छोड़ते और केवल भजन के लिए ही ज्ञान की बातें बघारते हो इसे क्या कहा जाय ?

ब्रह्मा विष्णु, महेश जैसे परम ज्ञानी देवता भी भजन का त्याग नहीं करते तब तुम जैसे क्षुद्र मनुष्यों का क्या मूल्य ? तुम उस परमात्मा का भजन तभी करो तो उसका क्या बिगड़ेगा ? हम तो सगुण साकार भगवान श्री राम के भक्त है । वे ही हमारे सर्वस्व हैं और वे ही हमारे परमार्थ हैं । वे समर्थों के भी समर्थ और देवताओं के भी मुक्ति दाता हैं । हम उन्हीं के सेवक है और उन्हीं की उपासना से हमें ज्ञान प्राप्त हुआ है । उपासना से ही आत्म-ज्ञान का लाभ होता है, यह हमारा अनुभव है । परमात्मा की उपासना का त्याग करने वाला बड़ा अभागी ही समझना चाहिए ।

सद्गुरु विचार पूर्वक जो सार-असार की बातें बतलाते हैं, उन्हें श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करना चाहिए । उनके बारे में कुतर्क करना अनुचित है । जो अपने आपको बड़ा मानता है, वह ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकता । यह देह बुद्धि का अहंकार मात्र है । अतः हमें नम्र भाव से देहाभिमान छोड़कर श्रीराम प्रभु की अनन्य भक्ति करनी चाहिए और उस भक्ति मार्ग से जब सब संदेहों का निवारण हो जाय, तब निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान की बातें करना चाहिए ।

श्रीराम प्रभु के भजन में लीन होते ही प्रभु ने दुर्जनों का संहार करना आरम्भ कर दिया, यह तो तुम प्रत्यक्ष देख ही रहे हो । (छत्रपति शिवाजी द्वारा दुर्जनों एवं आततायियों के निर्दलन की बात का संकेत हैं) हमने जो कुछ मन में सोचा था, वह कार्य प्रभु कृपा से निर्विन्ध सफल हो रहा है क्या यह तुम्हें दिखाई नहीं देता ? फिर श्रीराम-भक्ति कैसे कैसे विशाल कार्य सम्पन्न हो सकते हैं. इसके बारे में शंका क्यों ? यह सब अनुमान की नहीं प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाली बातें हैं । हमें ब्रह्म-ज्ञान उपलब्ध होकर प्रचण्ड जन-समुदाय हमारे वशीभूत हो रहा है और उसके द्वारा महान कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो रहे हैं, यह सब श्री रघुनाथ जी की उपासना का ही प्रताप है । अतएव तुम्हें प्रथम श्रीराम प्रभु की भक्ति करनी चाहिए । यह हम

सब आत्म-प्रचीति से बता रहे हैं। तुम्हें यदि इस पर विश्वास न हो तो स्वयं अनुभव लेकर देखो। श्रीराम प्रभु का स्मरण कर जो जो काम हाथ में लेते हैं, सब सफल हो रहे हैं। 'कर्ता-धर्ता सब श्रीराम ही हैं। मैं कुछ नही यह सगुण-भक्ति का नम्र निवेदन है। निर्गुण में लीन होता है। इस प्रकार दोनों भक्तों में कोई अन्तर नहीं। दोनों अहंकार रहित होते है। 'मैं कर्ता हूं' इस अभिमान से यदि कोई कार्य करोगे, तो कष्ट पाओगे और 'राम कर्ता' मानकर कार्य करोगे तो सफल होकर यशकीर्ति प्राप्त करोगे। भावना से भगवान का भजन कर तुम सुखी हो सकते हो और भावना से ही उसका त्याग कर दुखी बन सकते हो। फिर हम मंगलमय भगवान से सगुण स्वरूप का अवलम्बन क्यों जोड़ें ? हम तुम सब दो दिन के मेहमान है पर प्रभु अनादि हैं। हम केवल परिवार और मित्र सम्बन्ध आदि से परिचित हैं पर प्रभु को तीनों लोक जानते हैं। ऐसे श्रीराम प्रभु के भक्त होने से अन्य लोगों में भी राम भक्ति पैदा की जा सकती है और उन्हें भी सत्कार्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अहंकार से हानि ही है। शान से हानि ही है। ज्ञान के अहंकार से यदि हम सगुण-उपासना नहीं करेंगे तो अभक्त कहलाकर पतित होंगे। अहंकार से प्रभु हमारी उपेक्षा करते हैं और फिर उसके कटु फल हमें भोगना पड़ता है। संतजन भी देह से सगुणोपासक और विवेक से ज्ञानी अहंकार शून्य होते हैं। अतः सृष्टि के मिथ्यात्व का रहस्य शब्दों से नहीं अपितु प्रत्यक्ष राम-भजन में तन्मय होने से ज्ञात होता है।

आठवां समास

दृश्य-निरसन

श्रोतागण के इस प्रश्न का समाधान कि सृष्टि यदि मिथ्या है तो वह दिखाई क्यों देती है ? इस समास में दिया जायगा। जो कुछ दिखाई

देता है, वह सब सत्य ही है, यह ज्ञानी का दर्शन नहीं है। जड़ मूढ़ अज्ञानी जीव यदि दृश्य वस्तुओं को सत्य मानते हैं, तो वह उनके लिए स्वाभाविक ही है पर यह सत्य नहीं है। करोड़ों ग्रन्थ और संत-महन्त सृष्टि को मिथ्या निरूपित करते आये हैं पर वह मुझे दिखाई दे रही है, इसलिए उसे सत्य मान लेना उचित नहीं है। केवल दिखाई देती है, इसलिए उस दृश्य वस्तु को सत्य मान लेना कैसी भूल हैं, वह बतायेंगें हिरण मृग-जल को देख उसे सत्य समझकर जल के लिए दौड़ता है। क्या वहाँ सचमुच जल होता है? नहीं पर उस अज्ञानी पशु को यह कौन समझावे? रात को हमने सपने में देखा कि हमें बहुत धन प्राप्त हो गया है और उसका हम मनमाना उपभोग कर रहे हैं पर क्या जागने पर उस स्वप्न के धन का एक नया पैसा भी तुम्हारे पल्ले पडता है? किसी कुशल चितेरे ने सुन्दर स्त्री का चित्र बनाया और उसे देखकर कोई कामासक्त पुरुष यदि उसका आलिंगन करने को दौड़े तो उसे कौन पागल नहीं कहेगा? लकड़ी और पत्थर की पुतलियाँ बड़ी कारीगरी से बनाई जाती हैं, जो बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं पर उनमें काठ या पाषाण के सिवा और क्या होता है। इसी प्रकार इस सृष्टि में बहुत सी वस्तुयें हैं जो वास्तव में असत्य अर्थात मिथ्या हैं, पर वे देखने में सत्य मालूम होती हैं। वस्तुतः अज्ञान के कारण ही असत्य वस्तुएें सत्य के समान प्रतीत होती हैं। इस पर हमें विचार करना चाहिए। दृष्टि की चंचलता के कारण जो कुछ दिखाई देता है, उसे एकदम सत्य कैसे मान लिया जाए? आकाश की ओर देखने से वह एक विशाल वितान (पट) जैसा जान पड़ता है और उसी में चन्द्र तथा तारों का अस्तित्व होने का आभास होता है पर वास्तव में ऐसा नहीं हैं। कोई राजा चित्र-कार को बुलाकर राज परिवार के पुरुषों का चित्र बनवाता पर क्या वे वास्तव में पुरुष हैं। पानी में अनेक बुलबुले उठते हैं और उन सब में अलग अलग रूप दिखाई देते हैं, पर क्या वह वास्तविक हैं? यदि कोई व्यक्ति बोइन लिए हुए नदी के किनारे से चले तो वैसा ही आदमी

पानी में भी दिखाई देता है। किसी तालाब के किनारे पशु, पक्षी, नर-वानर, मंदिर अनेक प्रकार के पेड़ आदि बाहर भी दिखाई पड़ते है और जल के भीतर भी। यदि शीश महल में एक सभा बैठी हो तो वगल में वैसी ही दूसरी सभा दिखाई देती है और एक दीप माला की बहुत सी दीप मालाएँ दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो मिथ्या होने पर भी सत्य के समान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार यह सृष्टि स्वरूप माया भी मिथ्या ही है। यह केवल नजरबन्दी है, जो असत्य होने पर भी सत्य भासित होती है। जादूगरों द्वारा किये जाने वाले चमत्कार भी बहुतेरे लोगों को सत्य मालूम होते हैं पर वे केवल मिथ्या होते हैं। इस माया ने देवताओं तक को भुलावे में डाल दिया था। पंचवटी में माया की सुवर्ण मृग के पीछे राम चन्द्र जी दौड़ गये थे। श्री राम चन्द्र जी से युद्ध के समय रावण ने भी माया से कितने सिर बना लिए थे। तात्पर्य इस माया के मोह पाश से संत महात्मा क्या देवतागण तक नहीं बच पाये फिर मामान्य मनुष्य की क्या बिसात ?

मनुष्यो कीं बाजीगरी, राक्षसों की कपट लीला और भगवान की माया के अनेक प्रकार हैं। ये सब सत्य मालूम होते हैं पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो वे सब मिथ्या प्रतीत होंगे। यदि असत्य कहते हैं, तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। अतः हम असमंजस में पड़ जाते हैं पर वास्तव में यह सब माया का खेल है. स्वप्न के समान सर्वथा कल्पित और मिथ्या हैं। यह सब दृश्य मान जगत अविद्यामूलक है और तुम्हारा शरीर भी अविद्यात्मक ही है। अपने मिथ्या शरीर को ही 'मैं' मान लेने कारण देह बुद्धि से सारा दृश्य तुम्हें सत्य भासित होता है। देह बुद्धि द्वारा परब्रह्म का दर्शन करने के मार्ग मैं दृश्य संसार का रोड़ा वीच में आ गया है। दृश्य को सत्य मान लेना ही बड़ी भूल है। हाड़ के शरीर में अपनत्व का भाव रखते हुए चर्म-चक्षुओं से ब्रह्म दर्शन का

यत्न ज्ञानियों का नहीं मूर्खों का लक्षण है। जो कुछ दिखाई देता है और भासित होता है, वह सब नाशवान है। ब्रह्म उससे सर्वथा भिन्न अर्थात् दृश्यातीत और शाश्वत है। आगे हम सत्य-असत्य, सार-असार वस्तुओं का विवेचन करेंगे।

नवां समास

सार-शोधन

इस संसार में ज्ञानी और अज्ञानी, उत्तम और हीन इस प्रकार दो श्रेणी के प्राणी है, यह दूसरे दशक में बताया ही गया है। किसी धनी व्यक्ति के तहखाने में रखे हुए असंख्य मूल्यवान जवाहरात का पता उसके नौकरों को कैसे लग सकता है ? किसी जलाशय में अगणित धन रखकर उसको यदि जल से भर दिया जाय तो लोगों को वह केवल एक तालाब ही दिखायी देगा पर ज्ञानियों को उसके अन्दर का द्रव्य दिखेगा मूर्ख आजीवन कष्ट ही सहते रहते हैं और धनी भोग विलास भोगते हैं। जिनमें विचार पूर्वक कार्य करने की विवेक बुद्धि है, वे सुखासन पर विराजते हैं और अज्ञानी जन बोझ ढोते ढोते ही अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। कोई बढ़िया से बढ़िया पौष्टिक भोजन करता है और कोई मैला ढोता हैं इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष सार वस्तु ग्रहण करते हैं और मूर्ख अज्ञानी असार। सार वस्तु गुप्त और दुर्लभ होती है और असार चीजें खुली और विपुल यात्रा में रहती हैं। पारस और चिन्तामणि गुप्त रहते हैं, जबकि कंकड़ और कांच के मार्ग सब ओर दिखाई देते हैं। सोने-हीरे की खानिका बड़ी कठिनाई से पता लगता है, जबकि कंकड़ पत्थर, सब जगह मनमानी मिल जाते हैं। इसी भांति नाना मत-मतांतरों का अभ्यास और प्रचार करने वाले साधु बहुत मिल जाते हैं पर गुप्त परमात्म-तत्व का लाभ करा देने वाले ज्ञानयोगी सद्गुरू दुर्लभ हैं। सार ब्रह्म वस्तु अत्यन्त गुप्त और

दुर्लभ हैं। असार माया प्रकट और विपुल है। इसकी पहिचान ज्ञानी संत जनों द्वारा ही हो सकती है।

गुप्त धन इन चर्म-चक्षुओं से—बाहरी आँखों से तब तक नहीं दिखाई देता जब तक कि उसमें अंजन न लगाया जाय। इसी प्रकार गुप्त परमात्मा का लाभ आंखों में संत-समागम का अंजन लगाने पर ही हो सकता है। जैसे राजा के समागम से राज-विलास का सहज लाभ होता है, वैसे ही सन्त-समागम से सद-वस्तु परब्रह्म का अनायास लाभ हो जाता है। जो मन को विशाल बनायेगा उसे ही विशाल परब्रह्म की प्राप्ति होगी।

सारांश यह दृश्य संसार अशाश्वत और केवल परब्रह्म ही शाश्वत है। वह ब्रह्म दृश्य संसार में भी है और उससे अलग भी है। वह बाहर-भीतर सबमें परिपूर्ण है और मैं भी वही हूँ ऐसा जिसे विवेक हो गया हो, वह तद्रूप हो जाता है। फिर उसे संसार या गृहस्थाश्रम छोड़ने की आवश्यकता नहीं रहती है। वह सब कर्मों को अनासक्त एवं अलिप्त भाव से करते हुए भी ब्रह्म स्थिति में तल्लीन रहता है। ऐसे विवेक सम्पन्न पुरुष का जन्म ही सफल और सार्थक है।

यह सब स्वानुभव के बोल हैं, अनुमान या कल्पना की उड़ान नहीं। यह सब नकद बातें हैं, उधारी की बात नहीं। अगले जन्म में मोक्ष मिलने का इसमें वादा नहीं है। स्वस्वरूप का अनुसंधान करने से इसी जन्म में इसी देह में मोक्ष लाभ हो सकता है। संसार में रहते हुए भी उससे अलिप्त और उदासीन होकर रहने बाहरी व्यवहार कुशलता पूर्वक करते हुए भी भीतर से निर्गुण ब्रह्म से अनन्य होने और इसी धारणा को दृढ़ करने में ही सच्चा समाधान और परम शान्ति है। संदेह विदेह मुक्तिका अनुभव और सब कुछ करते हुए भी अकर्ता का भाव यह जीवन्मुक्त का लक्षण है।

——

दसवां समास

अनिर्वाच्य समाधान

अब श्रोता प्रश्न करते हैं कि समाधन को सब लोग अनिर्वचनीय अर्थात जिसकी वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता, और जिसका अनुभव भी नहीं बताया जा सकता, ऐसा बतलाते हैं। अतएव आप इस सम्बन्ध में हमारी जिज्ञासा पूर्ण करें। इस पर वक्ता महानुभाव कहते हैं कि परब्रह्म स्वरूप का ज्ञान ही समाधान का स्थान है। समाधान की व्याख्या नहीं की जा सकती। वह वस्तुतः अनिर्वाच्य ही है फिर भी उसका बिना वर्णन किये वह ज्ञात कैसे होगा? वह यद्यपि मूंगे का गुड़ है परब्रह्म स्वरूप सद्गुरु उसका बोध कराने में समर्थ होते हैं। सद्गुरु कृपा से वह बोध केवल उन्हीं मुमुक्षु भक्तों को हो सकता है, जो एकान्त में अपने आपको खोजने का प्रयत्न करता है। वाह्य इन्द्रियों से मन को हटाकर अपने स्वरूप को पहचानना चाहिए ऐसा करने से सारी बातें माया रूप हैं, ऐसा भास होता हैं और शुद्ध आत्म-स्वरूप ही शेष रह जाता है। वही समाधान का स्थल है। वहाँ फिर साक्षी भाव भी नहीं रहता। आत्मा को सर्वसाक्षी कहा गया है पर यह पूर्व पक्ष के दृष्टि कोण से ही कहा गया है। सर्व साक्षित्व भी साक्षित्व अथवा अन्य कोई लक्षण आत्म-वस्तु के लिए लागू नहीं हो सकता। वहां सर्व साक्षित्व, अनुभव, पदार्थ ज्ञान, त्रिपुटी, वाणी, मन किसी की पहुँच नहीं हैं। जब दृष्टा का दृष्टापन नष्ट हो जाता है, तभी 'मैं' का लोप होता है। 'मैं' पन का निःशेष होना ही अनुभव की पहचान है। वहां अनुभव का वर्णन कैसे किया जा सकता है? इसीलिए समाधान को अनिर्वाच्य कहा गया है। वर्णन करना शब्दों का काम है। शब्द से अर्थ की निष्पत्ति होती है पर शब्द भी मायिक होने के कारण उसकी पहुंच परमात्मा स्वरूप के अर्थ तक नहीं हो सकती। शब्दों द्वारा केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ब्रह्म द्रश्य से भिन्न है। इतना कहकर

ही शब्द मौन हो जाते हैं। अर्थ अर्थात वस्तु तो अनुभव से ही जानी जा सकती है।

आकाश अति सूक्ष्म तत्व है और ब्रह्म को बोध कराने के लिए उसे आकाश की उपमा दी जाती है। पर आकाश की उपमा भी कल्पना ही है। कल्पना तो मूल में ही मिथ्या है फिर कल्पना के आधार पर किया गया अनुभव सत्य कैसे होगा ? अनुभव कहने में भी द्वैतभाव है। द्वैत ही नहीं उसमें अनुभव, अनुभवकर्ता, और अनुभव वस्तु इस भांति त्रिपुटी आ जाती है। इस प्रकार की द्वैत या त्रिपुटी की अवस्था शुद्ध स्वरूप में नहीं होती। वहाँ अनुभव का भी अनापता नहीं रहता। इसलिये वह स्वरूप अनिर्वाच्य है। रात और दिन की मर्यादा सूर्य के कारण है पर सूर्य का अस्तित्व भी न हो तो उस दशा में शेष क्या रहेगा ? शब्द और मौन का विचार ओंकार के कारण है पर ओंकार का काश्रय छूटने पर उच्चार कैसे होगा ? सारांश अनुभव त्रिपुटी के अन्तर्गत होने के कारण वह भी माया का ही अङ्ग है पर स्वस्वरूप में माया के अभाव में उसका भी अस्तित्व कहाँ ? वस्तु और स्वयं में जब अभिन्नता आ जाये फिर समाधान की वाच्यता कैसी ? वस्तु और स्वयं में अभि-न्नता स्वयंम् अर्थात स्वाभाविक है। अनः स्वरूप समाधान का वर्णन नहीं किया जा सकता अर्थात वह अनिर्वाच्य है।

स्वस्वरूप में जन्म, बंध, मोक्ष आदि कुछ नहीं है। शुद्ध स्वरूप स्वयमेव समाधान रूप है। उसे एक दृष्टान्त देकर समझाते है। स्वरूप में सहज अभिन्नता है। उसमें सृष्टि संसार का स्पर्श भी नहीं रहता। कोई एक अजन्मा सोया हुआ था और स्वप्न में देख रहा था कि वह संसार के दुःखों से पीढ़ित होकर सद्गुरु की शरण में गया है। तथा उनसे ज्ञान लाभ कर मुक्त हो गया है। तब वह स्वप्न में बड़बड़ाने लगा कि मैं संसार दुःख से तप्त होकर सद्गुरु की शरण में गया और उनके सदुपदेश से सांसारिक मोह से छूटकर मेरा अज्ञान मिट गया तथा मैं ज्ञान सम्पन्न हो गया। इस भांति जो कुछ प्रथम था वह नष्ट हो गया और जो कुछ पहले नहीं था वह तो था ही नहीं।

अर्थात 'है' और 'नहीं' दोनों का नाश होने पर शून्यावस्था अर्थात स्वरूपावस्था प्राप्त होती है। इसके पश्चात शुद्ध ज्ञान से, जो शून्यावस्था से भी परे है, उसका समाधान हो जाता है और परमात्म स्वरूप के साथ एकाकार हो जाने से उसे अभिन्नता की सहज स्थिति प्राप्त हो जाती है।

अद्वैत के निरूपण से उस अजन्मा पुरुष का द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है और वह ज्ञान चर्चा करने लगता है। इसी बीच उसकी नींद खुलकर उसका स्वप्न भंग हो जाता है और उस जागृति का अपने सच्चे स्वरूप का भान हो जाता है। अब श्रोतागण यदि सावधान होकर इस दृष्टान्त का शान्त चित्त से विचार करेंगे, तो इसका रहस्य आसानी से समझ में आवेगा और तब उसका अपने आप समाधान हो जायगा।

उस अजन्मा ने स्वप्नावस्था में ज्ञान की जितनी बातें कहीं, वे तो सब स्वप्न के साथ ही समाप्त हो गयीं और केवल वह अनिर्वचनीय सुख शेष रह गया, जिसका शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता। यह अनिर्वचनीय आनन्द ही ईश्वर के साथ एकता है। इसमें न कोई अनुभव है और न अनुभव लेने वाला। वह अजन्मा उस सुख को प्राप्त न कर बीच में ही जाग पड़ा। उसने स्वप्नावस्था में ही दूसरा स्वप्न देखा और स्वप्न में ही जाग उठा। अतः वह शब्दों द्वारा उस अवस्था का वर्णन नहीं कर सकता। अस्तु, अब हम इस बात को और अधिक स्पष्टता के साथ समझावेंगे ताकि श्रोताओं का पूरी तरह समाधान हो जाय।

इस पर श्रोतागण प्रसन्न होकर वक्ता से कहते हैं—'अवश्य महाराज! आपने जो कुछ कहा उसे और स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करें ताकि हम उसे भली भांति हृदयगम कर सकें। श्रोताओं का आग्रह देखकर स्वामी जी ने कहा—हे शिष्यगण सुनो, वह अजन्मा तुम स्वयं हो। तुम्हीं ने स्वप्न में दूसरा स्वप्न देखा और उस अवस्था में तुमने जो जो बातें कीं, उन्हें ही मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से सम-

ज्ञाता हूँ। यह संसार ही उस स्वप्न के अन्तर्गत एक दूसरा स्वप्न है और इसी स्वप्नावस्था में तुम सार और असार का विचार करते हो। सद्गुरु की शरण में होकर और उसका शुद्ध विचार सुनकर भी तुम उसकी पुनः पुनः चर्चा और तर्क-वितर्क करते हो पर परम-वस्तु का अनुभव होने पर सारी चर्चा का अन्त हो जाता है। अन्तत. वाणी भी मौन हो जाती है। यह जो शान्तिमय विश्राम का अवकाश है, इसी को जागृतावस्था समझो अर्थात आत्मानुभव हो जाना ही जागृति का लक्षण है। ज्ञान-चर्चा का कोलाहल दूर हो जाने से ही सच्चे अर्थ का बोध होता है और उसी के चिंतन से मन में कुछ विशेष अनुभव होने लगता है। इस अनुभव से तुम्हें लगता है कि हम जागृत हो गये पर इसका अर्थ केवल इतना ही है कि अभी तुम्हारा भ्रम नहीं मिटा। अनुभव के भीतर ही दूसरे किसी अनुभव में लीन हो जाना अथवा अनुभव के बिना ही अनुभव का भास होना स्वप्न से जागृति नहीं है। जागने पर तुम कहते हो कि मैं वही अजन्मा हूँ। इससे सिद्ध होता है कि अब तक भी तुम्हारी सांसारिक स्वप्न की धारणा दूर नहीं हुई है।

जैसे स्वप्न में भी मनुष्य सोचता है कि वह जाग रहा हो वैसे ही तुम इस समय यह समझ रहे हो कि हमें अनुभव प्राप्त हो गया है पर वास्तव में यह भी स्वप्न की ही अवस्था है और केवल भ्रम है। सच्ची जागृति इससे सर्वथा अलग है। उसके सम्बन्ध में वाणी से कुछ वर्णन करना असंभव है। वहाँ तो बुद्धि अर्थात विवेक की दौड़ भी समाप्त हो जाती है। अतः इस अवस्था को शब्दों द्वारा प्रकट किया ही नहीं जा सकता। यही तो उसकी विशेषता और आद्वितीयता है। अनुभव के निःशब्द अर्थात अनिर्वांच्य हो जाने का ही नाम समाधान है। सामा-धान-वृत्ति की यही पहचान है। अन्य सब अनुभवों का वर्णन किया जा सकता है पर समाधान का वर्णन नहीं हो सकता। स्वामी जी के इस प्रकार के उपदेश और विवेचन से श्रोताओं का पूरा समाधान हो गया

और वे इस अनिर्वचनीय अचित्त, अनुपम अनुभव के आनन्द का रहस्य भली भाँति समझ गये।

सातवां दशक

पहला समास

मंगला-चरण

विद्वानों के पूर्वज, ज्ञानस्वरूप श्रीगणेश जी को नमस्कार है, जो गजमुख, एकदन्त, चतुर्भुज और परशुपाणि हैं। जिस प्रकार कुबेर से धन, वेदों से परमार्थ, लक्ष्मी से धनी प्रकट हुए, उसी प्रकार मूल पुरुष श्री गणेश से सब विद्यायें प्रसूत हुई हैं। यह मूल पुरुष ही सकल कर्तृत्व का आरम्भ है अर्थात् वहीं से विश्व की घटनाओं का कार्य प्रारम्भ हुआ हैं। वह स्वयंभू है। उसकी इच्छा-स्फूर्ति का नाम ही शारदा है। कोई जब ब्रह्म-निरूपण करने लगता है, तब वह उससे भिन्न हो जाती है और फिर उसी के द्वारा द्वैत का निरसन होकर अद्वैत का बोध होने लगता है।

अब स्वरूपभूत सद्गुरु को वन्दन करते हैं। उसी की कृपा से सब सृष्टि आनन्दमय और सुखी है। आनन्द का जनक, सायुज्य-मुक्ति का नायक, कैवल्य धाम का दाता और अनाथों का बन्धु श्री सद्गुरु ही हैं। मुमुक्षु रूपी चातक जब दीन स्वर से याचना करता है, तब करुणामेघ-श्याम सद्गुरु साधकों पर कृपा रूपी जल की वर्षा करते हैं। श्री सद्गुरु भव सागर की नौका हैं जो बोधरूपी डांड़ पतवार से शिष्य को पार उतार देते हैं। सङ्कटों का निवारण कर, मृत्यु-भय को दूर करने वाले श्री सद्गुरु परम दयालु माता के तुल्य हैं। सद्गुरु कृपा से भेद-भाव

का नाश होता है। ऐसे श्री सद्गुरु के चरणों में मेरा साष्टांग प्रणाम है।

अव मैं साधु सन्त तथा श्रोताओं की वन्दना करता हूँ। संसार रूपी दीर्घ-स्वप्न में यह जड़ जीव 'मेरी स्त्री, मेरा धन, मेरे पुत्र' आदि कह-कर दिन-रात बर्ताता है। ज्ञान-रवि के अस्त हो जाने से प्रकाश का लोप हो जाता है और अन्धकार से ब्रह्माण्ड भर जाता है। तब सत्वगुण की चांदनी भी दिखाई नहीं देती और इस भ्रान्ति में हमें अपना स्वरूप भी दिखाई नहीं देता। देहात्म बुद्धि के अहङ्कार से निद्रावश जीव दुःखी होकर विषय-सुख के लिये चिल्ला रहे हैं। ऐसे जीव मायारूपी निद्रा में ही मर जाते हैं और पुनः जन्म लेकर निद्रावश होते हैं। उनका सारा जन्म माया की निद्रा में ही व्यतीत हो जाता है। इस प्रकार वे निद्रा की स्थिति में ही अनेक जन्म लेकर परमेश्वर को न जानने से कष्ट भोगते रहते हैं। उन कष्टों के निवारण के लिये आत्म ज्ञान आवश्यक है और उसी के हेतु यह अध्यात्म ग्रन्थ लिखा गया है।

अध्यात्म विद्या विद्यानाँ वादः प्रवदतामहम् ॥'

सब विद्याओं में अध्यात्म-विद्या सारभूत है, ऐसा श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है। इस अध्यात्म-ग्रन्थ में निरूपित अध्यात्म-विद्या का रहस्य जानने के लिए वहीं समर्थ हो सकता है, जिसने एकाग्र-चित्त से उसका आकलन किया हो। अिसका चित्त चञ्चल हो वह इस ग्रन्थ को पढ़ने का कष्ट न करे। उसे इसका रहस्य समझ में नहीं आवेगा। जिसे परमार्थ की रुचि हो, वह दृढ़-चित्त होकर इस ग्रन्थ का अवलोकन करे। वह यदि इसका मनन करेगा तो उसके हृदय के परमार्थ का निश्चित उदय होगा। जिसको परमार्थ में आस्था न हो उसके लिए इस महान ग्रन्थ का—कामधेनु का—कोई उपयोग नहीं।

कई लोग इस ग्रन्थ की भाषा प्राकृत होने के कारण उसका निरा-दर करेंगे। ऐसे मूर्खों को अर्थ-सम्बन्ध का ज्ञान नहीं है। बहुमूल्य रत्न अलङ्कार यदि लोहे की पेटी में रखे हों तो क्या उसका परित्याग कोई

समझदार व्यक्ति कर सकता है ? उसी प्रकार जिसमें वेदान्त के अन्तिम सिद्धान्तों का स्पष्ट निरूपण किया गया हो, ऐसे अध्यात्म-ग्रन्थ का केवल वह प्राकृत भाषा में लिखा गया है, इसलिये अनादर करेगा,तो मूढ़ ही कहना चाहिये। सहज और सुलभ रीति से धन की प्राप्ति होती हो, तो उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। यह न देखें कि वह किस धातु की पेटी में रखा हुआ है। व्युत्पत्ती के परिश्रम को बचाकर यदि सकल शास्त्र-रहस्य अनायास उपलब्ध होता हो, तो सत्सङ्ग के समान ही उसका आदर करना चाहिये। जो बात व्युत्पत्ती से ज्ञात नहीं होती, वह सत्सङ्ग से अवगत हो जाती है, ज्ञान का रहस्य अनुभव में आ जाता है। इसलिए साधनों का मूल सत् समागम है। जन्म की सार्थकता सत्सङ्ग लाभ में है। इसलिये, संस्कृत-प्राकृत का उहापोह व्यर्थ है। कार्य सिद्धि तो उसके अर्थ से होगी। अत. भाषा का विचार गौण है। भाषा का अभिमान मोक्ष-मार्ग के लिये प्रतिबन्धक है। भगवान की महिमा यह अर्थ का लक्ष्य है।

अध्यात्म-ग्रन्थ का निरूपण सुनकर अर्थ को हृदयंगम करने वाला श्रोता दुर्लभ है। ऐसा श्रोता मिलने पर ही वक्ता को सन्तोष होता है। जैसे जौहरी को जवाहरातों की परख करने वाले के सामने रत्न रखने में आनन्द होता है. वैसे ही ज्ञानी के सम्मुख ज्ञान निरूपण में आनन्द मिलता है। माया जाल में फँसे हुए दुश्चिन्त संसारी पुरुषों को इसका रहस्य कैसे विदित हो सकता है ?

गीता में कहा गया है—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरूनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥१॥

अर्थात् जिसकी बुद्धि प्रपञ्च-व्यवसाय से मलिन हो गई है. उसे यह अध्यात्म-निरूपण अवगत नहीं हो सकता। उसके लिए तो अत्यन्त सावधानता की आवश्यकता है। परमार्थ-प्रवृत्त निश्चल चित्त साधक ही उसका अधिकारी है।

माया और ब्रह्म की पहचान करना ही अध्यात्म है । ब्रह्म का स्वरूप जानने के पहले माया का रूप विदित होना चाहिए । माया सगुण, साकार, सविकार व पञ्च भौतिक है । माया दृश्य आँखों से दिखाई देतीं है और मन में उसका भास होता हैं । माया नश्वर है और विवेक-दृष्टि से देखने पर उसका निरसन हो जाता है । माया नानारूपों में प्रकट यह विश्व ही है । माया अर्थात हमारी कल्पना—स्वस्वरूप में उठा हुआ एक सङ्कल्प मात्र है। अत: इस मिथ्या माया का निरसन आत्मज्ञान बिना असम्भव है । अब आत्मज्ञान अर्थात ब्रह्म का निरूपण अगले समास में करेंगे ।

दूसरा समास

ब्रह्म-प्रतिपादन

ब्रह्म निर्गुण, निराकार, नि:सङ्ग, निर्विकार, सर्वव्यापक, शाश्वत, अच्युत, अनन्त, निर्विकल्प और दृश्य प्रकृति के उपासक हैं पर वह शून्य नहीं है । इन्द्रियगम्य नहीं । वह अत्यन्त सूक्ष्मतम है । उसका शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता है । ब्रह्म मन एवम् वाचा के लिए अगोचर है अर्थात कल्पना के भी परे है । ब्रह्म-भण्डार को खोलने की चावी सद्गुरु के पास है । सद्गुरु की कृपा से जब वह चावी शिष्य को प्राप्त होती है, तब बुद्धि प्रकाशमान होती है और द्वैत के कपाट एकबारगी खुल जाते हैं । ब्रह्म सुख अपार है पर वहां मन का प्रवेश नहीं है । उसे प्राप्त करने में जो प्रयास करने पड़ते है, उनमें मन का सम्बन्ध नहीं आता । मन की सहायता के बिना ही उसकी प्राप्ति हो सकती है । वहाँ किसी वासना को स्थान नहीं है । उसमें सदा सर्वदा पूर्ण सन्तुष्टि एवम् तृप्ति का अनुभव होता है । कल्पना के शारअज्ञान की वहाँ पैठ नहीं । वह परावाणी के उपासक है । मन बुद्धि के लिए वह अगम्य है । वह निस्सङ्ग होने पर ही प्राप्त हो सकता है । ब्रह्म प्राप्ति में केवल अहङ्कार

ही बाधक है। अहङ्कार अर्थात् अज्ञान। उसे त्याग कर 'मैं' को छोड़कर ब्रह्म का दर्शन किया जाय।

ब्रह्म में देह बुद्धि के बड़प्पन की प्रतीक्षा नहीं है। ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष सबमें समान भाव से एक ही ब्रह्म व्याप्त है ब्राह्मण का ब्रह्म पवित्र और शुद्र का अपवित्र ऐसा भेदभाव ब्रह्म में नहीं है। राजा का ब्रह्म उच्च कोटि का और उसके सेवक-वर्ग का ब्रह्म निम्न स्तर का नहीं है। सब का ब्रह्म स्वरूप एक ही है। रङ्क से ब्रह्मा तक छोटे-बड़ों का और त्रैलोक्य के सब ज्ञानियों का विश्राम-धाम एक ही है। जो गुरु का ब्रह्म वही शिष्य का ब्रह्म है। पर इसके लिए देह बुद्धि का सम्बन्ध सर्वथा भूल जाना चाहिये। देह बुद्धि का लोप होते ही सबको एक ही ब्रह्म का परम लाभ प्राप्त होता है। ब्रह्म एकमेव और अद्वितीय है, ऐसा श्रुति का कथन है। साधु-सन्त देह से भिन्न-भिन्न दिखाई देने पर भी स्वस्वरूप में लीन होने के कारण देहातीत परब्रह्म स्वरूप ही हैं।

जो देह बुद्धि के कारण ब्रह्म में भेद मानेगा, तो उसे कभी समाधान नहीं होगा। देह मिथ्या है। अतः साधुगण उसकी निंदा ही करते हैं। देहाभिमान के कारण ही जन्म-मरण का दुःख भोगना पड़ता है। सन्तों के वचनानुसार देहातीत होने में ही कल्याण है। योग-सामर्थ्य प्राप्त होने पर भी देह बुद्धि योगियों के पतन का कारण होती है। इसलिये देह बुद्धि के सर्वथा नाश होने पर ही परमार्थ की प्राप्ति होती है। अतः सुबुद्ध जनों को उसे छोड़ कर सत्य ब्रह्म में लीन हो जाना चाहिये।

अब आप लोग प्रश्न करेंगे कि अभी तक तो आप केवल ब्रह्म की बात कर रहे थे और अब सत्य ब्रह्म इस नये नाम का अर्थ क्या? तो सुनिये, ब्रह्म तो एक ही है पर अनेक मत-मतान्तरों के कारण वह नाना देहों में अनेक रूपों में भासित होता है। जिसको जिस रूप में उसका अनुभव होता है, उसे ही वह सच मानता है। ब्रह्म एक ओर

नामातीत होने पर भी उसे निर्मल, निश्चल, अरूप, अलक्ष्य, अगोचर, अच्युत, अनन्त, अपार, अदृश्य, नादरूप, ज्योतिरूप, चैतन्यरूप, सत्तारूप, साक्षीरूप, स्वस्वरूप, सनातन, सर्वेश्वर, शाश्वत, निःशब्द, विश्वम्भर, आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर आदि असंख्य नामों से सम्बोधित किया जाता है और इसी निरूपण के सन्दर्भ में हमने उसे सत्यब्रह्म भी कह डाला है। वस्तुतः ब्रह्म तो नामरूपातीत है, केवल उसका निर्देश करने के लिए नाम दिये गये हैं। वह आदि-पुरुष परमात्मा सबका विश्रान्ति-स्थल है।

ब्रह्म यद्यपि एक ही है फिर भी उसके अर्थ-निराकरण के लिए शास्त्रों में उसका चौदह ब्रह्मों के नाम से निरूपण किया गया है। अतः उन चौदह ब्रह्मों के लक्षण अब हम बतायेंगे।

तीसरा समास

चतुर्दश-ब्रह्म

वास्तव में ये चौदह ब्रह्म नहीं, चौदह भ्रम है, जिन्हें दूर करना होगा। अतः उन भ्रमों को पहले समझ कर फिर उसे मिटायेंगे।

(१) पहला ब्रह्म—शब्द-ब्रह्म है। ब्रह्म का केवल शब्द-ज्ञान ब्रह्म नहीं है। अनुभव शून्य शब्द ज्ञान का क्या मूल्य ? वह तो केवल शब्दावडम्बर है। उससे हमें सावधान रहना चाहिये।

(२) दूसरा 'ओम' अक्षर-ब्रह्म। पर जिसे क्षर (विनाश) नही वह अक्षर 'ओम' कैसे हो सकता है। अक्षर भी एक नाम है, जो नाशवान है। अतः ब्रह्म क्षर भी नहीं और 'अक्षर' भी नहीं।

(३) तीसरा खं-ब्रह्म अर्थात आकाश ब्रह्म। आकाश यानी शून्य। शून्य से—ज्ञान का निरसन होता है। अतः शून्य में शाश्वत का स्थान कहाँ ?

(४) चौथा सर्व ब्रह्म—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुति वचन के अनुसार पञ्चभौतिक सृष्टि में जो जो दिखाई देता है, उसे कोई ब्रह्म की संज्ञा देते हैं पर वह ब्रह्म नहीं। महा-प्रलय में तो सब पञ्चभूतों का नाश हो जाता है।

(५) पाँचवा चैतन्य-ब्रह्म कहलाता है। पञ्च भौतिकी में चेतना भरने वाला ब्रह्म को चैतन्य ब्रह्म कहा करते हैं पर जिसे चैतन्य किया जाता है, वह पञ्चभौतिक वस्तु नाशवान सिद्ध होने पर उसे चेतना देने वाला चैतन्य भी सत्य कहाँ ?

(६) छटवाँ सत्ता-ब्रह्म। चैतन्य के पीछे जिसकी सत्ता है, वह सत्ता-ब्रह्म कहलाता है। पर जहाँ परिवार ही नहीं वहां सत्ता कैसी ?

(७) सातवाँ साक्षी ब्रह्म। जहाँ पदार्थ हीन हो, वहाँ साक्षी भाव कहाँ से आया ? अर्थात वह भी मिथ्या है।

(८) आठवाँ सगुण ब्रह्म। गुण नाशवान है अतः ब्रह्म सगुण नहीं हो सकता।

(९) नववाँ निर्गुण ब्रह्म। जहाँ गुण का कोई सम्बन्ध नहीं उसे निर्गुण कहा जाता है। पर जहाँ गुण की बात ही नहीं हो सकती, वहाँ निर्गुण कहने से क्या लाभ ?

(१०) दसवां वाच्य-ब्रह्म। जो वाचा से बोला जा सके वह वाच्य पर ब्रह्म तो अवाच्य, अवर्णनीय है। वाच्य पदार्थ नाशवान है। अतः ब्रह्म को अवाच्य कहना भी निरर्थक है।

(११) ग्यारहवां तदाकार—ब्रह्म कहलाता है। तदाकार होने पर उसका नामाभिधान हो ही नहीं सकता। अतः तदाकार नाम भी वृथा है।

(१२) बारहवां आनन्द ब्रह्म। आनन्द का अनुभव भी एक वृत्ति ही है। जिसका मन से सम्बन्ध है। शुद्ध ब्रह्म तो वृत्ती से अतीत है।

(१३) अनुभव-ब्रह्म यह भी त्रिपुटी से सम्बन्धित होने के कारण शुद्ध ब्रह्म नहीं है।

(१४) और अन्तिम अनिर्वाच्य ब्रह्म। जहा वाचा मौन हो जाती है। वह उन्मनी अवस्थायी ब्रह्म नहीं है। शुद्ध ब्रह्म तो अवस्था के भी पार है।

इस प्रकार उपरोक्त चौदह कल्पित ब्रह्मों का निरसन कर समर्थ शुद्ध विमल ब्रह्म का लक्षण बतलाते हैं। जहाँ सभी उपाधियों एवम् नामों का अन्त हो जाता है और वहां सहज-समाधि का लाभ होता है, उसे ही ब्रह्म स्वरूप कहा गया है। अतः स्वानुभव से कल्पना का निरसन कर स्वस्वरूप में लीन होना ही ब्रह्म का साक्षात्कार है। ब्रह्म कोई पदार्थ नहीं है कि जिसे कोई किसी को प्रदान कर सके। वह तो सद्गुरु के उपदेशामृत से प्रेरित अनुभव सिद्ध तद्रूपावस्था है।

हमने इस समास में चौदह मायावी ब्रह्मों का—भ्रमों का निरसन किया है। अब जो विमल-ब्रह्म (कैवल्य-ब्रह्म) है उसके स्वरूप का वर्णन करेंगे।

चौथा समास

बिमल-ब्रह्म

ब्रह्म आकाश से भी अधिक निर्मल, मून्य, अरूप, और विशाल है। इक्कीस स्वर्ग और सप्त पाताल का एक ब्रह्म गोल होता है। ऐसे अनेक ब्रह्म गोल हैं और उन सब में व्याप्त रहकर भी ब्रह्म निर्मल और निर्लिप्त है। अनन्त ब्रह्माण्ड नीचे और ऊपर हैं पर सब में ब्रह्म भरा है। जैसे जल चरों के लिए अन्दर-बाहर जल ही जल रहता है वैसे इस पंच भौतिक सृष्टि के सब पदार्थों में और प्राणि मात्र में अन्त बाह्य ब्रब्रह्म ही व्याप्त है। जल से बाहर अन्य स्थान भी है परब्रह्म से बाहर कुछ भी नहीं है। अतः ब्रह्म के लिए जल की उपमा अपर्याप्त है। वह आकाश के समान सर्व व्यापी है। उस परमात्मा और हमारी आत्मा का मिलन अखण्ड है। वह सर्वाङ्ग में लिप्त है और वह निकट्तम होने

पर भी लोगों को दूर दिखाई देता है। ब्रह्म में स्थित रहकर भी उसे न जानना, यह जीव की बड़ी विचित्र दशा है। सत्य वस्तु का हमें परिचय नहीं है और जो भास मान मिथ्या जगत है, उसका हमें खूब परिचय है।

आकाश में बादल छाये रहने पर वह मैला मालूम होता है पर वास्तव में आकाश निर्मल ही होता है। आकाश की ओर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उसमें अनेक चक्र दिखाई देते हैं, वैसे ही ब्रह्म में दृश्य दिखाई देता है पर ज्ञानी उसे मिथ्या अनुभव करते हैं। जैसे जागने पर सत्य भासित होने वाला स्वप्न मिथ्या हो जाता है, वैसे ही ब्रह्मानुभव द्वारा ज्ञान की जागृत अवस्था में इस दृश्य मान जगत का मिथ्यात्व अनुभव में आ जाता है।

अस्तु, ब्रह्माण्ड के उस पार शुद्ध ब्रह्म वैसा होता है, उसे अब हम देखें। ब्रह्म सकल ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत और सब पदार्थों में अशतः व्याप्त है। ब्रह्म ब्रह्माण्ड के भीतर भी है और बाहर भी है। अतः वह ब्रह्माण्ड में कैसे समा सकता है ब्रह्म का आवागमन नहीं है और वह पंच महाभूतों में व्याप्त होकर भी उससे अलिप्त भी है। ब्रह्म के समान कोई अन्य वस्तु नहीं है इसलिए उसे किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। आकाश की उपमा कुछ अंशों में सार्थक है। श्रुति ने भी ब्रह्म को 'एवं ब्रह्म' रहा है। और स्मृति में भी 'गगन सदृशं' कहकर उसका वर्णन किया है। इसलिए ब्रह्म को आकाश की उपमा कुछ हद तक यथार्थ है। यदि पीतल काला न पड़ता तो वह भी सोना कहलाता, तदनुसार आकाश यदि शून्य न होता तो आकाश ही ब्रह्म माना जाता। आकाश ब्रह्म के समीप है, इसलिए उसे आकाश की उपमा दी जाती है। आकाश के समान ब्रह्म का भास होता है पर वह ब्रह्म नहीं। जैसे आकाश से वायु का उद्भव हुआ, वैसे ही ब्रह्म से माया का। जैसे निःशब्द आकाश से वायु के उत्पन्न होने पर शब्द प्रकट हुआ, वैसे ही ब्रह्म से माया रूपी सदृश्य जगत का अविर्भाव हुआ है। अतः

माया मिथ्या और ब्रह्म शाश्वत और सर्वव्यापक है। ब्रह्म पृथ्वी को भेदकर भी पृथ्वी के समान कठोर नहीं है। पृथ्वी से जल, जल से तेज (अग्नि), तेज से वायु वायु से आकाश और आकाश से ब्रह्म उत्तरोत्तर अधिक कोमलता में कभी नहीं आती। वह न कोमल है है और न कठोर। वह अनुपम है। पंच महाभूतों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह शरीर में सर्वत्र व्याप्त होने पर भी उसका अनुभव नहीं होता यह बड़े आश्चर्य को बात है। वह हमारे अंत बाह्य और सर्वत्र व्याप्त है। उसी में हमारा अस्तित्व है पर आकाश के समान अदृश्य होने के कारण हमें उसका भान नहीं है।

वह गड़े हुए गुप्त धन के समान हमें अदृश्य प्रतीत होता है सब दृश्य पदार्थ उसके इसी ओर हैं। आगे पीछे आकाश है और बीच में कोई पदार्थ नहीं केवल उसी ब्रह्म का विस्तार है। यह दृश्य-मान पृथ्वी वास्तव में कुछ नहीं उसी का विस्तार है। नाम रूपात्मक सारी सृष्टि भ्रम रूप है और नाम रूपातीत ब्रह्म केवल अनुभव की वस्तु है। वह सदा सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है। पोथी पढ़ने में वही दृष्टि है। अक्षरों में वही है नेत्रों से देखने में कानों से सुनने में, मन से विचार करने में उसी की प्रेरणा है। पैरों से चलने में, हाथों से कार्य करने में सारांश सारी प्रवृत्तियों में वही व्याप्त है। पर इन्द्रियों को केवल विषयों का परिचय होने के कारण, वह अत्यन्त समीप होकर भी दिखाई नहीं देता है। उसका तो दृश्य को भूलकर ही अनुभव किया जा सकता है। वह चर्म-चक्षुओं से कदापि दिखाई नहीं दे सकता। उसे देखने के लिये ज्ञान दृष्टि ही चाहिये। ब्रह्म और माया दोनों का एक साथ निरीक्षण करने वाली सर्वसाक्षी अवस्था को तुरीया कहते हैं, जहाँ जहाँ मान का लोप होकर ज्ञान का भी भान नहीं रहता। जहाँ अज्ञान, ज्ञान, विज्ञान कुछ भी शेष नहीं रहता वह है परब्रह्म-विमल ब्रह्म। वह शाश्वत निर्विकल्प और योगी जनों का एकान्त विश्राम है।

पांचवां समास

द्वैत का निरसन कैसे ?

अब श्रोता प्रश्न करते हैं—ब्रह्म और माया के स्वरूप का ज्ञान हुआ पर चित्त में ब्रह्म-प्रकाश और बाहर प्रत्यक्ष माया का दर्शन। इस प्रकार ब्रह्म और माया का द्वैत खड़ा हो जाता है। इसका निरसन किस प्रकार होगा ?

तब समर्थ वक्ता कहते हैं – माया और ब्रह्म का कौन अनुभव करता है. इस पर विचार कीजिए। मन ही दोनों की कल्पना करता है। ब्रह्म की कल्पना शुद्ध कल्पना है और माया की अशुद्ध कल्पना है। एक सङ्कल्प है तो दूसरा विकल्प है। दोनों कल्पना करने वाली मन की अवस्था को तुरीय अथवा सर्वसाक्षी अवस्था कहते हैं। सङ्कल्प और विकल्प यह दोनों ही मन की क्रियायें हैं पर जहां मन ही मिथ्या है, वहाँ मन की साक्षी अवस्था का पता ही कहां ? साक्षित्व, चैतन्यत्व और सत्ता यह गुण ब्रह्म पर माया ने लादे हैं। वे वास्तविक नहीं हैं क्योंकि ब्रह्म तो निर्गुण है। घट व मठ के अवलम्बन के कारण घटाकाश और मठाकाश शब्दों का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः आकाश के लिये दोनों कल्पनायें मिथ्या है। इसी प्रकार ब्रह्म में माया द्वारा किया गया गुणों का आरोप वृथा है। ब्रह्म निर्गुण, निधर्म है। जब तक हम माया को सब मानते हैं, तब तक ब्रह्म साक्षी रूप है पर माया और अविद्या का निरसन होने पर एक मात्र ब्रह्म ही शेष रहता है, फिर द्वैत के लिए स्थान ही कहाँ ? इसलिए सर्वसाक्षी मन तुरीया के आगे उन्मनी अवस्था आनन्द सागर में लीन होने पर तुरीया का द्वैत-ज्ञान सहज ही विलीन हो जाता है। जब द्वैत की कल्पना करने वाला मन ही उन्मन हो गया तब द्वैत भी समाप्त हो गया और द्वैत की कल्पना से सापेक्ष अद्वैत माप भी तिरोहित हो गया। द्वैताद्वैत कल्पनायें यह वृत्तियों का

खेल है। वृत्ति रहित ज्ञान ही सच्चा समाधान है, जहां माया और ब्रह्म का अनुसंधान छूट जाता है। ब्रह्म कल्पनातीत निर्विकल्प है। ब्रह्म मन-बुद्धि के उस पार है। वहां द्वैत कहाँ ? द्वैत की कल्पना में ब्रह्म नहीं और जहाँ ब्रह्म है वह द्वैत नहीं। सारा खेल कल्पना का है। कल्पना ही माया का आवरण कर ब्रह्म को सिद्ध करती है, सन्देह पैदा करती है और उसका निवारण भी करती है। बन्ध और मोक्ष दोनों कल्पना ही हैं। ब्रह्म का अनुसन्धान अथवा चिन्तन भी कल्पना ही है। कल्पना ही द्वैत की माता है। ज्ञान भी कल्पना है। अशुद्ध कल्पना मिथ्या ब्रह्मांड को दर्शाती है और शुद्ध कल्पना ब्रह्म-स्वरूप का ध्यान दिलाती है। कभी संसार का भय, कभी स्थिर भाव से स्वरूप का ज्ञान, कभी ज्ञान कभी अज्ञान, कभी विकारों का प्रभाव ये सब कल्पनायें ही हैं। मैं जन्म-मृत्यु वाला हूँ वह भी कल्पना और 'मैं मुक्त हूँ' यह भी कल्पना। पहली कल्पना पतनकारी है और दूसरी मोक्ष का समाधान देने वाली अर्थात बन्ध और मोक्ष का मूल कारण ही है। श्रवण मनन और निदिध्यास के अभ्यास से माया की मिथ्या कल्पना निःशेष हो जाती ह और शुद्ध ब्रह्म का निश्चय हो आता है। सूर्य प्रकाश के सन्मुख अन्धकार कैसे टिक सकता है ? इसी भाँति शुद्ध ज्ञान के निश्चित से द्वैत कल्पना का निरसन हो जाता है। ब्रह्म की शुद्ध कल्पना से माया की मिथ्या कल्पना सहज ही नष्ट हो जाती है। कल्पना से ही कल्पना का विनाश हो जाता है। जैसे बाण से ही बाण का प्रतिकार किया जाता है, वैसे ही निर्गुण की शुद्ध कल्पना से सगुण द्वैत की अशुद्ध कल्पना का प्रतिकार हो जाता है। अतः दृढ़ निश्चय के साथ अखण्ड श्रवण मनन करते रहना चाहिये और जिसे द्वैत का आभ स हो रहा है, वह मैं नहीं हूँ इसका सदैव स्मरण रखना चाहिये।

छठवां समास

बद्ध-मुक्त निरूपण

प्रश्न कर्ता अब आगे कहता है कि अद्वैत-ब्रह्म कल्पना रहित है, इस निरूपण से मैं क्षण भर के लिये तो तदाकार और तन्मय हो गया पर मैं स्थायी रूप से तदाकार होकर ब्रह्म रूप हो जाऊँ और पुनः सांसारिक बन्धनों में न पड़ूँ, ऐसा कोई उपाय बताईये। थोड़े क्षणो के लिए निर्विकल्प ब्रह्म का अनुभव करूँ और फिर वृत्तियों पर आकर ठहरूँ, इस प्रकार की दुविधा में मैं नहीं रहना चाहता। जन्म-मृत्यु के फेरे, सुख-दुख के थपेड़े और इस वृत्तिरूप संसार से मैं हैरान हो गया हूं। जैसे किसी भ्रमर के पैरों में धागा बाँधकर उसे आकाश में उड़ने के लिए छोड़ दिया जाय और थोड़ी ही देर में धागे को खींचकर उसे नीचे उतारा जाय, ऐसी मेरी दशा हो रही है। मैं चाहता हूँ कि अद्वैत ब्रह्म का निरूपण सुनते ही मेरा देह पात होकर मृत्यु को अथवा अपने-पराये पन का भेद भाव नि.शेष्ट हो। ब्रह्म स्वरूप होकर साँसारिक कार्य करते रहना मुझे लज्जा जनक मालूम होता है। ब्रह्म लीन होने के पश्चात पुनः वृत्तियों के अधीन होकर संसार में क्यों फँसें ? ब्रह्म सुख को अनुभव होने पर भी संसार का आकर्षण रहता है और साँसारिक कार्यों में व्यस्त रहते हुए चित्त पुनः ब्रह्म की ओर दौड़ता है। इस प्रकार दुबिधा की स्थिति में मैं नहीं रहना चाहता। मैं इस स्थिति से ऊब गया हूँ। अतः ब्रह्म निरूपण में ही इस देह का पतन हो और मैं पुनः वृत्तिरूप संसार में न फँसूं इसका कोई निश्चयात्मक रूपाय बताइये। मेरा मन चञ्चल होकर दोनों ओर झूलता रहता है। किसी एक पर स्थिर नहीं होता। इसलिये चित्त के अखण्ड ब्रह्माकार होने का साधन बनाइये।

इस पर वक्ता कहते हैं कि तुम्हारा प्रश्न ठीक है पर में तुमसे भी एक प्रश्न पूछता हूँ। क्या जो ब्रह्म लीन होकर देह मुक्त हो गये केवल

उन्हें ही मुक्त कहा जाय और व्यास आदि अन्य महर्षि क्या मुक्त नहीं थे ? क्या तुम ऐसा समझते हो कि संसारिक कार्य करते हुए मुक्ति का लाभ हो सकता ? कहा गया हैं—

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक.
व्यासांम्बरीषशुक शौनक भीष्म दाल्भ्याम् ।
रुग्मांगदार्जुन वसिष्ट विभीषणादीन्
पुण्यानिमान्परम भागवतान्स्मरोमि ।।१।।
कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्लायनः ।
अविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ।।२।।

अर्थात प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीप, शौनक, भीष्म,काल्भ्य,रुक्मांगद,अर्जुन,वसिष्ठः विभीषण आदि महाभगवन और भागवत में वर्णित रवि,हरि. अन्तरिक्ष,प्रबुद्ध,पिप्लायन.आविर्होत्र,दुर्मिल,चमस तथा करभाजन थे नवयोगी एवम् ब्रह्मा-विष्णु-महेश, विदेह राजा जनक आदि अनेक ऋषि-मुनि सिद्ध योगी । आत्मज्ञान प्राप्त कर कर्म रत होते हुए भी मुक्त हुए हैं । अतः केवल देहपात होने वाले शुकदेव, वामदेव जैसे ही योगी मुक्त हुए हैं और अन्य मुक्त नहीं हो सकते ऐसा क्यों मानते हो ? ऐसा मानने वाले पढ़त मूर्ख ही हैं ।

जो जीवित अवस्था में ही ज्ञान प्राप्त कर साँसारिक कार्य भी करते रहते हैं, उन्हें जीवन्युक्त कहा जाता है और जो ब्रह्म लीन होकर देहमान भूल जाते हैं, वे विदेह-युक्त कहलाते हैं । स्वरूपबोध से तटस्थता या स्तब्धता प्राप्त होना यह देह धर्म है । उसका स्वरूप बोध से कोई सम्बन्ध नहीं आता । मुख्य वस्तु आत्मानुभव है । वह प्राप्त होने पर कोई स्तब्ध रहेंगे निश्चेष्ट रहेंगे और कोई हलचल अर्थात व्यवहार करेंगे ।

अपने स्वरूप का अनुभव ही मुक्ति है और सब बातें व्यर्थ हैं । हमको अपने स्वरूप का अनुभव प्राप्त करके ही तृप्त और सन्तुष्ट होना

चाहिए। जिसने आकण्ठ भर पेट भोजन कर लिया हो उसे यदि कोई भूखा कहे तो क्या यह भूखा हो जायेगा ? जब निराकार में देह का अस्तित्व ही नहीं, वह सन्देह किस बात का ? बद्ध और मुक्त के लक्षण तो केवल देह से सम्बन्ध रखते हैं। सत् स्वरूप न तो बद्ध है और न मुक्त। वह तो स्वयम् है। जो अपने पेट से मुक्ति का पाषाण बाँधकर संसार सागर से पार होना चाहता है, वह तो पाताल में ही पहुँच जाता है। जिसमें देह-बुद्धि होगी, उसे स्वस्वरूप की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। जिसका अहंकार नष्ट हो जाय, वही मुक्त हो सकता है, फिर वह चाहे बोले या मौन रहे। जो सत् स्वरूप कभी बद्ध हो नहीं सकता, उसके लिये मुक्ति की बात करना ही बेकार है। मुक्ति तो बद्ध के लिए चाहिये। कहा गया है—

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुण तो मेन वस्तुतः।
गुणस्य मायामूलात्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥

अर्थात बद्धता और मुक्ति विचार तो केवल माया के कारण है। नामरूपात्मक माया के नष्ट होने पर मुक्ति की कल्पना ही कौन करेगा ? बद्ध और मुक्त यह आत्मा के लक्षण नहीं है. वह तो देह के गुण हैं और देह आत्मा नहीं है। यह केवल अहङ्कार करने वाले के लिये बन्धन है। मायातीत परब्रह्म की प्राप्ति होने तक ही मैं पन का अहङ्कार रहता है। अतः बद्धता और मुक्तता सच्चे ज्ञानी के लिए केवल कल्पना मात्र है। यह मृग जल और बादल के समान मिथ्या कल्पना है। इस संसार स्वप्न में जो अपने को बद्ध या मुक्त मानता है, वह निद्रित ही है। इसीलिये बद्धता या मुक्तता का सही अर्थ ज्ञात नहीं होता। जिसे शुद्ध आत्मज्ञान हो गया हो, उसे सारे संसार के जीव मुक्त ही दिखायी देंगे। कोई बद्ध नहीं। अर्थात बद्ध और मुक्त की भावना ही गलत है। इसीलिये साधु-सन्त सदा देहातीत होते है। उन्हें बद्ध या मुक्त का कोई ध्यान ही नहीं रहता। अस्तु, अब हम इस समास को यहीं समाप्त

करैगे और आगे के समास में यह बतायेंगे कि साधन किस प्रकार करना चाहिये। उसे सब श्रोतागण सावधानी से सुनें।

सातवां समास

साधन-प्रतिष्ठा अलिप्त लक्षण

प्रश्न—ब्रह्म वस्तु यदि निर्विकार एवम् निर्विकल्प है, तो उसकी कल्पना कैसे की जाय? यदि जबरन कल्पना करने लगें तो भ्रमवश मन इधर-उधर भटकता रहता है। वस्तु न आँखों से दिखाई देती है। और न मनमें उसका आभास होता है, फिर ब्रह्म की पहचान कैसे करें? कल्पना करने से अन्धकार जैसा प्रतीत होता है। ब्रह्म तो रङ्ग-रूप-गुण विहीन और अचित्य है, अतः उस निर्गुण का दर्शन कैसे हो? कहा है—

अचित्या व्यक्त रूपाय निर्गुणाय गणात्मने।
समस्त जगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः॥

वह असङ्ग निरालम्ण और निःशब्द है उस अद्वैत का ध्यान करते हैं तो मनमें द्वैत ही खड़ा हो जाता है। यदि अनुसंधान न करें तो मन सन्देह करने लगता है ध्यान करते हैं तो मन शून्य के सन्देह में भटक जाता है और चिन्तन न करने पर कुछ भी ज्ञात नहीं होता। आपका कथन है कि मन की सन्देहावस्था दूर करने के लिये विवेक से काम लें, ज्ञानयुक्त व्यवहार करें और अहंभाव को मिटादें पर अहंभाव मिटे कैसे यह समझाने की कृपा करें।

उत्तर—परब्रह्म अद्वैत है और उसकी कल्पना करने पर द्वैत भाव खड़ा हो जाता है, यह तुम्हारा कहना गलत नहीं है। ब्रह्म का स्वरूप ही ऐसा है कि उसका शब्दों से वर्णन किया ही नहीं जा सकता। न वहाँ हेतु या कार्यकारण भाव सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। साथ ही वह 'एक सेवा द्वितीय' अर्थात उसके समान दूसरी कोई वस्तु न होने के

कारण उसके लिए कोई सार्थक उपमा भी नहीं दी जा सकती। उसका स्मरण करने पर स्मरण का ही विस्मरण हो जाना चाहिए अथवा विस्मरण की अवस्थायें भी उसका स्मरण रहना चाहिए। उसे जान लेने पर ज्ञान को भूल जाना चाहिए। उससे भेंट न होने पर भी भेंट हो जाती है और भेंट की इच्छा करने पर भेंट नहीं हो पाती, ऐसी यह विचित्र अवस्था है। यह ऐसी मौनवस्था है कि न वह बेंठती है और न छूटती है। उसकी प्राप्ति का जो भी उपाय करने लगते हैं, वह अपाय ही सिद्ध होता है। वह न जानकर जाना जाता है, न देखकर प्रकाशित होता है और देखने की चेष्टा करने पर अदृश्य हो जाता है। स्मरण और विस्मरण, मिलन और वियोग, ज्ञान और अज्ञान, देखना और न देखना इन सबसे वह अलिप्त है। वह ध्यान या चिंतन का विषय नहीं है। वह मन में समा नहीं सकता क्योंकि मन एक देशी और वह सर्वदेशी है। उसे यदि जल की उपमा दी जाय तो वह निर्मल और निश्चल है, जब कि जल वैसा नहीं है। जल ब्रह्माण्ड को भले डुबा दे पर वह उस ब्रह्म को नहीं डुबा सकता। न उसे प्रकाश की उपमा दी जा सकती है और न अंधकार की।

प्रश्न—ऐसे निरंजन ब्रह्म का, जो मन बुद्धि को दृश्यमान नहीं है, कैसे अनुसंधान किया जाय? झूठ मूठ ही कैसे अनुभव करें? पर ब्रह्म कोई वस्तु है ऐसा निश्चय ही नहीं हो पाता। उसका अस्तित्व ही नहीं है, ऐसा दृढ़ संदेह होने लगता है। अतएव और अच्छी तरह इसका विवेचन कीजिए।

उत्तर—यदि ब्रह्म के अभाव को सत्य मान लिया जाय, तो वेद शास्त्रों एवं व्यासादिक महर्षियों के वचनों को मिथ्या कहना पड़ेगा। तो क्या तुम मैं पन के अहंकार से उन्हें मिथ्या कहना चाहते हो?

अनेक ज्ञानियों ने आत्म-लाभ के जो साधन बतलाये हैं, वे मिथ्या नहीं है। स्वय शिवजी ने गुरु गीता में पार्वती जी को अद्वैत का उपदेश दिया था। इसी प्रकार अवधूत जी द्वारा अवधूत-गीता में गोरखनाथ को ज्ञान मार्ग बतलाया गया है। विष्णु ने भी हंस गीता में राजहंस के वेष में ब्रह्माजी को रसका उपदेश दिया है। इसी प्रकार ब्रह्माजी ने नारद को चतुः श्लोकी भागवत द्वारा यही उपदेश दिया है जिसे आगे चल कर व्यास जी ने विस्तार से समझाया है। महर्षिवसिष्ठ ने योग-वसिष्ठ में श्री रामचन्द्रजी को तथा श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में अर्जुन को भी यही बातें समझायी हैं। अद्वैत का ज्ञान शुरु से अन्त तक सत्य ही है। इसलिए आत्म-ज्ञान को मिथ्या करने वाले का पतन होता है पर अज्ञानियों का इसका भान नहीं होता। जहां शेष की मति कुंठित हो गयी और जहाँ श्रुति पुराणों ने 'नेति नेति' रह कर मौन साध लिया, वहां हम उस ब्रह्म स्वरूप का वर्णन कैसे कर सकते है ? उस स्वरूपस्थिति का अहंकार के अभिमान से हमें अनुभव न हो सके, इसलिए उसे मिथ्या कहना मूर्खता है। सत्य ब्रह्म को मिथ्या और मिथ्या माया को सत्य मानने वाला सदेह सागर म डूबा रहेगा। मन को कल्पना करने की और जो कल्पनायें आवे उसे ही सत्य मानने की आदत है। अतः वह अन्य वस्तुओं के समान ब्रह्म की भी कल्पना करने लगता है पर स्वरूप में कल्पना की पहुंच न होने से से वह अपनी कमजोरी छिपाने के लिए संशयग्रस्त होकर 'मैं' पन का अभिमानी बन जाता है। अतः 'मैं' का अहंकार सर्वथा त्याग का सत्संग द्वारा सशय शून्य परमात्य-स्वरूप से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए।

'मैं' पन का अहंकार बड़ा कठिन है। 'मैं' पन न शरअ से टूटता है, न फूटता हैं। वह किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। और इसी 'मैं' के अहंकार के कारण ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। अहंकार से ही भक्ति और वैराग्य अपंग हो जाते है। 'मैं' पन से

साँसारिक कार्य भी ठीक से सम्पन्न नहीं होते परमार्थ तो सधता ही नहीं और यश कीर्ति की भी हानि होतीं है। इसी के कारण मैत्री भाव नहीं रहता, प्रेम नहीं टिकता, वृथाभिमान बढ़ता है. कलह और विकल्प बढ़कर एकता का नाश होता है। अत: 'मैं' पन त्याग कर आत्म समाधान में लीन रहना चाहिए।

प्रश्न मैं' पन कैसे छोड़ा जाय ? ब्रह्म का अनुभव कैसे हो ? आत्म समाधान कैसे प्राप्त हो ?

उत्तर—'मैं' पन को जानकर उसे त्याग देना चाहिए। ब्रह्म रूप होकर उसका अनुभव करना चाहिए और निस्संग होकर आत्म-समाधान का आनन्द भोगना चाहिए जो मैं' पन का अभिमान छोड़ कर साधन करता है. वही धन्य है। मैं ब्रह्म ही हूँ, अतः साधन की कोई आवश्यकता नहीं ऐसी कल्पना करना भी अज्ञान है। कल्पना से कल्पना का विस्तार होकर जीव संशयग्रस्त हो जाता है। ब्रह्म स्वरूप में कल्पना को स्थान नहीं। कल्पना का अनुसंधान करने वाला ही साधु है कल्पना कैसे खड़ी होती है, इसका निरीक्षण करें। मैं कल्पना करने वाला हूं ऐसा मानकर स्वयं निर्विकल्प की कल्पना करें कल्पना त्यागने का मार्ग हैं। जिसकी हम कल्पना करते हैं, वह हमारा रूप नहीं है, हम उस कल्पित रूप से परे हैं। यह अनुभव 'मैं' पन का त्याग होने पर ही हो सकता है। दक्ष और समाधिनी साधक साँसारिक कार्य करते हुए भी ब्रह्मज्ञान की भूमिका में स्थित रहते हैं।

जिसकी कल्पना करते हैं, वह ब्रह्म हत स्वयं हैं, यह अनुभव होने पर कल्पना शून्य हो जाती है। हम इस प्रकार स्वरूप में लवलीन रहकर साधन करते रहें। जैसे राजसत्ता प्राप्त होने पर राजा कुछ न करते हुए भी उसकी सत्तामात्र से सब शासन-कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है, वैसे ही ब्रह्म-स्वरूप भूमिका में रहते हुए भी सब साधन

कार्य करते रहना चाहिए। यह मानना चाहिए कि साधन देह कर रहा है और मैं देह से अलिप्त हूं। इस प्रकार कार्य करते हुए भी हम अकर्ता बने रहेंगे। इसे ही विदेह-स्थिति कहते हैं।

प्रश्न—यदि हम स्वयं साध्य अर्थात् ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं, फिर साधन की क्या आवश्यकता है।

उत्तर—यदि हम अपने को ही साध्य मानकर साधन छोड़ दें तो देह ममता बढ़ने की सम्भावना है ब्रह्मज्ञान के बहाने आलसी वृत्ति हो जाती है और परमार्थ के नाम पर अंतर में स्वार्थ खड़ा हो जाता है। ध्यान के बहाने हम निद्रावश हो जाते हैं। मुक्तपन की भावना से स्वच्छता बढ़ती है। निरूपण के नाम पर निन्दा करने लगते हैं, संवाद के नाम पर वितण्डावाद होने लगता है और उपाधि के कारण अहंकार बढ़ता है।

किं करोमि गच्छामि किं गृह्णामि त्यजाभिकिम्।
आत्मना पूरितं सर्वं महाकल्पाम्बुना यथा॥

इस कथन के अनुसार मनुष्य आलस्य के कारण भी ब्रह्मस्थिति का अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के समान मृत्य है। वह विपरीत आचरण द्वारा अपना ही अहित करता है और साधन छोड़कर मुक्त होने की बजाय और भी बद्ध हो जाता है। वह सोचता है कि यदि हम साधन ही करते रहेंगे तो सिद्धिता का अनुभव नहीं हो सकेगा। इसलिए वह साधन छोड़ देता है। वह यह भी सोचता है कि साधन करने पर मुझे लोग साधक ही समझेंगे, सिद्ध नहीं। पर उस मुर्ख को यह विदित नहीं कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवता भी साधन से ही ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित हैं। अतः हमें अविद्या की यह सब बातें छोड़ देना चाहिए। अध्यात्म-विद्या अभ्यास से ही अज्ञात होती है और उसी से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है। श्रोता पुनः पूछते हैं कि अभ्यास और परमार्थ का साधन क्या हैं? वक्ता इसका उत्तर आगे के समास में देंगे।

आठवां समास

श्रवण-निरूपण (१)

वक्ता कहते हैं—समाधान देने वाला परमार्थ का साधन श्रवण-भक्ति है। श्रवण के द्वारा भक्ति और विरक्ति (वैराग्य) दोनों का लाभ होता है और विषया सक्ति नष्ट होती है। श्रवण से चित्त-शुद्धि होकर मन के मल, विक्षेप व आवरण ये त्रिदोष दूर होते हैं। इससे आत्म-बुद्धि दृढ़ होकर जिस अहङ्कार की उपाधि से जीव संसार से जकड़ा गया है वह उपाधि भी टूट जाती है। 'मैं और मेरा' यह अहंभाव सत्सङ्ग और सद्‌ग्रन्थों के स्वाध्याय से ही दूर हो सकता है। आत्म-निश्चय और उसके द्वारा प्राप्त समाधान श्रवण से ही सम्भव है। श्रवण से मन पर नियन्त्रण होता है, अनेक कुसंस्कार मिटते हैं और समाधान-वृत्ति का लाभ होता है। सत्सङ्ग के श्रवण से प्रबोध होता है और प्रज्ञा (शुद्ध बुद्धि) का विकास होता है। इससे विषयों के पाश ढीले होकर टूट जाते हैं और साधक श्रोता के सद्‌विचार जागृत होकर उसे सत्यवस्तु लाभ होता है। श्रवण से सद्‌बुद्धि विकसित होती है और काम-क्रोधादि दुर्गुणों का पिंड छूट जाता है। इससे मोह नाश होकर शान्ति, निवृत्ति, सद्‌गति प्राप्त होती है। श्रवण के समान सारभूत दूसरा साधन नहीं है। भवसागर से पार उतरने का अध्यात्म-श्रवण अमोध साधन है। प्रवृत्ति हो या निवृत्ति श्रवण के बिना इच्छित वस्तु का लाभ नहीं हो सकता, यह अनुभव की बात है। बिना सुने-समझे सार-वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता इसलिए श्रवण-भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। जिसकी हमने कभी कल्पना ही नहीं की हो, उसके बारे में सन्देह बना रहता है। अतः सन्देह-निवारण के लिए सत्सङ्ग द्वारा श्रवण से अन्य कोई उपयुक्त साधन नहीं है। जैसे सूर्य के अभाव में सब ओर अन्धकार रहता है, वैसा ही श्रवण के बिना अज्ञान दूर नहीं होता।

नवविधा भक्ति, चतुर्विधा मुक्ति, सत्कर्माचरण, उपासना, व्रत तप, तीर्थाटन, योग-याग, पिंडज्ञान, तत्वज्ञान, सहज-समाधि इन सबका लाभ श्रवण के द्वारा ही हो सकता है। सब बनस्पति एक ही जल से बढ़ती हैं, सब जीवों की उत्पत्ति एक ही रस से होती है, सब जीवों के लिये एक ही आकाश है। सबके लिए एक ही पृथ्वी, एक ही सूर्य, एक ही वायु और सबका वास एक ही परब्रह्म तत्व में है। उसी प्रकार सब जीवों के लिए सारभूत साधन एकमात्र श्रवण ही है। संसार में यद्यपि अनेक भाषाय तथा अनेक मत-मतान्तर हैं पर सब का हीं ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन श्रवण ही है।

श्रवण के प्रताप से बद्ध जनों को उपरति होकर वे मुमुक्षु हो जाते हैं और मुमुक्षु साधक बनकर साधन करते हुए सिद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। श्रवण के द्वारा खल-चाण्डाल भी पुण्यशील महात्मा बन जाते हैं, दुरात्मा पुण्यात्मा हो जाते हैं। श्रवण-साघन की ऐसी महान महिमा है।

तीर्थ व्रतों का फल उधार है, जब कि श्रवण का फल तत्काल नगद है। जंसे रामबाण औषधि रोग का तत्काल निबारण करती है, वैसे ही श्रवण का चमत्कार है। श्रवण का महत्व जान लेने पर भाग्य श्री का ही लाभ नहीं होना, अपितु परमात्मा तत्व ही प्राप्त हो जाता है। इसे ही मनन भी करते हैं। श्रवण में अर्थ को सावधान होकर सुनना ही मनन कहलाता है। श्रवण, मनन, निदिध्यास और साक्षात्कार यह साधन का क्रम है। जो कुछ सुना गया उसका यथार्थ भाव को ग्रहण करने से समाधान प्राप्य होकर सन्देह की निवृत्ति हो जाती है। जन्म का भूल कारण जो सन्देह, वह श्रवण द्वारा दूर हो जाता है और बादलों के छुट जाने से जैसे आकाश स्वच्छ निर्मल हो जाता है, वैसे ही सन्देह निवृति होकर मन समाधान-सुख से डोलने लगता है। जहाँ श्रवण, मनन नहीं वहाँ समाधान कहाँ ? अतः मुमुक्षु, साधक और सिद्ध सबको श्रवण-मनन का अभ्यास रखना चाहिये। इससे चित्त शुद्धि होगी।

श्रवण के बिना परमार्थ का लाभ असम्भव है। इसलिये श्रवण-मनन-साधन का नित्य नियम से अभ्यास करते हुए संसार-सागर से पार उतरने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार शरीर-पोषण के लिये प्रतिदिन अन्न-जल का सेवन करना पड़ता है, उसी भाँति आत्म-लाभ के लिए हर समय श्रवण मनन करते रहें। जो श्रवण:मनन में आलस करेगा, वह अपना ही अहित करेगा।

नवां समास

श्रवण-निरूपण (२)

अब श्रवण कैसे किया जाय और कौन-कौन से ग्रन्थों का परिशीलन किया जाय, यह बतायेंगे। किसी-किसी का प्रवचन ऐसा होता है कि उसे सुनकर मनुष्य को प्राप्त थोड़ी बहुत शान्ति भी नष्ट हो जाती है। जिसमें निश्चयात्मक ज्ञान नहीं अर्थात जिसमें सब निरूपण केवल मायिक अर्थात संशयास्पद होता है, ऐसा प्रवचन सुनना ही व्यर्थ है। एक ग्रन्थ में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है और दूसरे ग्रन्थ में उसका खण्डन। अब यदि कोई दोनों ग्रंथों का पठन या श्रवण करे तो वह अधिकाधिक सन्देह का शिकार हो जाता है। अतएव जिन ग्रन्थों से सन्देह नष्ट होकर सब आशङ्काओं का समाधान हो सकता है ऐसे ही अद्वैत वादी ग्रन्थ ही परमार्थ मार्गियों को श्रवण करना चाहिये। मोक्ष के अधिकारी मुमुक्षुओं को अद्वैत ग्रन्थों की ही रुचि होती है। जिन्हें साँसारिक बातों से अरुचि होकर परमार्थ की ही प्रेरणा हो उन्हें अद्वैत शास्त्र का ही परायण करना चाहिये। जिसे अद्वैत की चाह हो उसे द्वैत की बातें बताने वाले ग्रन्थ से अरुचि होती है। जो चीज जिसे पसंद है, वह उसे प्राप्त होने पर आनन्द होता है, यह मानव-स्वभाव है। जिसकी जो उपासना हो, वही उसे प्रिय लगती है। उसे दूसरे देवता की स्तुति पसन्द नहीं आती। यह प्रेम का स्वाभाविक लक्षण है।

आत्मज्ञानी व्यक्ति को सारासार विवेक ही अच्छा लगता है। देवी भक्तों को सप्तशती का पठन श्रवण भाता है। अन्य देवताओं के लिये उसके मनमें उतनी श्रद्धा नहीं होती। कामनाओं की बातें साधु पुरुषों को पसन्द नहीं आतीं। वीर कङ्कण हाथ में ही शोभा देता है, उसे नाक में नहीं पहना जाता। वस्तु यथास्थान ही शोभा देती है।

अतः जिसे सचमुच आत्म-कल्याण का साधन करना है, उसे नित्य अद्वैत-ग्रन्थों का ही परिशीलन करना चाहिये। इन ग्रन्थों का वह एकांत में एकाग्र चित्त से मनन कर शान्ति प्राप्त कर सकता है। सब दृष्टियों से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि अद्वैत ग्रन्थ के समान दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं हैं। वह परमार्थ के तट पर पहुँचाने वाला जहाज हैं। कुछ पुस्तकें हास्य विनोद की कथाओं से भरी रहती हैं, कई पुस्तकों में शृङ्गार, वीर, करुण आदि नव रसों का निरुपण रहता है पर ऐसी पुस्तकें या ग्रन्थ परमार्थ के लिये उपयुक्त नहीं हैं। जिन ग्रन्थों के अध्ययन या श्रवण से परमार्थ बुद्धि का विकास हो, संसार से अनुताप होकर भक्ति-साधन की प्रेरणा मिले, अवगुण नष्ट होकर सात्विक वृत्ति और परोपकार बुद्धि की वृद्धि हो, विषय-वासना नामेशष होकर ज्ञान-मार्ग सुलभ हो, अहङ्कार और भ्रान्ति की भावना मिटकर चित्त भगवान की ओर आकर्षित हो तथा जिससे अधोगति टलकर मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो ऐसे ग्रन्थ को ही हम 'ग्रन्थ' कहेंगे। अनेक प्रकार के विधि-विधान बतलाकर फल श्रुति के रूप में प्रलोभन देने वाले ग्रन्थ 'ग्रन्थ' नहीं हैं। जिस ग्रंथ से विरक्ति तथा भक्ति भाव उत्पन्न न हो और जो मोक्ष-लाभ का मार्ग न बतलाता हो, वह ग्रन्थ ही नहीं है, जिस ग्रन्थ के श्रवण से लोभ बढ़ता हो, वह ग्रंथ विवेक को कैसे जागृत कर सकेगा ? ग्रन्थ की फल श्रुति सुन कर उसके लाभ प्राप्त करने की दुराशा मन में पैदा होना ही अधोगति है। अनेक प्रकार के फल खाकर पक्षी तृप्त हो जाते हैं पर चकोर अमृत पान के लिये निस्पृह होकर प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार प्रपञ्चों में निमग्न लोग अनेक सांसारिक लाभों के

वश हो जाते हैं जब कि भगवान के निष्काम भक्त भगवत् प्रेम की ही इच्छा रखते हैं। ज्ञानी को ज्ञान की, भक्तों को भजन की साधक को अपने प्रिय साधन की, योगी को योग की, भोगी को भोग की, रोगी को रोग निवारक औषधि की अभिलाषा रहती है। कवि को काव्य, तार्किक को तर्कवाद, भाविक को सम्वाद, पण्डित को व्युत्पत्ती, विद्वान को अध्ययन, चतुर को चतुरता, गायक को राग, योगाभ्यासी को शरीर-ज्ञान, तत्वज्ञा को तत्वज्ञान, वैद्य को आयुर्वेद, कामी पुरुष को शृङ्गार, मसखरे को हास्य-विनोद, निन्दक को दूसरों के दोष, पापी को विषय, भोले भक्त को भक्ति, तन्त्रज्ञ को तन्त्र-विद्या, शूरवीर को संग्राम, बहु-श्रुत को नाना विषय की चर्चा, और मुमुक्षु को मोक्ष प्रिय होता है। इस प्रकार प्रत्येक को अपने-अपने विषय में रुचि होती है। लोग अपने-अपने प्रिय विषय की पुस्तकें पसन्द कर उनका अध्ययन किया करते हैं पर यह सच्चा स्वाध्याय का ग्रन्थ पठन नहीं है। न इनके श्रवण से ही मोक्ष मार्गी को कोई लाभ हो सकता है। वस्तुत जिस ग्रन्थ के पठन से मोक्ष साधन का मार्ग उपलब्ध नहीं हो सकता, ऐसे ग्रन्थ का पठन श्रवण ही साधक के लिये व्यर्थ है। जिस ग्रन्थ के परिशीलन से आरम्भ लाभ न होता हो, उसका श्रवण ही व्यर्थ है। वह श्रवण ही नही है। वह केवल मनोरञ्जन और समय का दुरुपयोग मात्र है। बिना मिठास के मिष्ठान्न बिना नाक के सुन्दरता और बिना ज्ञान के निरूपण व्यर्थ ही है। इस विषय में अब तक बहुत कुछ समझाया गया है। सार बात यह है कि मुमुक्षु साधकों को केवल अद्वैतवादी परमार्थ ग्रन्थों का ही अवलोकन, श्रवण और मनन करना चाहिये। परमार्थ ग्रंथों के अति-रिक्त अन्य ग्रन्थों का पठन-पाठन व्यर्थ है। जिन ग्रन्थों में नित्य अनित्य विवेक अर्थात सार-असार विचार का निरूपण किया गया हो, वे ही ग्रन्थ तारक हो सकते हैं।

दसवां समास

देहातीत-लक्षण

जगत मिथ्या होकर सत्य प्रतीत होता है और ब्रह्म सत्य होकर भी मिथ्या जान पडता है, यह सब माया का खेल है। सत्य वस्तु को जानने के लिए अनेक प्रवचन-निरूपण सुनने पर भी चित्त में दृढ़ बनी हुई असत्य-भावना नष्ट नहीं होती। वेद-शास्त्र-पुराण आदि ग्रन्थों में सत्य-ब्रह्म का निश्चयात्मक निरूपण किया गया है पर सत्य का मुख आंच्छादित होने से वह दिखाई नहीं देता और असत्य में ही सत्य का अभास होता है। यह सब माया की विपरीत करनी है। पर सत्संग के निरूपण में इन सब बातों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

अस्तु, अपने आपको जान लेने से ही सच्चा समाधान होता है। चित्त और चैतन्य एक ही है ऐसा आत्म-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होकर प्रारब्ध पर देह सोंप दिया जाय और बोध से संदेह की निवृत्ति हो जाय फिर शरीर का कुछ भी परिणाम हो, उसकी क्या चिंता? उसका ज्हाँ भी पतन होगा, वही पुण्यभूमि होगीं। सर्वसाधारण लोग पुण्य क्षेत्र में शरीर छोड़ना चाहते हैं। उन्हें उत्तरायण में मरना उत्तम औंर दक्षिणायन मेंमृत्यु आना बुरा लगता है। उनकी यह धारणा होती है कि मृत्यु के समय उत्तरायण का काल हो, शुल्क पक्ष हो, घर में संध्या समय हो और भगवन् चिंनन की स्मृति बनी रहे, तो सद्गती प्राप्त होती है। पर सच्चा ज्ञानी भक्त यह सब कुछ नहीं चाहता। क्योंकि वह जीवित अवस्था में ही मुक्ति का आनन्द भोगता है। भगवत् प्राप्ति की कल्पना से यदि हमने अपने जीवन में शरीर का सार्थक सदुपयोग न किया, तो सद्गति और मुक्ति का लाभ कैसे मिल सकता है? हमने यदि अच्छा बीज ठीक बोया हो तो अच्छे फल कहां

से प्राप्त होंगे ? ईश्वर भजन से ही जीवन सार्थक हो सकता है। यदि जीवन में हमने भगवत्-भक्ति का आश्रय नहीं लिया तो मरणोपरान्त मुक्ति की आशा करना व्यर्थ है। जो जैसा करेगा, वैसा उसे फल मिलेगा। जीवन्मुक्त ज्ञाता का मृत शरीर चाहे जगल में पडा हो, चाहे स्मशान में, चाहे पशु-पक्षी उसे खा जाँय, वह धन्य ही कहा जायगा।

अज्ञानी जन वृथा ही इसका शोक करते हैं। जिसका जन्म नहीं, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है। जिसने स्वस्वरुपानुसंधान से माया के खेल को जान लिया है, उसे मृत्यु का भय कैसे हो सकता है ? जो जीवित अवस्था में ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर चुका है, वह मुक्त ही है। ऐसा ज्ञानी पुरुष यद्यपि लोगों को सर्व सामान्य जैसा ही दिखाई देता है, पर उसकी अवस्था अलग ही होती है। उसे इस दृश्य ससार का स्पर्श ही नहीं होता। ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष के उपदेश और भजन मात्र से ही अन्य जन पावन हो जाते हैं। जो सद्गुरु का सच्चा शिष्य है, उसे विवेक पूर्वक अध्यात्म का श्रवण-मनन और निदिध्यास करना चाहिए। सत् शिष्यों को—साधकों को—हमारा यही अन्तिम निवेदन है कि सब सज्जनों की शरण में रहकर उनके मुख से अध्यात्म ज्ञान का श्रवण करें। ऐसा करने पर तुम भी सच्चे सन्त बन कर लोक-कल्याण करने में समर्थ हो सकोगे। सत्संग से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। गुरु भक्ति के आधार, निरूपण के विचार और आचार शुद्धि के निर्धार से तुम भी स्वस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। सद्गुरु के वचनों का पालन करने से परमार्थ-बुद्धि का विकास होता हैं और सहज समाधान की प्राप्ति होती है। शरीर को नश्वर जानकर उसे सदाचाप और परोपकार द्वारा सार्थक करना चाहिए। इसी से सद्गुरु कों सन्तोष होता हैं। जैसे माता अज्ञ बालक का अनेक कष्ट सहकर संगोपन करती है, वैसे ही सद्गुरु अपने अनन्य भक्तों की चिंता करते हैं। अतः सद्गुरु की भक्ति करने वाले शिष्य धन्य हैं।

सारांश सत्संग अध्यात्म श्रवण और सद्गुरु-भक्ति इन तीन बातों में सब कुछ निहित है। इस ग्रन्थ का विवेक पूर्वक परिशीलन और मनन करेंगे उन्हें आत्म-निश्चय का बोध अवश्य होगा। जिस ग्रन्थ में अद्वैत का विवेचन हो, उसकी प्राकृत-ग्रथ होने के कारण उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अज्ञ जनों को यद्यपि इसका ज्ञान नहीं होता पर ज्ञानी तो जहां भी सार-वस्तु मिले उसे ग्रहण करना है। जहाँ 'नेति-नेति' कह कर वेदों ने घुटने टेक दिए वहाँ भाषा का प्रश्न वेकार है। परमात्म तत्व आदि से अन्त तक ऐसा अतकर्य है, जिसका शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता।

आठवाँ दशक

पहला समास

देव-दर्शन

अब इस समास में मति दन्द अज्ञानियों को भी सुलभ हो ऐसी भाषायें आत्म-बोध या विमल ज्ञान का निरूपण करेंगे। शास्त्र ग्रन्थ अनेक हैं। यदि उन सबका अध्ययन करना चाहें तो सारा जीवन भी उसके लिए अपर्याप्त हैं। इन शास्त्रों के परिशीलन से भी सशय नहीं मिटता, बल्कि वह और अधिकाधिक बढ़ता जाता है यदि जनम भर तीर्थ यात्रा करते रहें, तब भी सारे तीर्थों में नहीं पहुंच सकते। कुछ तीर्थ स्थान तो अति दुर्गम हैं। अनेक प्रकार के तप, दान, योग-याग नाना पंथ और मत-मतान्तर सब भगवद्-प्राप्ति के लिए ही हैं और उनके लिए अनेकष्ट किये बिना प्रभु-प्राप्ति नहीं हो सकती, ऐसा सब लोगों का विश्वास है। अतः ऐसे प्रभु के बारे में हमें पूरा ज्ञान होना चाहिए। इस संसार में अनेक देवी-देवताए हैं।,अतः हम एक परमात्मा को उपसना कैसे कहें? जगत् में अनेक प्रकार की उपासनाएं, पन्थ, देवी–देवता हैं और उनके भक्त एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं। ऐसी दशा में एक परमात्मा का निश्चय किस प्रकार किया जाय?

हजारों व्यक्तियों में कोई एकाध उस सर्व व्यापक निराकार निर्गुण परमात्मा का अनुसंधान करता है।

जिसने इन चराचर सृष्टि का निर्माण किया जो, ब्रह्माण्ड के सारे व्यापार का संचालन करता है, जिसने सूर्य में तेज और सागर में मर्यादा स्थापित की, जिसने अन्तरिक्ष मे नक्षत्र-तारकाओं को प्रतिष्ठित कर उन्हें गतिमान किया, जिसने अगणित जीव-जन्तुओं को उत्पन्न किया, जिसने ब्रह्मा-विष्णु-महेश के रूप धारण कर सृष्टि के निर्माण, पोषण और संहार का क्रम चलाया ऐसे तीनों लोक के स्वामी को ही परमात्मा कहा गया है।

पूजा स्थान में प्रतिष्ठित भगवान सृष्टि के जीवों को उत्पन्न नहीं कर सकता और न उसमें अनंत ब्रह्माण्ड को निर्माण करने की क्षमता है। अनेक स्थानों के देवी-देवताओं में भी यह शक्ति नहीं है। सर्व-व्यापक, सर्वसाक्षी और सर्वकर्ता भगवान तो निराकार है।

अब निराकार परमात्मा से साकार सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ, इस पर विचार करेंगे। प्रथम तत्व आकाश अर्थात अन्तरीक्ष केवल शून्य है। उसी आकाश से परमात्मा के संकल्प मात्र से वायु उत्पन्न हुआ। फिर वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी प्रगट हुई। यह अपठित घटना जिसने की वही परमात्मा है। परमात्मा निर्मित इस सृष्टि मे ही पाषाण पैदा हुए और उसी पाषाण की मूर्तियों का अविवेकी जन भगवान कहने लगे। सृष्टि का सर्जन करने वाला परमात्मा या सृष्टि से ही बने हुए पत्थर परमात्मा ? सृष्टि कर्ता भिन्न है कार्य और कारण एक नहीं हो सकते। अतः सृष्ठि कर्ता सृष्टि के परे है, इस बात का मन में दृढ़ निश्चय होना चाहिए। कठ-पुतली और उसका सूत्र धार एक नहीं हो सकते। इसी भांति सृष्टि कर्ता सृष्टि का ही अंग या जीव कैसे बन सकता है ? वह जगदीश जगत में व्याप्त रहकर भी उससे अलिप्त है। वैसे ही पंचभूतों से निर्मित इस देह से आत्मा भी अलिप्त है। अविद्या के कारण माया सत्य

प्रतीत होती हैं पर वास्तव में माया से निर्मित यह सृष्टि मिथ्या और एक मेवा द्वितीय ब्रह्म ही सत्य है। वह ब्रह्म स्वरूप परमात्मा सबसे परे और सर्वव्यापी है। उसके अतिरिक्त सारा प्रपंच माया का खेल अर्थात मिथ्या है। भगवान आये और गये, उनका जन्म हुआ और स्वर्गवास हुआ, इस प्रकार की भाषा का प्रयोग पाप है। जिसकी सत्ता मात्र से इन्द्र आदि देवता अमर हुए उस देवाधि देव को जन्म-मृत्यु कहां? अन्तःकरण, पंच प्राण और देह के अनेक तत्व चंचल, और नाशवान हैं पर परमात्मा निश्चल और अविनाशी है वहां कल्पना का भी प्रवेश नहीं है। यहां श्रोता प्रश्न करते हैं कि यदि परमात्मा कल्पनातीत है तो उसने ब्रह्माण्ड का निर्माण कैसे किया? अपने कार्य कारण से वह भी सगुण कहलायेगा? जैसा दृष्टा भी स्वयं दृश्य बन सकता है। वैसे ही क्या कर्तव्य के कारण निर्गुण में भी सगुण का भाव आ जाता है अतः हमें यह निश्चयपूर्वक समझायें कि इस ब्रह्माण्ड को बनाने वाला परमात्मा कौन और कैसा है? उसके लक्षण क्या हैं? वह वास्तव में निर्गुण है या सगुण? और यदि वह निर्गुण ही है तो यह सगुण सृष्टि का निर्माण उससे कैसे हुआ? इस प्रकार हमारे मनमें अनेक शंकायें हैं। कृपया आप उनका यथोचित्त समाधान करें। इस पर वक्ता कहते हैं कि अगले समास में हम इसका रहस्य समझावेंगे। श्रोतागण सावधान होकर सुनें।

दूसरा समास

सूक्ष्म आशंका (१)

पिछले समास में श्रोतागण द्वारा किये गये इस प्रश्न का कि एक मात्र निराकार, निर्विकार और निष्क्रीय ब्रह्म से मिथ्या सृष्टि रूपी माया का निर्माण कैसे हुआ, उत्तर इस प्रकार है।

आरम्भ में केवल नित्य मुक्त और निर्विकल्प ब्रह्म ही था और उसी से सूक्ष्म रूप में माया का आविर्भाव हुआ। जैसे—

आद्यमेकं परब्रह्म नित्य युक्त यविक्रियम्।
तस्य माया समावेशो जीवमव्याकृतात्मकम्॥

इस पर शंका की जाती है कि यदि ब्रह्म निर्गुण, युक्त और क्रियाहीन है, तो उसमें सगुण माया उत्पन्न करने की इच्छा (सगुणता) कहाँ से आई ? यदि कहा जाय कि निर्गुण ही स्वेच्छा से सगुण हो गया, तो यह कहना भी मुर्खता है। कोई कहता है कि उस 'कर्तुम-कर्तुम अन्यथा कर्तुम' ऐसे सर्व शक्तिमान पर ब्रह्म की लीला और महिमा को अज्ञ पामर जीव कैसे जान सकता है ? कोई कहता है—लोग शास्त्रों के वचनों का विपरीत अर्थ कर निर्गुण ब्रह्म में व्यर्थ ही कर्तृव्य का आरोप करते हैं। अतः जब उसमें कर्तापन है ही नहीं तब कैसे कहा जाय कि वह सब कुछ करके भी अकर्ता है ? जो मूल में ही निर्गुण और निष्क्रीय है, उसमें कर्तृव्य कहाँ से आया ? और जब उसमें कर्तृत्व नहीं तो सृष्टि की रचना करने का संकल्प उसमें कैसे हुआ ? बहुतेरे लोग कहते हैं—यह सब परमात्मा की इच्छा है पर यह समझने में नहीं आता कि निर्गुण में इच्छा कहां से आ गयी ? यदि यह कहा जाय कि बिना ईश्वरी इच्छा के ही यह सब कुछ हो गया तब फिर ईश्वर का अस्तित्व ही कहाँ रह गया ? फिर तो ईश्वर का ही अभाव मानना चाहिए। और यदि ईश्वर ही नहीं है तो इस माया रूपी मिथ्या संसार से हमारा उद्धार कौन करेगा ? फिर तो भक्तों की रक्षा करने वाला कोई रहा ही नहीं ? इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि माया ईश्वर से सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता है। इस माया का निर्माण और विस्तार करने वाली कोई स्वतन्त्र सार्वभौम सत्ता अवश्य है। अब वक्ता इन शंकाओं के बारे में आगे विस्तार पूर्वक विवेचन करेंगे, उसे श्रोतागण सावधान होकर सुनें।

कोई कहता है कि ईश्वर ने ही इस माया का विस्तार किया है। उसकी इच्छा से ही यह सृष्टि निर्माण हुई है। दूसरा कहता है कि निर्गुण निराकार ईश्वर को इच्छा कैसे उत्पन्न हुई ? यह माया केवल भ्रम रूप है। उसका अस्तित्व ही नहीं है। जैसे रज्जू में सर्प का आभास होता है, वैसे ही ब्रह्म में हमें माया का भ्रम हो रहा है। तीसरा कहता है कि माया प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है फिर उसे भ्रम कैसे कहा जाय ? अतः उसे परमात्म-शक्ति का ही आविष्कार कहना चाहिए। चौथा कहता है कि यदि सारा संसार ही मिथ्या है तब साधन भी क्यों किया जाय ? साधन भी सांसारिक माया ही कहलायेगा। फिर कोई कहता है कि दर्शक की भावना के अनुसार दृश्य भासित होता है। ठीक यही बात माया के लिए लागू होती है। कुछ लोग कहते हैं कि माया कोई चीज नहीं है। सब कुछ ब्रह्म ही है। घी चाहे जमा हुआ हो या पिघला, उसके दो रूप दिखाई देने से वह भिन्न नहीं हो जाता। इसी प्रकार माया और ब्रह्म एक ही तत्व के दो रूप हैं। कोई कहता है कि अलंकार और स्वर्ण में कोई भेद नहीं। स्वर्ण ही अलंकार है। कोई ब्रह्म स्वरूप परमात्मा और सृष्टि को समुद्र और उसकी लहरों की उपमा देता है तो कोई उसका खंडन करते हुए कहता है कि कैसा समुद्र और कैसी लहरें ! कहीं अचल वस्तु को चंचल वस्तु की उपमा दी जा सकती है ? कोई कहता है कि माया कल्पित है और यद्यपि वह प्रत्यक्ष सी दिखाई देती है पर वास्तव में उसका अस्तित्व नहीं है। सब कुछ ब्रह्म ही है। इस प्रकार अनेक प्रकार की शंकायें और तर्क-वितर्क उपस्थित किये जाते हैं, जिनका समाधान और शंका-निवारण आवश्यक है।

यह तो आप स्वीकार करेंगे कि माया मिथ्या है अब केवल यह समझना है कि वह ब्रह्म से कैसे प्रकट हुई। मिथ्या शब्द से फिर उसे किसने बनाया और क्यों बनाया, यह प्रश्न ही नहीं उठता। यदि यह कहा जाय कि वह निर्गुण ब्रह्म का ही खेल है, तो यह भी अघटित

बात मालूम होती है। अतः श्रोताओं को अगले समास में इन सारी शंका-कुशंकाओं का समाधान करेंगे।

तीसरा समास

सूक्ष्म आशंका (२)

वक्ता कहते हैं—अरे, जो हुआ ही नहीं, उसकी बात क्या पूछते हो ? पर चूँकि आप लोगों ने पूछ ही लिया है इसलिए आपके प्रश्न का समाधान करना ही होगा। जैसे रस्सी में सर्प का भास होता है, जल तरंग उठती है, सूर्य किरणों के कारण मृगजल दिखाई देता है, कल्पना से स्वप्न की सृष्टि होती है, वैसे ही ब्रह्म की छाया मात्र माया सच्ची प्रतीत होती है। भगवान की लीला अपरंपार है। अनन्त ब्रह्माण्डों का उसने निर्माण किया है। उसी परमात्मा, परमेश्वर, सर्व-कर्ता, अनन्त नामी, अनन्त शक्ति सम्पन्न जो मूल परब्रह्म तत्व है, उसी से सारा विस्तार हुआ है। उसे मूल माया भी कहा जाता है। वास्तव में सृष्टि का अस्तित्व ही नहीं है पर जिन्हें सृष्टि आभास है, ऐसे लोगों को समझाने के लिए ब्रह्म और माया, जगदीश्वर और जगत इस प्रकार द्वैत का आश्रम लेना पड़ता है। मूल माया ब्रह्म ही है। वही मूल पुरुष अनन्त नामी जगदीश है। वही नाम रूपात्मक शक्ति है। अब उस ब्रह्म शक्ति से माया का उद्भव कैसे हुआ सुनिये।

मदारी जैसे नजर बंदी से तत्काल मिट्टी से मिठाई, बीज से पेड़, शून्य से कबूतर आदि आश्चर्य जनक खेल करके बताता है, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा मनुष्य को माया से मोहित कर इस मायावी सृष्टि का प्रत्यक्ष जैसा आभास कराता है। आकाश शून्य और निर्मल होने पर भी जैसे उनमें वायु की चंचलता दिखाई देती है, वैसे ही निर्गुण निराकार ब्रह्म में सगुण साकार माया का भास होता है। जैसे वायु रूप से आकाश भंग नहीं होता, वैसे ही माया के कारण

निर्गुण ब्रह्म की व्यापकता में बाधा नहीं आती वायु पुरातन नहीं है, वैसे ही मूल माया भी नहीं है। वायु को यदि सत्य माना जाय तो वायु आकाश में और माया ब्रह्म में विलीन हो जाती है। जैसे वायु का रूप है, वैसे ही माया का रूप है। जैसे वायु का आभास होता है पर वह पकड़ में नहीं आती, वैसे ही माया भासित होती है पर उसका अस्तित्व नहीं है। वायु के कारण जैसे अदृश्य आकाश दृश्यमान होता है, वैसे ही ब्रह्म के कारण ही सृष्टि रूपी माया दृष्टि गोचर होती है। निश्चल आकाश बादलों के कारण चलायमान दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म निश्चल, निर्गुण होने पर भी चंचल और सगुण साकार दिखाई देने लगता है। बादलों के कारण चन्द्र दौड़ता हुआ नजर आता है, पर वह तो निश्चल है, बादल ही चलते रहते हैं। इसी प्रकार उस निश्चल निर्गुण परमात्मा का स्वरूप है। माया के कारण वह सगुण सा जान पड़ता है, पर यह केवल कल्पना मात्र है।

नजर बन्दी के खेल के समान ही यह सृष्टि रूप माया भी चंचल और असत्य है और ब्रह्म निश्चल और सत्य है। माया का यह स्वाभाविक गुण है कि वह असत्य को सत्य, निर्गुण को सगुण, निराकार को साकार कर दिखाती है। माया भी वस्तुतः कोई चीज नहीं है, फिर भी वह सत्य के समान भासती है और बादलों के समान उत्पन्न तथा नष्ट होती है। ब्रह्म में स्फूर्ति हुई कि मैं एक से अनेक बनूं और वही स्फूर्ति यह माया है। गुण तो माया का खेल है, जो कुछ दिखाई देता है, सब माया-जाल है।

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पंचतत्व माया में प्रारम्भ से ही रहते हैं। ॐकार भी वायु की गति है। जिसे दक्ष और ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। माया की चंचलता ही वायु है। सूक्ष्म तत्व ही आगे चलकर स्थूल बन जाते हैं। जो पंच महाभूत प्रारम्भ में अव्यक्त थे, वे ही सृष्टि रचना में व्यक्त हो जाते हैं। माया का स्वरूप भी पंच भौतिक है, अतः उसे बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से ही देखा जा सकता है। आकाश

और वायु के संयोग से माया में स्फूर्ति अर्थात इच्छा शक्ति का आविर्भाव हुआ और इच्छा शक्ति से आगे चलकर तेज अर्थात अग्नि प्रकट हुई। माया की मृदुता ही जल रूप में, द्रव वस्तु के रूप में प्रगट हुई और उसी से जड़ पृथ्वी का भी निर्माण हुआ। इस प्रकार यह सारा पंच भौतिक संसार माया का ही खेल है।

आदि में मूलब्रह्म, मध्य में माया रूपी पंच महाभूत,जो पृथ्वी (मृत्यु लोक) स्वर्ग, पाताल सर्वत्र व्याप्त हैं और अन्त में वही परब्रह्म हैं। जैसे—

स्वर्गे मृत्यौच पाताले यत्किंचित्सचराचरे।
सर्वं तत्पंच भौतिक्यं षष्ठं किंचिन्न दृश्यते॥

अब माया पंचभूतात्मक कैसे हुई, इस प्रश्न का उत्तर अगले समास में देंगे।

चौथा समास

सूक्ष्म पंचभूत निरूपण

पिछले समास में यह समझाया गया कि ब्रह्म से ही माया की स्फूर्ति हुई है। इस माया से आगे चलकर सत्व-रज-तम यह त्रिगुण उत्पन्न हुए। बाद में तमो गुण से सूक्ष्म पंचभूतों की सृष्टि हुई। इस तरह प्रथम पंच महाभूत उत्पन्न हुए और उनसे फिर सारी सृष्टि का विस्तार हुआ। सृष्टि पंच भूत किस प्रकार विद्यमान हैं, देखिए। जो वस्तु जड़ और कठिन है वह पृथ्वी तत्व है। कोमल और द्रवरूप पदार्थ जल तत्व है। उष्ण और तेज युक्त वस्तु अग्नि का अंश है। चंचलता और चेतनत वायु का गुण है और शून्य तथा निर्मल अवकाश ही आकाश है। पचभूतों के इन लक्षणों को हम हमेंशा ध्यान में रखें। अब इन पंचभूतों में भी प्रत्येक भूत (तत्व) में अन्य तत्व भी कैसे सन्निहित

हैं, इसे समझिये। मूल माया (ब्रह्म) त्रिगुणातीत है, अतः इस चीज को बड़ी सूक्ष्मता से जान लेना आवश्यक है।

(१) आकाश में पंचभूत—आकाश अर्थात अवकाश। अवकाश याने शून्य और शून्य अर्थात अज्ञान तथा अज्ञान ही जड़ता (पृथ्वी) का लक्षण है। आकाश स्वयं भी मृदु अर्थात कोमल है, जो जल का लक्षण है अर्थात आकाश में भी जल है। अज्ञान से अदृश्य शून्य आकाश भासमान होता है, यही तेज है अर्थात आकाश में तेज तत्व भी है। वायु और आकाश में अन्तर नहीं है। दोनों ही मूलतः स्तब्ध हैं और आकाश में वायु मिश्रित है। इस प्रकार आकाश तत्व में पाँचों तत्वों का समावेश है।

(२) वायु में पंचभूत–वायु का प्रकोप होते ही बड़े बड़े वृक्ष उखड़कर गिर जाते हैं। अर्थात वायु में शक्ति है, शक्ति सूक्ष्म रूप से पृथ्वी का अंश है। वायु में जो मृदुता है, वह जल का लक्षण है। वायु का आभास ही तेज है, वायु में आकाश तो मिला हुआ है ही और चंचलता उसका गुण ही है। इस प्रकार वायु तत्व में भी पंचभूत मिले हुए है।

(३) तेज (अग्नि) में पंचभूत—तेज का आभास यह पृथ्वी का गुण, आभास में मृदुता यह जल का लक्षण, तेज में तेज (प्रकाश) तो स्वयं सिद्ध है ही। और उसमें चंचल वायु और वायु से संलग्न आकाश का भी समावेश है।

(४) आप (जल) में पंचभूत—जल की मृदुता तो उसका स्वयं का स्वरूप हैं और उस मृदुता में भी बर्फ के रूप में कठिनता दिखाई देती है, वह पृथ्वी का लक्षण है। जल की मृदुता में तेज भी समाविष्ट है। जल की शक्ति से अनेक विशाल कार्य सम्पन्न होते हैं, यह तेज का ही प्रताप है। उसकी मृदुता में जो स्तब्धता एवं नीरवता है, वह वायु का लक्षण है और जल में भी आकाश तत्व है ही। क्योंकि वह तो सर्वत्र व्याप्त है। इस प्रकार जल-तत्व में भी पांचों तत्वों का मिश्रण है, यह बात सिद्ध हो गई।

(५) पृथ्वी तत्व में पंचभूत—अब पृथ्वी को लीजिए। वह स्वयं कठिन और स्थूल होने के कारण पृथ्वी तत्व तो उसमें मौजूद है ही और उसकी कठिनता में जो कुछ कोमलता है वह जल तत्व का कारण है। पृथ्वी में जो कठिनता का आभास होता है, वह तेज तत्व का प्रभाव है और कठिनताओं में जो निरोध और प्रतिकार करने की शक्ति है, वही वायु है। आकाश का कहना ही क्या ? वह तो सब तत्वों मे ओत प्रोत रहता है। अर्थात पृथ्वी तत्व में भी पाँचों तत्व विद्यमान हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से हमने देखा कि पंचभूतों में से प्रत्येक भूत में शेष चारों भूतों (तत्वों) का समावेश रहता है परन्तु स्थूल दृष्टि से वह अनुभव मे नहीं आता और इसीलिए उनमे बड़ा संदेह रहता है। इसी भ्रम के कारण अनेक विद्वान इस बारे में व्यर्थ का विवाद भी करने लगते हैं।

हमने यह देखा कि वायु में पांचों तत्व निहित हैं और यही पंच भतात्मक वायु माया का मूल स्वरूप है। माया और सूक्ष्म त्रिगुण (सत्व, रज, तम) सब पंचभूतात्मक ही हैं। जब तक इन पर सूक्ष्म विचार न किया जाय, तब तक इनके बारे में सन्देह करना मूर्खता ही कहलायेगी।

तीनों गुणों के कारण ही पंचमहाभूत स्थूल और व्यक्त हुए हैं या यों कहिए कि तीनों गुण ही पंच महाभूत के रूप में व्यक्त हुई हैं। आगे चल कर इन्हीं से पिंड और ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। इस ब्रह्माण्ड का विस्तार ही पंच भूतों के सम्मिश्रण और संयोग से कारण हुआ है और पंचभूत माया का खेल है अर्थात इस सत्य और तथ्य का सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना चाहिए।

पंच भूतों के पूर्व कहीं कुछ नहीं था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पृथ्वी, मेरु और सप्त समुद्र सब पंच भूतों के पश्चात ही उत्पन्न हुए हैं। अनेक लोक, अनेक स्थान, चन्द्र, सूर्य, तारामण्डल, सातों द्वीप, चौदह

भुवन, शेष, कूर्म, सप्त पाताल, इक्कीस स्वर्ग, आठ दिक्पाल, तैंतीस करोड़ देवी-देवता, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र नौ नाग, सप्तर्षि, अनेक अवतार, मनु और लाखों प्रकार की जीव-योनियाँ सब बाद में प्रकट हुईं। सारांश समस्त ब्रह्माण्ड विस्तार का मूल माया ही है।

हमने पाँचों भूतों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। श्रोताओं को इसका अच्छी तरह मनन करना चाहिए। इससे पंचभूतात्मक ब्रह्माण्ड की सब बातें स्पष्ट रूप से विदित हो सकेंगी और तब मनुष्य इस मिथ्या भ्रम रूप दृश्य जगत को भूलकर मूल वस्तु (ब्रह्म) की खोज कर सकेगा। जिस प्रकार महाद्वार को पार करने पर ही देवता के दर्शन हो सकते हैं, वैसे ही इस दृश्य जगत को पार करने से ब्रह्म का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। आगे चलकर पंच भूतों के लक्षणों को और विशद करके बतायेंगे।

पांचवां समास

स्थूल पंच महाभूत निरूपण

हम इस समास में पंच महाभूतों के लक्षण इसलिए अधिक स्पष्ट रूप से बतलाना चाहते हैं ताकि साधारण बुद्धि के लोग भी इस विषय को भली भाँति ग्रहण कर सकें। ये जो पंच महाभूत आपस में मिल गये हैं और इनके संयोग से स्थूल पंच भूतों की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि के सजीव एवं निर्जीव किसी भी पदार्थ में इनको अलग अलग नहीं पा सकते। सब में वे एकत्रित ही मिलेंगे। अब हम इन पांचों भूतों (तत्वों) को अलग अलग श्रेणी में विभक्त कर उनका वर्णन करेंगे।

(१) पृथ्वी तत्व—जड़ और कठोर पृथ्वी का अंश है। यह तत्व, पर्वत, पाषाण शिला, नानारंग की मिट्टी और बालू, गृह, नगर, मन्दिर तथा निर्जन वन, केवल इतना ही नहीं नौखण्ड पृथ्वी सब इसी पृथ्वी तत्व की रचना है। इन सब में पृथ्वी तत्व की प्रधानता रहती हैं, यद्यपि अन्य

चारों तत्व भी उनमें न्यूनाधिक प्रमाण में सम्मिलित रहते हैं। इनके अतिरिक्त सभी प्रकार के धातु, विविध रत्न, काष्ट वृक्ष आदि जितनी जड़ वस्तुयें हैं, उन सबमें पृथ्वी तत्व की ही प्रधानता है।

(२) आप (जल) तत्व—बावड़ी (वापी) कूप, सरोवर, अनेक नदियां, सप्त सागर और मेघ आदि जल प्रधान वस्तुएं हैं। इसी प्रकार मद्य, दूध, दही, घी, गन्ने का रस और शुद्ध जल सब जलांश हैं। कुछ जल पृथ्वी के गर्भ में हैं और कुछ ऊपर फैला हुआ है। अनेक पेड़ों के रस. शहद. पारा, अमृत, विष, तेलादि रस सारांश जो भी पदार्थ पतला, गीला नरम और शीतल होगा वे सब जल प्रधान हैं। शुक्र (वीर्य) रक्त, लार, पसीना, अश्रु, कफ, यह सब जल तत्व से ही निर्मित है।

(३) तेज (अग्नि) तत्व— चन्द्र, सूर्य, तारा मण्डल, दिव्य सतेज देह, आकाश में चमकने वाली बिजली और समुद्र में होने वाला वड़वा नल, शिवजी के तृतीय नेत्र की ज्वाला, जठराग्नि यह सब अग्नि तत्व से निर्मित हैं। जो पदार्थ प्रकाशमान, तेजस्वी, शोधक, उष्ण एवं प्रखर हैं, वे सब तेज (अग्नि) तत्व से बने हुए हैं।

(४) वायु तत्व— वायु का गुण चैतन्य और चंचलता है। जिस प्राणी या पदार्थ में हलचल है, जीवन है, प्रसारण और आकुंचन की शक्ति है, वह वायु प्रधान है प्राग, अपान, व्योन, उदान व समाद ये पंच प्राण और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनंजय ये पाँच उप-प्राण वायु से बने हैं। प्राण वायु का स्थान हृदय हैं। दिन उतरे आठों प्रहर में २१६०० श्वासोच्छास होते हैं। अपान वायु का स्थान गुह्य है। इससे मलमूत्र के उत्सर्ग की क्रिया होती है। उदान वायु कंठ में रहती है। अन्त-जल का विभाग करना और स्वप्न दर्शन आदि दूसरे कार्य हैं। व्योन वायु सारे शरीर में व्याप्त रहती है। शरीर के रोम-रोम से यह निकलती है। समान वायु का स्थान नाभि है। यह अन्न रस को सारे शरीर में पहुँचाती है।

पाँच उपप्राणों का कार्य इस प्रकार है। नाग प्राण का कार्य डकार आना, कूर्म प्राण का कार्य पलकों का खुलना-बन्द होना कृकल का कार्य छींक आना, देवदना का काम जमुहाई लेना और धनजय का का कार्य देह का पुष्ट करना है।

(४) आकाश-तत्व—अब अन्तिम तत्व आकाश का स्वरूप समझिए। आकाश परब्रह्म के समान शून्यवत पोला अचल, अटल, निर्मल एवं निश्चल है।

उपरोक्त पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चारों तत्वों का आस्तित्व आकाश में ही है। आकाश सभी तत्वों में सर्वश्रेष्ठ और सर्व व्यापक तत्व है। इस पर शंका की जा सकती है कि यदि ऐमा है तो आकाश को ही पर ब्रह्म क्यों न मान लिया जाय ? इसका समाधान यह है कि ब्रह्म निर्गुण है, जब आकाश में सप्त गुण हैं। काम, क्रोध, शोक, मोह, भय, अज्ञान और शून्यत्व यह आकाश का सप्तविध स्वभाव है। शास्त्रों ने ही आकाश के बन सात गुणों का वर्णन किया है। इसलिए आकाश भूत तत्व है और ब्रह्म स्वरूप निर्विकार है। इस प्रकार भेद के कारण आकाश को नहीं कहा जा सकता। चाँवल और सफेद कंकड, स्फटिक मणि और रुई, जल और काँच से जड़ी हुई जमीन, गुड़ और गुड़ से सना हुआ पत्थर, सोना और सोने का मुलम्मा किया हुआ पीतल, नागबेल और मुलैठी यद्यपि देखने में समान दिखाई देती हैं पर उनके गुण धर्म में आकाश पाताल का अन्तर होता है। आकाश यानी भूत-तत्व। तब भूत और अनना परमात्मा एक कैसे हो सकते हैं ? ब्रह्म का कोई वर्ण नहीं है पर आकाश का श्याम वर्ण है। तव फिर आकाश और ब्रह्म की समता कैसे हो सकती है।

इस पर श्रोता शंका करने हैं कि आकाश निराकार और अविनाशी है। शेष चारों भूत नष्ट हो जाते हैं पर आकाश का नाश नहीं होता। वह अचल दिखाई देता है। तब उसे ब्रह्म ही क्यों न कहें ? श्रोता की इस शंका के समाधान में वक्ता कहते हैं कि आकाश के लक्षणों को ध्यान पूर्वक सुनें। आकाश सगुण है। वह तपोगुण से

उत्पन्न हुआ है। इसीलिए वह काम-क्रोधादि विकारों से वेष्टित है और उसकी शून्यता का अर्थ-अज्ञान है। अज्ञान के कारण जो काम, क्रोध, मोह भय और शोक आदि विकार उत्पन्न होते हैं, वे सब अज्ञान या आकाश तत्व के कारण होते हैं। जिसका अस्तित्व नही वही शून्य कहलाता है। अज्ञानी को ही हृदय शून्य कहते हैं। शून्य ही अज्ञान है और अज्ञान का लक्षण जड़ता है। जो आकाश सगुण, शून्य अर्थात अज्ञान स्वरूप और विकार है. उसे सत् स्वरूप पर ब्रह्म कैसे कहा जा सकता है ?

आकाश अज्ञान मिश्रित है। आकाश और अज्ञान का मिश्रण ज्ञान द्वारा नष्ट होता है। अतः आकाश भी नश्वर तत्व है। यद्यपि आकाश और ब्रह्मस्वरूप दोनों एक से भासित होते हैं पर दोनों के बीच शून्यता का परदा है अर्थात दोनों भिन्न हैं। उन्मनी और सुषुप्तावस्था समान दिखाई देती हैं पर ज्ञानी पुरुष उनको पहचान लेते हैं। मृग जल को देखकर हिरन भ्रमित हो जाते हैं। क्योंकि उन्हें उसका रहस्य ज्ञात नहीं होता।

हमने यह सारे दृष्टान्त केवल समझाने के लिए संकेत रूप से बतलाये हैं। अतः अब श्रोता समझ गये होंगे कि आकाश भूत और अनन्त ब्रह्म एक नहीं हो सकते। आकाश को हम अलग होकर देख सकते हैं, वैसे ब्रह्म को नहीं। ब्रह्म स्वरूप तो अनुभव जन्य है। वह ब्रह्म लीन अवस्था में हीं प्रतीत हो सकना है। इसी प्रकार अब आप लोगों की आशंका का समाधान हो गया होगा। ब्रह्म स्वरूप का अनुभव उससे अलग रहकर नहीं किया जा सकता। आकाश का तो अनुभव प्रत्यक्ष है पर ब्रह्म स्वरूप अनुभव से परे है। अतः उसे आकाश कीं उपमा कभी नहीं दी जा सकती। जैसे दूध में मिला हुआ जल यद्यपि दूध के समान ही दिखाई देता है और उसी में घुला रहता है पर राजहंस पक्षी उसे अलग कर दूध को अलग करता है। उसी

प्रकार ब्रह्म स्वरूप और आकाश के भेद को सन्त-सज्जन ही जानते हैं इसके लिए मुमुक्ष और साधकों को सन्तों का समागम कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तथा इस सारे माया के खेल का रहस्य भली भाँति समझ लेना चाहिए। सन्त-समागम और सत्संग द्वारा ही मनुष्य का अज्ञान अंधकार मिटकर ज्ञान का प्रकाश उसे उपलब्ध होता है और अंततः उन्हीं के सान्निध्य और सदुपदेश द्वारा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग सुलभ होता है।

छठवां समास

दुश्चित निरूपण

अब श्रोता विनीत भाव से पूछता है कि संतसग की महिमा क्या है और उसके द्वारा मोक्ष-प्राप्ति कितने दिनों में हो सकती है? इस पर वक्ता कहता है कि सन्तों के वचनों में पूर्ण विश्वास रखने पर तत्काल मुक्ति का लाभ हो सकता है पर यदि चित्त में संदेह या दुविधा हो तो उससे हानि होती है।

इस पर श्रोता पुनः प्रश्न करता है कि चित्त स्थिर और निर्मल होने पर भी कभी कभी वह भटक जाता है, इसके लिए क्या किया जाय? उत्तर में कहा गया कि मनको सारे विचारों से विलग कर एकाग्र चित्त से उत्साह पूर्वक सत्संग में बैठना चाहिए और प्रतिपल सावधान रहकर समय का सदुपयोग करना चाहिए। सत्संग में जो कुछ श्रवण करें उसका बाद में मनन कर अर्थ को ध्यान में रखें। मन चंचल होने पर पुनः श्रवण-मनन करें। जो अर्थ का मनन करते हुए केवल श्रवण मात्र करता है। वह श्रोता नहीं कहा जा सकता। वह तो मनुष्य रूपी पाषाण है। पाषाण कहने से बुरा न मानें। पाषाण को यदि टाँकी से फोड़कर उसका टुकड़ा कर दिया जाय तो वह फिर नहीं जुड़ता परंतु मनुष्य की दुर्बुद्धि एक बार नष्ट होने पर भी पुनः आकर

घेर लेती है। अतः ऐसे मनुष्य से पत्थर करोड़ों गुना श्रेष्ठ है। पाषाणों में भी मोती, हीरा मानिक, प्रवाल, गोमेद मणि, पारस, सूर्यकान्त. सोमकान्त आदि अनेक प्रकार के मूल्यवान पत्थर होते हैं। कई पाषाण देवी-देवताओं की मूर्तियाँ गढ़ने के काम में आते हैं और कुछ मन्दिर, वापी, कूप आदि बनाने के कार्य में आते हैं, इस दृष्टि से पाषाण के समान लोकोपयोगी वस्तु क्या हो सकती है ? मनुष्य की उसके सामने क्या बिसात है ? जब कोई कोई पाषाण शोचालय में भी लगाया जाता है। ऐसे पाषाण की ही दुश्चित्त मनुष्य के देह से तुलना की जा सकती है। दुश्चित्त से प्रपंच और परमार्थ दोनों को हानि होती है। इससे न केवल कार्य बिगड़ते है अपितु उनसे अनेक चिंताएं पैदा होती हैं, विस्मरण से प्रमाद होते है, शत्रु से पराजित होना पड़ता है और जन्म-मृत्यु के चक्र से घूटना असंभव हो जाता है। दुश्चित्त मनुष्य साधन, भक्ति, ज्ञान कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका कोई निश्चय नहीं होता। अतः वह आत्म-कल्याण से वंचित रहता है। उससे श्रवण मनन भी नहीं होता। दुश्चित्त मनुष्य यद्यपि शाँत बैठा हुआ दिखाई देता है पर उसका चित्त सदा चंचल रहता है। अंधे, गूंगे या पागल व्यक्ति के समान ही दुश्चित्त प्राणी का जीव नविनष्ट हो जाता है। वह सावधान होते हुए भी अपना हित-अनहित नहीं पहचान पाता। वह सद्ग्रंथों क श्रवण करने के लिए बैठा रहने पर भी श्रवण नहीं करता। उसमें सार-असार विचार करने की बुद्धि नहीं होती ऐसे दुश्चित्त व्यक्ति को परमार्थ का लाभ कैसे मिल सकता है ?

दुश्चित्त मनुष्य का मन जब कभी शाँत होता है, तो उसे आलस आ घेरता है और तब उसे कोई कार्य करने की इच्छा ही नहीं होती। आलस से आचार-विचार भ्रष्ट हो जाते हैं, अच्छी बातों का विस्मरण हो जाता है, श्रवण-निरूपण आदि में मन नही लगता, परमार्थ की रुचि नहीं रहती, नित्य-नियम और अध्ययन नहीं हो पाता और आलस्य दिनों दिन बढ़ता जाता है। ऐसे मनुष्य की धारणा और

विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। उसकी वासनायें बढ़ती हैं पर बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती। आलस निद्रा बलवान हो जाती है और आयु का नाश करती है। निद्रा आलस और दुश्चित मूर्ख मनुष्य के लक्षण हैं। और जिनमें ये तीनों लक्षण हैं, उससे श्रवण-निरूपण कैसे हो सकता है? उसके पास विवेक नहीं होता। भूख लगने पर भरपेट भोजन करना, भोजनोपरांत नींद लेना और उठने पर पुनः दुश्चित्त का शिकार होना। वह कभी शाँत चित्त से सत्संग में श्रवण नहीं कर सकता और फलस्वरूप वह आत्म-हित से वंचित रहता है। जैसे बन्दर के हाथ में रत्न या पागल के हाथ में धन होने पर भी उसका कोई उपयोग नहीं होता, वैसे ही दुश्चित्त मनुष्य के लिए श्रवण-निरूपण भी निरूपयोगी रहता है।

अब सत्संग द्वारा कितने समय में मुक्ति मिल सकती है, इसका समाधान करेंगे। लोहे का पारस पत्थर से स्पर्श होने पर उसका सुवर्ण होने में या पानी की बूंद सागर या गंगा में गिरने पर उसमें विलीन होने में जितना समय लगता है, उतना ही समय आत्म-हित के लिए तत्पर, निर्मल चित्त और सावधान चित्त वाले साधक को सत्संग में बैठकर मोक्ष-प्राप्ति में लगता है। सत्संग के सच्चे अधिकारी व्यक्ति को तत्काल मोक्ष मिल जाता है, जबकि अन्य अज्ञानी दुश्चित्त व्यक्तियों को उसका परिचय ही नहीं होता। मुमुक्षु या शिष्य की प्रज्ञा (विवेक) ही मुख्य वस्तु है। प्रज्ञावान और अनन्य शिष्य को मोक्ष प्राप्ति में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं लगता। बिना प्रज्ञा के अर्थ ज्ञान नहीं होता और अनन्य भाव के बिना वस्तु का आकलन नहीं होता। जिसमें प्रज्ञा और श्रद्धा होती है, उसका देहाभिमान नष्ट होकर उसे तत्काल ब्रह्म प्राप्ति हो जाती है। सत्संग में सद्गति प्राप्त होने के लिए कुछ भी देर नहीं लगती। वह अनायास ही हो जाती है। सच्चे भक्त सामान्य साधनों द्वारा भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। सत्संग से विवेक-दृष्टि का लाभ होता है फिर भी हमें साधनों को नहीं छोड़ना

चाहिए। अब अगले समास मोक्ष का स्वरूप क्या है, ब्रह्म क्या है? उसकी प्राप्ति के लिए सत्संग की क्या आवश्यकता है? आदि बातों का विवेचन करेंगे।

सातवां समास

मोक्ष विवेचन

अब सुनिये कि मोक्ष के लक्षण क्या हैं और वह सत्संग से कैसे प्राप्त होता है। मनुष्य संकल्पों और देह भावना से बद्ध है और संत-सज्जन उसे सार-असार विचार समझाकर मुक्त कर देते हैं। मनुष्य अनेक कल्पों से यह मानता आ रहा है कि 'मैं जीव हूँ'। इसी मान्यता के कारण वह देहबुद्धि से अपने को बद्ध मानता है। जिसके मनमें यह दृढ भावना हो कि "मैं जीव हूँ अर्थात सांसारिक बन्धनों में जकड़ा हुआ हूँ। मेरा जन्म भी है और मृत्यु भी। मुझे अपने भले बुरे कर्मों का फल भोगना है।" ऐसा व्यक्ति न तो भोगों से छुटकारा पा सकता है और न वह जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकता है। ऐसा ही व्यक्ति बद्ध है। जैसे रेशम का कीड़ा स्वयं अपने ताने-बाने में बद्ध होकर मर जाता है, वैसे ही मनुष्य प्राणी भी जीव भाव से बद्ध रहता है। अज्ञानीं जीव बिना परमात्मा के स्वरूप को जाने यह सोचता है कि मेरा जन्म-मरण अटल है। अतः मैं इस जन्म में कुछ दान-पुण्य से अगले जन्म में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकूंगा। मैंने पूर्व जन्म में दान धर्म नहीं किया इसीलिए दरिद्री कुल में जन्म हुआ है। अतएव मुझे अब अवश्य कुछ दान-पुण्य करना चाहिए। ऐसा सोचकर वह कुछ पुराने वस्त्र और एकता से पैसा दान करता है और यह आशा करता है कि अगले जन्म में मुझे इसका करोड़ों गुना प्राप्त होगा। वह कुशावर्त और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में जाकर दान करता है और उसका करोड़ों गुना पाने की आशा करता है। धेला-पैसा दान किया,

किसी अतिथि-अभ्यागत को रोटी का टुकड़ा दे दिया और समझ लिया कि इसका करोड़ों गुना लाभ अगले जन्म में अवश्य मिलेगा। इस प्रकार की भावना और वासना ही मनुष्य को जन्म-कर्म के बन्धन में बांधती हैं।

जो यह सोचता हो कि इस जन्म में दिया हुआ, मुझे अगले जन्म में कई गुना होकर मिलेगा, वही अज्ञानी और बद्ध है अनेक जन्मों के बाद यह सुर-दुर्लभ नर-देह प्राप्त हुआ है। यदि इस देह से भी हमने ज्ञान के द्वारा सद्गति प्राप्त न की तो फिर जन्म-मरण का कभी अंत नहीं होगा। यह भी नहीं कहा जा सकता कि पुनः नरदेह की ही प्राप्ति होगी। न जाने कितनी बार किस किस नीच योनी में जन्म लेकर हमें भोग भोगना पड़ेगा। सब शास्त्रों में नर देह को परम दुर्लभ बताया गया है। जब पाप-पुण्य समान होते हैं, तब नर-देह प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। भागवत में व्यासजी ने कहा है—

नरदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं। प्लवं सुकल्पं गुरु कर्ण धारम्।
भयानुकूलेन नमस्वतारितम्। पुनान्मवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

अर्थात परम दुर्लभ नरदेह रूपी इस सुदृढ़ नौका, सद्गुरु रूपी कर्णधार और प्रभु-कृपा रूपी अनुकूल वायु को पाकर भी जो मनुष्य इस भव-सागर से पार होने का प्रयत्न न करे उसे आत्म हत्यारा ही कहना चाहिए। बिना ज्ञान प्राप्त किए वह जितनी योनियों में दुःख भोगता रहता है, उतनी ही आत्म-हत्याओं का वह दोषी होता है। रीछ, बन्दर, कुत्ते, कौए, मुरगे. घोड़े, बैल, भैंस, सूअर आदि की नीच योनियों में ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता, यह जानते हुए भी मूर्ख मनुष्य प्राप्त नर देह के नष्ट होने पर पुनः नर-देह प्राप्ति की आशा करता है। ऐसा क्या पुण्य उसने कर रखा है जिसके बलपर वह पुनः मनुष्य-योनि में आयेगा। प्राणी अपने ही संकल्पों के कारण अपने को बंधन में डालकर स्वयं अपना शत्रु बनाता है। यह संकल्प

का बंधन सत्संग के माध्यम से ज्ञान विवेक द्वारा ही टूट सकता है। गीता में कहा गया है—

आत्मैव दयात्मनों बन्धु रात्मैव रिपुरात्मनः।

अर्थात मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है।

सब चराचर सृष्टि पंच भौतिक है और प्रकृति अपने स्वभाव के अनुसार विविध रूप धारण करती है। देह, अवस्था, अभिमान, स्थान भोग, मात्रा, गुण और शक्ति ऐसे आठ तत्व प्रत्येक शरीर में होते हैं। इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण इसका चारों शरीर में ये आठ तत्व चौगुनी मात्र, में रहते हैं। पिंड और ब्रह्माण्ड का इन्हीं के विस्तार से अनेक कल्पनाओं का जन्म हुआ और तत्व-ज्ञान के विवेचन में अनेक भ्रांतियाँ पैदा हो गई हैं। इन मत-मतान्तरों के परे साधु-सन्त एकता का रहस्य समझने हैं। देह पंच भूतों का पुतला है और आत्मा उमसे अलिप्न है, इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। देह का अन्त में नाश हो जाता है, परन्तु आत्मा शाश्वत अर्थात अविनाशी है। देह पंच तत्वों का समुदाय है। अन्तःकरण पंचप्राण, पाँच विषय और दस इन्द्रियाँ मिलकर सूक्ष्म देह का विकास होता है। यह सूक्ष्म देह भी आत्मा नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण यह चार देह पिंड अर्थात शरीर में होते हैं और विराट, हिरण्य अव्याकृत और मूल प्रकृति यह चार ब्रह्मांड में होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रकृति और पुरुष मिलाकर दस देह हुए। ये सब तत्व नाशवान हैं और आत्मा इन सबका साक्षी एवं उनसे अलग है। यद्यपि कार्य-कर्ता और कारण उसका दृश्य रूप है पर वह उनसे भी सर्वथा अलिप्त है। जीव-शिव पिंड-ब्रह्माण्ड, माया-अविद्या आदि के बारे में वहुत कुछ बताया जा सकता है पर यह सब पंचीकरण का विषय है।

आत्मा भी चार प्रकार के बतलाये गये हैं। जीवात्मा, शिवात्मा परमात्मा अर्थात विश्वात्मा और निर्मलात्मा। उपाधि-भेद के कारण

ये कनिष्ट-श्रेष्ठ माने जाते हैं पर यथार्थ में चारों एक ही हैं। जो घट में भरा है, वह घटत्काश, मठ में व्यापक मठाकाश, मठ के वाहर का मरदाकाश तथा उपाधि मुक्त आकाश वह भिदाकाश कहलाता है। इस प्रकार आकाश के यद्यपि चार भेद बताये जाते हैं पर आकाश एक ही है। उसी भांति पिंड में व्यापक ब्रह्म के अंश को जीव, और ब्रह्माण्ड में व्यापक ब्रह्माण्ड में व्यापक ब्रह्माँश को शिवात्मा कहते हैं। ब्रह्मांड के वाहर के ब्रह्माँश को परमात्मा और सकल उपाधि विरहित ब्रह्म को निर्मलात्मा कहा गया है। इस प्रकार एक ब्रह्म के चार भेद बताये जाने पर भी आत्मा एक ही है। जैसे उपाधि भेद से आकाश अभिन्न होते हुए भी भिन्न-भिन्न मालूम होते हैं, वैसे ही उपाधि-भेद के कारण यद्यपि समझाने के लिए चार प्रकार के आत्मा बताये गये हैं, पर सब में एक ही आत्मा है, स्वानंद स्वरूप और सब तत्वों से निराला है। उपाधियों की छोड़ देने पर आत्मा अभिन्न और एक ही है। जीवात्मा एक देशीय भावना से अहंकार युक्त होकर जन्म मरण के चक्कर में घूमा करता है परे विवेक दृष्टि से देखने पर आत्मा को जन्म मरण नहीं है। तत्वों को शोध का तत्वों परे जन्म-मृत्यु रहित निरंजन आत्मा को पहचानना और वही मैं हूँ ऐसा निस्संदेह निश्चय होंना ही मोक्ष है। सन्त इसी महावाक्य का साधक को बोध कराते हैं। जिस क्षण में संत-सद्गुरु का ऐसा अनुग्रह हो जाता है उसी क्षण मोक्ष की उपलब्धि हो जाती है। आत्मा बद्ध है, ऐसा कभी विचार ही नहीं करना चाहिए। जैसे स्वप्न में अपने को बंधन में देखकर कोई भय से चिल्लाने लगे तो उसे जगा दिया जाता है. वैसे ही संत जन सारूपी स्वप्न से मनुष्य को ज्ञान-विवेक द्वारा स्वरूप की जागृतावस्थ में पहुँचा देते हैं और इसी स्वरूप-जागृती को मोक्ष कहा जाता है। अज्ञान रूपी घोर निशा की समाप्ति होते ही संकल्प-दुःखों का नाश होकर प्राणी तत्काल मुक्त हो जाता है। स्वप्न-बंधन से मुक्त करने का जागृति के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। संकल्पों से बद्ध जीव को

विवेक से ही मुक्त किया जा सकता है और यह कार्य स्वयं मुक्त हुए संतजन ही कर सकते हैं। आत्म-ज्ञान के विना अन्य सब उपाय व्यर्थ है। आत्मा न बद्ध है और न मुक्त। वह जन्म-मरण की कल्पना के परे है। बंधन और मुक्ति की कल्पना केवल हमारे मन की भावना मात्र है। कहा गया है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः

आठवां समास

आत्म-दर्शन

पिछले समास में यह बताया गया कि जीव और परमात्मा एक हैं. परमात्मा को जन्म-मृत्यु बंध-मोक्ष कुछ नहीं है. वह निरंतर और ननेकों में एक है। वह परमात्मा भक्ति से प्राप्त होता है। भवित अर्थात नवविद्या भक्ति और उसमें भी मुख्य है आत्म निवेदन भविन। आत्म-निवेदन का विचार स्वय अपने अनुभव द्वारा करना चाहिए अर्थात अपने आपको ही निवेदन करना चाहिए।

आत्म-निवेदन का विचार इस प्रकार किया जाय:—प्रथम 'मैं कौन हूँ, इस पर विचार करें। वाद में निर्गुण परमात्मा को पहचाने। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का अनुसंधान करने से तद्रूपता प्राप्त होकर परमात्मा से मैं अभिन्न हूँ ऐसा प्रत्यय आता है। वास्तव में भक्त और भगवान अलग अलग नहीं हैं यही अभेद भक्ति कहलाती है। संतों की शरण में जाने पर यह अद्वैत का बोध होता है और फिर द्वैत की भावना समूल नष्ट हो जाती है। नदी सागर में मिलने पर जैसे उसी में विलीन हो जाती है, वैसे ही भक्त और भगवान में भेदभाव या अलगाव नहीं रहता।

भावनाओं को अपने से अभिन्न मानना चाहिये। ऐसा करने पर भगवान का ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है। देह बुद्धि के कारण ही देह-दण्ड

भोगना पड़ता है। उसका त्याग करते ही ब्रह्म प्राप्ति हो जाता है। अब इसका और स्पष्टीकरण करेंगे।

देहातीत परब्रह्म वस्तु तुम ही हो। तुम विदेह हो और देह तुम्हारा संगी नहीं है। 'सोऽहं आत्मा स्वानंद धन। अजन्मा है स्वयं ज्ञान' इस संत वचन पर दृढ़ निश्चय से विश्वास रखो। 'तुम ही ब्रह्म हो' इस महाकाव्य के रहस्य को कदापि न भूलो। देह का अन्त होने पर मैं अनंत पद पाकर मुक्त हो जाऊंगा यह कहना मिथ्या है। कल्पान्त में माया नष्ट होने पर हमैं ब्रह्म को प्राप्ति होगी, उसके पूर्व नहीं ऐसा मानने वाले मूर्ख ही हैं। यह कहना गलत है कि जब माया और शरीर का अन्त होगा तभी ब्रह्म की प्राप्ति होगी ऐसा मानने से कभी समाधान नहीं हो सकता। यह तो उस मूर्ख मनुष्य की कल्पना के अनुसार हुआ कि जब सब सेना मर जायगी तब मुझे राजपद मिलेगा पर वह यह नहीं सोचता कि सेना के रहने पर ही राज्य रह सकता हैं और राज्यपद मिल सकता है, अन्यथा नहीं।

इसी प्रकार आत्म-ज्ञान की बैठक स्थिर होने पर सांसारिक दृश्य हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। उससे हमारा आत्म समाधान भंग नहीं हो सकता। रास्ते में सर्पाकार बेल को देखकर हम भय से कांपने लगते हैं पर जब उसके बेल होने का विश्वास हो जाता हैं, तब हम निर्भय हो जाते हैं। इसी भाँति माया यद्यपि भयानक प्रतीत होती है पर वह मिथ्या है. यह जान लेने पर उसका भय कैसा? मृगजल वास्तव में जल नहीं हैं, ऐसा विश्वास हो जाने पर उसमें डूबने की आशंका कैसी? भयानक स्वप्न से भयभीत होने वाला व्यक्ति जागृत होने पर भय से मुक्त हो जाता है। माया हमारी कोरी कल्पना मात्र है और हम कल्पनातीत निर्विकल्प वस्तु हैं, ऐसा मान होने पर कल्पना से डरने की क्या आवश्यकता? ठीक ही कहा गया है कि 'अंते मतिः सा गतिः'। तुम्हारे जीव दशा का, अहंकार का नाश होने पर सद्गति-तत्पद प्राप्ति सहज सुलभ ही है।

स्थूल-सूक्ष्म आदि चार देहों का अन्त और जन्म का कारण अहं-कार इन सबसे आत्मा अलिप्त हैं, इसी सद्ज्ञान से मनुष्य को मुक्ति अर्थात मोक्ष लाभ होता है। यह भी कल्पना है। वस्तुतः आत्मा मोक्ष और बंध से अलिप्त है। सद्गुरु के बोध से तीनों प्रभूतियाँ एक रूप होकर स्वरूप के निदिध्यास प्राणी ध्येय वस्तु अर्थात ब्रह्मरूप ही बन जाता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि आत्मा शाश्वत है और दृश्य का अस्तित्व ही नहीं है। मिथ्या माया को पहचानना और वैसा ही अनुभव करना, इसी का नाम मोक्ष है। सद्गुरु वचनों को हृदयंगम कर श्रवण-मनन-अभ्यास करने से मोक्ष का अधिकार सहज प्राप्त हो जाता है। बंध-मोक्ष, माया-ब्रह्म, लक्ष-कलक्ष्य, ध्यान-ध्याता आदि की द्वैत भावना जिसमें समाप्त हो जाती है और केवल सूक्ष्म ब्रह्म ही शेष रहता है। इस प्रकार अजन्मातमा जन्म-दुःख से मुक्त अद्वैत भावना से मुक्त निष्प्रपंच होकर अनन्त से एकाकार हो जाता है। जो सन्नि-कट होते हुए भी दूर दिखाई देता था, वह प्राप्त कर लेता है। जैसे कोई ब्राह्मण स्वप्न में अपने को नीच जाति का देखता हो पर जागृत होने पर जैसे उसे अपने ब्राह्मण के उच्च वर्ण का मान हो जाता है वैसे ही आत्म ज्ञानी की अवस्था हो जाती है। अब ऐसे मुक्त आत्म ज्ञानी के लक्षण हम अगले समास में बतायेंगे।

नववां समास

सिद्ध-लक्षण

अब सिद्ध अर्थात आत्म-ज्ञानी पुरुष के लक्षण सुनिये। जैसे अमृत प्राशन करने वाले पुरुष के शरीर पर भी उसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं, उसकी काया दिव्य हो जाती है, वैसे ही सिद्ध पुरुष के अंग प्रत्यंग तेजस्वी हो जाते हैं। सिद्ध अर्थात ब्रह्म स्वरूप। दोनों में कोई

भेद नहीं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता फिर भी कल्पना के लिए कुछ बातें बतलायेंगे। अखंड-स्वरूप-अनुसंधान यह सिद्ध पुरुष का मुख्य लक्षण है। वह जन-सम्पर्क में रहकर भी सबसे अलग रहता है। उसे साँसारिक चिंताएं नहीं रहतीं। वह निरूपण से प्रेम रखता है। सिद्ध पुरुष का बाह्य आचार साधक के समान ही होते हैं पर अन्दर से वह अखंड स्वरूपाकार रहता है। उसकी जंचल वृत्ति स्वरूपाकार में लीन हो जाती है; अतः वह निश्चल होता है। यद्यपि वह शरीर से अनेक प्रवृत्तियों में चंचल दिखाई देता हो पर भीतर से वह पूर्ण निश्चल ही होता है। भीतर की वृत्ति मुख्य है। जिसका चित्त भगवान में लगा हुआ है, ऐसा व्यक्ति बाहर से सामान्य लोगों के समान व्यवहार करता रहने पर भी अन्दर से वह आत्म-स्वरूप में मग्न रहता है। राजा जैसे राजपद पर रहते हुए जैसे राजसी ऐश्वर्यों से युक्त रहता है, वैसे ही सिद्ध पुरुष के शरीर में दिव्य लक्षण प्रगट होते हैं। स्वरूपानुसंधान के बिना अन्य साधनों का अभ्यास कर यदि कोई उन लक्षणों को प्राप्त करना चाहे तो वह असंभव है। निर्गुण स्वरूप में स्थित होना यह अभ्यास का मुकुट मणि है। यही मुख्य अभ्यास है। साधक को चाहिए कि वह श्रवण मनन आदि साधनों द्वारा स्वरूपाकार होकर इन लक्षणों का अभ्यास करे। इन सिद्ध-लक्षणों को सुनकर साधक के मन में समाधान होगा।

अब साधु अर्थात सिद्ध पुरुषों के अन्य लक्षण सुनिये। साधु का सारा ध्यान स्व-स्वरूप की ओर होने के कारण उसमें कामवासना नहीं होती। अपनी इच्छित वस्तु या विषय प्राप्त न होने पर मनुष्य को क्रोध आता है, पर सिद्ध पुरुष के पास उसकी मनचाही अक्षय संपत्ति का कभी नाश नहीं होता इसलिए उसे क्रोध नहीं होता। वह अपने को स्वानन्द स्वरूप समझता है, अतः वह किस पर मद जताये ? उसमें कोई दुराग्रह नहीं होता इसलिए वह वाद-विवाद के चक्कर में नहीं

पड़ता। साधु-स्वरूप निर्विकार होता है। अतएव उसमें तिरस्कार, मत्सर, दंभ आदि विकार नहीं होता। उसकी दृष्टि में सारा दृश्य संसार मिथ्या भासित होता है और सारे ब्रह्माण्ड को वह अपना घर ही मानता है इसलिए उसे प्रपंच और पंच भौतिक झमेलों से कोई सरोवर नहीं रहता। सारे संसार को मिथ्या मानकर जिसकी वासना शुद्ध हो गयी है, जो स्वरूप में रूप रस हो गया है, उसे किस चीज का लोभ होगा? वह अपने आप में पूर्ण संतुष्ट रहता है इसलिए उसमें कोई स्वार्थ भावना नहीं होती। विवक दृष्टि को भूलकर स्वरूप में स्थित पुरुष को शोक भी कहां? शोक से वृत्ति को दु:ख होता है पर इस निवृत्त पुरुष को शोक से क्या वास्ता? मोह से मन उद्विगन होता है। पर यह उत्मन सिद्ध पुरुष पूर्ण निर्मोही रहता है। इस अद्वैत निष्ठ में द्वैत भावना नहीं होती, फिर उसे भय किस का हो सकता है? वह सदा निर्भय और निशंक रहता है। सब चर-अचर सृष्टि का किसी समय अंत हो सकता है पर ब्रह्म अनंत, अमर एवं अविनाशी है। उसी प्रकार सिद्ध साधु भी अनंत-स्वरूप में लवलीन होने के कारण वह भी वैसा ही अनंत है।

वह अपने आप में अभेद होता है। उसमें द्वंद्व भेद नहीं होता और न देह बुद्धि से किसी बात का खेद विषाद होता है। उसकी बुद्धि निर्गुण से सलग्न होने के कारण तीनों गुणों से वह न्यारा होता है। वह गुणातीत अपने आपमें अकेला होने से स्नार्थ, दुःख, क्लेश, शोक, संताप, अविवेक आदि उसे कहाँ? परमार्थ प्रेमी होने के कारण साधु स्वार्थ की दुराशा से मुक्त रहता है. इसलिए वैराग्य वृत्ति यह साधु का लक्षण है। साधु (सिद्ध) आकाश के समान कोमल, व्यापक और असंग होता है। स्वरूप में निरन्तर योग होने के कारण वह वीतराग अर्थात बाह्य विषयों से उदासीन रहता है। देह बुद्धि का लोप हो जाने पर उसे फिर किस बात की चिंता हो सकती है? साधु निरुपाधि,

निस्सत, अलक्ष्य वस्तु के अनुसंधान में लगा हुआ सदा दक्ष रहता है। उससे बढ़कर वक्ष अर्थात सावधान और कोई नहीं हो सकता। परमार्थ प्रधान साधु का मुख्य लक्षण उसकी निर्मल वृत्ति है।

ऐसे सिद्ध साधु के संतसंग में साधक की वृत्ति भी सहज स्वरूप में जुड़ जाती है। श्रवण-निरूपण मनन के अभ्यास उपरोक्त लक्षण भी उसमें दिखाई देने लगते हैं। अध्यातमका विवेचन सुनने से साधक में सिद्ध पुरुष के लक्षण धीरे धीरे आने लगते हैं जिस पर भी मनुष्य को सदा ब्रह्म स्वरूप का अनुसंधान और ध्यान करते रहना चाहिए। निरन्तर स्वरूप में स्थित होने का अभ्यास करते रहने पर वह किसी दिन स्वयं उस स्वरूप को प्राप्त हो जाता है और तब सिद्ध के लक्षण साधक में शीघ्र प्रकट होने लगते हैं। स्वरूप का और अभाव बना रहे तो मनुष्यके सारे दुर्गुण क्रमशः दूर होते हैं इसलिए स्वरूपाकार हुए साधु का सत्संग करना श्रेयस्कर है। उसके निकट रहने से सहज स्वरूपानुभूति हो जाती है। पर इसके लिए नित्य नियमित सत्संग और अध्यात्म-निरूपण की आवश्यकता है। सारी सृष्टि में सबका अनुभव एक समान नहीं होता। सबके अपने अलग-अलग अनुभव हुआ करते हैं। अतएव हम अगले समास में भिन्न-भिन्न लोगों के अनुभवों का विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे। श्रोता गण ध्यान पुर्वक सुने कि लोग किस स्थिति में किस किस प्रकार का अनुभव करते हैं।

दसवां समास

शून्यत्व-निरसन

लोगों के अपने अपने अनुभवों का विचार किया जाय तो जगत में बहुत जंजाल दिखाई देते हैं। उनका कुछ वर्णन करेंगे, जिसे श्रोता-गण कौतूहल पूर्वक सुनें। किसी का कहना है कि गृहस्थी का कार्य

करता हुआ भी मनुष्य संसार-सागर से पार हो सकता है, क्योंकि यह गृहस्थी का भार हमने स्वयं नहीं पैदा किया है, बल्कि वह सब ईश्वर निर्मित है। कोई कहता है कि जीवन-निर्वाह के लिए अपनी और परिवार की सेवा करनी ही पड़ती है, जिससे मोह और लोभ हो ही जाता है। किसी का मानना है कि आनन्द पूर्वक घर-गृहस्थी चलाते हुए परलोक और परमार्थ के लिए दान-पुण्य करते रहना चाहिए। इतना ही पर्याप्त है। किसी की यह धारणा होती है कि संसार मिथ्या है, इसलिए वैराग्य लेकर देशाटन और तीर्थाटन करना चाहिए। इसी से स्वर्ग सुलभ हो सकता है। कोई कहता है, इधर उधर भटकने की अवश्यकता नहीं है। अपने आश्रम धर्म का यथो योग्य पालन करते रहें इसी में सार है, यही धर्म है।

कोई निराशावादी कहने लगता है—"कहाँ का धर्म लिए बैठे हो ? चारों ओर अधर्म फैला हुआ है। इस संसार में सभी प्रकार के काम करने पड़ते हैं। नीति अनीति की बातें व्यर्थ हैं। कोई कहता है कि अपनी वासना शुद्ध करनी चाहिए इसी के अनायास भव सागर से पार उतर सकते हैं। किसी का विचार है कि हमारे भाव अच्छे होने चाहिए। भगवान में ही भगवान हैं और सब बातें व्यर्थ हैं। कोई कहता है कि माता-पिता और अपने से बड़ों का आदर करते हुए उन्हें ईश्वर तुल्य पूज्य मानना चाहिए कुछ लोग कहते हैं कि देवता और ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, वे ही नारायण स्वरूप संसार के माता-पिता हैं। कोई शास्त्रों का अध्ययन कर उसके अनुसार परमार्थ का साधन करते रहना श्रेयस्कर बतलाता है। कोई कहता है कि केवल शास्त्रों के परिशीलन से काम नहीं चल सकता। सद्गति और परमार्थ साधन के लिए साधुओं की शरण में जाना चाहिए। कोई कहता है कि यह सब झंझट है। सब से अच्छी बात तो यह है कि हम प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और दयाभाव रखें। इसी से परमपिता परमात्मा प्रसन्न होता हैं। कोई कहता है कि मनुष्य अपने आचार-विचार अच्छे

रखे और भगवान का भजन करता रहे, तो उसका जीवन सार्थक हैं। कोई कहता है कि तीर्थों में क्या रखा हैं? वहाँ केवल पानी और पाषाण ही है। व्यर्थ जल में गोता लगाने का कष्ट क्यों उठाया जाय? कोई कहता है कि तीर्थों की महिमा अपरंपार है। उनके दर्शन मात्र से महापातकों का नाश हो जाता है। कोई कहता है कि सब बुराइयों की जड़ मन है। इस पर नियंत्रण रख सकें तो जहां रहें, वही तीर्थ है। मन चंगा सो कठोती में गंगा। कोई कहता है कि हमेशा कीर्तन में मग्न पहना चाहिए और कोई कहता है कि साधन के लिए पहले योग द्वारा शरीर को अमर कर लेना चाहिए कोई भक्ति मार्ग को, कोई ज्ञान को और कोई साधन को श्रेष्ठ बतलाता है। कोई कहता है सदा मुक्तावस्था में रहना चाहिए। कोई कहता हैं पाप से बचना चाहिए और किसी की निन्दा या द्वेष नहीं करना चाहिए। कोई दुष्ट संगति छोड़ देने की बात करता है तो कोई केवल अपनी रोजी-रोटी में मस्त रहने को बात कहता है। कोई तपो निधि बनकर सब सिद्धियां प्राप्त करने की बात ठीक मानता है और कोई इन्द्र पद की अभिलाषा करता है। कोई तन्त्र-मंत्र द्वारा सिद्धियां प्राप्त करना चाहता है। कोई कहता है कि मृत्युजंय जप करना चाहिए, जिससे सब संकल्प पूर्ण होते हैं। कोई किसी देवी को प्रसन्न करना चाहता है, तो कोई किसी देवता को। कोई कहता है कि मनुष्य पूर्व जन्म के अनुसार ही सुख-दुःख को प्राप्त होता है। कोई प्रयत्न से परमेश्वर प्राप्त करने का दावा करता है तो कोई सब कुछ ईश्वर की इच्छ पर छोड़ देना चाहता है। कोई कहता है कि इस कलियुग में तो परमात्मा सज्जनों को कष्ट देकर ही उनकी परीक्षा लेना चाहता है। कोई आज की परिस्थिति को युग का ही धर्म मानता है। कोई सृष्टि के व्यवहार व्यापार को देखकर आश्चर्य करता है और कोई उससे भयभीत रहता है। कोई किसी बात के लिए चिंता न करते हुए कहता है कि जो कुछ होगा सो देखा जायगा, हम व्यर्थ ही

परेशान क्यों रहें ? इस प्रकार संसार के अनेक लोगों के अनेक प्रकार के विचार होते हैं। हमने तो थोड़े से ही लक्षण यहाँ बतलाये हैं।

अब तक बताये गये सब लक्षण अज्ञानियों के हैं। अब सच्चे ज्ञानियों के लक्षण सुनिये। कोई कहता है भगवान की अनन्य भक्ति करना चाहिए। उसी से सद्गति प्राप्त हो जाती है। कोई कहता है— ऐसा कदापि नहीं हो सकता। कर्म मार्ग से ही ब्रह्म प्राप्ति हो सकती है, अतएव सत्कर्म करते रहना चाहिए। कोई कहता है—न भोग छूट सकता है और न जन्म-मरण चूक सकता है, अतएव कुछ न करते हुए शान्त रहना चाहिए। कोई कहता है—कहां का कर्म और कहाँ का धर्म ? सब कुछ पर ब्रह्म ही है। दूसरा कहता है—चुप रहो ऐसी धर्म विरोधी बातें नहीं करना चाहिए। कोई कहता है—सब सृष्टि नाशवान है और जो शेष बचता है, यही ब्रह्म है। इस पर दूसरा जबाव देता है कि यह समाधान का मार्ग नहीं है। सब कुछ ब्रह्म है, यह पूर्व पक्ष का निरूपण हुआ पर अनुभव तो इससे सर्वथा विपरीत है। कोई ज्ञानी कहता है कि हम सब कुछ देखते और करते हुए साक्षी भाव से अलिप्त होकर रहें दृश्य से दृष्टा अलग है, आत्मा पदार्थों के परे है, वह देह में रहते हुए भी उससे अलग है, यह जानकर हम अकर्ता भाव से विचरते हैं। दूसरा ज्ञानी कहता है कि परमात्मवस्तु एकाकी है, वहां यह दृष्टा भाव कहाँ से आया ? न दृष्टा है, न दृश्य है। सभी कुछ ब्रह्म है। प्रपंच और परब्रह्म दोनों अभिन्न हैं। भेदवादी इनमें भेद देखते हैं पर वस्तुतः आत्मा का ही जगत रूप में विस्तार हुआ है। पतले घी का ही जमकर कड़ा घी जमजाता है, वैसे ही निर्गुण सगुण और साकार रूप में प्रकट हुआ है। दृष्टा और दृश्य सब कुछ एक परंब्रह्म मात्र हैं। कोई कहता है सब प्रपंचों से अलग रहें। शून्यवत हो जांय क्योंकि परब्रह्म शून्यवत हैं। इस पर दूसरा कहता है—शून्य को ब्रह्म कैसे कहा जा सकता है ? शून्यत्व के

सूक्ष्म प्रतिबंध को विवेक द्वारा दूर कर सच्चे सिद्ध ज्ञानी पुरुष राज-हंस के समान परम अमृत को प्राशन करते हैं। प्रथम दृश्य को भूलें पश्चात शून्य को भी पार करें और तव माया विरहित परब्रह्म का दर्शन अर्थात स्वयं पर ब्रह्म स्वरूप हो जाना है। परब्रह्म वस्तु से स्वयं को भिन्न मानने पर ही शून्यत्व का भान होता है। वस्तु से अभिन्न होने पर शून्य कहाँ रहेगा? वस्तु रूप होकर स्वानुभव से ही अपनी अभिन्नता का निश्चय करना चाहिए।

यह कल्पना कि हमारा मन ही 'हम' हैं, मिथ्या है। ज्ञानियों का कथन है कि तुम शरीर, मन नहीं आत्मा हो। संतो ने यह कभी नहीं कहा कि मन ही 'मैं' है, फिर किस आधार पर मनको 'मैं' माना जाय? संत वचनों पर श्रद्धा पूर्वक पूर्ण विश्वास रखना ही शुद्ध स्वानुभव है। मन की वृत्ति तो सदा चंचल मन 'मैं' अर्थात आत्मा नहीं हो सकता। हमें जिस निरवयव वस्तु का अनुभव करना है वह वस्तु हम स्वयं है सब लोग स्वयं का ही अनुभव कर रहे हैं। जैसे लोभी मनुष्य धन-संग्रह की धुन में स्वयं धन रूप हो जाता है परन्तु उसके धन का भोग अन्य भाग्यशाली लोग करते हैं। देह-बुद्धि त्यागने पर साधकों की भी यही दशा हो जाती है। यही अनुभव की मुख्य बात है। ज्ञान का तात्पर्य यही है कि हम और ब्रह्म वस्तु एक ही हैं। इस प्रकार हमने यहां ज्ञानियों के लक्षण बतलाये। यहां यह ज्ञान-दशक पूरा हुआ। आत्म-ज्ञान के इस विवेचन में यदि कुछ त्रुटि रह गई हो तो श्रोतागण क्षमा करें।

●●

नववां दशक

पहला समास

आशंका

श्रोता कहते हैं कि आप कृपया हमें यह बतलायें कि निराकार निराधार और निर्विकल्प का क्या अर्थ है ? वक्ता उत्तर देते हैं कि निराकार उसे कहते हैं, जिसका कोई आकार न हो, निराधार वह है, जिसका कोई आधार न हो और निर्विकल्प उसे कहा जाता हैं, जिसकी कोई कल्पना तक न की जा सके। ये तीनों तथ्य उस पर ब्रह्म परमात्मा में ठीक प्रयुक्त होते हैं। वह निरामय है अर्थात विकार-रहित है। वह निराभास भी है क्योंकि उसका प्रत्यक्ष भास नहीं होता और वह निरवयव भी है क्योंकि उसका कोई अवयव नहीं है। पर ब्रह्म को निष्प्रपंच, निष्कलंक और निरूपाधिक भीं कहा गया है। वह निरूपम, निरवलम्ब और निरपेक्ष भी है। क्योंकि उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती, उसका कोई अवलम्ब नहीं, और न उसमें कोई अपेक्षा है। वह निरंजन, निरंतर और निर्गुण है। अर्थात उसमें कोई कलुष नहीं, उसके लिए कोई अंतर नहीं तथा उसमें कोई गुण भी नहीं है। वह निःसंग, निर्मल और निश्चल अर्थात अचल है।

पर ब्रह्म निःशब्द निर्दोष और निवृत्त है। तात्पर्य उस परमात्मा में कोई शब्द दोष या वृत्तिभाव नहीं है। वह निष्काम, निर्लेप और निष्कर्म भी है। अर्थात उसमें कोई इच्छा, वासना या मनोरथ नहीं है, उसमें किसी प्रकार का लेप या आवरण नहीं और कर्म करते हुए भी अकर्ता है। वह अनामी है, अजन्मा है, और अप्रत्यक्ष यानी उन चर्मचक्षुओं के लिए अदृश्य है। वह अगणित, अकर्तव्य और अक्षय है। अर्थात उसकी गणना नहीं की जा सकती, उसमें कोई कर्तव्य भावना नहीं और

उसका कभी क्षय यानी नाश नहीं होता। वह अरूप, अलक्ष और अनना है। वह अपार, अटल और अतर्म्य है अर्थात वह तर्क से नहीं जाना जा सकता। वह अद्वैत, अदृश्य, अच्युत, अच्छेद्य, अदाह्य और अक्लेद्य है। यानी वह अद्वितीय और दिखाई न देने वाला जिसको छेदा, जलाया या घुलाया नहीं जा सकता, ऐसा पर ब्रह्म वही है, जो सबसे परे है। स्वयं अनुभव करने पर और सद्‌गुरु की कृपा प्रमादी से ही ज्ञात होता है कि हम स्वयं ही वह पर ब्रह्म हैं।

दूसरा समास

ब्रह्म निरूपण

जितनी चीजें हमें साकार दिखाई दे रही हैं, वे सब कल्पांत में नष्ट होते वाली हैं पर ब्रह्म-स्वरूप सदा ज्यों का त्यों बना रहता है। जो सबमें सार वस्तु है, जो कभी मिथ्या नहीं होती और जो सदा सर्वदा रहती है, वही पर ब्रह्म भगवान का स्वरूप है। इस सत्स्वरूप के अनंत नाम हैं केवल दृष्टान्त के लिए उनका विभिन्न नामों से संकेत किया जाता है, पर वस्तुतः वह तो नामातीत अर्थात नाम के परे है। वह प्रत्येक दृश्य वस्तु के अंतर्वाह्य व्याप्त होने पर भी लोगों की लौकिक दृष्टि से दिखाई नहीं दे सकता। वह अतिनिकट होकर भी अदृश्य रहता है। परमेश्वर का वर्णन सुनकर मन में इच्छा होती है कि उसका साक्षात्कार करें पर उसे देखना चाहें तो सर्वत्र बाहरी दृश्य ही दिखाई देता है। हमारी लौकिक चर्म दृष्टि का विषय यह बाहरी दृश्य ही है। उसी को देखनेमें दृष्टि को संतोष होता है परन्तु यह दर्शन वास्तविक नहीं है। नेत्रों से दिखाई देने वाली प्रत्येक वस्तु नश्वर है। इसके बारे में श्रुति वचन भी है। —"जो कुछ दिखाई देता है, वह परब्रह्म नहीं है। परब्रह्म परमात्मा निराभास है और दृश्य का आभास होता है। वेदान्त के अनुसार भासने वाली वस्तु का नाश होता है। देखने पर केवल दृश्य का

ही भास होता है, जबकि मूल वस्तु दृश्य से अलग है। स्वानुभव से ही उस शाश्वत वस्तु का दृश्य के अंतर्बाह्य दर्शन हो सकता है। निराभास एवं निर्गुण वस्तु की पहचान कैसे बताई जाय ? पर यह स्मरण रखें कि वह चित्स्वरूप अत्यन्त निकट है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र व्याप्त है, वैसे ही वह परमात्मा भी सब जगह ओत प्रोत है। ईश्वर-तत्व जल में न भीगता है, न पृथ्वी में घिसता या छीजता है, न अग्नि में जल सकता है और न वायु में रहने पर भी उड़ जाता है। इस प्रकार वह सदा सब में संलग्न रहने पर भी उसका आकलन नहीं होता। इसका कारण हमारा देहाभिमान अर्थात अहङ्कार है।

अब हम उस अहंभाव के स्वरूप का वर्णन करेंगे। श्रोता सावधान होकर सुने। यह अहंभाव ही है, जो स्वरूप की ओर आकृष्ट होकर मैं ही स्वरूप हूं (अहं ब्रह्मामि') ऐसा कहता है पर ऐसा कहते ही वह स्वरूप से विलग हो जाता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा मानना यह अहंकार है, यह हमें सूक्ष्म रूप से जानना चाहिए। यह तो कल्पना है और परब्रह्म कल्पनातीत है। शब्दों द्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह तो वाच्यांश है। यदि लक्ष्यांश का रहस्य ज्ञात हो जाय, तो वाच्यांश वह नहीं पाता। अर्थात ब्रह्म स्वरूप होने पर कुछ कहने की आवश्यकता नही रहती। अनुभव के लक्षण बतलाने में शब्द असमर्थ हैं। जहाँ परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी ये चारों प्रचार की वाणियाँ कुंटित हो जाती हैं, वहाँ शब्दों की कला-कुशलता किस काम की ? शब्द तो नाशवान है, फिर वह शाश्वत वस्तु को कैसे प्रकट कर सकता है ? वह शब्दातीत है और केवल अनुभवगम्य है।

अब अनुभव के लक्षण सुनें। उस सत्स्वरूपका अनुभव का अर्थ उसके साथ तन्मय अनन्य हो जाना है। अब हम आगे अनन्य का अर्थ समझायेंगे।

अनन्य का अर्थ है, उसके समान और कोई न होना। यही आत्म-निवेदन है। संगरहित होने पर अर्थात द्वैत भाव के नष्ट होने पर केवल

आत्मा ही निःसंग रह जाती है। बिना कुछ कहे सुने इस बात का सदा मनन-चिन्तन करते रहना चाहिए। महापुरुषों को इसलिए मौन रहना ही श्रेयस्कर है। जिसका वेद और श्रुतियों ने भी 'नेति नेति' (इतना ही नहीं इतना ही नहीं) कहकर अपनी असमर्थता व्यक्त की है, वहाँ हम शब्दों द्वारा उसका वर्णन कर सकते हैं ? मन में प्रतीति हो जाने पर भी संदेह करना दुरभिमान है। ऐसी अवस्था में हमें अपना अज्ञान कबूल करना चाहिए। इस तरह हम अपने अहंभाव को मिटा सकते हैं। यह मानकर चलें कि हमारा बोलना, चालना, सब मिथ्या है। भाषण करना तो प्रकृति का स्वभाव है और प्रकृति स्वयं मिथ्या है। जहाँ प्रकृति और पुरुष दोनों का निरसन हो जाता है, वहाँ अहंभाव कैसे रह सकता है ? यह तो वैसा ही हुआ जैसे कोई मौन रहते हुए कहे कि 'मैं मौन हूँ।' बोलने से तो मौन-भंग हो ही गया। इसी भाँति यदि कोई अपना अनुभव शब्दों द्वारा बतलाने लगे तो समझना चाहिए कि अभी तक उसे सच्चा अनुभव हुआ ही नहीं है। अतः आत्मज्ञानी को अनुभव का बखान नहीं करना चाहिए अपितु उसे मौन ही रहना चाहिए। सब कुछ करते हुए भी अकर्ता बनकर रहना चाहिए।

तीसरा समास

निःसंदेह निरूपण

अब श्रोता प्रश्न करते हैं—"आपने बतलाया कि ब्रह्मज्ञानी कार्य करते हुए भी अकर्ता भोगों में रहकर भी अभोक्ता अर्थात सबसे अलिप्त रहता है। तब तो मन माना पापाचरण करने में भी कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि जन्म-मृत्यु भोगते हुए भी न भोगे के समान, पाप करते हुए भी न किये के समान स्वर्ग या नरक में जाकर भी न गये के समान स्थिति मान लेनी चाहिए। इस पर वक्ता कहते हैं कि तुम शब्दखंड कर के बलकर व्यर्थ ही बाल की खाल खींचना चाहते हो। वास्तविक ब्रह्म

ज्ञान का अनुभव ऐसा ही, जिसे अलिप्त और विदेही पुरुष ही जान सकते हैं। ज्ञान संम्पत्ति से धनवान बने हुए पुरुष का मर्म अज्ञानी दरिद्री व्यक्ति क्या जाने ? योगी को योगी, ज्ञानी को ज्ञानी और महाचतुर को भाणाक्ष व्यक्ति ही पहचान सकता है, बुद्ध और सिद्ध को जो एक समान मानता है, वह अज्ञानी ही है। जो पतित और जीवन्मुक्त को समान समझता है, उसकी बुद्धि की कहाँ तक तारीफ करें ? जिस पर भूत चढ़ा होता है वह और जो झाड़ फूंक कर भूत को उतारता है, वह दोनों मनुष्य होते हुए भी एक श्रेणी के नहीं हो सकते।

अब हम अनुभव की कुछ बातें बतलायेंगे। जो ज्ञान से गुप्त या लवलीन हो जाता है, विवेक द्वारा आत्म-स्वरूप में विलीन हो जाता है, और अनन्य हो जाने के कारण निःशेष हो जाता है, उसको हम कैसे पहचान सकते हैं ? उसे पहचान ने के प्रयत्न में हम स्वयं तद्रूप हो जाते हैं और तब कुछ कहने सुनने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। ऐसा ज्ञानी पुरुष नित्य और निरन्तर स्वरूप में रममाण रहता है और उसके संपर्क में विकारी व्यक्ति भी निर्विकार हो जाता है। वह केवल परमात्म स्वरूप होता है, जिसमें माया का लेशमात्र भी मल नहीं होता। ऐसा योगी राज स्वाभाविक रूप से शुद्ध आत्मा होता है। उसे देह बुद्धि से देखने पर देह ही दिखाई देगा पर गहराई से देखने पर तुम वैसे ही बन जाओगे और तुम्हारा जन्म-मरण चूक जायेगा। जिसका जन्म-मृत्यु होता है ऐसा देह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं होता, वह निर्गुण ब्रह्म-स्वरूप ही होता है। अतः उसके बारे में हम कैसी भी कल्पना करें उससे क्या होता है ? ज्ञानी सत्य-स्वरूप होता है। पर अज्ञानी उसे साधारण मनुष्य के रूप में देखते हैं। जिसकी जैसी भावना होती है, परमात्मा भी उसे उसी रूप में दिखाई देता है। परमात्मा तो निर्गुण, निराकार है पर लोग पत्थर को ही परमात्मा मानते हैं। पत्थर तो टूट फूट जाता है, पर निर्गुण परमात्मा कैसे टूट फूट सकता है ? परमात्मा एक है, यद्यपि लोगों ने उसे अनेक नाम रुप दे रखे हैं।

जैंसे लकड़ी को जलाने पर अग्नि भी लकड़ी के आकार की दिखाई देती है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि अग्नि ही काष्ठ है। ज्ञानी का शरीर भी कपूर के समान है। कपूर जल जाने के बाद फिर से केले के तने में प्रवेश नहीं कर सकता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष पुनः देह धारण नहीं करता। भुना हुआ बीज पुनः नहीं ऊग सकता, जला हुआ वस्त्र फिर से नहीं उकेला जा सकता, नाला गंगाजी में मिलने के बाद फिर से नाला नहीं बन सकता इसी भांति ज्ञानी के आत्म-स्वरूपाकार होने के पश्चात वह विदेह हो जाता है। पर अज्ञानी और मूढ़ लोगों की समझ में यह बात नहीं आती। ज्ञान न होने के कारण ही मनुष्य भ्रमित रहता है और वह रस्सी को सांप समझने लगता है। अज्ञान के कारण ही बहुतेरे लोगों का पतन होता है, तथा उन्हें जन्म-मरण के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

चौथा समास

अजान सुजान निरूपण

श्रोता फिर पूछते हैं कि संसार में कोई सम्पन्न, कोई दुखी और दुर्बल, कोई निर्मल और कोई मलीन कोई उत्तम और कोई अधम ऐसा भेद क्यों हुआ ?

इस पर वक्ता कहते हैं कि यह सब गुणों के कारण होता है। सद्-गुणी भाग्यशाली होकर भोग भोगते हैं और दुर्गुणी दरिद्री बने रहते हैं। जो अपना स्वाभाविक कर्तव्य कर्म कुशलता पूर्वक कहता है, उसे लोग भला आदमी कहते हैं। जो सुजान है, वह अपना काम ठीक ढंग से मन लगाकर करता है, जिससे वह सम्पन्न रहता है, जबकि अज्ञानी मूर्ख मनुष्य आलसी बनकर निठल्ला बना रहता है। परिणाम स्वरूप उसे भिखारी होना पड़ता है। विद्वान व्यक्ति सम्मानित होता है और विद्याहीन का कहीं आदर नहीं होता। उद्योग हीन होने से सम्पन्न पिता का लड़का भी भिखारी हो जाता है। विद्या के अनुसार

ही सम्मान और व्यापार कुशलता के अनुसार ही वैभव प्राप्त होता है। जिसमें विद्या, विवेक, बुद्धि, उद्योग कुशलता आदि नहीं वह अभागा ही रहेगा। और यह सब गुण होने पर उसे ऐश्वर्य शाली बनने से कौन रोक सकता है? न चाहने पर सम्पन्नता उसका पीछा करती है।

मनुष्य क्या पशु-पक्षीयों के गुणों का भी लोग आदर करते हैं। गुण हीन प्राणी का जीवन ही व्यर्थ है। जिसमें कोई गुण नहीं, उसका न तो आदर होता है और न उसमें कोई हिम्मत, या चतुराई ही होती है। उत्तम गुण ही सभ्य सौभाग्य है। लोग सुजान अर्थात गुणी व्यक्ति का ही आदर करते हैं। यदि मनुष्य कोई एक विद्या में भी पारंगत हो, तो उसका सम्मान होता है।

चाहे सांसारिक काम हो चाहे पारमार्थिक, सब में सुजान व्यक्ति ही सफलता पूर्वक जीवन को सार्थक कर सकते हैं। अज्ञानी अर्थात अजान व्यक्ति ही माया के जंजाल में फंस कर अनेक कष्ट भोगता हुआ अपने जीवन को बरबाद कर देता है। अपना सच्चा हित न जानने के कारण ही बहुतेरे लोग कष्ट, दु.ख और यातनायें भोगते हैं। ज्ञान न होने से ही मूर्ख एवं मूढ़ व्यक्ति अधोगति में प्राप्त होते हैं।

माया और ब्रह्म, जीव और शिव, सार और असार भाव और अभाव इनका रहस्य जानने पर ही जन्म-मरण से छुटकारा हो सकता है। कर्ता कौन, बंध-मोक्ष का स्वरूप क्या है? निर्गुण परमात्मा कैसा है। और उसे जानने वाला मैं कौन? आत्मा और परमात्मा में कैसी अनन्यता है? इन सब बातों का ज्ञान होने पर ही मुक्ति होती है। जितनी बातें हम जानते जायेंगे, उतने ही दृश्य के बन्धन छूटते जायेंगे और अन्त में जानने योग्य परम तत्व को जान लेने पर अहङ्कार सर्वथा नष्ट हो जाता है। करोड़ों साधन करने पर भी यदि हमने मूल-तत्व को नहीं जान सके तो हम मोक्ष के अधिकारीं नहीं हो सकते। माया और ब्रह्म को समझ लेने और स्वयं अपने स्वरूप को जान लेने से ही जन्म-मृत्यु का चक्र टूट सकता है। सुजान और अजान में यही अंतर

है। अजान किसी पदार्थ को देखकर भूत की कल्पना से डरने लगता है, जब कि सुजान वास्तविकता को समझाकर निर्भय रहता है। इसी प्रकार सत्य और मिथ्या, धर्म और अधर्म आदि सब बातें जिज्ञासा से ही जानी जा सकती हैं। जो इन सब बातों को जानकर उनका गम्भीरता पूर्वक मनन्-चिंतन करता है, वही मुक्त है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य अनेक संकटों का शिकार होता है। इसलिए अज्ञानी होना हेंय है। ज्ञान की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। गीता में कहा गया है—'नहि ज्ञानेन सदृश्यं पवित्रमिह विद्यते'। ज्ञान से ही परमार्थ सिद्ध हो सकता है। ज्ञान अर्थात जानना स्वरूपण स्मरण रखना और अज्ञान अर्थात स्वरूप का विस्मरण होना। जो जानकार है। वे ही चतुर और जो अजान हैं वे ही पागल और दीन हीन हैं। जानकारी से ही विज्ञान तथा अनुभव जन्य ज्ञान का बोध होता है और ज्ञान का अन्त होता है। बह बोलना भी बन्द हो जाता है। वह सहज-समाधि की अवस्था होती है, जिसमें अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव होने लगता है।

इस पर श्रोता कहते हैं कि आपके कथन से हमारा बहुत कुछ समाधान हो गया है पर फिर भी आप कृपा कर हमें पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता के लक्षण स्पष्ट रूप से समझाइये! बहुतेरे लोग कहते हैं कि जो बाहर ब्रह्माण्ड में है वही इसी पिण्ड (शरीर) में है। कृपया इस विषय को और अच्छी तरह बतलाइये, ताकि इसका पूरा विश्वास हो जाय।

पांचवां समास

अनुपात निरसन

जो पिण्ड (शरीर) में सो ही ब्रह्माण्ड में हैं, ऐसा जो कहा जाता है, उसका रहस्य हम अब समझायेंगे। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महा-

कारण यह पिंड के चार देह होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड के भी विराट, हिरण्य, अव्याकृत और मूल प्रकृति ऐसे चार देह होते हैं। ब्रह्माण्ड में जिन्हें विष्णु, चंद्र, ब्रह्मा, नारायण और रुद्र कहा जाता है वे ही पिंड में क्रमशः अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त व अहङ्कार कहलाते हैं। जैसे सिंह के सामने श्वान वैसे ही प्रचीति-प्रमाण के सन्मुख अनुमान हास्यास्पद है।

हमने मनसे तो कल्पना कर ली कि जैसा पिंड वैसा ही ब्रह्मांड है पर इसका अनुभव कैसे हो? अर्थात यह सारा अनुमान ही कल्पना का अरण्य है और सूज्ञ जन अरण्य में नहीं भटकते। मन्त्र और देवता सब कल्पित हैं और यह बताया गया कि देवता मन्त्रों के अधीन हैं। जिसे जैसा प्रतीत हुआ, उसने वैसा ही कह दिया पर सत्य वस्तु का निर्णय अपने विवेक और अनुभव से होना चाहिए।

ब्रह्म ने ब्रह्मांड का निर्माण किया पर ब्रह्मा का निर्माण किसने किया? विष्णु को सारे विश्व का पालन कर्ता कहा गया है, पर विष्णु का पालक कौन है? शिव सारे संसार का संहार करते हैं पर शिव (रुद्र) का संहार कौन करता है? महाकाल सबका नियन्त्रण करता है पर काल का नियत्रंक कौन है? जब तक हम इन सब बातों को अच्छी तरह न समझ लें, तब तक हम अंधकार में ही भटकते रहेंगे। इसीलिए विवेक की–सारासार विचार की—आवश्यकता है। बताया जाता है कि ब्रह्मांड का अपने आप निर्माण हो गया। दूसरी ओर यह भी कल्पना करली गई कि पिंड और ब्रह्माण्ड एक समान हैं। यद्यपि इसे हम कहने-सुनने के लिए मान लेते हैं पर इस बात पर पूर्ण विश्वास नहीं होता। पिंड-ब्रह्माण्ड की समानता पर विचार करने से बहुत से संदेह उत्पन्न होते हैं। ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार के देवी-देवता, प्राणी पदार्थ आदि हैं, वे सब पिंड में कहाँ हैं? कहा जाता है कि ब्रह्माण्ड में साढ़े तीन करोड़ भूत-प्रेत, पिशाच, साढ़े तीन करोड़ तीर्थ और

साढ़े तीन करोड़ मन्त्र हैं पर पिंड में ये सब कहाँ हैं ? ब्रह्माण्ड के समान तैंतीस करोड़ देवता, अठ्ठासी हजार ऋषि, चौरासी लाख योनियाँ, नाना ओषधियां, फल, बीज, धान्य आदि पिंड में कहाँ हैं ? अतः इन दोनों का मेल कैसे हो सकता है ? पर यह सब बातें विवेक जानने की हैं। उन्हें वर्णन से बतलाया नहीं जा सकता।

और जब इनका स्थूल विचार से वर्णन करना असंभव है तब फिर उनका विस्तार पूर्वक उहापोह करना भी व्यर्थ है। हमें सर्व प्रथम यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि सारा ब्रह्मांड पंचभूतों से ही हुआ, जिनसे कि पिंड बना है। इसके अतिरिक्त जो कुछ बतलाया जाता है, वह सिर्फ अनुमान मात्र है। अनुमान वमन के समान त्याज्य है तथा निश्चयात्मक विचार ही विश्वसनीय है। यद्यपि पिंड और ब्रह्मांड दोनों पंचभूतों से निर्मित हैं पर इतने से ही यह कहना ठीक नहीं हो सकता कि जो कुछ ब्रह्मांड में है, वह सब पिंड में है। यह तो केवल अनुमान ही अनुमान है। परमार्थ में दूसरा कोई महत्व नहीं है। अतः इतना दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि दोनों का निर्माण पंच भूतों से हुआ है और दोनों नश्वर अर्थात नाशवान हैं।

छठवां समास

गुण-रूप निरूपण

वक्ता कहते हैं—हमने पिछले समासों में यह स्पष्ट रूप से समझाया कि निराकार आकाश में जैसे वायु का विकार उत्पन्न होता है, वैसे ही निर्गुण ब्रह्म में मूल माया प्रकट हुई है और मूल माया पंच भूतों का खेल है। इसी मूल माया में सत्व-गुण, रजोगुण, और तमोगुण भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहते हैं। जैसे पिंड का महाकारण देह अर्थात सर्वसाक्षी तुरीयावस्था वैसे ही ब्रह्मांड का महाकारण देह मूल माया है। तुरीया अवस्था के समान ही मूल माया में ज्ञान-स्मरण है। मूल

माया में तीनों गुण गुप्त रूप से वास करते हैं और वे जब प्रकट होते हैं तब उसे गुण क्षोमिनी अर्थात गुण माया कहते हैं। इन्हीं तीन गुणों से अकार, उकार और मकार अर्थात ॐ शब्द की ध्वनि आकाश में उत्पन्न हुई। यह शब्द गुण आकाश का है तथा इसी शब्द शक्ति से आगे चलकर वेदशास्त्र आदि निर्मित हुए। आगे चलकर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी इस प्रकार पंचभूतों का विस्तार हुआ। त्रिगुण मिश्रित पंचभूत अर्थात अष्टधा प्रकृति यह मूलतः वायु रूप ही है। वायु की हलचल से ज्ञान (सद्गुण) अज्ञान (तमोगुण) और दोनों के मिश्रण से रजोगुण इस प्रकार तीन गुणों का उद्भव हुआ। इस प्रकार त्रिगुण वेष्ठित पंचभूतों का मिश्रण मूलमाया का स्वरूप है और जो तत्व बीज में है, वे ही वृक्ष में पत्र, पुष्प, फल आदि के रूप में प्रकट होते है। पंचभूत भी सब आपस में एक दूसरे में न्यूनाधिक मात्रा में मिले हुए हैं। पंचभूतों में भी ज्ञान हैं। कहीं सूक्ष्म है तो कहीं स्थूल। लकड़ी में अग्नि और निरोध वायु प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता पर उसमें दोनों होते हैं, अन्यथा लकड़ी जलती नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ पंचभूतों के मिश्रण से बना हुआ है।

इस पर श्रोता प्रश्न करते हैं कि ब्रह्म से मूलमाया, मूलमाया से गुण माया, गुणमाया से त्रिगुण और त्रिगुण से पंचभूत का क्रम आपने बतलाया अतः यदि गुणों से पंचभूत पैदा हुए तो फिर आकाश भी गुणों से ही उत्पन्न हुआ, ऐसा कहना होगा पर यह युक्ति संगत नहीं दिखाई देता। क्योंकि शास्त्र कहता है कि शब्द आकाश का गुण है। सो क्या यह शास्त्र-वचन मिथ्या है ?

इस पर समर्थ वक्ता कहते हैं—"हमारे कथन का ठीक अर्थ न समझ सकने के कारण ही यह शंका की जा रही है। हम पहले ही बता चुके हैं कि पंचभूत एक से एक बढ़कर हैं। सब भूतों से श्रेष्ठ मूल माया है पर मूल माया से भी परे निर्गुण परब्रह्म है। ब्रह्म से उत्पन्न मूलमाया तो पाँचों भूतों और तीनों गुणों से बनी हुई है। आकाश को

छोड़ कर चारों भूत विकारी हैं। केवल आकाश निर्विकार है। केवल उपाधि के कारण ही आकाश को भूतों में सम्मिलित किया गया है। जिस प्रकार पिंड में व्याप्त ब्रह्म के अंश को 'जीव' और ब्रह्माण्ड में व्याप्त ब्रह्म के अंश को 'शिव' कहा जागा है, उसी प्रकार उपाधि के कारण ही आकाश को भूत कहा जाता है। उसी प्रकार उपाधि के कारण उपाधि को भूत कहा जाता है उपाधि रहित जो आकाश है, वही परब्रह्म है। जैसे जैसे प्रकृति का विस्तार होता गया, वैसे वैसे पंच-भूतों में से एक से दूसरा बनता गया अर्थात वे सब विकारी ही हैं। जिस प्रकार रंगों के मिश्रण से अनेक नये रंग बनते हैं, वैसे ही भूतों के मिश्रण से अनेक प्रकार के दृश्य, विकार और रूप उत्पन्न होते हैं। एक ही पानी में अनेक प्रकार के रंग मिलाने पर उसमें भिन्न-भिन्न रंगों की तरंगे उठती हैं, उसी प्रकार पंचभूतों के मिश्रण से यह बहु-रंगी संसार दिखाई देता है। इस सृष्टि में दिखाई देने वाली चौरासी लाख योनियों का विस्तार इसी पंचभूतों के मिश्रण का खेल है।

सब प्रकार के शरीरों का बीज जल है। इसी जल तत्व से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। कीड़े-मकोड़े, चीटियाँ, पशु आदि सब जल की ही उपज ही शुक्र धातु और सब भी पानी ही है और उसी से यह शरीर बना है। नाखून, दांत और हड्डियाँ सब पानी से ही बनती हैं। वृक्षों के जड़ों में भी जल भरा रहता है, जिससे वृक्षों का विस्तार होता है। सब पेड़ पानी के ही कारण फूलते फलते हैं। किसी पेड़ का तना काटने पर उसमें फल फूल नहीं दिखाई देते, केवल पानी से भीगो छाल ही दिखाई देती हैं। वृक्ष की जड़ से फुनगी तक कहीं ऊपर से पानी नहीं दिखाई देता पर सूज्ञ जन जानते है कि जल से ही फूल और फल उपजते हैं। इसी प्रकार अन्य सव भूतों के विकार से यह सृष्टि और उसके अगणित प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। उनका कहां तक वर्णन किया जाय। अतः इस प्रकृति का भली भाँति सूक्ष्म विचार कर हमें परमातमा का सदा अनन्य भाव से भजन-चिंतन करना चाहिए।

सातवां समास

जन्म-मरण रोहतक

अब श्रोता प्रश्न करते हैं कि प्रथम स्थूल देह रहता है और उसी में पंच अंतःकरण पैदा हुए। तब यह कहना पड़ेगा कि स्थूल से ही सूक्ष्म (अंतःकरण) उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार बिना ब्रह्माण्ड के मूल माया में ज्ञान (विकार) कहाँ से पैदा होता। अतः स्थूल के आधार से सूक्ष्म का कार्य होता है। यदि स्थूल शरीर ही न हो तो अंतःकरण कहाँ रहेगा? इसलिए कृपया बताइये कि स्थूल के पहले सूक्ष्म कैसे आया?

इस पर वक्ता कहते हैं कि जैसे रेशम के कीड़े आदि अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार अपने शरीर पर ही अपने घर बनाते हैं और जैसे शंख, सीप, घोंघे आदि में रहने वाले जल चर कीड़े पहले जन्म लेते हैं और बाद में अपना घर बनाते हैं, वैसे ही पहले सूक्ष्म जीव का जन्म होता है और बाद में स्थूल का निर्माण होता है।

इस पर श्रोता पुनः पूछते हैं कि हमें अब जन्म और मृत्यु का रहस्य समझाइये। जन्म देने वाला और जन्म लेने वाला कौन है? इन बातों का ज्ञान कैसे हो? लोग कहते है सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्म ने की है। विष्णु पालन कर्ता हैं और शिवजी (रुद्र) अंत मे संहार करते हैं पर जनता में प्रचलित इस धारणा पर बिश्वास नहीं बैठता। यदि ब्रह्मा सृष्टि के उत्पन्न कर्ता है, तो ब्रह्मा को किसने उत्पन्न किया? इसी प्रकार विष्णु का पालनकर्ता और महा प्रलय में रुद्र का संहारकर्ता कौन है? अतएव ये सब घटनायें माया का ही खेल जान पड़ता है। यदि निर्गुण परमात्मा को कर्ता मानें तो वह निर्विकार है और माया का कर्तृत्व मानें तो उसका स्वयं अपने आप में विस्तार हुआ है तथा वह स्थिर और शाश्वत भी नहीं है।अतः वह भी मूल कर्ता नहीं मानी

जा सकती । इसलिए आप कृपया इस शंका का समाधान कीजिए कि वास्तव में जन्म कौन लेता है ? उसकी पहचान और लक्षण क्या है ? पुण्य और पाप का क्या स्वरूप है ? और शङ्का करने वाला 'मैं' कौन हूँ ? मेरी बुद्धि यह सब समझने में असमर्थ है । कहा जाता है कि मनुष्य की वासना ही जन्म लेती है पर वह वासना भी दिखाई नहीं देती और वासना भी अंतःकरण की ही एक वृत्ति है । वासना, कामना कल्पना, भावना और अन्य विकार सब अतःकरण की ही वृत्तियाँ अर्थात ज्ञान के ही यन्त्र हैं । ज्ञान का अर्थ है केवल स्मरण । तब स्मरण मात्र से जन्म का सूत्र कैसे हुआ ? इस पंचभौतिक शरीर का चालक वायु है और जानना अर्थात ज्ञान उसी मनरूपी वायु तत्व का गुण है । अतः स्मरण भी स्वभावतः होता रहता है । अतः जन्म-मृत्यु का झमेला कल्पित ही हैं । जो एकबार जन्म लेकर मर जाता है, उसका फिर से जन्म ही नहीं होता और जब पुनर्जन्म नहीं तब सत्संग आदि की क्या आवश्यकता है ?

श्रोता कहता है—जन्म के पहले न तो स्मरण था और न विस्मरण । यह तो बीच का मामला है । यह अंतःकरण की ही एक कला-मात्र है । जब तक चेतना है, तब तक ही स्मरण है । चेतना के समाप्त होते ही सब कुछ विस्मरण हो जाता है और प्राणी की मृत्यु हो जाती है । तब फिर कौन किसे जन्म देगा ? अतः न जन्म का ही अस्तित्व है और न यातना का ही जिस प्रकार सूखा हुआ काष्ठ फिर हरा नहीं होता और टूट कर गिरा हुआ फल पुनः पेड़ में नहीं लग सकता उसी प्रकार प्राणी की मृत्यु हो जाने पर वह पुनः जन्म नहीं ले सकता । घड़ा फूट जाने पर वह फिर से नहीं बन पाता वैसे ही एक बार मृत्यु होने पर वह सदा के लिए ही हो गई । फिर बार बार जन्म और मृत्यु का झगड़ा ही मिट गया ।

इस पर वक्ता कहते हैं कि व्यर्थ की बात बढ़ाते रहने से कोई लाभ नहीं । यदि कोई शंका हो तो उस पर विवेक पूर्वक चिंतन करना

चाहिए। यह सब शंकायें अज्ञान के कारण हैं। जिसे सच्चा आत्मज्ञान हो गया और जिसने सब बातों पर गहराई से विचार कर अनुभव प्राप्त कर लिया उसकी सब शंकायें आप से आप निरसन हो जाती हैं। ज्ञान और अज्ञान एक समान नहीं हो सकते। ज्ञान से ही जन्म मरण का फेरा चूक सकता हैं और इस ज्ञान की उपलब्धि के लिए सारे वेद शास्त्र पुराण आदि ग्रन्थों की रचना हुई है। आत्म ज्ञान से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है। यह भी सत्य है कि सभी आत्मायें स्वभावतः मुक्त हैं पर बिना ज्ञान के इस तथ्य का अनुभव नहीं हो सकता। आत्मज्ञान होने पर यह सारा दृश्य संसार मिथ्या भासने लगता है पर जब तक ज्ञान नही तब तक तो सब दृश्य सृष्टि सत्य ही प्रतीत होती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानी ज्ञान के कारण मुक्त रहता है और अज्ञानी अपनी कल्पनाओं के कारण बंधन में पड़ा होता है। विज्ञान अर्थात ब्रह्मज्ञान की अज्ञान के समान मुक्त को बद्ध के समान और निश्चय को अनुमान के समान नहीं, अज्ञान के कारण सब बन्धन में पड़े हुए हैं और उससे छूटने का ज्ञान के सिवा अन्य उपाय नहीं है।

तात्पर्य ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य को मुक्त होना चाहिए। मोक्ष के लिए सर्वप्रथम ज्ञान की आवश्यकता है। सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सहज ही सब कल्पित बन्धनों से मुक्त हो जाता है। कुछ जानना अज्ञान और सब कुछ जानना ही ज्ञान है और कुछ भी जानने की भावना का लोप हो जाना विज्ञान अर्थात ब्रह्म ज्ञान है। इस अवस्था में पहुँचने पर प्राणी देह बुद्धि से विलग होकर आत्मस्वरूप हो जाता है। जो अमृत प्राशन कर अमर हो गया, उसे लोगों की मृत्यु देखकर आश्चर्य होता है। इसी भांति विवेकी मुक्त पुरुष बद्ध प्राणी को देखकर सोचता है कि इसे फिर जन्म क्यों लेना पड़ेगा? पर यदि मुक्त पुरुष ही बद्ध के समान हो जाये, तो फिर उसे ऐसे प्रश्न न करने पड़ेंगे। अतः हमें ज्ञान से अलिप्त रहकर बद्ध प्राणी और पुरुष के लक्षण देखने चाहिए। जागृत व्यक्ति सोये हुए व्यक्ति को स्वप्न में

बड़बड़ाते देख कहता है कि यह क्या बकवास कर रहे हो ? पर उसे यदि उस निद्रित मनुष्य की स्थिति का अनुभव करना हो तो स्वयं निद्रावश होना चाहिए। ज्ञानी पुरुष की अवस्था सदा जागृत रहती है। इसलिए उसे बद्ध पुरुष के समान बंधनकारी भावनाओं का अनुभव नहीं होता जिस व्यक्ति का पूर्ण आहार से पेट भरा हो उसे भूख का अनुभव नहीं हो सकता। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को अज्ञानी प्राणियों के समान वासना-कामनायें नहीं होतीं अर्थात वह किसी बन्धन में नहीं रहता। ज्ञान से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है और विवेक द्वारा ही आत्मानुभव होता है।

आठवां समास

देहान्त-निरूपण

अब श्रोता पुनः प्रश्न करते हैं कि ज्ञानी तो ज्ञान के विचार से मुक्त हो जाता है परंतु जो अज्ञानी अर्थात बद्ध है उसका अंतकाल में क्या होता है ? उसकी ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति तो मृत्यु के पूर्व ही नष्ट हो जाती है, तब उसका अन्त कैसे होगा ?

इस पर वक्ता कहते हैं कि वासना मिश्रित प्राण के वियोग को हम मृत्यु कहा करते हैं पर प्राण वायु के साथ गई हुई वासना वायु रूप से उपस्थित रहती है और पुनर्जन्म का कारण बनती है। कई प्राणी निश्चेष्ट (बेहोशी) अवस्था में मर जाते हैं पर वे सचमुच मृत्यु को प्राप्त नहीं होते और पुनः जीवित लौटकर परलोक से ढकेले जाने की पहचान के रूप में हाथ पांव आदि टूटने का प्रमाण देते हैं। कई व्यक्ति सर्प दंश के तीन दिन बाद वैद्यों के प्रयत्न से जीवित होकर यमलोक से लौट आते हैं। कई शाप देह से मुक्त होकर वरदान द्वारा पूर्व देह को प्राप्त होते हैं। कई प्राणी अनेक जन्म लेते हैं, कुछ परकाया प्रवेश भी करते हैं। इस प्रकार कई प्राणियों का विचित्र प्रकार से आवागमन

होता है। जैसे किसी ने फूंक मारी हो, इस प्रकार वायु एक देह से दूसरे देह में प्रवेश करता है। इससे वायु स्वरूप वासना का ही पुनर्जन्म होता है, यह बात सिद्ध होती है।

वासना यह मन की अनेक वृत्तियों में से एक वृत्ति है। यद्यपि वह दिखाई नहीं देती पर उसका अस्तित्व अन्त तक रहता है। वासना अर्थात ज्ञान के अनुभव का हेतु। वासना वायु रूप प्रकृति अंश और ज्ञान पुरुष अंश है। मूल माया का कारण ज्ञान ही है, जो माया से लिप्त रहता है। यह ज्ञान की अनुभूति ब्रह्माण्ड में कारण रूप से और पिंड में कार्य रूप से काम करती है। इसका शीघ्र अनुमान नहीं होता क्योंकि उसका स्वरूप वायु के समान सूक्ष्म है। सब देवता और पंच-भूत वायुरूप ही हैं। जिस प्रकार वायु में होने वाले अनेक प्रकार के विचार प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते, उसी प्रकार सूक्ष्म वासना भी अदृश्य है। वायु में तीनों गुण और पाचों भूतों का मिश्रण है। यद्यपि हम उसका अनुमान नहीं कर सकते फिर भी उसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता। वायु के कारण ही सुगन्ध, दुर्गन्ध, उष्ण, शीतल आदि का अनुभव होता है। वायु के कारण ही मेघ जलवृष्टि करते हैं और नक्षत्र गतिमान हैं। सकल सृष्टि का संचालक वायु है। विभिन्न देवी-देवता तथा भूत-पिशाच आदि वायु रूप होने के कारण ही किसी के शरीर में प्रवेश कर लेते हैं और कुछ मन्त्र-प्रयोग आदि से उनका निवारण किया जाता है। वायु स्वतन्त्र रूप से कुछ भी नहीं कह सकता। वह देह के आश्रय से ही बोलता, डोलता और वासना को लेकर पुनः जन्म लेता है। वासना के इन कार्यों को देखते हुए उसका वायु रूप होना सिद्ध होता है। वायु चंचल रूप से सृष्टि कर्ता (ब्रह्मा) और स्तब्ध निश्चल रूप से सृष्टिकर्ता (विष्णु) है। मूल माया से लेकर अन्तिम स्थूल वस्तु तक सब वायु का ही खेल है। वायु विना कोई कर्तृत्व नहीं होता। यदि ऐसी बात न हो तो चतुर जन मुझे समझावें।

ज्ञातव्य ही मूल माया का स्वरूप है और वही ज्ञातव्य हम सबमें है। वह कहीं गुप्त रूप से और कहीं प्रकट रूप से विचरण करती है। जैसे जल पहले भाप के रूप में गुप्त रहता है और बाद में वर्षा के रूप में प्रकट होकर बरसता है, उसीं भाँति ज्ञातव्य भी वायु में मिला रहता है और कभी गुप्त तो कभी प्रकट रूप में अनुभव में आता है। कभी-कभीं उसमें विकार आ जाता है, तब वह प्रकट रूप में दिखाई देने लगता है और कभी कभी वह वायु के रूप में ही अदृश्य रहता है। यदा-कदा वायु जब शरीर को स्पर्श करती है तो हाथ-पैर अकड़ जाते हैं और कभी-कभी वायु के प्रकोप से खड़ी फसल सूख जाती है। विभिन्न प्रकार की वायु (हवाओं) के कारण ही अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। आकाश में बिजली भी वायु के कारण ही कड़कती हैं। वायु के द्वारा ही अनेक प्रकार के राग और स्वरों का बोध होता है। उसी के कारण दीपक राग से दीपक जल उठते हैं और मेघ राग से वर्षा होने लगती है। वायु के कारण ही अनेक लोग भ्रमिष्ट या पागल हो जाते हैं, वृक्ष,पेड़,पौधे सूख जाते हैं और मंत्रों का प्रभाव होता है। सांमन,मोहन, उच्चाटन आदि अनेक विचित्र कार्य वायु के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। मन्त्रों का सारा खेल वायु का ही प्रताप है। मन्त्रों की शक्ति कौन नहीं जानता। मन्त्रों से अनेक प्राणी वश में किये जा सकते हैं और धन की प्राप्ति भी मन्त्रों को सिद्ध कर की जाती है। अस्तु. इस विषय पर बहुत कुछ कहा जा चुका है, जिससे बद्ध प्राणी के पुनर्जन्म का रहस्य ज्ञात हो गया।

नवां समास

संदेह-निवारण

अब श्रोता शंका प्रकट करते हैं कि ब्रह्म न तो रोकने से रुक सकता है, न हटाने से हट सकता है और न विलग करने से विलग हो

हो सकता है । अतः जबकि ब्रह्म अखंड है और उसमें अन्य का प्रवेश नहीं हो सकता तब यह ब्रह्मांड उसमें कैसे प्रविष्ट हो गया ? पर्वत, पाषाण, शिलाएं शिखर तथा अनेक स्थलों की रचना इस परब्रह्म में कैसे हुई ? भूगोल (सारी सृष्टि) ब्रह्म में और ब्रह्म भूगोल में प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है । विचार करने पर यह बात सत्य प्रतीत होती है । यह तो समझ में आ सकता है कि ब्रह्मांड में ब्रह्म का प्रवेश है पर यह बात विचित्र सी लगती है कि ब्रह्म को भेदकर ब्रह्मांड उसमें समा गया है । यदि यह कहा जाय कि ब्रह्मांड ने ब्रह्म में प्रवेश नहीं किया है तो यह प्रत्यक्ष ही है कि ब्रह्म में ही ब्रह्मांड है । अतः आप इस संदेह का निवारण करने की कृपा करें कि यह कैसा रहस्य है ।

इस पर वक्ता कहते हैं कि श्रोताओं का यह संदेह कि ब्रह्मांड नहीं है तो वह प्रत्यक्ष दिखाई देता है और यदि कहे कि है तो वह मिथ्या है । अतः इस गुत्थी को श्रोतागण सावधान होकर सुनें । जब हम आकाश (अवकाश) में दिया जलाकर रखते हैं, तब वह आकाश से अलग कैसे रह सकता है ? जल, अग्नि (तेज) या वस्तु कभी आकाश को हटा नहीं सकते क्योंकि आकाश सर्वत्र व्याप्त है । यद्यपि पृथ्वी कठिन है फिर भी आकाश तत्व ने उसे छननी बना दिया है अर्थात आकाश ने उसके सभी अंगों में प्रवेश कर लिया है । जितने जड़ पदार्थ है, वे सब नाशवान हैं, केवल आकाश अविनाशी और अचल है । आकाश से अलग रहकर देखने से वह आकाश दिखाई देता है पर यदि उससे अपने को अभिन्न मानकर विचार किया जाय तो आकाश ही परब्रह्म प्रतीत होगा आकाश अविचल और अभेद है । जो ब्रह्म के समान प्रतीत हो, उसी को आकाश तत्व कहना चाहिए । आकाश का निर्गुण निराकार ब्रह्म के समान भास होता है और केवल कल्पना से ही उसका अनुमान किया जा सकता है । जहां तक कल्पना का भास है, वहाँ तक सब आकाश ही है । और परब्रह्म तो निराभास तथा निर्विकल्प कल्पना से परे है । आकाश सब पंचभूतों में समाविष्ट है । भूतों

में जो ब्रह्म का अंश है, वही आकाश-तत्व है। जो प्रत्यक्ष उत्पन्न और विनष्ट दिखाई देता है, वह अचल नहीं रह सकता। पृथ्वी के नाश होने पर जल शेष रहता है। जल के समाप्त होने पर अग्नि बच जाती है और अग्नि शाँत होने पर वायु शेष रहता हैं और अन्ततः वायु का भी नाश हो जाता है। जो मिथ्या है, वह प्रत्यक्ष भी दिखाई देता है और नष्ट भी होता रहता है, पर परब्रह्म रूपी सत्य का कभी नाश नहीं होता। वास्तव में ब्रह्माँड भ्रम वश ही दृश्यमान प्रतीत होता है, जब कि विचार पूर्वक देखने से वह सर्वथा मिथ्या होता है। अतः इस भ्रम मूलक जगत को सत्य कैसे माना जा सकता है। भ्रम का वास्तविक ज्ञान होने पर वह मिट जाता है। तब फिर किसने किसको भेदा ? जो स्वयं मिथ्या है, उसका कार्य भी मिथ्या ही माना जायगा। जैसे सागर में खस खस नगण्य है, वैसे ही पर ब्रह्म में सारा दृश्य जगत भी तुच्छ है। जैसा जिसका भाव होता हैं, वैसा ही उसको भान होता है। विशाल बुद्धि से देखने पर सारा ब्रह्मांड कैंथे के समान और अधिक सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने पर वेर के समान प्रतीत होगा। और यदि हम स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाँय तो फिर कुछ भी शेष नहीं रहता। पर यदि हम स्वयं को भ्रम के कारण क्षुद्र शरीर धारी जीव मान लें तो हमें ब्रह्माँड के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कैसे हो सकता है ? अतएव हमें अपनी वृत्ति का इतना अधिक विस्तार करना चाहिए कि अन्त में वह सागर की लहर के समान पूर्ण ब्रह्म को सब ओर से अपने में समा ले। यदि वृत्ति का इस प्रकार विस्तार किया जाय तो स्वयं उसका भी लोप हो जायगा और केवल निर्गुण आत्मा ब्रह्म रूप में शेष रह जायगी।

अतः अब श्रोताओं का संदेह निश्चित रूप से दूर हो गया होगा। विवेक पूर्वक विचार करने से ही संदेह नष्ट होता है। सारा सार विचार करने से ही प्रतीति उत्पन्न करने वाला यह उत्तर श्रोताओं का पूर्ण

समाधान कर सकता है। इसका लगातार मनन चिंतन करने से साक्षा-त्कार होकर मनुष्य पावन हो जाता है और उसको परमानंद की प्राप्ति हो जाती है।

दसवां समास

स्थति-निरूपण

(वहिरंग साधनों की अपेक्षा अंतरंग साधनों द्वारा अंतर्निष्ठ होने में एवं निर्गुण ब्रह्मानुभूति का अनुभव करने में ही जीवन की सफलता और सार्थकता है। बाह्यात्कार से लौकिकता में भले ही वृद्धि हो पर क्या वह अंतनिष्ठा की बराबरी कर सकता है ?)

वक्ता कहते हैं—किसी मन्दिर के अन्दर जगन्नाथ की मूर्ति हो और उस मन्दिर के शिखर पर कौआ बैठ जाये तो यह नहीं समझा जाता कि कौआ उस जगन्नाथ जी से बड़ा है। सभा राजा के दरबार में होती है और बन्दर खम्भे पर बैठ जाता है, इससे बन्दर उस सभा के सदस्यों से ऊंचा नहीं कहा जायगा। ब्राह्मण गंगा में स्नान कर जल से बाहर निकल आता है और बगला जल में ही बैठा रहता है। इससे क्या वह बगला ब्राह्मण से श्रेष्ठ हो गया ? कोई ब्राह्मण ध्यान नहीं कर सकता पर बिल्ली अपने शिकार पर ध्यान लगाने में निपुण होती है तो क्या वह ब्राह्मण से बढ़कर मानी जायेगी ! ब्राह्मण भेद अभेद देखता है पर मक्खी किसी मे भेद भाव नही देखती फिर भी यह नहीं कहा जाता कि मक्खी को ज्ञान प्राप्त हो गया। कोई गरीब व्यक्ति बहुत कीमती बस्त्र पहना हो और राजा नंगे बदन बैठा हो तब भी परखने वाले दोनों को पहचान सकते हैं। साराँश बाहरी आडम्बर चाहे जितना किया जाय, अंततः वह पाखंड ही होगा। असली चीज कुछ और ही है। लौकिक मान-सम्मान यथेच्छ प्राप्त होने पर भी यदि कोई भीतर से सावधान नहीं हुआ है, तो वह ईश्वर प्राप्ति में सफल

नहीं हो सकता। वह आत्मघात की ही माना जायगा। देवताओं के भजन पूजन से देवलोक प्राप्त होता है। पितरों की पूजा से पितृ-लोक तथा भूतों की पूजा से भूत लोक प्राप्त होता है। हम जिसका भजन करेंगे, उसी के तद्रूप बनेंगे। मुख्य देव अर्थात निर्गुण ब्रह्म परमात्मा की उपासना से ही निर्गुण परमपद की प्राप्ति हो सकती है। निर्गुण की उपासना अर्थात निर्गुण परब्रह्म स अनन्य बन जाता है। यही जन्म-साफल्य अर्थात नर जन्म की सार्थकता है। अपने मायागत विचार अर्थात देह-बुद्धि त्याग कर निराकार निर्गुण परब्रह्म सो हं आत्मा' वही मैं हूँ, इस निर्धार से एक रस होना चाहिए। हम देह नहीं है फिर देह भावना कैसी ? मूल वस्तु यथा स्थित ही है। सिद्ध और साधन, के द्वारा जिस साध्य को प्राप्त करना है, वह हम स्वयं हैं। अब साधकता समाप्त हो गई। कुम्हार को राजगद्दी प्राप्त होने पर वह गधे हाँरने का काम क्यों करेगा ? सारे साधन वृत्तियों से सम्बन्धित हैं। निवृत्ति स्थिति में अर्थात साध्य प्राप्त होने पर साधनों का फिर क्या ठिकाना ? अब नित्य नियमादि साधनों से साधने का क्या शेष रह गया ? अब साधनों के चक्कर में क्यों फंस रहें ?

यह देह पंचभूतों का हैं और जीव ब्रह्म का अंश है, यह जानकर परब्रह्म में लीन हो जाना चाहिए। आत्म भाव के कारण आत्मा, जीव-भाव के कारण जीव और माया भाव के कारण माया का बोध होता है ऐसा जो जानता है, वही ज्ञानी है। सब बातों का पता लगाने वाले पर स्वयं अपने आपको न जानने वाले, एक देशी वृत्ति रखकर ब्रह्म को जानने की अपेक्षा रखने वाले ज्ञानी बहुत मिलेंगे पर हमें यह द्रष्टा की अथवा साक्षी भाव की वृत्ति भी अंततः त्यागनी होगी। वृत्ति के पार होने पर कुछ भी शेष नहीं रहता। इस प्रकार प्रकृति-निरास होने पर केवल निर्गुण पर ब्रह्म ही शेष रहता है। अतः उसी मे हमें लीन रहना चाहिए। यही परमार्थ की गहन पहचान है।

परमार्थ द्वैत नहीं है। हम अलग और परमात्मा अलग ऐसा द्वैत भाव अन्य मार्गों में पाया जाता है पर इस परमार्थ में हम और हमारा

इष्ट फल एक ही रहता है। रंक का राजा बनने पर वह रंक का व्यवहार अब क्यों करेगा ? वेद शास्त्र पुराण, साधन, साधु सन्त आदि जिसकी प्राप्ति के लिए उपदेश करते हैं वह परब्रह्म स्वरूप हम स्वयं ही हैं. इसका भान होने पर साधनों की अब क्या आवश्यकता ? सार-असार के विचार से हमें जब इसका सच्चा अनुभव प्राप्त हो जाता है, तब हमारे लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। पहले रंक राजा से डरता था पर राज्यपद प्राप्त होने पर अब उसे भय किसका रहा ? वेद को वेदाज्ञा की क्या आवश्यकता ? ब्रह्म विद्या को ब्रह्म विद्या का अध्ययन करने का क्या प्रयोजन क्या आत्म-शुद्धि के लिए तीर्थ भी तीर्थ यात्रा करने लगेगा ? स्वयं अमृत को अमृत-प्राशन नहीं करना पड़ता। अनंत को अनन्त के दर्शन की क्या अभिलाषा ? निर्गुण को निर्गुण पद की इच्छा कैसी ? स्वस्वरूप को आत्म-स्वरूप में रंगने के लिए किसी साधन की क्या आवश्यकता ? अब के लिए साधन करने ध्येय प्राप्ति के लिए साधन करने और उन्मन होने पर मनोजय के लिए प्रयत्न करना हास्यास्पद ही होगा।

●●

दसवां दशक

पहला समास

अन्त:करण का विश्लेषण

श्रोता प्रश्न पूछते हैं सबका अन्त:करण एक ही है या अलग-अलग इसका निश्चयात्मक समाधान कीजिए। इस पर वक्ता कहते हैं कि सब का अंत:करण यदि एक ही है, तो एक दूसरे से मेल क्यों नहीं रहता ? परस्पर में मतभेद, रुचि भेद आदि भेद क्यों उत्पन्न होते हैं ? यदि सबके अंत:करण एक हैं तो एक के भोजन कर लेने से सबकी तृप्ति हो जानी चाहिए। एक के मरने पर सबकी मृत्यु हो जानी चाहिए पर ऐसा

होता नहीं है। संसार में एक सुखी तो दूसरा दुखी दिखाई देता है। सबमें अलग अलग भावनायें दिखाई देती हैं। इन सब बातों से सबके अन्तःकरण एक है यह धारणा जंचती नहीं है। यदि सचमुच ऐसा होता तो एक के विचार दूसरे को मालूम हो जाते और फिर किसी को अपने मन में कोई बात छिपाकर रखना संभव नहीं था। प्राणियों में परस्पर विरोध भी दिखाई न देता। साँप काटने को दौड़ता है और मनुष्य या प्राणी उससे डरकर भागने लगता है, ऐसा विरोध अंतःकरण एक होने पर नहीं हो सकता था। सारांश सब का अंतःकरण एक है, यह बात हमें जंचती नहीं है।

इस पर वक्ता समाधान करते हैं घबराओ मत। सावधान होकर सुनो। अंतःकरण का अर्थ है अनुभूति, जानने का स्वभाव, देह-रक्षा का उपाय सुझाने वाली कला। सर्प जान बूझकर दंश करने को दौड़ता है और प्राणी सोच समझकर दूर भागता है। अतः दोनों में जानने की बुद्धि अर्थात अंतःकरण एकसा है। आँखों से देखना जिव्हा से स्वाद लेना, सुनना, स्पर्श करना, सूंघना आदि सब पशु-पक्षी, कीट-पतंग तथा सब प्राणिमात्र में अनुभूति के रूप में समान हैं। सबके लिए जल शीतल ही है और अग्नि दाहक (उष्ण) प्रत्येक की अपनी अपनी पसन्द होती है और यह देह स्वभाव के कारण है पर सबको यह अपनी अनुभूति के कारण ही ज्ञात है। अतः सबके अंतःकरण अर्थात अनुभूति या जानने के स्वभाव एक से हैं, यह निश्चित हो गया। कीट-पतंगों से ब्रह्म देव तक सबके अंतःकरण एक हैं। अनुभूति के कारण ही जीव भक्षण करते हैं, डरते हैं, भागते हैं। सब प्राणी यह जानते हैं कि जल थोड़ा है, तब भी जल है समुद्र है तब भी जल ही है। चिनगारी है तब भी अग्नि है और प्रलयाग्नि है, तब भी अग्नि ही है। इसलिए सबके अंतःकरण एक हैं। सब एक ही अंतःकरण से इन सब पदार्थों का अनुभव करते हैं। कहीं कम, कहीं अधिक पर सब में मसाला एक ही है। बिना अनुभूति के कोई प्राणी संसार में नहीं है। अनुभूति अर्थात अन्तःकरण

और अंतःकरण यह विष्णु का—सत्व गुण का अंश है, इसलिए अनुभूति के रूप में विष्णु सबका पालन-पोषण करते हैं। अनुभूति का न होना अर्थात न जानना यह तमोगुण का लक्षण है। तमोगुण से प्राणी का नाश होता है। तमोगुण से रुद्र (शिव) संहार करता है। जानने और न जानने के मिश्रित बुद्धि को रजोगुण कहते हैं, यही जन्म का कारण होता है। इसीलिए ब्रह्मा को निर्माता कहा गया है। अनुभूति अर्थात जानने की क्रिया से सुख होता है, न जानने से दुःख होता है। जानने और न जानने की मिश्र बुद्धि को ही हम अपने देह में ब्रह्मा के रूप में जानें। स्थूल देह का निर्माता निश्चय से 'त्रिशुद्धि' ब्रह्मा ही है। अंतःकरण अर्थात जानने की बुद्धि, अनुभूति और अनुभूति सब में समान है अर्थात सबके अंतःकरण एक हैं। इसी प्रसंग में उत्पत्ति-स्थिति और संहार करने वाले ब्रह्मा-विष्णु-महेश को अपने देह से ही देखने की विधि ही बतलादी। इसका सब लोग आस्थापूर्वक विचार कर अनुभव प्राप्त करें।

दूसरा समास

देह आशंका

अब श्रोता कहते हैं कि आपने अभी जो विवेचन किया, उसमें विष्णु का अभाव दिखाई देता है। आपके कथनानुसार ब्रह्मा-विष्णु-महेश उत्पत्ति-स्थिति-संहार रूप होने के कारण उनका भी अंत में विनाश है। चतुर्मुख ब्रह्मा, चतुर्भुज विष्णु की महिमा हमने सुनी है। लिंग-पुराण में शंकरजी की महिमा विपरीत बताई गई है। मूल माया से गुण माया प्रकट हुई और उससे त्रिगुणात्मक उपरोक्त ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीन देव हुए ऐसा शास्त्र बताते हैं पर मूल माया कहाँ से उत्पन्न हुई यह कोई नहीं बतलाता। अतः आप इस विषय में विस्तार पूर्वक बतलाने की कृपा करें।

यदि कहा जाय कि तीनों देवों ने मिलकर मूलमाया बनायी तो देव तो माया के बाद हुए। यदि यह कहें कि पर ब्रह्म ने माया को उत्पन्न किया तो ब्रह्म में कर्तृत्व है ही नहीं। यदि माया सत्य होती तो उसका कर्तृव्य ब्रह्म को है या नहीं इस पर विचार किया जा सकता था। पर वह तो सर्वथा मिथ्या है, फिर उसका कर्तृत्व किसे दिया जाय? अतः इस उलझन भरी गुत्थी का शंका-समाधान करने की कृपा करें।

इसी प्रकार वेद (शब्द) मातृका के बिना (अक्षर) नहीं है, मातृका देह बिना नहीं, देह से देह उत्पन्न होता है। ऐसे सब देहों में नरदेह प्रमुख है। फिर उनमें ब्राह्मण देह सर्वश्रेष्ठ उन ब्राह्मणों को ही वेदों का अधिकार—यह क्या झमेला है, समझ में नहीं आता। वेद कहां से आये, देह कैसे उन्पन्न हुए, देवतागण कैसे प्रकट हुए यह सब कुछ जानना चाहते हैं। कृपया इसे अच्छी तरह समझाइये।

इस पर वक्ता उत्तर देते हैं कि सुनो लौकिक परम्परायें और शास्त्र निर्णय एक समान न होने के कारण और सत्य का प्रत्यय यह सदा एक होने के कारण निर्णय बतलाने में कठिनाई आती है। शास्त्रों की प्रतिष्ठा रखकर प्रत्यय (अनुभव) न बतायें तो यह गुत्थी नहीं सुलझ सकेगी क्योंकि शास्त्रों में भी अनेक मत-मतान्तर हैं। शास्त्र-वचनों की रक्षा करते हुए अनुभव की बात कहने से अर्थात पूर्व पक्ष त्यागकर सिद्धान्तों की ओर ध्यान देने से अज्ञानी और ज्ञानी दोनों का समाधान हो सकता है। शास्त्रों में पूर्व पक्ष का प्रतीप्रादन किया गया है, जो मिथ्या है। अज्ञानी उसी को सच्चा मानकर चलते हैं। पर ज्ञानियों को विचार पूर्वक अपने अनुभव से उसकी जांच-पड़ताल करनी चाहिए अस्तु, अब हम अगले समास में शास्त्रों की रक्षा करते हुए इस विषय को समझायेंगे। श्रोता सावधान होकर सुनें।

तीसरा समास

देह आशंका शोधन

वक्ता कहते हैं—उपाधि रहित आकाश ही निराभास ब्रह्म है। और उसी निराभास ब्रह्म से मूलमाया की उत्पत्ति हुई है। मूलमाया वायु रूप है और वायु में त्रिगुण और पंचभूत समाविष्ठ हैं। आकाश से वायु देवता, वायु से अग्नि देवता, अग्नि से आपोनारायण (जल देवता) आप से नाना बीजों द्वारा उत्पन्न पृथ्वी पैदा हुई। बाद में इस पृथ्वी से पाषाण बने और उन्हीं से फिर सब देवी देवताओं का विस्तार हुआ। अनेक वृक्ष, पाषाण, मिट्टी आदि की देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनायीं जातीं हैं और उन-उन देवताओं की उपासना से भक्तों को उनकी भावना के अनुसार अनुभव होता है। परन्तु यह सब देव हैं वायु रूप ही देशकाल के अनुसार अनेक देव, यक्ष, चामुण्डा, भूत, कात्यायनी आदि नाना देवी-देवताओं का प्रचार हुआ है, ये सब वायु रूप हैं पर विशेष प्रसंगों पर विभिन्न देह धारण कर उपासकों की भावना के अनुसार गुप्त तथा प्रकट हुआ करते हैं। वायु अनुभूति, वासना, वृत्ति, आदि के रूप में जगज्योति की कला है। आकाश से दो प्रकार के वायु की उत्पत्ति हुई है। एक सदा कहने वाली चंचल हवा और दूसरी जगज्ज्योति। इस जगज्ज्योति में ही देवी देवताओं की अनन्त मूर्तियाँ भासित होती है। इसी प्रकार तेज भी उष्ण और शीतल दो प्रकार का है। उष्ण तेज प्रकाश रूप सूर्य, सर्वभक्षक अग्नि और विद्युत (बिजली) ऐसे तीन विभागों में विभक्त है और शीतल तेज से जल, अमृत, चन्द्र आदि शीतल नक्षत्र, तारकाएं, बर्फ आदि पदार्थ हुए। अब जल में भी पानी और अमृत ऐसे दो प्रकार हैं। पृथ्वी में भी दो प्रकार हैं। एक प्रकार पाषाण, मिट्टी आदि का और दूसरा सुवर्ण,

पारस, रत्न आदि का। इसीलिए पृथ्वी को 'बहुरत्ना वसुन्धरा' कहा गया है। इस सारे कथन में आप लोग सत्य-असत्य क्या है, इस पर गम्भीरता से विचार कर निर्णय करें। अब मुख्य प्रश्न मानव-योनि की उत्पत्ति का है कि मनुष्य कहां से पैदा हुए। इसका वर्णन और समाधान हम अगले समास में करेंगे। श्रोतागण सावधान होकर सुनें।

चौथा समास

बीज लक्षण (गुण निरूपण)

वक्ता कहते हैं—अब देखिये सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होती है। यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य से मनुष्य, पशु, आकाश में उडने वाले पक्षियों से पक्षी, मछली मगर आदि जलचरों से जलचर आदि अगणित प्राणी निर्माण हुए। यह बात तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देती है। इसमें अनुमान का काम नहीं है। कहीं कहीं कुछ विपरीत प्रकार से भी उत्पत्ति होती है पर बिना शरीर के शरीर की उत्पत्ति नहीं होती, यह निश्चित है।

अब यह उत्पत्ति का सिलसिला कैसे शुरू हुआ, कहाँ से किसने शुरू की जिसने शुरू की उसको किसने बताया आदि बातों का यहां विस्तार करने से वह एक लम्बा इतिहास हो जायेगा। हमें तो मुख्य बात ध्यान में रखनी है अर्थात हमारे ऋषि मुनियों के प्रचीति के शब्दों पर विश्वास रखना चाहिए।

शास्त्रों के अनुसार प्रथम परब्रह्म से माया की उत्पत्ति हुई। उसे ही सूक्ष्म अष्टधा प्रकृति कहते हैं क्योंकि वह पंचभूत और तीन गुणों का मिश्रण है। वह माया वायु रूप है। वायु में जो अनुभूति है, उसे ही इच्छा या संकल्प कहते हैं। पर संकल्प का सम्बन्ध परब्रह्म से नहीं है। सम्बन्ध है, यह कहना केवल शब्द-छल है। निर्गुण ब्रह्म शब्दातीत है। नाम रूप मात्र भ्रमरूप है। आकाश में कोई कितना ही जोर लगाकर पत्थर फेंके, वह उसे नहीं छू सकता, वैसे ही निर्विकार ब्रह्म को

नाम रूप आदि विकार स्पर्श नहीं कर सकते । प्रत्यय जानकर निर्धार रखने से हीं अनुभव आयेगा ।

वायु रूप माया में जो अनुभूति की कला है, उसे ही ईश्वर सर्वेश्वर कहते हैं । उस ईश्वर में गुण का प्रवेश होने पर वह त्रिगुण मुक्त हो जाता है और उससे ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीन देवों का निर्माण होता है । यह पहले ही बताया गया है कि सत्व से ब्रह्मा, रज से विष्णु और तम से महेश की उत्पत्ति हुई है । वैसे तो तीनों गुण एक दूसरे में न्यूनाधिक प्रमाण में मिले हुए हैं, पर जिस गुण की जिसमें विशेषता होती है, यही उसका मुख्य गुण माना जाता है । वायु में सत्वगुणात्मक विष्णु ही चतुर्भुज देह धारी देवता बनगये । ऐसे ही ब्रह्मा और महेश ने रूप धारण किये । इन देवताओं को गुप्त या प्रकट होने में देर नहीं लगती । आज भी बड़े बड़े योगी गुप्त और प्रकट हुआ करते हैं यह हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं । फिर वे तो समर्थ देवता ही ठहरे । देवी-देवताओं में मनुष्य से कई गुना अधिक सामर्थ्य होती है ।

मनुष्य भी योगशक्ति से भिन्न देह धारण कर सकता है, पर काया-प्रवेश कर सकता है फिर वह तो जगदात्मा वायु है । उसे चाहे जो देह धारण करना, गुप्त या प्रकट होना क्या कठिन है ? अर्थात ईश्वर ने ही गुण माया का अंगीकार कर ब्रह्मा-विष्णु-महेश रूप से तीन देह धारण किये । बाद में उन्होंने अपनी संकल्प शक्ति से स्त्रियों की कल्पना की और कल्पना करते ही सुन्दर स्त्रियां प्रकट हो गयीं । उनके संकल्प से ही उनसे पुत्र-पौत्रादिक उत्पन्न हुए । यह तो विष्णु भगवान तथा ब्रह्मदेव की बात हुई ।

ब्रह्म देव ने भी संकल्पमात्र से सृष्टि का निर्माण किया । जारज, अंडज आदि अनन्त जीव-जन्तु ब्रह्म देव की इच्छा मात्र से निर्माण हुए । जल और पसीने से उत्पन्न जीव स्वदज कहलाते हैं और वायु से उत्पन्न जीव उद्भिज । बाद में एक शरीर से दूसरे शरीर उत्पन्न हुए और इस तरह अनंत सृष्टि का निर्माण हुआ । इस सृष्टि का विष्णु ने

मूल रूप से अर्थात सूक्ष्म इच्छा मात्र से पालन पोषण किया और स्थूल रूप से समय पर अनेक अवतार धारण कर धर्म-संस्थापना की। धर्म-स्थापना में सहयोग देने वाले सभी सज्जन विष्णुरूप, विष्णु के ही अंश होते हैं और जो दुर्जन होते हैं वे राक्षसों की कोटि में माने जाते हैं। सज्जनों की रक्षा करना और दुर्जनों का संहार करना और ये दोनों कार्य करते हुए धर्म की संस्थापना करना यह विष्णु भगवान के अवतारों का प्रधान प्रयोजन है। जो जीव जन्म लेते हैं, उनकी चेतना को नष्ट कर रुद्र अर्थात शंकर भगवान अपने तमोगुण से उनका संहार करते हैं। रुद्र जब क्रोध में आते हैं, तब वे सृष्टि का संहार करते हैं। वही प्रलय कहलाता है। प्रलय के समय सारी सृष्टि ही नहीं, सारा ब्रह्मांड जलकर भस्म हो जाता है और फिर दुबारा ब्रह्मा सृष्टि एवं ब्रह्मांड के पूर्व की भांति नया निर्माण और विष्णु भगवान सृष्टि का पालन पोषण करने लगते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और संहार की ये सारी प्रक्रिया को श्रोतागण सावधान होकर भली भाँति ध्यान में रखें। कल्पान्त में जो संहार अर्थात महाप्रलय होता है, उसका वर्णन हम अगले समास में करेंगे। जो पाँचों प्रलयों को पहचानता है, वही ज्ञानी है।

पांचवां समास

प्रलय लक्षण

वक्ता कहते हैं कि प्रलय पाँच प्रकार का होता है। पिंड में दो और ब्रह्मांड में दो ऐसे चार प्रलय होते हैं और पाँचवां विवेक प्रलय कहलाता है। पिंड में एक निद्राप्रलय और दूसरा मरण-प्रलय ब्रह्मा-विष्णु महेश जब निद्रित होते हैं, तो ब्रह्मांड का निद्रा-प्रलय होता है। ब्रह्मांड का कल्पांत प्रलय होकर जब तीनों देवताओं का अन्त हो जाता है, उसे ब्रह्म-प्रलय कहते हैं।

अब इन पाँचों प्रलयों का स्पष्टीकरण करेंगे। जब मनुष्य नींद में रहता है, तब सृष्टि के सारे व्यापार उससे अलग रहते हैं और सुषुप्ति अथवा स्वप्न अवस्था शुरु होती है। जागृति का क्षय निद्रा में होता है, इसलिए इसे निद्रा-प्रलय कहा जाता है। शरीर छूटने के समय को मृत्यु-प्रलय कहते हैं। शरीर में अनेक रोगों की प्रबलता होने से अथवा किसी आस्मिक दुर्घटना से शरीर से पंचप्राण विलग हो जाते हैं और साथ ही मनरूपी वायु भी निकल जाता है। केवल शव बचा रहता है। इसे ही मृत्यु-प्रलय कहते हैं।

अब ब्रह्मांड-प्रलय की बात सुनिये। ब्रह्मदेव के निद्रित होने पर इस सारे मृत्यु लोक का एक बड़ा पिंड बनकर प्राणिमात्र के सारे व्यापार समाप्त हो जाते हैं और प्राणियों के सूक्ष्म अंश भी वायु के चक्र में समा जाते हैं। ऐसा कुछ समय इस प्रकार बीतता है, फिर ब्रह्मदेव के जागने पर सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ होता है और वायु में बिखरे हुए सूक्ष्मांश (जीव) पुनः शरीर धारण कर संसार में विचरण करने लगते हैं तथा पूर्ववतः पुनः सृष्टि का भ्रम जारी हो जाता है।

ब्रह्म देव की आयु समाप्त होते ही ब्रह्म प्रलय का आरम्भ होता है। लगातार सौ वर्ष तक अवर्षण होने से सारी जीव-सृष्टि का नाश हो जाता है, पृथ्वी अभयदि रूप से फट जाती है, सूर्य का ताप बारह गुना बढ़कर सारे संसार की होली हो जाती है। अग्नि का विस्फोट होकर शेष भी विष उगलने लगता है और बाद में वह भी मर जाता है। आकाश में सूर्य की प्रखरतम ज्वायें भड़क उठती हैं और नीचे शेष विष उगलने लगता है और इन दोनों के प्रताप से सारा ब्रह्मांड जलकर भस्म हो जाता है। सूर्य के प्रखर तेज से मेरू मादार पर्वत ढहकर इन्द्र की अमरावती, ब्रह्म देव सत्य लोक, विष्णु का बैकुण्ठ लोक और शिव का कैलास आदि सभी लोक भस्म हो जाते हैं।

मेरू पर्वत के ढहते ही सारे देवता वायु चक्र में विलींन हो जाते हैं। तब हाथी की सूढ़ के समान मूसलाधार वृष्टि शुरू होकर सारी सृष्टि में निमिष मात्र में जल प्रलय हो जाता है और सृष्टि जल में डूब जाती है। सृष्टि जल रूप होने पर अग्नि उस जल को सुखा डालता है। अग्नि के प्रज्वलित होते ही समुद्र में वडवानल वायु का प्रकोप हो जाता है और शंकर के नेत्रों का तेज पंचभूत. अहंकार और महत् तत्व इन सात कंचुकों का घेरा, सूर्य, विद्युत शक्ति आदि सभी ज्वालायें एकत्र हो जाती हैं। देवताओं के तेजोमय देह उनमें विलीन हो जाते हैं और उनके पूर्व रूप में वे समा जाते हैं। तब महाप्रभंजन (वायु) का प्रकोप होकर अग्नि का शमन हो जाता है और वायु मूल ब्रह्म की ओर अग्रसर होती है। जैसे धुंआ आकाश में विलीन हो जाता है। वैसे ही वायु भी घुलकर ब्रह्म में लीन हो जाती है यह सबको विदित ही है कि वहुतायत के सामने अल्प का नाश हो ही जाता है। वायु का भंय होते ही पंचभूत और तीनों गुण एवं ईश्वर, प्रकृति और पुरुष भी अपना अधिष्ठान छोड़कर निर्विकल्प ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। उस काल में अनुभूति भी नष्ट हो जाती है और जगज्ज्योति भी लोप हो जाती है। तब केवल शुद्ध, निर्विकल्प एकमात्र स्वरूप स्थिति ब्रह्म ही शेष रहता है। संसार में जितने भी कल्पित नाम रूप आदि हैं। वे सब प्रकृति के ही कारण होते है। प्रकृति का विनाश होने पर फिर क्या शेष रह जाता है, जिसका कि शब्दों सें वर्णन किया जा सके। प्रकृति के रहते हुए ही विवेक द्वारा सत्-वस्तु परब्रह्म-परमातमा का विवेक करना, उसका भान और साक्षात्कार होना ही विवेक-प्रलय कहलाता है, जिसके द्वारा सारे बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्म स्वरूप बन जाता है।

इस प्रकार हमने यहाँ पाँचों प्रकार के प्रलयों के बारे में संक्षेप में सब बातें बता दी हैं। आप सब श्रोतागण उस पर चिंतन कर उसकी सत्यता और यथार्थता का अनुभव करें।

अभी तक उत्पत्ति, स्थिति और संहार की सब बातें आपको समझा चुके हैं। अब निर्गुण, निराकार परमात्मा के सम्बन्ध में विशेष बातें आपको अगले समास में विस्तार पूर्वक बतलायेंगे श्रोतागण सावधान होकर सुनें।

छठवां समास

भ्रम का आभास

पिछले समास म उत्पत्ति-स्थिति और संहार के बारे में बताया जा चुका है। अब निर्गुण परमात्मा के विषय में सुनो। परमात्मा इन सब स्थिति के परे है। होने, रहने या जाने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आदि, मध्य और अंत सबमें वही भरा हुआ है। परब्रह्म सदा एकसा है और मध्य में ही उसका जो उत्पत्ति-स्थिति और संहार का दृश्य दिखाई देता है, वह सब भ्रम जाल है। जिसका भास होता है, वह सब नाशवान है। पिंड-ब्रह्मांडों की उथल-पुथल नित्यशः हुआ करती हैं पर कल्प के अन्त में सबका नाश हो जाता है। विवेकी पुरुष सृष्टि में विचरण करते हुए भी सारासार विचार से सारी बातों को ध्यान में रखते हुए शाँत रहते हैं पर ऐसे ज्ञानी पुरुष संसार में बहुत थोड़े हैं अतः अधिकाँश अज्ञानी लोगों के आगे उनकी कौन सुनता है ? जो ज्ञानी होता है, उसका लक्षण यह है कि वह कभी भ्रमजाल में नहीं फंसता। जो सब भ्रमों को जानते हुए उनसे अलग रहता है, वही सच्चा ज्ञानी पुरुष है।

अब भ्रम क्या है, इसे देखें। निर्विकार परब्रह्म ही सब में व्याप्त है। उसके अतिरिक्त नाम रूप की सब चीजें भ्रम मात्र हैं।

भ्रमेणा हं भ्रमेणत्वं भ्रमेणो पासका जनाः।
भ्रमेणेश्वर भावत्वं भ्रम मूल मिदं जगत्॥

अर्थात अष्टधा प्रकृति भी भ्रम रूप ही है। उससे विवेक द्वारा जो बिलग रह सकेगा, वही धन्य पुरुष है। अब भ्रम सम्बन्धी कुछ उदा-

हरण बतायेंगे, विदेश में भ्रमण करते हुए दिशा भूल जाना, आत्मीय जनों की पहचान भूल जाना, भूत-प्रेत आदि की बाधा से पीड़ित होना, मद्यपान से उन्मत्त होने पर एक वस्तु की अनेक वस्तुए दिखाई देना, संशय के भंवर में घूमना, नाटकों के रंगमंच पर स्त्रियों का अभिनय करने वाले पुरुषों को स्त्रियों के रूप में देखना, रास्ता भूलकर शहर में भटकते रहना, किसी स्थान पर गाड़कर रखी हुई वस्तु का स्थान भूल जाना, अपने पास पड़ी हुई चीज को खोई हुई जानकर उसके लिए चिंता करना, पढ़ा हुआ भूल जाना, स्वप्न के दुःख से दुखी होना, दुश्चिन्त या अपशगुन मे घबरा जाना, झूठी खबर से उदास होना, पेड़ या खम्मे को देखकर भूत होने का भ्रम होना, कहीं कुछ आहट होते ही दचक जाना, जल को कांच समझकर उस पर गिर जाना, मुख्य द्वार छोड़कर अन्यत्र भटक जाना, एक को अनेक देखना, आदि सब भ्रम के लक्षण हैं। मृत मनुष्य कभी कभी स्वप्न में दिखाई देकर कुछ मांगने लगता हैं। इस स्वप्न की स्थिति का चिंतन करते रहना यह भी भ्रमिष्ट अवस्था है।

साँसारिक सभी वस्तुओं को मिथ्या कहते हुए भी उनको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना, यह भी भ्रम है। अपना बडप्पन या महत्ता कैसी बढ़ेगी इसकी चिंता करने वाला, बाह्य वैभव में भूलने वाला, कर्मठता के अभिमान में सच्चे ज्ञान को तुच्छ समझने वाला, मैं ज्ञाता हूँ, ब्रह्म रूप हूँ, ऐसा मानकर अनाचार करने वाला, इस प्रकार के सभी मनुष्य भ्रमिष्ट ही हैं। देहाभिमान, कर्माभिमान, जात्याभिमान कुलाभिमान, ज्ञानाभिमान, मोक्षाभिमान आदि सभी अभिमान भ्रम रूप ही हैं। जिसे न्याय अन्याय का ज्ञान नहीं, अन्याय करते हुए भी जिसे अपने कर्म का खेद नहीं, जिसे सारासार विचार नहीं, आगे पीछे की सुध नहीं, जो अभिमान से, अहंकार से व्यर्थ ही अपनी शान बताता है और मनमानी कल्पनायें करता रहता है, वह भ्रम में है। बिना प्रचीति के औषधि का सेवन करना, बिना अनुभव के ज्ञान की

बधारना, फल श्रुती बिना प्रयोग करना, ज्ञान विरहित योग साधना करना, शरीर भोग की सदा इच्छा रखना ये सारे भ्रम के प्रकार हैं। यह समझना कि विधाताने हमारे भाग्य में जो कुछ लिखा है, वही होगा, भ्रम ही है।

अज्ञानी लोगों में इसी प्रकार के अनेक भ्रम फैले हुए हैं। जिनमें थोड़े से यहाँ संकेत रूप में निवेदन किये हैं। जब कि सारा संसार ही मूल रूप से भ्रम है, तब फिर किन किन बातों का अलग से वर्णन किया जाय ! एक निर्गुण परब्रह्म परमात्मा के सिवा शेष सब भ्रम रूप ही है। ज्ञानी पुरुष यह जानते हुए सांसारिक चीजों से सदा अलिप्त रहते हैं। जिस पर भी अनेक लोग ऐसे ज्ञानियों के बारे में भी अनेक चमत्कार आदि बताकर जनता में भ्रम फैलाते हैं।

अब श्रोता यह शंका करते हैं कि महान ज्ञानी पुरुषों संत-महात्माओं की समाधियों का पूजन आदि किया जाता है' वह कहाँ तक उचित है ? क्या इससे कुछ फल प्राप्त होता है ? इसी भाँति बहुत से ऐसे महात्मा हो गये हैं, जिनमें लोकोत्तर सामर्थ्य थी। अतः क्या वे भी साँसारिक पदार्थों की वासना में लिप्त थे ? क्या यह सब बातें मानने योग्य हैं, या सब भ्रम का ही खेल है ? कृपया इन्हें अच्छी प्रकार समझायें। वक्ता कहते हैं कि इन बातों का उत्तर हम अगले समास में देंगे।

सातवां समास

सगुण भजन

श्रोताओं की इस शंका पर कि अवतार ज्ञानी और सन्त जन जो सारासार विचार द्वारा मुक्त हो गये हैं, उनकी सामर्थ का अब तक प्रभाव कैसे चल रहा है ? क्या उनकी वासनायें अबतक शेष बची हैं ? वक्ता उत्तर देते हैं कि ऐसे अवतारी महापुरुषों एव ज्ञानियों की सामर्थ्य

उनके पश्चात भी काम करती रहती है पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे वासनाओं से युक्त थे या हैं। भाविक भक्तों को अनेक चमत्कारों पर विश्वास हो जाता है और वे उसे सत्य मान लेते हैं। सन्त महात्माओं के जीवन काल में भी उनके भक्तों द्वारा अनेक चमत्कार बतलाये जाते हैं पर इन बातों पर हमें बहुत सावधान होकर विचार करना चाहिए।

सन्तजन वासनाओं को लेकर जन्म नहीं लेते हैं पर लोगों को वे एक ही समय पर भिन्न भिन्न स्थानों में दिखाई देते हैं। यह तो केवल भावना प्रधान भक्तों के विश्वास का ही परिणाम है। ऐसे भक्तों के लिए देवताओं का अस्तित्व यथार्थ ही कहा जायेगा। भावना के विना सारी कल्पनायें व्यर्थ और कुतर्क मात्र हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार किसी चीज को स्वप्न में देखता है, तो क्या उस समय वह चीज उससे सचमुच प्राप्त हो जाती है ? यदि यह कहा जाय कि उसके स्मरण मात्र से उसे किसी चीज का प्रत्यक्ष भास क्यों होने लगता है, तो इसका कोई तर्क पूर्ण उत्तर तो नहीं दिया जा सकता पर यह सब भावना का खेल है, अर्थात कल्पना है. भ्रम है। स्वप्न में अनेक स्थान और वस्तुये दिखाई देती हैं पर उनका वस्तुतः अस्तित्व नहीं होता। केवल उनका स्मरणमात्र रहता है। इसी प्रकार यह सब बातें हैं।

यह नहीं मानना चाहिए कि ज्ञानी का जन्म होता है। इस बात को समझने के लिए विवेक की आवश्यकता है। ज्ञानी वास्तव में मुक्त हो जाते हैं पर उनकी सामर्थ्य उनके पश्चात भी चलती रहती है, जिससे सिद्ध होता है कि पुण्य-पथ पर चलते रहे हैं। हमें भी उनका अनुकरण कर पुण्य-पथ के पथिक बनने का प्रयास करना चाहिए हमें ईश्वर परायण होकर सदा न्याय-मार्ग पर चलना चाहिए। हम पुरश्चरण और तीर्थाटन करें, नीति का अनुसरण करें तथा वैराग्य की शक्ति से अपनी सामर्थ्य भी बढ़ाते रहें। स्वस्वरूप में स्थिरता आने पर ज्ञान मार्ग से भी सामर्थ्य की वृद्धि हो सकती है। अतः एकान्त

का एकाग्रता का भंग हो, ऐसा कोई कार्य न करें। एक गुरु और एक उपासना के लिए एक आराध्य-देवता का निश्चय कर उन पर पूर्ण विश्वास के बिना सब निष्फल है। निर्गुण का ज्ञान एवं अनुभूति होने पर भी सगुण की अवहेलना न करें ऐसा करने से हम दोनों दीन हो जाते हैं। न सच्चा ज्ञान ही है और न सच्ची भक्ति। वह पुरुष तब केवल अनुमान के भंवर में फंसा रहता है। इसलिए जप एवं ध्यान का सतत अभ्यास करते रहना चाहिए। सगुणोपासना त्यागने पर ज्ञानी होने पर भी उसको अपयश मिलेगा इसलिए सगुण-भक्ति का कभी निरादर न करें। निष्काम भक्ति की तुलना नहीं की जा सकती पर उसके लिए बहुत बड़ी पुण्याई चाहिए। सकाम भक्ति से कामनओं की पूर्ति हो जाती है पर निष्काम भक्ति से प्रत्यक्ष परमात्मा की ही प्राप्ति हो जाती है। कामना पूर्ति और ईश्वर प्राप्ति में कितना भारी अन्तर है? फल देने वाले भगवान ही हैं, पर फल की ओर सतत ध्यान रखने से भगवान बिछुड़ जाते हैं। अतः निष्काम भक्ति द्वारा भगवान को वश करना ही श्रेयस्कर मार्ग है।

निष्काम भक्ति का फल अपर्याद है। उसके द्वारा असीम सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। उसके सामने सकाम भक्ति से प्राप्त होने वाले फल अति तुच्छ है। निष्काम भक्त के मन में जो जो भावना पैदा होती है, उस की भगवान स्वयं तत्काल पूर्ति करते हैं। ऐसे निष्काम भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकार भक्त तथा भगवान की सामर्थ्य एक होने पर उसके सामने कलिकाल भी नहीं टिक सकता फिर अन्यों की बात ही क्या? जहाँ निष्काम भक्ति युक्त कर्मयोग और विमल ब्रह्मज्ञान का संगम होता है, उसके सन्मुख तीनों लोक तुच्छ हैं। ऐसे ज्ञानी भक्त के सामने असामान्य बुद्धि के पुरुष का तेज हो जाता है। ऐसे भक्त के लिए यश, कीर्ति और प्रताप अपने आप उपलब्ध हो जाता है। जहां अज्ञान का निरूपण और हरिकीर्तन का प्रवाह एक साथ चलता है अर्थात ज्ञान और भक्ति का सुखद संगम

होता है, वहाँ प्राणी मात्र तल्लीन एवं तत्पर हो जाते हैं। जिस परमार्थ में भ्रष्टाचार नहीं, वह उदार होता है। सारा तार विचार पूर्वक न्याय-अन्याय पर उचित ध्यान रखने से ईश्वर प्रदत्त सद्बुद्धि कुमार्ग पर नहीं चल सकती। भगवान अपने अनन्य भक्त को स्वयं सद्बुद्धि प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में भगवद् गीता का यह वचन ध्यान में रखना चाहिए।

'ददामि बुद्धि योगंत तेन मामुपयान्ति ते।

अर्थात निष्काम सगुण भक्ति और ब्रह्म ज्ञान इन दोनों के समन्वय से ही अनुभव जन्य ज्ञान की प्राप्ति होती है. जो अत्यन्त दुर्लभ मानी गयी है।

आठवां समास

प्रचीति-वर्णन

अब प्रचीति के लक्षण सुनिए। जो प्रचीति देखेगा वही बुद्धिमान है जिसे प्रचीति का ज्ञान नहीं, वह पागल और दीन है। रत्नों की एवं सिक्कों की प्रचीति (परीक्षा) किए बिना उन्हें लेना हानिकारक है। घोड़ा और शस्त्र भी परीक्षा कर ही लेना चाहिए। ऊगने की पूरी संभावना हो तभी बोने का बीज खरीदना चाहिए। परीक्षा एवं प्रचीति के बिना निरुपण भी व्यर्थ है। किसी औषधि का दूसरे को अनुभव प्राप्त होने पर ही उस औषधि का सेवन करना चाहिए। बिना परीक्षा किए औषधि का प्रयोग करने से लाभ की बजाय हानि होने की ही अधिक संभावना होती है। खेल अनुमान से किसी कार्य को करना मूर्खता है। बिना परीक्षा किसी काम को करने में कभी कभी प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता है। अतः कोई भी कार्य केवल अनुमान मात्र से ही नहीं करना चाहिए। चालाक व्यक्ति की चालाकी को भली भांति समझ लेना चाहिए। धोखेबाज मनुष्य का बारीकी से निरीक्षण करने पर उसकी असलीयत का पता लग जाता है।

अनाचारी, तापसी लोग और नये नये वेषधारी लुटेरों से हमें सतर्कता पूर्वक सावधान रहना चाहिए। दिवालिये सेठ की बाहरी तड़क-भड़क देखकर भोला आदमी उसके बनावटी वैभव से मोहित होकर अपनी धन-दौलत गवां बैठता है। इसी प्रकार बिना प्रचीति अर्थात परीक्षा किए प्राप्त ज्ञान भी व्यर्थ है। ऐसे ज्ञान से समाधान नहीं हो सकता।

मंत्रों तंत्रों का अज्ञानियों को उपदेश कर उन्हें उनसे प्रभावित करना उनका प्राण-हरण करना जैसा ही दुष्कृत्य है। यदि किसी अनाड़ी वैद्य के इलाज से कोई मर जाता है, तो इसमें किसी का क्या दोष ? हमें स्वयं यह विश्वास हो जाय कि हम पाप मुक्त हो गये है और हमारी जन्म-मरण की शृंखला टूट गयी है, तभी हम यह समझें कि हमारा सच्चा कल्याण हो गया। जब मनुष्य परमात्मा और अपनी आत्मा को अच्छी तरह पहचान ले और आत्म-निवेदन का उसे पूरा विश्वास हो जाय, तभी उसका कल्याण हो सकता है। इस ब्रह्मांड के कर्ता, उत्पादन और प्रयोजन का उसे ठीक पता लग जाय तभी उसका ज्ञान सार्थक हो सकता है।

सन्देह होने पर परमार्थ के सभी कार्य व्यर्थ ही माने जायेंगे। प्रथम हमें सृष्टि और ब्रह्माण्ड के कर्ता को भली भाँति पहचानना चाहिए एवं माया की उत्पत्ति के कारणों का ठीक पता लगाना चाहिए प्रचीति की रक्षा करने में रुढिया परम्परा छूट जाती है इसीलिए यह सब बातें बतलाई गई हैं ताकि रुढ़ि परम्परा की भी रक्षा हो और श्रोताओं के मन में प्रचीति का भी बोध हो। अतः रूढ़ि और प्रचीति दोनों का समन्वय करते हुए हमने इस समस्या का निराकरण करने का प्रयत्न किया है।

अगले समास में अब हम विचारशील सूज्ञ श्रोताओं को प्रचीति और प्रमाण इन दोनों का निर्वाह करते हुए यथार्थ का निरुपण करेंगे, जिसे श्रोतागण पूर्ण श्रद्धा और सावधानी पूर्वक सुनें।

नवां समास

पुरुष-प्रकृति स्पष्टीकरण

वक्ता कहते हैं—जैसे आकाश से वायु निर्माण हुआ वैसे ही ब्रह्म से मूल माया उत्पन्न हुई। वायु स्वरूप मूल माया में तीनों गुण और पांचों भूत मिलकर अष्टाधा प्रकृति अति सूक्ष्म रूप में समाविष्ट है। जैसे वटवृक्ष के बीज को फोड़कर देखा जाय तो उसमें वटवृक्ष के प्रचण्ड विस्तार का पता नही चलता पर वह वृक्ष तो बीज में ही समहित रहता है, वैसे से मूल रूप में जो होता है, वही व्यक्त दशा में प्रकट होता है। अतः जिस बीज भून मूल माया के स्वरूप का ही हमें परिशोंधन करना चाहिए।

मूल माया के दो विभेद हैं, उसकी प्रचीति विवेक से होगी। निश्चलता में जो चंचल स्थिति होती हैं, वही वायु है। उसकी अनुभूति ही जगज्ज्योति का मूल स्रोत है। प्राणी और वायु का संयोग ही मूल माया है। चेतना (अनुभूति) और वायु इन्हें ही पुरुष-प्रकृति और शिव-शक्ति कहा जाता है। वायु स्वरूप मूल माया में जो चेतना है, वही पुरुष है। वायु यह शक्ति और चेतना यह शिव (ईश्वर) एक दोनों के एक रूप होने से मूल माया को 'अर्धनारी नटेश्वर' भी कहा जाता है।

वायु में जो चेतना है, वही ईश्वर है। उससे तीन गुण उत्पन्न हुए। इन त्रिगुणों में जो सत्व गुण है, वही शुद्ध चेतना है। उसका देहधारी विष्णु है। उसी के अंश से सृष्टि का संचालन होता है, यह गीता बताती है। इस प्रकार जो मूल तक विचार करेंगे, वे माया में जकड़े रहने पर भी अवश्य मुक्त होंगे। एक ही चेतना शक्ति सब प्राणियों का संचालन और रक्षण करती है। उसे ही जगज्ज्योति कहते हैं। मानव, पशु, पक्षी, कीटक आदि सभी प्राणियों का वही जीवन-आधार है। चेतना-शक्ति से ही उनकी रक्षा होती है। उसी के प्रभाव से जीव संकट आने पर प्राण बचाने भागते हैं, छिपते हैं। यह चेतना शक्ति सारे

संमार की रक्षा करती है, इसीलिए यह जगज्ज्योति कहलाती है। इसके अभाव में प्राणी की मृत्यु हो जाती है। जिस प्रकार जल तुषार बनकर अनन्त कणुओं का रूप धारण करता है, वैसे ही मूल माया की इस चेतना से ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ है।

इसी प्रकार अनेक देवी-देवता, भूत पिशाच, आदि अपनी सामर्थ्य के अनुसार सृष्टि में विचरण करते रहते हैं। उन्हें कल्पित नहीं मानना चाहिए। ये वायु रूप होते हैं और स्वेच्छानुसार अपने रूप बदल सकते हैं। अज्ञानी प्राणी अपनी वासनाओं के कारण भ्रमित हो जाने से उन्हें इनकी बाधा हुआ करती है। ज्ञानी पुरुष में वासना या संकल्प नहीं होता। अत: उन्हें इन शक्तियों से कोई उपसर्ग नहीं होता। अतः हमें आत्म ज्ञान का अभ्यास कर उससे लाभान्वित होना चाहिए।

आत्म-ज्ञान से सब कर्मों का खण्डन होता है यह प्रत्यक्ष है। बिना प्राप्ति के कर्म का बंधन नहीं टूटता और बिना सद्गुरु के आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, इस मर्म को ध्यान में रखें। इस लिए संत-सद्गुरु का सत्संग कर अन्तर्यामी तत्वों का शोध करना चाहिए। अन्ततः तत्वों का मूल तत्व में विलय होकर हम स्वयं मूल तत्व रूप बन जाते हैं। मूल तत्व के स्वरूप से अनन्यता होना ही मनुष्य का साध्य है। सारा सार विचार के बिना सब व्यर्थ है। इसलिए निरन्तर विचार-चिंतन करना आवश्यक है। श्रवण-मनन-निदिध्यास से प्रचीति होते होते प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है। साक्षात्कार के लिए अन्य उपायों को खोजने की आवश्यकता नहीं रहती।

दसवां समास

चल-अचल निरूपण

वक्ता रहते हैं—ब्रह्म आकाश के समान पोला (शून्य) व्यापक, सबसे परे निर्मल, निश्चल, और सदैव है। उसका न आदि है और न

अन्त । उसे ही परमात्मा कहते हैं। उनके और भी अगणित नाम हैं। वह आकाश के सदृश्य सर्व व्यापी निराभास आकाश से पाताल तक में व्याप्त, कल्पांतों में भी सर्वत्र संचरित तत्व है। वह अनिर्वचनीय और अचल है। उस अचल तत्व मे चञ्चलता की स्फूर्ति हुई और उनसे अनक तत्वों की उत्पत्ति हुई। अदृश्य होते हुए भी उसका नाम निर्देश करना और उसके लक्षण बताना उसका परिचय प्राप्त करने के लिए अनिवार्य हो गया है।

मूलमाया, मूलपुरुष और मूल प्रकृति ये सब नाम ब्रह्म की चंचल प्रेरणा को ही दिये गये हैं पर जिसे यह नाम दिये गये हैं, उसकी हमें पहले पहचान कर लेनी चाहिए। बिना प्रचीति के व्यर्थ की बातें करने से क्या लाभ ?

स्वरूप का ध्यान न रखते हुए केवल नाम के साथ भटकते रहना ठीक नहीं ? प्रचीति के अभाव में केवल अनुमान से उलझन ही पैदा होगी। निश्चल आकाश में चंचल वायु बहती है पर आकाश और वायु भिन्न-भिन्न हैं। वैसे ही निश्चिल परब्रह्म में चंचल माया रूपी भ्रम खड़ा हो गया है तथापि ब्रह्म और भ्रम महदन्तर है।

अब माया रूपी भ्रम का निराकरण करेंगे। जैसे आकाश में वायु का चलन होता है, वैसे ही निश्चल ब्रह्म में चलन द्वारा 'एकः अहं बहु स्याम् (मैं एक हूँ, बहुत बनूं) की स्फूर्ति मूल प्रकृति, मूल माया है, यह अहं स्फुरण रूप चेतना ही ब्रह्माण्ड की महाकारण काया है। पिण्ड में जैसे स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ऐसे चार प्रकार के देह हैं, वैसे ही ब्रह्माण्ड के विराट, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत और ऐसे चार देह हैं। इन्हें ईश्वर तनु-चतुष्टय अर्थात ईश्वर के चार देह रहा जाता है। पिंड के चार और ब्रह्माण्ड के चार मिलाकर आठ देह होते हैं। इन आठ देहों में जो आठवां देह है वही मूल माया है। वही उपरोक्त बतायी गयी अहं स्फुरण रूप चेतना है। चेतना ही मूल माया है। आदि-स्फुरण भी वही है।

मूल माया के परमेश्वर वाचक अनन्त नाम हैं। ये सब नाम केवल संकेत मात्र हैं। इसी मूल माया को परमात्मा, परमेश्वर, परेश, ज्ञान धन, ईश्वर, जगदीश, सत्तारूप, ज्ञान स्वरूप, प्रकाश रूप, ज्योति रूप, कारण रूप, चिन्द्रूप, आत्मा, अन्तरात्मा दृष्टा,साक्षी, जीवात्मा, शिवात्मा, देही, कूटस्थ, हरिहर ब्रह्मा, आदि अनन्त पुरुष नामों से सम्बोधित किया जाता है। इन्द्र, चन्द्र, वरुणादि देव, ऋषि, मुनि, गण-गंधर्व, विद्याधर, यक्ष किन्नर, नारद, आदि सब लोकों का वह अन्तर है अर्थात सब का ध्येय, आराध्य वही है। इसीलिए मूल माया को सर्वांतरात्मा भी कहा जाता है। यह अन्तरात्मा ही चन्द्र, सूर्य, तारा मण्डल, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल आदि सब ब्रह्माण्डों का संचालन करता है।

मूल माया ही गुण माया बनकर सत्व-रज-तम रूप हरि-हर-ब्रह्मादि उत्पन्न कर सकल ब्रह्माण्ड-रचना का करण बनती है। अब इस मूल माया के स्त्री-वाचक नाम सुनिये। जगदीश्वरी, परमेंश्वरी, त्रैलोक्य जननी, अन्तर्कला, चेतनकला, चंचला, जगज्ज्योति, जीवनकला, परापश्यन्त्री मध्यमारूप शारदा, मति, धृति, धारणा, मूल प्रकृति, शक्ति, जागृत अवस्था जानने वाली, सुख दुःखादि जानने वाली,दीन वत्सला, कृपाला, कोमला, शान्ति, क्षमा, दया, अध्यात्म-विद्या, सायु-ज्यता आदि सब नाम उसी मूल माया के ही प्रतीक हैं।

गुण और सृष्टि रचना के आश्रय स इस मूल माया के और भी अनन्त नाम बतलाये गये हैं पर सबका सचालक सर्वव्यापी अन्तरात्मा एक ही है। कीट-पतंग से ब्रह्म देव तक सब उसी में समाये हुए हैं। उसे ही हमें पहचानना है। सृष्टि-रचना का खेल हम देख रहे हैं। पर उसका नियन्ता यद्यपि कोई है, पर वह दिखाई नहीं देता। प्रत्यय में है पर भास मान नहीं। शरीरी भी है पर किसी एक स्थान में बद्ध नहीं। सूक्ष्म इतना है कि सूक्ष्मतम आकाश भी उसी में छिपा हुआ है और स्थूल भी इतना है कि सरिता-सागर के समान अपरम्पार सब

पदार्थों में व्याप्त है। वह वायु से भी चंचल है और जो जो पदार्थ हम देखते हैं, उसमें वह तद्रूप हो जाता है। वह अनन्त रूपों से पहचाना जाता है वह कान में बैठ कर शब्दों को सुनता है, नाक में रहकर गन्ध लेता है, त्वचा में स्थित होकर शीतोष्ण, स्पर्श आदि का अनुभव करता है। ऐसा वह परब्रह्म सब में ओत-प्रोत होकर भी सबसे अलिप्त हैं। उसकी अगाध लीला वही जानता है।

वह न पुरुष है, न स्त्री। बाल-तरुण-वृद्ध आदि अवस्थायें उसे नहीं है। वह सब देहों का संचालक होकर भी अकर्ता है। सब भूत प्राणी क्षर अर्थात नश्वर हैं पर वह अक्षर अर्थात अविनाशी है।

द्वावियौ पुरुषौ लोक क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते ॥

अब तक जो वर्णन किया गया, चंचल मूल माया का, अन्तरात्मा का वर्णन है। निश्चल परब्रह्म तो इसके भी परे है। वह 'उत्तमः पुरुष स्त्वन्यः' वह उत्तम पुरुष और ही है। वह निष्प्रपंच, निष्कलंक निरंजन, निर्विकार, मुख्य परब्रह्म परमात्मा एक मात्र हैं। चारों देहों का निरसन कर अर्थात देहातीत होकर उसके साथ अनन्य होना ही भक्त का सच्चा लक्षण है। अष्ट देहों का निरसन होने पर चंचल अन्तरात्मा भी कहाँ शेष रहा? निर्विकार में विकार कैसा? निश्चल परब्रह्म और चचल मूल माया की भिन्नता को निश्चय पूर्वक अनुभव करना चाहिए।

चंचल नश्वर है इसलिए निश्चल को ही शाश्वत मानना चाहिए। असार, अनित्य का त्याग कर सार, नित्य, निश्चल परब्रह्म का ही आश्रय लेकर तद्रूप होने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से ज्ञान का लोप होकर विज्ञान का उदय होता है, मन का मनपन जाकर उन्मन अवस्था होगी वहाँ चंचलता कैसे स्पर्श कर सकती है? पर यह सब कहने-सुनने की बातें नहीं हैं। इसका प्रत्यक्ष अनुभव होना चाहिए। अनुभव के बिना समाधान नहीं हो सकता।

सत्य के समान पुण्य नहीं है और असत्य के समान पाप नहीं है। सत्य अर्थात निश्चल ब्रह्म स्वरूप और असत्य अर्थात चंचल माया। दृश्य पाप का निवारण होते ही निश्चल पुण्य शेष रह जाता है और उससे अनन्य होते ही हम नामा तीत बन जाते हैं। हम स्वयं सिद्ध वस्तु हैं, देह सम्बन्ध हमारा नहीं है, यह प्रत्यय आते ही पाप के पहाड़ क्षण भर में जल कर खाक हो जाते हैं। अनेक दोषों का परिमार्जन ब्रह्म ज्ञान से हो जाता है। अन्य सब साधन केवल समय का व्यर्थ काला पहरण करना है। अनेक क्षेत्रों की यात्रा की, तीर्थों में जाकर स्नान किया, पूजा, पाठ, व्रत, दान, योग राग आदि साधन किये पर सब साधनों से आत्म-ज्ञान के साधन की महिमा करोड़ों गुना अधिक है। जिसे आत्म-ज्ञान का लाभ हो गया, उसके पुण्य की कोई सीमा नहीं। उसके सब पाप भस्म हो गये। वे वेद शास्त्रों ने अन्ततः सत्य स्वरूप की प्राप्ति की ही अनन्त महिमा बतलाई है। सच्चे ज्ञानी का यही स्वरूप होता है। ज्ञानी आत्म-स्वरूपवान ही होते हैं। अतः उनकी पुण्य-सम्पत्ति अमर्याद, अटूट होती है। यह सब अनुभव की बातें हैं। बिना प्रचीति (अनुभव) के सब वृथा कष्ट हैं। इसलिए आत्म-दर्शन का प्रत्यय प्राप्त करने की हमें कोशिश करते रहना चाहिए। बिना प्रचीति के दुःख शोक का नाश नहीं हो सकता। श्री रघुनाथ जी की कृपा से आप सब लोगों को सच्चे ज्ञान का प्रत्यय प्राप्त होकर आप धन्य हों, यही मेरी आन्तरिक कामना है।

ग्यारहवां दशक

पहला समास

सिद्धान्त विवेंचन

वक्ता कहते हैं—आकाश से वायु उत्पन्न होता है, यह तो सबका अनुभव ही है। अब वायु से अग्नि कैसे प्रकट होता है, इसे सावधान होकर सुनिये।

वायु के घर्षण से अग्नि प्रकट होता है। वायु तत्व के दो भेद है। एक शीतल और दूसरा उष्ण। शीतल वायु से शीतल तेज और शीतल तेज से जल का निर्माण हुआ। जल से बीज रूप पृथ्वी और अनन्त बीजों से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। मूल माया की कल्पना ही सृष्टि रूप में प्रकट हुई है। वह प्रथम कल्पना (आदि सकल्प) ही मूल माया है। उससे त्रिगुणात्मक गुण माया का विस्तार हुआ। निश्चल ब्रह्म स्थित यह मूल माया अर्थात चंचल कल्पना का ही रूप है। मूल माया में प्रथम से ही अष्टधा प्रकृति का अस्तित्व है। सत्व, रज, तम, ये तीन गुण और पृथ्वी, आप, तेज, वायु तथा आकाश ये पंचभूत मिलकर अष्टधा प्रकृति बनती है। मूल माया में वह कल्पना रूप में रहती है। उसी बीज का विस्तार होते होते सूक्ष्म से स्थूल में प्रवेश करते-करते वह जड़ सृष्टि में परिणित हो जाती है। मूलतः कल्पना रूप (संकल्प) हुई, वह मूल माया, त्रिगुण रूप में वही गुण माया और जड़ सृष्टि रूप में परिवर्तित होने पर वही अविद्या माया कहलाने लगती है। उसीसे आगे चलकर चार योनि (जारज, अंडज, स्वेदज उद्भिज) और चार वाणी (परा, पश्यन्ति, मध्यमा व वैरवरी) का विस्तार होकर अनन्त जीव प्रकट हुए।

यह सृष्टि के निर्माण का भ्रम हुआ। अब संहार का क्रम सुनिये।

पिछले दशक में प्रलय के वर्णन में यह सविस्तार बताया ही गया है। फिर भी यहां हम उसे संक्षेप में सुनायेंगे। लगातार सौ वर्षों तक वर्षा न होने से सारी जीव-सृष्टि सूख जावेगी। उस कल्पाँत समय का शास्त्रों में उल्लेख है। पश्चात सूर्य बारह कलाओं मे तपेगा और उसके भीषण ताप से सारे संसार की राख होकर वह जल में विलीन हो जायेगी। बाद में जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु निराकार आकाश में विलीन हो जायेगी और इस प्रकार सारी सृष्टि का संहार हो जायेगा। अंततः माया का निरसन होकर केवल ब्रह्म स्वरूप ही शेष रहेगा। जीव-शिव, पिंड-ब्रह्माँड, एवं माया-अविद्या आदि मूल माया से उत्पन्न सारे खेल विवेक द्वारा जाना जा सकता है, इसलिए इसे विवेक प्रलय कहते हैं। यह सब विवेकी पुरुष ही जान सकता है। मूर्ख इसे क्या जाने ? सारी सृष्टि में दो ही तत्व दिखाई देते हैं—एक निश्चल (ब्रह्म) और एक चंचल (माया)। सारी सृष्टि का कर्ता चंचल मूलमाया ही है। उसे ही अंतरात्मा भी कहते हैं। निश्चल ब्रह्म से चंचल सृष्टि का सम्बन्ध नहीं है। अंतरात्मा सब शरीरों में निवास करता है। सारा कर्तृत्व इसी अंतरात्मा का है। इन्द्रियों के द्वारा वह अनन्त देह का संचालन करता है पर वह कार्य करते हुए भी अकर्ता है। राव-रंक ब्रह्मा आदि सब देहों का वही चालक है। इसे परमात्मा सर्वकर्ता भी कहते हैं। पर अन्त में विवेक-प्रलय होने पर कुछ भी शेष नहीं रहता। श्वान-सूअर आदि योनियों में भी वही अन्तरात्मा वास करता है। सामान्य जन केवल देह देखा करते हैं पर विवेकीं पुरुष देह के संचालक अन्तरात्मा का दर्शन करते हैं। वह सब देहों में समान होने के कारण विवेकी पंडित उसका सम-दर्शन किया करते हैं। श्री मद्भगवद् गीता में भगवान कहते हैं—

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडितः समदार्शिनः॥

अर्थात विद्या-विनय सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, श्वान, चाण्डाल इन सबके देह भिन्न-भिन्न होने पर भी सबका अन्तरात्मा एक ही है। ज्ञानी पुरुष सब प्राणीमात्र में एक ही अन्तरात्मा को देखते हैं। अनन्त प्राणियों के सारे क्रिया कलाप इसी अन्तरात्मा द्वारा हुआ करते हैं। इसीलिए इसे जगज्योति भी कहते हैं। कानों से सुनना, त्वचा से शीत-उष्ण का ज्ञान होना, आँखों से नाना पदार्थों को देखना, रसना से रसों का स्वाद लेना, नाक से गंध का अनुभव लेना, कर्मेन्द्रियों द्वारा विविध विषयों का आस्वाद लेना आदि सब कार्य यह चंचल कर्ता अर्थात अन्तरात्मा ही करता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होकर भी स्थूल देहों का रक्षण करता है, सुख-दुःखों का अनुभव करता है। अन्तरसाक्षी अन्त-रात्मा कहते हैं। आत्मा, अन्तरात्मा, विश्वास. चैतन्य, सर्वात्मा, सूक्ष्मात्मा, जीव, शिव, परमात्मा, द्रष्टा, साक्षी, सत्तारूप आदि सारे नाम उसी अन्तरात्मा के हैं। इसे ही मूढजन परमात्मा-वस्तु कहते हैं। सब में रहने वाला यह अन्तरात्मा भी चंचल अर्थात माया ही है। चंचल माया यह माया रूप में विविध रूपों में अलग अलग दिखाई देती है, जब कि निश्चल परब्रह्म सत्य और एक मात्र है। यही नित्य-अनित्य विवेक दृष्टि है।

जीव चार प्रकार के बताये गये हैं। जानने वाला जीव प्राण है। न जानने वाला जीव अज्ञान है। जन्म लेने वाला जीव वासनात्मक और परब्रह्म एकाकार होने वाला जीव ब्रह्मांश है। ये चारों जीव चंचल माया से प्रेरित होने के कारण नाशवान हैं। निश्चल परब्रह्म मात्र आदि अन्त में भी निश्चल रहता है और वही शाश्वत सत्य है। परब्रह्म वस्तु आदि, मध्य और अंत में एक समान, निर्विकार, निर्गुण, निराकार, निरंजन और निस्प्रपंच है। चंचल की उपाधि का विवेक से निरसन होते ही जीव और शिव की एकता हो जाती है ऐसा शास्त्र-वचन है पर जहां उपाधि ही न हो, वहाँ निरसन किस चीज का ?

अस्तु जानना यह ज्ञान है और उसका भी विस्मरण होना यह विज्ञान है। मनको जैसे उन्मनावस्था का भान नहीं होता, वैसे ही ज्ञान को विज्ञान अर्थात स्वरूपानुभव का आकलन नहीं हो सकता। वृत्ति को निवृत्ति अर्थात वृत्ति शून्यता ज्ञात नहीं होती वैसे ही गुण को (चंचल को) निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। इसीलिए सन्तजनों का कथन है कि विवेक द्वारा गुणातीत पर ब्रह्म को पहचानना चाहिए। श्रवण से मनन श्रेष्ठ है, क्योंकि मनन द्वारा सार (ब्रह्म) और असार (चंचल माया) का विवेक होता है तथा सार रूप ब्रह्म के निदिध्यास से संग-रहित वस्तु का साक्षात्कार होता है। निर्गुण से अनन्यता ही सायुज्य-मुक्ति है लक्ष्यांश (वस्तु) और वाच्यांश (चंचल माया) यह विचार ही यहां समाप्त हो जाता है। अलक्ष्य वस्तु में लक्ष्य विलीन हो गया, सिद्धांत में पूर्वपक्ष समाप्त हो गया, फिर बुद्धि को अगोचर जो परब्रह्म उससे प्रत्यक्षता (नेत्रादि इन्द्रियों की गोचरता) का अनुभव कैसे होगा? अतः स्वयं अनुभव रूप होने पर अन्य अनुभव की द्वैत भाषा का अस्तित्व ही कहाँ रहेगा? मायिक उपाधि (चंचल माया) के रहते हुए भी स्वरूपाकार होना ही सहज-समाधि है। श्रवण, मनन, चिंतन, निदिध्यास के अभ्यास से यह निश्चय दृढ़ एवं स्थिर होता हैं। मुमुक्ष साधक को इसी दृष्टि से सारे प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरा समास

देव पूजा विवेक

वक्ता कहतेहैं—एक (ब्रह्म) निश्चल और एक (माया) चंचल है। सब लोग चंचल माया में फंसे हैं। निश्चय यह सदैव निश्चल ही है। निश्चल ब्रह्म में निश्चल पूर्वक स्थिर हुआ ब्रह्म स्वरूप ज्ञानी लाखों में एक आध हीं होता है। बहुतेरे लोग ब्रह्मज्ञान की लम्बी चौड़ी बातें

करते हैं पर उनकी वासनाएं चंचल माया में ही फंसी रहती हैं। चंचल माया के झपट्टे में न आने वाले विरल ही होते हैं। चंचल मूल माया से त्रिगुण पंच-भूतात्मक सृष्टि और उसी में अनंत जीव प्रकट हुए, चंचल माया में ही उनका सारा जीवन व्यतीत हुआ। इसलिए जीवों की सारी वासनाएं मायाजनित ही होती है। संसार के सारे जीव चंचल माया से ही ग्रसित होने के कारण उनके सब कर्म भी मायावी ही होते हैं। चंचल माया का विवेक बल से त्यागकर निश्चल ब्रह्म में प्रवेश करने वाला महापुरुष दुर्लभ है। चंचल निश्चल नहीं हो सकता और निश्चल (ब्रह्म) चंचल (माया) में उपलब्ध नहीं हो सकता। चंचल-निश्चल का विवेक नित्य जागृत रखने पर ही कुछ-कुछ अनुभव मिलता हैं। कुछ-कुछ कहने का तात्पर्य यह है कि संदेह और भ्रम के रूप में चंचल माया का मन पर बड़ा प्रभाव रहता है। अतः सारे परिश्रम बेकार से सिद्ध होते हैं। निश्चल में संदेह, भ्रम, आदि नहीं होते पर यह ज्ञान होना बड़ा कठिन है।

जो कुछ सगुण साकार है, वह सब नाशवान है। उसमें छोटे-बड़ों का क्या विचार ? सारा माया का ही विस्तार है। यह ब्रह्मांड अष्टधा प्रकृति की ही रचना है और वही मित्र-विचित्र अनन्त रूपों से प्रकट हुई है। अनन्त विकारों के कारण उसमें नानाविध चमत्कृतिजनक छोटे-बड़े प्राणी निर्माण हुए हैं। मूल माया ही विकारी है। वह मूल में सूक्ष्म होने पर भी कुछ न होते हुए भी अमर्याद रूप में स्थूल बनकर चारों ओर फेल गयी है। मनुष्य योनी में भी अनन्त देह उत्पन्न हुए और अनेक भाषाओं में उनका अनन्त नामों से निर्देश किया गया। फिर उनमें अनेक प्रकार की रीति-भाँति, अनेक कल्पना प्रकार एवं अनेक आचार-विचार उत्पन्न हुए। लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने ढङ्ग से बर्ताव करने लगे। अष्टधा प्रकृति से ही सारे लोग जन्म लेते हैं पर उनके विचार-व्यवहार भिन्न-भिन्न हैं। अनेक वेद विरुद्ध पाखंडी मत-मतान्तर, स्वच्छन्द विचार प्रसूत हुए। जब जिस प्रकार का विचार

प्रवाह चला, उसी में तत्कालीन लोग बहते गये । सबमें एकता न होने के कारण कोई किसी का नियन्त्रण नहीं कर सकता । सृष्टि में अनेक मतों की बडबड़ी पैदा हुई । एक से बढ़कर एक तथा कथित ज्ञानी पैदा हुए । अतः उनमें सच्चे-झूठे का चुनाव भी कोई कैसे करे ? सबके आचार अलग अलग हो गये । उनमें कुछ स्वार्थी पेटू भी निकले । कई अपने सम्प्रदाय के अभिमानी हुए । अनेक देवी-देवता और उनकी नाना-विधि पूजापद्धतियां प्रचलित होकर देवता और भूत-पिशाचों की उपासना एक साथ होने लगी । सच्चे परमात्मा का भान किसी को नहीं रहा । सारा सार विचार लुप्त हो गया अनेक देव और अनेक शास्त्रों का बाजार हो गया । लोग कामनाओं को लेकर व्रत, उपवास आदि करने लगे । इस प्रकार सत्य-असत्य का निर्णय न होने से सारा समाज भ्रष्ट हो गया । जो जिस मत के प्रवाह में बह गया, उसे वही मत श्रेष्ट लगने लगा । असत्य का अभिमान करने से समाज का नाश होता है । इसलिए ज्ञानी पुरुष सत्य का ही अन्वेषण किया करते हैं । ज्ञानी को लोगों के आचार-विचारों के सब प्रकार स्पष्ट दिखाई देते हैं ।

अब लोग किन-किन देवताओं की किन-किन मार्गों से उपासना करते हैं, यह सुनिये ।

धातु-पाषाण-मृत्तिका अर्थात मिट्टी आदि की अनेक मूर्तियाँ बनाकर उनकी ही ईश्वर-भावना से पूजा-अर्चा करना यह बहुजन समाज का मार्ग है । कुछ लोग राम, कृष्ण आदि देवताओं के अवतार-चरित्र सुन-कर उन-उन अवतारों की जप-ध्यान आदि किया करते हैं । अन्य कुछ लोग सबका अन्तरात्मा एवं सर्वसाक्षी ज्ञान घन परमात्मा को अपना आराध्य मानते हैं । कई निर्मल व नित्य निश्चल ऐसे परब्रह्म वस्तु का वस्तु स्वरूप होकर अनन्य चिंतन करते हैं । तात्पर्य प्रतिमा-पूजन, अवतारोपासना, अन्तरात्म भजन और निश्चल ब्रह्मोपासना ऐसे चार भिन्न भिन्न प्रकारों से उपासना करते हैं । संसार के भिन्न भिन्न स्व-

भाव के सभी लोगों का इन चार वर्गों में अन्तर्भाव हो जाता है। ये सारे लोग भी हम सब एक ही परमात्मा की पूजा करने का दावा किया करते हैं पर इनका भाव भगवान ही जानें। अष्टधा प्रकृति की पहचान कर प्रकृति के परे परमात्मा को जानना चाहिए। प्रकृति में निवास करने वाले देवी-देवता प्रकृति के स्वभाव मात्र प्रतीक हैं। प्रकृति के परे भावातीत परमात्मा को भावातीत महात्मा ही जानते हैं और उनकी पहचान विवेक द्वारा ही हो सकती है। जो जिसको भजेगा, वह तद्रूप होगा। निर्मल निश्चल को भजने वाला निर्मल निश्चल ही बनेगा। ज्ञानी को जन-साधारण के समान व्यवहार करते हुए भी अन्तर में निश्चल शाश्वत ब्रह्म वस्तु बनकर रहना चाहिए।

तीसरा समास

शिक्षा विवेचन

वक्ता कहते हैं—अनेक जन्म-जन्मान्तरों के बाद यह देव दुर्लभ नर देह प्राप्त होता है। अतएव यहाँ हमें न्याय नीति पूर्वक सदाचरण युक्त जीवन बिताना चाहिए। गृहस्थ धर्म का नियम पूर्वक पालन करते हुए परमार्थ साधन के विवेक का भी ध्यान रखना चाहिए। इससे इहलोक और परलोक दोनों उत्तम प्रकार से साधे जा सकते हैं। जीवन के निर्धारित सौ वर्ष की आयु के कुछ वर्ष तो बालपन में अज्ञान में (खेल कूद में) गंवाये। यौवनावस्था विषय भोगों को भोगने में बीती और वृद्धावस्था कर्मानुसार प्राप्त रोगों के निवारण में बीत चली। अब भगवान की प्राप्ति के लिए समय ही कहाँ बचा? राजकीय परिस्थिति अथवा दैवी आपत्तियों के कारण मनुष्य को अनेक चिंता-क्लेशों का सामना करना पड़ता है। उदर-पोषण के लिए सतत उद्योग,और शरीर के चोचले पूरे करने में सारा जीवन समाप्त हो जाता है। एक के बाद एक लोग मरते जाते हैं। हमारे बाप-दादे भी मर गये, यह जानते

हुए भी हम कैसे बे खबर बैठे हैं ? घर में आग लगने पर भी बेफिक्र सोते रहने वाले आत्म घातकी व्यक्ति को क्या कहा जाय ? पुण्य-मार्ग छोड दिया, पापका पर्याप्त संग्रह कर लिया। आगे यमराज की यातनाओं को सहना बडा कठिन हो जायेगा। इसलिए बिवेक पूर्वक आचरण कर इह-परलोक को सुधारना चाहिए।

मनुष्य का मुख्य शत्रु आलस है। आलस का फल तत्काल मिलता है। आलसी आदमी हमेशा जाहुमाई लेते हुए सोते रहते हैं। उन्हें आलसी बने रहने से आनन्द आता है। इसके विपरीत उद्योगी और मेहनती लोगों को आगे चलकर सुख मिलता है। वे प्रयत्न और पुरुषार्थ से अन्न वस्त्र आदि का सुख पूर्वक उपभोग करते हैं। आलस से मनुष्य निरुत्साही होता है। उसकी सर्वत्र अप्रतिष्ठा होती है। आलस से प्रयत्न, उद्योग की इच्छा नहीं रहती और उसके मुख पर हमेशा उदासीनता की छाया बनी रहती है। अतएव आलस त्यागने पर ही वैभव-सुख प्राप्त हो सकता है और दोनों लोकों में समाधान मिलता है।

अब हमें अपनी दिनचर्या कैसी रखनी चाहिए, इसे सावधान होकर सुनिये। प्रातः काल में उठकर नियम पूर्वक कुछ स्त्रोतों का पाठकर यथाशक्ति भगवान का ध्यान करना चाहिए। बाद में दूर निर्जन एकाँत स्थान में शोच-मुखमार्जन आदि नित्यकर्म निर्मल जल द्वारा सम्पन्न कर ततपश्चात स्नान-संध्या, वैश्व देव आदि यथा विधि करना चाहिए। तद्नन्तर कुछ फलाहार कर अपने उद्योग धंधे में लग जाना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को अपना व्यवसाय सावधानी से करना चाहिए। साव-धान न रहने पर ठोकर खानी पड़ती है। सतर्क न रहने से मनुष्य अनेक प्रकार की भूलों, का शिकार होकर धोखा खाया करता है और तब वह सावधान होने पर अपने आप पर ही झुंझलाने लगता है। इसलिए मनुष्य को हमेशा सावधान और सतर्क रहना चाहिए दक्षता पूर्वक

उद्यम व्यवसाय करने वाले मनुष्य को भोजन करने में भी बड़ा आनन्द आता है ।

भोजन के बाद कुछ ग्रन्थों का स्वाध्याय एव ज्ञान चर्चा करनी चाहिए । एकांत में बैठकर सद्ग्रन्थों का पठन और मनन करना चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य बुद्धिमान हो सकेगा अन्यथा वह मूर्ख ही बना रहेगा । बुद्धिमान लोग नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करते रहेंगे और जो मूर्ख रहेंगे वे उनका मुंह ताकते दीन हीन ही रहेंगे । एक क्षण भी व्यर्थ न खोना यह भाग्यवानों का लक्षण है । इसलिए हमें सतत उद्योग में निमग्न रहना चाहिए । परिश्रम से धन-धान्य प्राप्त कर भोजन करना, जो बन्धन में हैं, उन्हें मुक्त करना, नर देह को सार्थक करना, धर्म-चर्चा निरूपण में समय बिताना अर्थात प्रपंच और परमार्थ दोनों का समुचित साधन करना भाग्यवानों का लक्षण है । ऐसे सर्व साधन (प्रपंच-परमार्थ दोनों में दक्ष) व्यक्ति की देह-बुद्धि विवेक से विलीन होने के कारण उसके चित्त में कभी खेद नहीं होता । जो कुछ है, सब भगवान का है, इस निश्चय के अनुसार उसका व्यवहार रहने से उसके अंतःकरण में कभी उद्वेग नही होता ।

प्रपंच में सुवर्ण अर्थात धन और परमार्थ में पंचीकरण अर्थात पंचभूतों का तत्वज्ञान दोनों महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं । उन दोनों साधनों का समन्वय कर 'तत्व मसि' आदि महावाक्यों का मनन करते रहने से मनुष्य बंधन से मुक्त हो जाता है ।

कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों अंगों से परिपूर्ण मनुष्य ही परम समाधान को प्राप्त कर सकता है । इसलिए हमें सदैव परमार्थ पोषक ग्रन्थों का पठन-पाठन सदाचार-सम्पन्न ब्रह्मनिष्ट ज्ञानी पुरुषों का सत्संग एवं उनके सदुपदेशों का सतत-लाभ लेते हुए अपना जीवन सफल और सार्थक बनाना चाहिए । यही मनुष्य मात्रा का जीवनोद्देश्य है ।

चौथा समास

विवेक वर्णन

अब इस समास में विद्वान वक्ता विवेक का महत्व समझाते हुए उसका विवेचन करते हैं। वक्ता कहते हैं—आकाश के समान ही ब्रह्म का विचार है। जैसे आकाश निराकार और निर्विकार है, वैसे ही ब्रह्म है। अन्तरात्मा चंचल है। द्रष्टा, साक्षी आदि ब्रह्म नहीं अन्तरात्मा ही है। उस आत्म देव का स्वभाव चंचल है। वह सब जीवों में रहते हुए उनका पालन पोषण करता हैं। अंतरात्मा चंचल है और उसके अतिरिक्त जो कुछ है, सब जड़ है। उसके बिना देह भी व्यर्थ ही है। उसी से परमार्थ का ज्ञान भी प्राप्त होता है। कर्म, उपासना और ज्ञान के मार्ग पर वही चलाता है। प्रवृत्ति निवृत्ति के सब साधन उसी के द्वारा सम्पन्न होते हैं। बिना इस चंचल (अन्तरात्मा) के निश्चल (ब्रह्म) का बोध नहीं होता पर चंचल निश्चल नहीं हो सकता। यह सब विवेक-विचार से ही जाना जा सकता है।

चँचल और निश्चल के संधि में अर्थात जहां चंचल समाप्त होकर निश्चल विचार आरम्भ होता है, उस स्थान पर बुद्धि कुंठित हो जाती है। कर्म मार्ग विधि इस पार का अर्थात चंचल माया का प्रयास है। उपासना आदि कर्मों का सम्बन्ध देवताओं से निश्चल ब्रह्म भिन्न है। देवता विकारी और ब्रह्म निर्विकारी है। दोनों को एक मानना मूर्खता का ही लक्षण है। दोनों का एक साथ विचार करने से तो विचारणा का ही लोप हो जाता है। पंचीकरण के साथ महावाक्य का बार बार विचार करना ही परमार्थ का मूल है। उत्पत्ति, स्थिति और भय यह विकार चंचल (माया) तत्व के हैं, निश्चल-ब्रह्म के नहीं। इस सारासार विचार का हमें सदैव ध्यान रहना चाहिए। सार और असार को एक ही मान लेने पर विवेक कहाँ रहा ! यह विवेक पाणी

तथा अज्ञानियों को नहीं होता। जो एक होकर अनेक बना, सृष्टि रूप में विस्तृत हुआ, वह विकारी अंतरात्मा निश्चल परब्रह्म नहीं है, यह स्पष्ट है। इसका विवेक ज्ञानी ही कर सकते हैं। अज्ञानी को शाश्वत और अशाश्वत वस्तु का बोध नहीं होना।

उत्पत्ति, स्थिति और भग यह सब अशाश्वत वस्तु के लिए हैं। यह अनुभव सिद्ध सत्य है। संसार में एक सुखी और दूसरा दुखी है। एक दूसरे को खाने-सताने को तैयार बैठे रहते है। न्याय-नीति की जिन्हें परवाह नहीं ऐसे लोग भी ब्रह्मज्ञान की बातें बघारने लगते हैं पर उनकी बातों में क्या सार है? ये सब पढ़त-मूर्खों के लक्षण हैं। इसलिए विवेक पूर्वक असार वस्तु का त्याग कर सार वस्तु अर्थात शाश्वत ब्रह्म को ही अंगिकार करना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को असार छोड़कर सारका ही सेवन करना चाहिए। उचित अनुचित का विश्लेषण करना ही ज्ञान है। संसार रूपी बाजार में आकर विवेकी पुरुष शाश्वत लाभ से अमरपद प्राप्त करते हैं और मूढ अभागी (सारासार विचार हीन) लोग मूल धन अर्थात अपनी पूंजी भी खोकर दिवालिए हो जाते हैं। अत: सूज्ञ लोगों को सार-असार का यथोचित विचार करना चाहिए। विवेक के बिना सब व्यर्थ है। अत: विवेक जागृति के लिए नित्य श्रवण मनन करते रहना चाहिए।

पांचवां समास

राजनीति वर्णन

वक्ता आगे कहते हैं—प्रतिदिन हमें अपना नियत स्वधर्म कर्म नियमित रूप से करते रहना चाहिए। अपने आराध्य भगवान का ध्यान करते रहना चाहिए एवं तत्व निरूपण का बार बार मनन करते रहना चाहिए। हमने भी ऐसा ही किया है। बताई हुई बातें ही हमें बार बार दुहरानी पड़ती है। श्रोताओं के चंचल चित्त अपने विषय से

विमुख होते देख हमें पुनः उन्हें सावधान करना पड़ता है। अपना धर्म सम्प्रदाय अनन्य रहे और दूसरे लोगों का हमारे प्रति सद्भाव बढ़े ऐसा हमें प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके लिए हरिकथा निरूपण मुख्य साधन है. दूसरा साधन राज कारण (राजनीति) तीसरा साधन सर्वत्र सावधानता और चौथा उद्योग है। इन चार साधनों के बिना लोक-कल्याण का मार्ग उपलब्ध नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त लोक-मंगल के इच्छुक सज्जनों को और भी कुछ गुणों का सम्पादन करना चाहिए। उन्हें दूसरों के छोटे मोटे अपराध क्षमा करने का पाठ सीखना चाहिए। वे स्वयं उदास वृत्ति मे रहकर दूसरों के मनोभाव अवगत करें, नीति-न्याय से चलें, संकेत से दूसरों के मन आकर्षित करें सब को बोधामृत का पान करायें और अपना प्रपंच (गृहस्थी) का भी यथा योग्य पालन करें। हम प्रपंच के अनेक कठिन प्रसंगों का धैर्य के साथ सामना करें, किसी से भी अति घनिष्टता न बढ़ायें। बाहर से भले ही हम अपनी प्रवृत्तियों को खूब बढ़ाते रहें पर भीतर से सब से अलिप्त रहें। वाद-विवाद में हम स्वयं अपने को अल्पज्ञ और अज्ञानी मान लें, तो वितंडावाद होकर कटुता निर्माण नहीं होगी और विवाद सद्भावना से समाप्त हो जाएगा। किसी में दोष दिखाई देने पर भी उसकी खुली आलोचना न करें और आवश्यकता होने पर बहुत संक्षेप से उसका उल्लेख करें। दुर्जनों पर भी दयाकर उन्हें मुक्त कर दें। कभी एकाँगी दृष्टि न रखें और दुराग्रह करना छोड़ दें। विकट प्रसंगों से बच निकलने के अनेक उपाय ढूंढ निकाले। असंभव प्रतीत होने वाले महत कार्य दीर्घ प्रयत्नों द्वारा सफल कर दिखावें। अपने अनुकूल न होने के कारण किसी सभा समारोह को भङ्ग न होने दें।

हमेशा दूसरों के कल्याण की ही चिंता करें। बहुमत का आदर करना चाहिए और यदि बहुमत मान्य न हो तो अन्यत्र कहीं दूर चले

जाना चाहिए। दूसरों के दुःखों में सहभागी होना चाहिए। खूब अध्ययन मनन चिंतन करते हुए आत्म-ज्ञान का विचार हमेशा जागृत रखें, परोपकार के लिए हरदम तत्पर रहें। अपने को सदा शाँत अर्थात स्थिर चित्त रखें तथा दूसरों को भी शाँति प्रदान करने का प्रयत्न करें। न स्वयं दुराग्रह करें और न दूसरों को करने दें। स्वयं सत्कर्मों का आचार करें और दूसरों के दुःखों को सहन किये बिना हम लोक-संग्रह नहीं कर सकते। राजनीति में भाग लें पर दूसरों को उसका भान न होने दें। दूसरों को दुःख देने की कभी इच्छा न करें। लोगों के मानस की भली भाँति परीक्षा करते रहें और हर प्रयत्न से उन्हें अपने साथी बनायें। शीघ्र लड़ने-भिड़ने को तैयार होने वाले तामसी लोगों से दूर ही रहें। हीन मनोवृत्ति के क्षुद्र लोगों से तो बातचीत भी न करें और उनका सम्पर्क होने पर उस स्थान से दूर हट जायें।

अस्तु, इस प्रकार राजनीति में उपयोगी अनेक बातें बतायी जा सकती है पर उनका कहां तक विस्तार से. वर्णन करें। चित्त शांत रहने पर ही राजनीति का सही मार्ग सूझता है। जो लोग आगे बढ़ना चाहते हों, उन्हें प्रोत्साहित कर आगे बढ़ाते रहना चाहिए और जो कलह या विरोध करने के लिए तत्पर हों, उन्हें नीचा दिखाना चाहिए। राजनीति का सच्चा खिलाड़ी किसी के दांव पेंच में नहीं आता और अपनी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखता है। वह राजनीति द्वारा किसी वैभव, सत्ता या स्वार्थ की अपेक्षा नहीं करता। वह यथा संभव सबको सन्तुष्ट बनाये रखने की कोशिश करता है और जो न्याय-नीति की बात स्वीकार न करता हो, उससे विवश होकर दूर ही रहना पसन्द करता है। श्रोता गण राजनीति की बातें जानना चाहते थे इसलिए यह सब समझाया गया। इसमें जो कुछ त्रुटि हो, उसे क्षमा करें।

छठवां समास

महानुभाव लक्षण

अब महानुभावों के लक्षण सुनिये। लेखन कार्य करते समय खूब सावधान होकर सुघड़ अक्षरों से लिखना चाहिए। लिखने के बाद उसे दुबारा जाँचकर शुद्ध कर लेना चाहिए और उसे फिर एकबार पढ़ लेना चाहिए। अक्षर सुन्दर, सुवाच्य, समान और सीधे हों। लिखने की शैली भी आकर्षक हो। विविध कथा-प्रसंगों का वर्णन करते समय उसमें चतुराई से विभिन्न भावनाओं का भली भाँति चित्रण किया जाय।

परमार्थ-विवेचन सतर्क राजनीति और शुद्ध व्यवहार आदि सद्‌गुण महानुभावों में होना चाहिए। उन्हें दूसरों से परामर्श करना चाहिए, अपने विचार दूसरों के सम्मुख स्पष्ट रूप से रखना चाहिए, सब बातों का अच्छा विश्लेषण करना चाहिए और सबको समाधान हो ऐसा कार्य करना चाहिए। दूरदर्शी, अर्थात भविष्य की सामान्य घटनाओं का विचार करने वाला ही सच्चा बुद्धिमान महानुभाव हो सकता है।

सच्चे महानुभाव स्वयं ज्ञान प्राप्त कर उसे बाद में दूसरों को सिखातें हैं। वे अनेक आपद्‌ग्रस्त लोगों का कष्ट निवारण करतें हैं। उनमें भाषण पटुता, के साथ साथ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि का भी उत्कृष्ट समन्वय रहता है। वे प्रयत्नशील, धैर्यशील रहते हुए भी अन्दर से सब कामनाओं और उपाधियों से असंग रहते हैं जैसे अन्तरात्मा सब दैहिक कार्य करते हुए भी सबसे अलिप्त रहती है, वैसे ही महानुभाव अलिप्त भाव से सब कार्य करते हैं। उनसे अनेक लोगों को सत्प्रेरणा मिलतीं है। ऐसे जो सर्वज्ञ और सर्वकर्ता पुरुष होते हैं, वे ही महानुभाव कहलाने योग्य है। महानुभाव नीति-न्याय तथा कठोरता से पालन करते है। वे न स्वयं अन्याय करते हैं और न किसी को अन्याय

करने देते हैं। वे कठिन प्रसंगों से सकुशल पार होने के उपाय ढूंढ निकालते हैं। ऐसी असाधारण धारणा से सम्पन्न पुरुष अनेक लोगों का आधार बन जाता है। हमें ये सारे सद्‌गुण श्री रामचन्द्र प्रभु के आदर्श जीवन से सीखना चाहिए।

सातवां समास

चंचल-सरिता

वक्ता कहते हैं—माया नदी चंचल और गुप्त गंगा के समान हैं। वह सब कुछ करते हुए भी स्वयं अदृश्य है। सर्व कार्य करते हुए भी कहीं दृष्टि गोचर नहीं होती। मूल माया का स्मरण चित्त शुद्धि करने वाला है। कल्पना का अनुसंधान करते हुए उसे मूल माया तक ले जाने पर परम पावनता प्राप्त होती है। इसका अनुभव कोई भी कर सकता है।

माया रूपी नदी निश्चल ब्रह्म पर्वत से निकलकर नीचे उतरते-उतरते शुद्ध से सबल की ओर सूक्ष्म से स्थूल की ओर बहती जा रही है। यह क्रम अव्याहत जारी है पर नदी का प्रवाह किसी ने देखा नहीं है। इसमें अनेक घुमाव, भंवर लहरें और सोते हैं और वह चट्टानों से टकराते और जगह-जगह प्रवाह को काटते हुए अधोमुख बह रही है। इस प्रवाह में कोमल भूमि तो फट जाती है पर कठिन भूमि ज्यों की त्यों बनी रहती है अर्थात् सात्विक सूक्ष्म लहरें लुप्त हो जाती हैं और केवल तामस स्थूल लहरें ही बच रहती हैं। यह सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाने वाला प्रवाह है।

माया नदी के प्रवाह के साथ अनेक जीव बहते रहते हैं। कई प्रपंच के फेरे में गिरकर नीचे-ऊपर उतराते हैं, कुछ अधोगति मार्ग में जाकर काम-क्रोधादि के भंवरों में फँस जाते हैं और बाद में अहंकार से फूलकर ऊपर आते हैं। अन्य पुण्य वान जीव (शास्त्र, बुद्धि, भावना आदि) बल

पूर्वक प्रवाह के विरुद्ध दिशा में तैरते हुए अर्थात अन्तर्मुख होकर उद्गम स्थान की ओर लौट जाते हैं और उनका उद्धार हो जाता है। उद्गम स्थान पर अर्थात मूल माया के समीप ब्रह्मादिके देव और ब्रह्माण्ड के अन्य देवताओं का मूल स्थान है अर्थात् सब देवी-देवता मूल स्वरूप में वहाँ स्थित हैं। माया नदी में विरुद्ध दिशा की ओर तैरते हुए उद्गम पर पहुँचने पर उन सबसे भेंट हो जाती है। उस उद्गम स्थान का जल (चैतन्य तत्व) अत्यन्त शुद्ध और चंचल है। उसी को आप नारायण कहते हैं। यह माया नदी स्वर्ग, मृत्यु, पाताल इन तीनों लोकों में फैलीं हुई है पर उसका मूल उद्गम अन्तराल (आकाश) में है और वह सदा सर्वत्र वहती रहती है। उस महा नदी के विशाल प्रवाह का नीचे ऊपर सब जगह विस्तार है। (नीचे वह पशु-पक्षी-कीटकादिक योनी में, मध्य में मनुष्य योनी में और ऊपर देव-देवताओं के योनी में) यह सब भेद ज्ञानी पुरुषों को ज्ञात रहता है। इस माया का जगदीश के समान ही सारे ब्रह्माण्ड पर अधिकार रहता है। अनन्त प्राणी अनन्त पात्र हैं और इन सब पात्रों में माया नदी का जल भरा हुआ है। यह जल अधिकांश सांसारिक कार्यों में और बहुत अल्प परमार्थ साधन में व्यय होता है। यह जल जिस पदार्थ के संग में जाता है, उसी के रंग में रंग जाता है। वह सात्विक सज्जन के संग में मधुर, तामस मनुष्य के संग में कड़ुवा और राजस व्यक्ति के संग में खारा तथा तीखा हो जाता हैं। गहरी भूमि देखकर वहां वह संचित हो जाता है अर्थात जीवों में माया प्रवेश कर वहाँ स्थिर हो जाती है। वह विष में विष, अमृत में अमृत, सुगन्ध में सुगन्ध और दुर्गन्ध में दुर्गन्ध बन जाती है। वह गुणों और अवगुणों में मिलकर उनके समान हो जाती है इस माया नदी के जल की महिमा अपार है। उसका जल भी अथाह है। उसे नदी कहें या महानद, कुछ समझ में नहीं आतां। अनेक प्राणी उसके जल में ही डूबे रहते हैं। माया के बाहर उनका सिर निकलता ही नहीं है। जो ज्ञानी साधक जन इस माया नदी के उद्गम स्थान के भी उस पार

पहुँच गये अर्थात माया के प्रवाह में विरुद्ध दिशा की ओर तैरते हुए माया से पार होकर ब्रह्म स्वरूप हो गये, वे जब लौटकर देखने लगे तब उन्हें माया नदी दिखाई नहीं दी। तब उन्हें अनुभव हुआ कि अब तक वे केवल माया रूपी भ्रम में ही विचरण कर रहे थे। वास्तव में माया नदी का अस्तित्व ही नहीं है। वह सर्वथा मिथ्या और भ्रम रूप ही है। माया अर्थात कल्पना, केवल वृत्ति, आभास एवं भ्रम है। वास्तविक योगेश्वर ज्ञानी पुरुष कैसे माया से अलिप्त वृत्ति शून्य होते हैं। इसका हमें गहन मनन-चिन्तन एव निदिध्यास कर अनुभव लेना चाहिए। श्री समर्थ रामदास स्वामी कहते हैं—मैं इन बातों को बार-बार कहाँ तक समझाऊँ।

आठवां समास

अन्तरात्मा-विवेचन

अब हम सकल कर्ता (सब कर्तृत्व के मूल आधार) सब देवताओं के नाथ. जो मूल पुरुष (अन्तरात्मा) उसकी बन्दना करते हैं। उसकी प्रेरणा के विना पेड़ का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तीनों लोकों का संचालक वही है। सब घटों में (शरीरों में) उसी का वास है और वही भिन्न भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न नाम रूपों से रहता है। उनका वर्णन कहाँ तक करें। उसी गुप्तेश्वर को ही ईश्वर कहते हैं। बड़े बड़े लोग उसी की सत्ता से एश्वर्य भोगते हैं। उस विश्वम्भर को जो पहचानना है, वह स्वयं विश्वम्भर बन जाता है। उससे समास होने वाले के सन्मुख समाधि, सहज स्थिति आदि तुच्छ हैं। सब त्रैलोक्य का विवरण करने अर्थात विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और समाप्ति देखने पर ही उस अन्तरात्मा का सच्चा स्वरूप अवगत होता हैं और तब कुवेर के खजाना प्राप्त होने का परमानन्द प्राप्त होता है। उसके कोई कष्ट नहीं करना पड़ता। ऐसे तद्रूप होने वाले महात्मा बिरले ही होते हैं। अधिकतर उस अन्तरात्मा का अल्प परिचय करा देने वाले ही होते हैं।

ऐसे अन्तरात्मा के निरन्तर दर्शन कर हमें प्रवास करना चाहिए। न दिखाई देने पर उसका बार बार मनन करते रहें। ठीक से मनन न हो सकता हो, तब तक उसका वर्णन जिन ग्रन्थों में हों, उन्हें पुनः पुनः पढ़ते रहें। वह अन्तरात्मा कितना बड़ा और कैसा है एवं उसके दर्शनच्छु मुमुक्षु की क्या दशा होती है, यह बताना असम्भव है। लोग जितना देखते-सुनते हैं उतना ही बता सकते हैं। बहुत कुछ सुनने और देखने पर भी अन्तरात्मा का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। मनुष्य देहधारी पुतला है, वह उसे कैसे जान सकेगा ? वह पूर्ण है और देखने वाला अपूर्ण है। द्रष्टा जब पूर्णत्व को प्राप्त होगा तभी उसे पूर्ण का दर्शन हो सकेगा अर्थात वह पूर्ण से अभिन्न हो जाएगा। परमात्मा से विभक्त न होना ही भक्ति की और भक्त की सार्थकता है, अन्यथा सारी प्रवृत्तियां व्यर्थ हैं। राजा के दरबार में जाकर यदि राजा का दर्शन न हो सके तो दरबार में जाना ही व्यर्थ हुआ। ऐसे ही देह के संग में रहकर अनेक विषयों का भोग किया, पर देह के स्वामी को यदि नहीं पहचाना, तो सब व्यर्थ है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि लोग अपने को विवेकी कहलाते हैं पर आचरण उपरोक्त ढंग से अविचार का ही करते हैं। जैसा जिसका अधिकार हो, वैसा वह आचरण करे। अन्तर अर्थात भीतर की ईश्वरी शक्ति का अज्ञानी को बोध नहीं होता पर ज्ञानी कह-लाने वाले भी इन अज्ञानियों के समान ही बर्ताव कर व्यर्थ दीन बनते हैं। हृदय में सदा बसने वाले अन्तरात्मा को घर में गड़ी हुई अतुल सम्पत्ति को भूलकर दर-दर भीख माँगने वाले भिखारी के समान अज्ञानी लोग परमात्मा या अन्तरात्मा को बाहर ढूंढते फिरते है। एक देशीय एवं चंचल चित्त वृत्ति के कारण अन्तरात्मा का ध्यान करने की प्रवृत्ति बहुत कम लोगों में पायी जाती है। इस ब्रह्माण्ड में अनेक नाम रूपों और अनेक शब्दों से ज्ञात अनन्त प्राणी निवास करते हैं। कुछ पृथ्वी और पाषाण के पेट में भी रहते हैं पर इन सब में एक ही अन्तरात्मा

भरा हुआ है। वह एक होने पर भी अनेकों में समाया हुआ है। कहीं प्रकट दिखाई देता है और कहीं अप्रकट रहता है।

यह अनुभव सिद्ध तथ्य है कि जो वस्तु चंचल होती है, वह निश्चल नहीं हो सकती अर्थात जो चंचल नहीं है, वही निश्चल पर ब्रह्म है। पंचतत्वों से निर्मित इस शरीर को जब हम अपने से अलिप्त मान लेते हैं अर्थात जब हमारी देह-बुद्धि नष्ट हो जाती है, तब चारों ओर निर्मल, निश्चल, निरंजन परब्रह्म ही शेष रह जाता है और तब उसका दर्शन होने से परमानन्द की प्राप्ति होती है। जो अविवेकी है, उस मैं कौन ? कहाँ से आया ? और क्यों आया ? इसका ज्ञान नहीं होता। अत: बुद्धि मान लोगों को इन सब बातों का मनन-चिंतन करना चाहिए तथा विवेक बल से दुस्तर भव-सागर को पार करना चाहिए। इस प्रकार हम हरि-भक्ति के द्वारा अपना तथा अपने सारे वंश का उद्धार करें। वंश का तात्पर्य केवल स्थूल देह के वंश से ही नहीं, अपितु मूल माया से लेकर देह तक के सारे ब्रह्म वंश से है।

नवां समास

उपदेश-विवेचन

वक्ता कहते हैं—प्रथम हमारा कर्म से सम्बन्ध आता है। (कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों में प्रथम कर्म करना पड़ता है। कोई भी कर्म यथा विधि सम्पन्न करना चाहिए। कर्म में कुछ त्रुटि रहने पर उसका विपरीत परिणाम भुगतना पड़ता है। इसलिए कर्म विधि-विधान पूर्वक एकाग्र होकर भक्ति भावना के साथ करना चाहिए और जहाँ कुछ कमी रह जाय, वहां हरि-स्मरण कर क्षमा-याचना कर लेनी चाहिए।

अस्तु, अब वह हरि प्रभु कैसा है, इसका विचार करें। हम प्रतिदिन संध्या-बंदन के पूर्व ईश्वर के २४ नामों का उच्चारण करते हैं। वह

चौबीस नामों वाला सहस्त्र नामों वाला,अनन्त नामों वाला और नामातीत परमात्मा कैसा है, इसको अन्तर्यामी शोध करना चाहिए। स्नान संध्या, पूजा-अर्चा द्वारा मूर्ति का पूजन हो जाता है। जिसे जिस इष्ट देवता से प्रीति भाव होगा,उसकी मूर्ति की वह पूजा करेगा पर जिस परमात्मा की यह भिन्न-भिन्न प्रतिमाएँ हैं, उस परब्रह्म को पहचानना ही परम-पूजा है।

जैसे हम पहले किसी बड़े आदमी से परिचय प्राप्त करते हैं और बाद में उसे नमस्कार करते हैं, वैसे ही प्रथम परमात्मा का परिचय कर लेना चाहिए और तब उसकी भक्ति करना चाहिए तभी इस संसार-सागर से पार उतरने की आशा है। पूजा तो प्रतिमा या मूर्ति की हुआ करती है पर मूर्ति के माध्यम से पुजारी के शरीर में अन्तरात्मा का संचार होता है। सभी देवी-देवता या अवतारी पुरुष भी निज रूप में अन्तरात्मा का ही दर्शन किया करते हैं। सब की निज रूप वह जग-ज्ज्योति सत्व गुणों से अधिष्ठिति है। वह सब के अन्तः करण की उर्मि है। उसके उदरमें असंख्य देवी-देवताया हैं। वह देवताओं की भी देवता है। इसका प्रत्यय प्रत्येक को स्वानुभव से करना चाहिए।

देह पुरीका ईश (नियंता) ही 'पुरुष' कहलाता है। वही जगत का स्वामी जगदीश अथवा पुरुषों में उत्तम पुरुषोत्तम है। सब जीवों के अन्तर में वास कर सब शरीरों का संचालन करने वाला वही विष्णु है। वह सारी सृष्टि में और हम सब में सर्वत्र समान रूप से समाया हुआ है। वही अन्तरात्मा कर्ता और भोक्ता है। सुनना, देखना, सूंघना, चखना, विचारना, पहचानना, आप-पर जानना यह सब अन्तरात्मा का ही कार्य है। वह सबका अन्तः करण है। देहा शक्ति के कारण प्रत्येक जीव अपने को मिथ्याभिमान से अलग अलग मानता है जन्म-मृत्यु, मरना-मारना आदि क्रियाएं प्रत्येक देह के साथ अगल-अलग दिखाई देती हैं पर यह केवल एक ही महासागर में उठने वाले अनेक लहरियों

के समान दिखाई देने वाले मिथ्या आभास मात्र है। तीनों लोकों में संचार करने वाला त्रिलोकी नाथ एक ही अन्तरात्मा है।

सारे ब्रह्मांड में संचालित चेतना शक्ति का नाम ही विष्णु है। अन्तरात्मा का यह जो स्वरूप है वह भी पंच-तत्वों के अन्तर्गत ही है। पहले उस अन्तरात्मा को अपने ही देह में देखना चाहिए और तब उसी का सारे संसार में दर्शन करना चाहिये। इन सबसे श्रेष्ठ परब्रह्म है। उसका विचार करने पर ही सार वस्तु का बोध होता है।

यह निश्चित है कि चंचल वस्तु का अवश्य नाश होगा पर वह निश्चल निरंजन अविनाशी एवं उत्पत्ति स्थिति और संहार से सर्वथा परे है। उसका ज्ञान ही सच्चा विज्ञान है। जब ज्ञान की सहायता से आठों शरीर और नाम-रूपों का निरसन हो जाता है, तब ही निरंजन, निर्मल, शाश्वत ब्रह्म का अनुभव होता है। अतएव विवेक की सहायता से ही मनुष्य को उस ब्रह्म का अनन्य उपासक होना चाहिए तथा ऐसी भावातीत अवस्था का अनुभव करना चाहिए, जहाँ स्वयं दृष्टा का भी अस्तित्व समाप्त हो जाय। यह कहना भी वृत्ति ही कहलायेगी कि हमें ब्रह्मस्वरूप का अनुभव हो गया। अतः इस वृत्ति की भी अंतत निवृत्ति हो जानी चाहिए। इस स्थिति में पहुंचने पर वाचा कुंठित हो जाती है और लक्ष्य भी अलक्ष्य हो जाता है और वृत्ति का जो कुछ अंश शेष रह जाता है, वह भी वाच्यांश के साथ समाप्त हो जाता है।

दसवां समास

निस्पृह लक्षण

वक्ता कहते हैं – मूर्ख अर्थात अज्ञानी एक देशीय होता है और चतुर अर्थात ज्ञानी व्यापक होता है। ज्ञानी अनेक रूपों में होकर अनेक सुखों का भोग करता है। व्यापकों में अत्यन्त व्यापक अन्तरात्मा ही

है। वह सवज्ञ है वह सर्वकर्ता और सर्वभोक्ता है। सारी सृष्टि पर उसकी सत्ता है। उसके संपूर्ण ऐश्वर्य को उसके बिना अन्य कौन जान सकता है ? ज्ञानियों को इस अन्तरात्मा के समान सारग्राही एवं व्यापक होना चाहिए। वह सर्व व्यापक रहकर भी किसी एक स्थान या स्थिति में बद्ध न हो। वह कीर्ति रूप से सत्र आबाल वृद्धों का परिचित हो पर वह किसी वेष विशेष में बंधा न हो। उसकी कीर्ति सब ओर फैली हो, पर उसकी मूर्ति देखकर किसी को उसकी महानता का भान न हो। सच्चा भूषण कीर्ति है, न कि वेष या मूर्ति। विभिन्न वेषों में रहने पर भी अन्तरंग में उसका चिंतन और निदिध्यास सतत चलता रहता है। वह परीचित लोगों से दूर रहकर नये नये लोगों से सम्पर्क बढ़ाया करता है। लोग उसकी इच्छा को जानना चाहते हैं, पर वह अत्यन्त निरिच्छ होता है। यह न किसी की ओर विशेष रूप से देखता है और न किसी को विशेष बातचीत करता है। वह कहीं एक जगह रहता भी नहीं। यहाँ वहां विचरते रहता है और अपने गन्तव्य स्थान का किसी को पता भी नहीं बताता उसकी दशा का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। वह किसी का अनुकरण नहीं करता। उसके दर्शन के लिए लोग लालायित रहते हैं पर वह लोक-सम्पर्क से यथा सभव दूर ही रहता है। जहाँ उसका आदर होता है, वहाँ से उसकी अरुचि हो जाती है।

इस प्रकार उस ज्ञानी की भूमिका किसी को ज्ञात नहीं होती। उसे अपने देह का भी भान नहीं रहता पर वह हरि-कीर्तन एवं हरि-भक्ति को क्षण भर के लिए भी नहीं भूलता।

ऐसे स्थिति प्रज्ञ ज्ञानी पुरुष को सदा एकान्त में रहना चाहिए और ध्यान, धारण, नाम-जप आदि में अपना समय बिताना चाहिए। इस प्रकार अपना जीवन सफल और सार्थक कर दूसरों को प्रेरणा देते रहना चाहिए। प्राणिमात्र के सद्‌गुणों का संग्रह कर उनको स्वयं भी जीवन में उतारे और दूसरों को भी उपदेश करे। इस प्रकार

सज्जनों का संगठन कर उनका एक संघ बनाये तथा एक के बाद एक रचनात्मक सेवा-कार्यों का प्रारम्भ कर उनमें सबको संलग्न करे।

प्रथम परिश्रम, बाद में उसका सुफल यह नियम है। अतः स्वयं परिश्रम का लोगों को भी परिश्रमी बनाना चाहिए अर्थात व्यक्ति की योग्यता एवं शक्ति के अनुसार ही उससे कार्य करना चाहिए उद्योग और कर्तृत्व को देखकर ही किसी पर विश्वास करना चाहिए अपनी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखकर किसी से कार्य की अपेक्षा रखनी चाहिए। यह सब हम अपने अनुभव की बातें ही बता रहे हैं। जिन्हें वे रुचती हों, वे उनका अनुसरण करें। हम स्वयं ज्ञानी बनें और दूसरों को भी ज्ञान-सम्पन्न करें, यही हमारा जीवन कर्तव्य है।

बारहवाँ दशक

पहला समास

विमल-निरूपण

वक्ता कहते हैं—पहले अपनी घर-गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाओ और फिर परमार्थ का स्वस्थ चित्त से विचार करो। विवेकी स्त्री-पुरुषों को इसमें भूल नहीं करनी चाहिए गृहस्थ-धर्म का ठीक ढंग से पालन न करते हुए परमार्थ की कामना करोगे तो दुःखी होगे। स्वार्थ अर्थात गृहस्थ-धर्म और परमार्थ दोनों का उचित ध्यान रखोगे तभी तुम विवेकी कहलाओगे। प्रपंच की ओर दुर्लक्ष कर यदि परमार्थ का चिंतन करोगे तो भूखों मरोगे और सब इस पागलपन से भरे अगामी मनुष्य का परमार्थ में भी चित्त कैसे लग सकेगा? इसके विपरीत यदि परमार्थ की अपेक्षा कर प्रपंच में ही निमग्न रहोगे तो अन्त में असह्य यमयातनाओं को भोगना पड़ेगा। यदि हम अपने वरिष्ट

अधिकारी ने सौंपे हुए काम की अवहेलना कर घर में ही आलसी होकर बैठे रहे तो अधिकारी द्वारा दंडित किये जावेंगे। इसी प्रकार हमने सर्वश्रेष्ठ अधिकारी परमात्मा के आदेशों का पालन कर उसे संतुष्ट नहीं किया तो संसार में हमारी दुर्दशा होकर अन्त में हम यमदूतों द्वारा प्रताड़ित किये जायेंगे।

संसार में रहते हुए जो 'पद्म पत्र मिवांभसा' कमल पत्र के समान अलिप्त रहता है, वही मुक्त है और वही योगी है। ऐसा पुरुष ही नित्य आत्मानुसंधान रख सकता हैं। जो अपने आत्म-तत्व में सावधान रहता है, वही प्रपंच और परमार्थ दोनों का समान रूप से यथोचित निर्वाह कर सकता है। अर्थात जिसका प्रपंच ठीक से है उसका ही परमार्थ ठीक से हो सकता है और प्रपंचा-कार्य में असफल हुआ, उसका परमार्थ भी मिथ्या है। जो प्रपंच और परमार्थ दोनों में सावधान रहता है, वही धन्य है। ऐसा पुरुष ही आत्म-हित के साथ साथ जन-कल्याण भी साध सकता है।

अत: हमें सज्जनों का सत्संग कर उनके गुणों का अनुकरण करना चाहिए। सामान्य लोगों के दोषों की ओर दुर्लक्ष करना चाहिए। सुजान पुरुष के गुणा व गुणों की यथार्थ रूप से जानते हैं पर वे किसी की निंदा नहीं करते। इसी प्रकार हम सबको दूरदर्शी होकर साव-धान रहते हुए संसार में प्रपंच और परमार्थ का समन्वय बुद्धि से आचरण कर जीवन को सफल एवं सार्थक बनाना चाहिए।

दूसरा समास

प्रत्यय निरूपण

वक्ता कहते हैं–हे संसार में आये हुए गृहस्थ और निस्पृह सज्जनों! मेरी बातों को सावधान होकर सुनो और उनका भलि भाँति मनन करो। मनुष्य के मनपर वासना और कल्पना के अनेक तरङ्ग उठा करते हैं। हरकोई यही चाहता है कि उसका खान-पान, रहन-सहन

सब उसकी इच्छानुसार हो पर ऐसा होना नहीं है। बल्कि अनेक बार हमारी इच्छा के विरुद्ध ही सब बातें हुआ करती हैं। ऐसा क्यों होता है, इसमें हमारा कहाँ तक दोष है, इसका विचार करते रहना चाहिए। संसार में कोई सुखी और कोई दुखी दिखाई देता है। जो दुखी होते हैं, वे अपने प्रारब्ध को दोष देते हैं पर हमारे प्रयत्नों में कमी के कारण ही हमें दुःख भोगना पड़ता है और अपने दोषों को टालने के लिए या उनका भान न होने के कारण हम प्रारब्ध को दोषी मान लेते हैं। जो न्याय-नीति को छोड़ कर मनमाना बर्ताब करेगा, उसे दुःख भोगना ही पड़ेगा। हमें लोगों से व्यवहार करते समय उनके स्वभाव की परीक्षा कर लेनी चाहिए।

लोगों के साथ हमें क्षमाशीलता से बर्ताव करना चाहिए चंदन की सुगन्ध उसके घिसने से ही मालूम होती है। वैसे ही हमारे गुणों की परीक्षा प्रत्यक्ष व्यवहार द्वारा होनी चाहिए लोगों के साथ आदर युक्त प्रेम व्यवहार करने से वे हमारे वश हो जाते हैं। विश्वनाथ का निवास है। जनता ही जनार्दन का स्वरूप है। अर्थात जनता के विश्वास पात्र बनने पर सहज ही जनार्दन के भी प्रेमपात्र बन सकते है। जैसा बोया जायेगा, वैसा ही पैदा होगा। भलाई के आचरण से सबको सुख मिलता है और बुराई से बुराई बढ़ती है। अतः हर घड़ी हमें अपने मन को अच्छी सीख देते हुए उसे सुबुद्ध और सुसंस्कारी बनाते रहना चाहिए।

वाद-विवाद और दुराग्रह से कलह पैदा होता है। तया सबके साथ सद्भावना, सहनशीलता और शांति पूर्वक व्यवहार करने से सब अनुकूल हो जाते हैं। जहां दुर्जनों का सम्पर्क हो जहां हमारी सहन-शीलता समाप्त होने का भय लगता हो, वहाँ से हमें तुरन्त हट जाना चाहिए किसी के साथ व्यर्थ के बहस-मुजाहसे में नहीं पड़ना चाहिए।

एक दिन हमें यह संसार छोड़कर जाना है, इस बात का हमेशा ध्यान रखते हुए सबके साथ हम सज्जनता और भलाई का वर्ताव

करें। विवेकी पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं। हमसे छोटे, बड़े या समान श्रेणी के जो भी व्यक्ति है, सबके साथ स्नेह भावना से व्यवहार करें। भलाई से भलाई की वृद्धि होती है, यह अनुभव सिद्ध बात है। अब इससे अधिक और हम क्या उपदेश करें? हरि कथा और अध्यात्म निरूपण और भलाई के साथ व्यवहार तथा राजनीति का आचरण समयानुसार करते रहें। समय और प्रसंग के अनुकूल बर्ताव न करने से उसका विपरीत परिणाम हो सकता है और हमारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। अतः हमें इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए। हमने बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया पर समयानुकूल उसका व्यवहार में प्रयोग नहीं किया तो उससे क्या लाभ?

तीसरा समास

भक्ति विवेचन

वक्ता कहते हैं—इस संसार में अगणित मनुष्य है। उन सबका हमें विवेक पूर्वक निरीक्षण करना चाहिए। हमें इहलोक अर्थात प्रवृत्ति और परलोक अर्थात निवृत्ति दोनों का भली भाँति विचार करना चाहिए। इहलोक को सफल बनाने के लिए सुजान व्यक्ति का सत्संग करना चाहिए और परलोक प्राप्ति के लिए सद्‌गुरु के चरणों का आश्रय लेना चाहिये।

पर हमें यह भी पता नहीं कि सद्‌गुरु से हम क्या प्रश्न करे। उन्हें केवल दो बातें पूछना चाहिये। पहली बात कि ईश्वर क्या है और दूसरी बात हम क्या हैं? अर्थात सद्‌गुरु से ईश्वर भगवान और भक्त का विचार पूछना चाहिये। इसके लिये पंचीकपर का अध्ययन एव महावाक्य का विचार आवश्यक है। सारे प्रयत्नों की सफलता इसी में है कि हम पर ब्रह्म को और अपने आपको पहचानें। सार

और असार का विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि पदार्थ मात्र असार अर्थात अशाश्वत और पदार्थ का कारण उपादान सारभूत पर ब्रह्म जो सबसे अलिप्त है, शाश्वत है। वही अचल ब्रह्म है। चंचल अन्तरात्मा और जड़ पदार्थ यह सब माया का खेल है। शाश्वत ब्रह्म इन सबसे निराला है। हमें विवेक सर्वत्र संचार कर उसका शोध करना चाहिए और माया के उपकरणों का विवेक बुद्धि से परित्याग करना चाहिए।

माया पंच भौतिक है अर्थात जितने माया से उत्पन्न पदार्थ हैं, सब नाशवान हैं। पिंड, ब्रह्मांड और आठों प्रकार के शरीर सभी नश्वर हैं। सारे दृश्य पदार्थ नष्ट होने वाले हैं। जो उत्पन्न होता है, वह अवश्य मरता है। अर्थात माया के जितने रूप दिखाई देते हैं, सबका अंत निश्चित है। जो बढ़ेगा सो मिटेगा जो आयेगा सो जायेगा। और प्रलयान्त में सब पंचभूतों का भी अन्त हो जायेगा। सब देहधारी प्राणिमात्र भी नष्ट हो जायेंगे, यह स्पष्ट है। मनुष्य के वीर्य से ही नये मनुष्य उत्पन्न होते हैं, यह प्रत्यक्ष है। जब अन्न ही नहीं होगा तो वीर्य कहां से पैदा होगा? और जब वनस्पति नहीं होगी तो अन्न कहां से आयेगा? पृथ्वी नहीं होगी तो वनस्पति कहाँ से होगी? जल नहीं होगा तो पृथ्वी भी नहीं होगी और जब तेज अर्थात अग्नि नहीं होगी तो जल कहाँ से होगा? वायु नहीं होगी तो तेज तत्व भी नहीं होगा और बिना आकाश के वायु का भी अस्तित्व कहां? आकाश अर्थात अन्तरात्मा। वह भी पर ब्रह्म में एकोहं बहुस्याम्' के स्फुरन के बिना कैसे प्रकट होता?

अब हमें यह देखना है कि निर्विकार ब्रह्म में क्या विकार कभी संभव है? ब्रह्म में पृथ्वी से लेकर आकाश (अन्तरात्मा) तक पंचभूतों का कोई अंश नहीं है। इससे यह सिद्ध है कि निर्विकार ब्रह्म ही सार रूप है और उससे भिन्न अन्य अष्टधा प्रकृति सब असार नश्वर है। विवेक दृष्टि से सृष्टि का अवलोकन करने पर वह असार अर्थात नामशेष

ही दिखाई देती है और शाश्वत ब्रह्म का अनुभव होकर समाधान मिलता है। सार-असार का विवेक कर हमें इसी धारणा को दृढ़ करना चाहिए।

शाश्वत निर्गुण ब्रह्म का बोध होने पर अब हम कौन हैं इसका विचार करना चाहिए। हमारा 'मैं' पन देह के साथ पैदा होता है। अत: देह किन तत्वों से बना है, इसका विचार करें। देह पंचभूतों का पुतला है और 'मैं तू' का भेद केवल मन की कल्पना है। देह के तत्वों का चिंतन करने पर देहाभिमान नष्ट हो जाता है और तत्वों में तत्व विलीन हो जाने पर फिर 'मैं-तू' का भाव कहाँ रहा? फिर तो केवल सत्य- वस्तु परब्रह्म ही शेष रहता है।

पंचीकरण, तत्व-विवरण और महावाक्य का विचार करने पर देह का संग छूट जाता है और निःसंग वृत्ति से आत्म निवेदन करने पर परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। तत्व-निरसन होने पर 'मैं' पन का नाश हो जाता है, वृत्ति रहित पदप्राप्ति होकर मन उन्मत्त हो जाता है, ज्ञान विज्ञान में, ध्यान ध्येय में विलीन होकर जन्म-मरण का भय मिट जाता है और बन्धनों से मुक्त होकर प्राणी मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। सारे तर्क-कुतर्क, सारे संकट दूर होकर अन्त में मनुष्य को जन्म साफल्य का परम समाधान प्राप्त होता है।

चौथा समास

विवेक वैराग्य विवेचन

वक्ता कहते हैं—किसी को अचानक बड़ा वैभव प्राप्त हो जाय पर वह उसका भली भाँति उपभोग करना न जानता हो, तो वह वैभव भी व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार विवेक के बिना वैराग्य भी निष्फल ही है। घर में कर्कशा स्त्री के कारण अथवा अन्य गृहस्थी के झंझटों से ऊबकर यदि कोई संसार से विरक्त हो जाता है, तो वह व्यर्थ है।

घर गृहस्थी के अनेक संकटों से घबराकर मनुष्य घर छोड़कर जोगी-सन्यासी बन जाता है पर इसके वह परमार्थ का साधन नहीं कर सकता। वह स्वच्छन्द, आचार शून्य, भ्रष्ट और अविवेकी बना रहता है। वैराग्य साथ विवेक भी होना चाहिए। बिना विवेक के वैराग्य से अनर्थ परम्परा का ही विस्तार होता है। ऐसे मनुष्य में न सच्चा वैराग्य ही होता है और न विवेक ही रहपाता है। न गृहस्थी का ज्ञान और न वैराग्य का विज्ञान। इस प्रकार वह दोनों दीन हो जाता है और अंततः उसका जीवन एक उपहास मात्र बन जाता है।

कोई कोई शब्दों का आडम्बर करना खूब जानते हैं। ऐसे व्यक्ति विवेक की बड़ी बड़ी बातें करेंगे पर उनमें वैराग्य का जरा भी भाव नहीं होगा। विषय और प्रपंच में रचे-पचे व्यक्ति द्वारा विवेक की बातें ऐसी ही होती है, जैसे कोई जेल में पड़ा हुआ बंदी दूसरों के सामने अपने पराक्रम की बातें बधारने लगे। बिना वैराग्य के कोरा ज्ञान केवल दंभ है। लोभ-दंभ से गुलाम बना हुआ यह मूर्ख लोहे की जंजीर से बंधे हुए कुत्ते के समान व्यर्थ ही भोंकता है। तात्पर्य विवेक और वैराग्य के समन्वय बिना दुःख-शोक का नाश नहीं हो सकता। दोनों के संयोग से ही सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है।

विवेक से अंतरंग के बन्धन टूटते हैं और वैराग्य से वाह्य प्रपंच छूटता है। इस प्रकार अंतर्बाह्य मुक्त नित्संग पुरुष ही सच्चा योगी है। वह विचार पूर्वक बोलता है और जैसा बोलता है, वैसा ही आचरण करता है उसके आचार-विचार देखकर ही सदाचारी सज्जनों को संतोष होता है। तीनों लोक का राज्य तक उसके लिए तुच्छ होता हैं। वह लोकोपकारक प्रयत्न, विवेक और धारणा से सदा संयुक्त रहता है। वह कीर्तन-प्रेमी, ताल-सुरों का उत्तम जानकर, और भजनानन्दी होने के कारण लोग उसके द्वारा परमार्थ मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं। सन्मार्ग के आचरण से वह जन-मन का आकर्षण बन जाता है। ऐसे व्यक्ति पर जनार्दन भगवान प्रसन्न हैं, ऐसा मानना चाहिए।

अचल वैराग्य, निर्लोभ, निर्दंभ और निर्द्वंद्व स्थिति, अनुभव जन्य ब्रह्म ज्ञान, स्नान-संध्या, भगवद् भजन, यह सब जहाँ दिखाई दे, वहाँ विवेक और वैराग्य दोनों का संयोग हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। केवल वैराग्य एकाँगी और हठ धर्मीपन का लक्षण है और विवेक के नाप पर केवल शुष्क शब्दज्ञान भी व्यर्थ है। इसलिए विवेक और वैराग्य दोनों का समन्वय होना यही महद्भाग्य है। विवेक-वैराग्य सम्पन्न पुरुष साक्षात परमात्म-स्वरूप है। सब सच्चे सत्पुरुषों का यही कथन है।

पांचवां समास

आत्म-समर्पण

रेखाओं को घुमा-फिराकर और स्वर, व्यंजन आदि को लपेटकर अक्षर बनते हैं तथा अनेक अक्षरों से शब्दों का निर्माण होकर उन्हीं के आगे गद्य-पद्य आदि प्रकार होते हैं। इन्हीं से वेद, शास्त्र, पुराण, नाना विधि काव्य, निरूपण आदि ग्रन्थों का प्रसार होता है। अनेक ऋषि और उनके अनेक मत हैं। वर्ग (ऋग्वेद के अध्यायों के प्रकरण) ऋया (वेद मंत्र) श्रुति, स्मृति, अध्याय, सर्ग, स्तवक, जाति, प्रसंग, समास, पोथी आदि ग्रन्थ विभागों के अनेक नाम हैं। पद, श्लोक, साकी, दोहे आदि अनेक काव्य के विभाग हैं। गायन के भी विभिन्न प्रकार हैं। ध्वनि, घोष,नाद और रेखा वाणी के गुण हैं। वैखरी वाणी में भी नाना प्रकार हैं। परावाणी में उन्मेष अर्थात स्फुरण, पश्यन्ति,में ध्वनि मध्यमा में नाद और वैखरी में नाना रेखा तथा उनसे नाना शब्द रत्नों का निर्माण होता है। अकार, उकारा मकार और अर्धमात्रा मिलाकर ॐ (ओंकार) बनता है और आगे चलकर ५२ मात्राओं के संयोग से १६ स्वर और ३६ व्यंजन होते हैं।

अकार तमोगुण, उकार रजोगुण, मकार सत्वगुण और इनमें प्रदान तत्व अर्ध मात्रा का शुद्ध सत्वगुण मिलकर ओंकार महतत्व या मूल माया कहलाती है। शब्द-सृष्टि की यह उपपत्ति है। देह के भी आठ प्रकार हैं (चार देह पिंड के और चार ब्रह्माण्ड के) यह आठ देह अनेक तत्वों से बने हैं। मुख्य तत्व अर्थात तीन गुण और पंचभूत मिलकर अष्टधा प्रकृति, जो वायु रूप मूल माया से उतन्न हुई। वायु विरहित आकाश के समान ही अष्ट देह विरहित परब्रह्म का विवेक द्वारा दर्शन करना चाहिए। पिंड-ब्रह्माण्ड की रचना और संहार का विचार और निरसन कर सारभूत विमल ब्रह्म का शोध करना चाहिए। जड़ पदार्थ और चंचल आत्मा दोनों का निरास कर निश्चल परब्रह्म का अनुसंधान करते हुए उसी में विलीन हो तद्रूप हो जाना चाहिए। अब इसके बाद आत्म-निवेदन के तीन प्रकार बतायेंगे।

देह से लेकर अखिल सृष्टि के सभी पदार्थ परमात्मा के हैं। मैं और मेरा कुछ नहीं है।' इस प्रकार की शुद्ध भावना से भगवान की शरण लेना यह जड़ आत्म-निवेदन है। चंचल जीवात्मा जगदीश का ही अंश है। जीवात्मा अलग नहीं है। मैं कर्ता नहीं हूँ, यह भवा चचल आत्म-निवेदन कहलाता है। और चंचल माया तो स्वप्न वत है, परमात्मा ही निश्चल एवं निराकार है। अतः चंचल माया के अभाव में 'मैं' की कल्पना ही व्यर्थ है, इसका ज्ञान और भान होना ही निश्चल आत्म-निवेदन है।

इन तीनों प्रकार के आत्म-निदेदन द्वारा यह प्रतीत होने लगता है कि 'हम' का कहीं आस्तित्व ही नहीं है और न कहीं द्वैत भाव ही है। इस अवस्था में अहंकार समूल नष्ट हो जाता है। भली भाँति मनन-चिंतन करने पर यह रहस्य विदित हो जाता है और विदित होने पर अन्तर में स्थिर हो जाता है। अन्ततः पूर्ण ज्ञान के प्रकट होने पर कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता ही नहीं रहती। स्वयमेव हम निश्चल ब्रह्मा-कार होकर उसी में विलीन हो जाते हैं और उस दशा का वर्णन करने में वाणी सर्वथा कुंठित हो जाती है। सच्चा आत्म-निवेदन यही है।

छठवां समास

सृष्टि-निर्माण विवेचन

वक्ता कहते हैं—परब्रह्म यह आकाश के समान निर्मल, निश्चल, शाश्वत, असीम और व्यापक है। उसमें कार्य-कारण, जन्म-मरण, रचना-विघटन, ज्ञान-अज्ञान, आगमन-निर्गमन आदि कुछ भी क्रियायें नहीं है, क्यों कि वह माया से परे है। ब्रह्म 'मैं एक से अनेक बनू' (एकोहं बहुस्याम्) का संकल्प उठा और यही आदि संकल्प ने मूल माया का रूप धारण कर लिया। उसे ही षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान कहते हैं। वायु और अनुभूतिजन्य ज्ञान से सम्पन्न होने के कारण वही अर्ध नारी नरेश्वर कहलाता है। सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, साक्षी, द्रष्टा, ज्ञान घन, परेश, परमात्मा, जगज्जीवन, मूल पुरुष आदि सब उसी मूल माया के ही नाम हैं। वही मूल माया अधोमुख होने पर गुण माया बन जाती है। गुण माया से त्रिगुण और त्रिगुण से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश और तमोगुण रूप रुद्र (महेश) से पंच महाभूतों का निर्माण हुआ है। यह सूक्ष्म अष्टधा प्रकृति मूल माया में ही अति सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। वही आगे चलकर व्यक्त रूप में प्रकट होती है।

निश्चल ब्रह्म में जो संकल्प उठा, उससे प्रथम मूल माया का उद्रेक हुआ। वह वायु स्वरूप है। त्रिगुण पंचभूतात्मक अष्टधा प्रकृति उसी वायु मूल माया में सूक्ष्म रूप से रहती है। इनमें आकाश अर्थात अन्तरात्मा का स्वयं प्रत्यय करना चहिए। आकाश से उष्ण एवं शीतल वायु, शीतल वायु से तारका और चन्द्र एव उष्ण वायु से सूर्य, अग्नि, बिजली आदि का निर्माण हुआ। तेज (अग्नि) मे जल,जल से पृथ्वी और पृथ्वी से अनेक वनस्पतियाँ पैदा हुई। वनस्पति से नाना रस एवं नाना बीज और उन बीजों से चौरासी लाख योनियों का विस्तार हुआ। इस प्रकार सृष्टि-रचना का विचार करें।

इसी रूप से संहार का विचार करना चाहिए। जो जो जहां से उत्पन्न हुआ, वह उसी में अन्ततः विलीन हो जाता है। इस तत्व को ध्यान में रखना चाहिए। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय तीनों स्थिति में शाश्वत ब्रह्म स्वरूप अखण्ड रहता है। वही सार वस्तु है, शेष माया असार हैं, यह विवेक हमेशा जागृत रहना चाहिए। आदि, मध्य और अन्त में जो निरंजन ब्रह्म है, उसी का अनुसंधान करते रहें। उसी को कोई दृष्टा, साक्षी अन्तरात्मा कहते हैं पर साक्षीत्व भी एक अवस्था है, जब कि ब्रह्म अवस्थातीत है।

नाना विद्या, कला कौशल सब माया के खेल हैं। जो उपाधि से परे होगा, उसे सृष्टि-रचना भ्रम ही प्रतीत होगी। विवेक-विचार द्वारा ही ब्रह्म पद प्राप्त हो सकता है। संसार में कोई राजवैभव भोगते हैं और कोई मल मूत्र ढोते हैं। सभी अपने को श्रेष्ठ समझते हैं पर विवेकी जन ही यथार्थ स्थिति को जानते हैं अत. विवेक द्वारा ही पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति करना चाहिए। अनेक मूढ़, मिथ्याचारी लोगों के बहकावे में आकर अपना सर्वनाश न करें, अपितु अपने अनुभव से ही सत्य का शोधन करें। केवल ग्रंथों के पठन-पाठन से आत्म-प्रत्यय होता तो सद्गुरु की आवश्यकता न होती अतः सद्गुरु के मुख से ही सृष्टि-रचना का ज्ञान प्राप्त कर उसका स्वयं प्रत्यय लेना चाहिए। अनेक दंभी पुरुषों के जाल में फँसकर प्राणियों का पतन हुआ है। अतः सद्गुरु का आश्रय लेकर उनसे पूर्ण श्रद्धा रखते हुए नम्र भाव से उनके विश्वास पात्र बनना चाहिए।

सातवां समास

वासना त्याग

श्रोता प्रश्न करते हैं—जो उठता है, वह विषयों की निन्दा ही करता है पर स्वयं विषयों को नहीं छोड़ता। अतः इसके बारे में मैं

स्पष्ट रूप से पूछना चाहता हूं। न्याय-निष्ठुर बात सर्वसाधारण को अप्रिय लगती है पर हम इस भय से सच कहने से क्यों चूकें? भोजन करना हो तो निस्संकोच होकर ही करना चाहिए। विषयों की निन्दा करते रहें और विषयों का सेवन भी करते रहें यह दुरंगी चाल अच्छी नहीं। प्रपंची गृहस्थ लोगों के समान ही परमार्थी लोग भी षड्रस भोजन करते हैं। सब विषयों का उपभोग करते है, साथ ही विषयों की निन्दा भी करते हैं। जब तक देह है, तब तक विषयों का सर्वथा त्याग नहीं हो सकता। विषयों के सर्वथा त्याग बिना परमार्थ साधना संभव न होता हो तो न विषयों का त्याग हो सकता है और न परमार्थ ही सध सकता है। तब हमें कृपया स्पष्ट रूप से समझाइये कि विषयों का त्याग करते हुए भी शरीर कैसे चल सकता है? यह बात विचित्र मालूम होती है कि सब विषयों को त्यागने पर ही परमार्थ का साधन किया जाय। इसका उत्तर देते हुए वक्ता रहते हैं—वैराग्य पूर्वक विषयों का त्याग करने पर ही परमार्थ का लाभ हो सकता है प्रपंच-त्याग से ही परमार्थ प्राप्त होता है,यह बात सत्य है। बड़े बड़े ज्ञानी महापुरुष कष्ट सहन कर ही विख्यात हुए हैं। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का कई पेटू एवं स्वार्थी लोग ईर्ष्या करते हैं। जिनमें लेशमात्र वैराग्य नहीं, अनुभव का ज्ञान नहीं, शुद्ध आचार-विचार नहीं, ऐसे लोग भी अपने आपको सज्जन कहलाते हैं पर इनके पास अनुमानिक ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। उन्हें सच्चे अनुताप का अनुभव नही रहता। अनुताप का न होना यह उनके पूर्व पाप का प्रतीक है। वैराग्य और अनुताप के अभाव में उन्हें दूसरों का उत्कर्ष सहन नहीं होता। भाग्यवान को देखकर दिवालिये का जी जलता है। साहब को देखकर चोर कुढ़ता है। इसी भाँति ईर्ष्यालु व्यक्ति यदि विरक्तों की निंदा करते हुए वैराग्य की हंसी उड़ावें तो इससे क्या बिगड़ने वाला है?

वैराग्य से बढ़कर कोई भाग्य नहीं। जिसमें वैराग्य नहीं वह अभागी है। बिना वैराग्य के कोई परमार्थ का अधिकारी नहीं हो

सकता। प्रत्यय के ज्ञान द्वारा जो विरक्त पुरुष विवेक बल से सर्वस्व त्याग करता है, ऐसा महायोगी साक्षात ईश्वरी पुरुष ही बन जाता हैं। ऐसे योगियों के मुकुटमणि अर्थात अष्ट महासिद्धियों की उपेक्षा कर योग दीक्षा धारण करने वाले घर-घर एवं भिक्षा मांगने वाले भगवान शंकर है।

ईश्वर की समानता वाह्य वेषधारी तथा कथित महात्मा कैसे कर सकता है? इसलिए सार-असार की परीक्षा कर लेना चाहिए। विरक्त और विवेकी महात्माओं की सब लोग खोज किया करते हैं, विषयों के लालची, दीन मूर्खों को मूर्ख ही पूजते हैं। आचार-विचारों से भ्रष्ट, विषय लोभी, और अविवेकी तथा कथित महात्माओं का भले सज्जन पुरुषों से मेल नहीं हो सकता। जो बैराग्य सम्पन्न और आचार-विचारों से पवित्र हैं, जो ज्ञानी होकर भी भक्ति भाव में रंगे रहते हैं, स्वयं प्रज्ञ होकर भी वाद-विवाद से दूर रहते हैं ऐसे महापुरुषों का सत्संग दुर्लभ है।

अशुद्ध शार अनिषिद्धि विषयों का सर्वथा त्याग करना और शुद्ध विषयों का विवेक पूर्वक सेवन करना ही विषय-त्याग है। विषयों का जिनमें प्रखर वैराग्य होता है, सब कोई उनका सम्मान करते हैं। ऐसे विवेकी पुरुष किन विषयों का किस परिमाण में कैसा त्याग करना चाहिए यह भली भाँति जानते हैं। ऐसे पुरुषों की कथनी और करनी में भेद नहीं होता। वे ही पिंड और ब्रह्माण्ड का रहस्य भली भाँति जानते हैं ऐसे ही सर्व ज्ञाता, सर्वगुण सम्पन्न, विरागी महापुरुष का समागम एवं सत्संग करने से सहज भाव से जीवन सार्थक हो जाता है।

अतएक मुमुक्षु जिज्ञासु साधकों को अत्यन्त सावधान रहकर पूर्ण ज्ञानी, विवेकी एवं निस्पृत संत महात्मा के ही सत्संग का लाभ लेकर अपना जीवन सफल बनाना चाहिए। बाह्य आडम्बर से युक्त प्रमादी विलासी और भोगवादी तथा कथित अवतारी कहे जाने वाले दंभी लोगों से सतर्क रहे और उनके शब्द जाल में फंसकर अपने इहलोक और पर-लोक का नाश न करें।

आठवां समास

काल का स्वरूप

वक्ता कहते हैं—मूल माया जगदीश्वर है और उसी से अष्टधा प्रकृति का विस्तार होकर क्रमशः सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। आकाश सदृश्य निराकार ब्रह्म में काल समय का कोई स्थान नहीं है। उपाधि के विस्तार से काल की सत्ता प्रकट हुई। चंचलता है तभी तक काल की कल्पना है। आकाश=अवकाश=विलम्ब=काल। सूर्य के लिए पल से युग तक काल की गणना की जाती है। पल, घड़ी, प्रहर, दिन, अहोरात्र (रात दिन) पखवारा, मास, वर्ष, युग आदि, द्वारा मनुष्य काल की गणना करता है। इसी भांति मृत युग (सतयुग) त्रेता युग द्वापर युग और कलियुग यह भी काल गणना का ही प्रकार है। देव देवताओं की आयु बड़ी है। ब्रह्मा आदि तीन प्रमुख देवताओं की उत्पत्ति के जो खेल चल रहे हैं, वे सूक्ष्म रीति से सब प्राणिमात्र में भी जला करते हैं पर प्राणी नीति-न्याय का पालन नहीं करते इसलिए उनको दुःख-दण्ड भोगना पड़ता है तीनों गुण इतने एक दूसरे से मिले हुए हैं कि उनको अलग नहीं किया जा सकता। आदि से अन्त तक सृष्टि की रचना ऐसे ही मिश्र गुणों से बनी है, इसलिए किसे श्रेष्ठ और किसे कनिष्ठ (छोटा) कहा जाय ?

अस्तु, इसे ज्ञानी ही समझ सकते हैं। अज्ञानी तो व्यर्थ भ्रम में भटकता रहता है। अनुभव से इसका रहस्य विदित होता है। उत्पत्ति स्थितिकाल, संहारकाल, छह ऋतुओं के काल, सुख-दुःख आनन्दकाल, प्रातःकाल, अपरान्हकाल, सायंकाल, पर्वकाल, बाल-यौवन वृद्धावस्था आदि के काल, सुकाल और अकाल, अन्तकाल, विषम काल सबका अनुभव होता है। वास्तविकता कुछ और है एवं भास कुछ और होता है। इसी का नाम हीन-विवेक है। प्रवृत्ति में लगे हुए लोग अविचारी

होते हैं, इसलिए उन्हें प्रवृत्ति की अधो गति का ज्ञान नहीं होता। विवेकी पुरुष इसे जानते हैं। निवृत्ति मार्ग उर्ध्व गति का और परम सुखदायक है। विवेकी पुरुष उर्ध्वमुख की ओर अर्थात जहां से ब्रह्मांड-रचना हुई है, उस मूल प्रकृति पर ध्यान रखकर साधना करते करते उगम (उत्पत्ति स्थान) तक पहुँच जाते हैं। प्रपंच करते हुए भी जो परमार्थ का साधन करता है, वह भी इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। वह प्रारब्ध वश लोगों में विचरण करता है, पर प्रकृति से वह अलिप्त ही रहता है।

सब का मूल स्थान एक ही है पर संसार में कुछ ज्ञानी और अधि-कांश अज्ञानी होते हैं। अतः विवेक द्वारा परलोक (उगम स्थान) को प्राप्त करना चाहिए। भले आदमी दोनों लोक सफल बना लेते हैं और उनका जन्म सार्थक हो जाता है। अविवेकी जन पशु के समान जीवन बिताते हैं। अतः उनके समागम से परलोक नहीं सध सकता। इसमें हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। जो जैसा बोता है, वैसा पाता है। जैसी करनी वैसी भरनी यह अटल न्याय है। भक्ति से भगवान प्रसन्न होते हैं और भक्त और भगवान के एक रूप होने पर परम शांति प्राप्त होती है। नरदेह पाकर बिना अपना यश फैलाये मरना ठीक नहीं। फिर भी सूज्ञ (समझदार) लोग भी प्रवृत्ति की माया जाल में फंसे रहते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। संसार की सब वस्तुएें जहाँ की तहाँ पड़ी रह जाती हैं। अन्त में कुछ भी साथ नहीं जाता यह सबका प्रत्यक्ष अनुभव है। अतः पदार्थ मात्र से हमें उदासीन रहना चाहिए और पदार्थ के परे जो परमात्मा है उसी का विवेक द्वारा दर्शन करना चाहिए। परमात्मा-लाभ से श्रेष्ठ लाभ कुछ नहीं है। इस संसार में कार्य-कारण से प्राप्त सारी धन-सम्पत्ति यहीं रह जाती है, यह जानकर जो विवेकी पुरुष अलिप्त भाव से प्रपंच करता है, उसका परमार्थ भी सध जाता है और उसे समाधान प्राप्त हो जाता है। प्राचीन समय में जनक आदि राजा राज्य-शासन चलाते हुए भी परमात्मा-सुख का आनन्द प्राप्त

करते थे। आज भी ऐसे पुण्य श्लोक महापुरुष संसार में विद्यमान है। अन्त समय में लाखों रुपया खर्च करने पर भी मृत्यु नहीं टल सकती। रोग, उद्वेग, चिंता, मृत्यु आदि के कारण जीवन काल वश अर्थात पूर्ण परावलम्बी है। यह संसार केवल माया का बाजार है, उसमें हमें न उलझकर परमात्मा-लाभ का उद्देश्य हर समय ध्यान में रखते हुए असंग होकर जीवन बिताना चाहिए। इस प्रकार जीवन बिताने का शुभ संकल्प जो करता है, वह परमात्मा की कृपा से संसार के कष्ट-क्लेशों से छुटकारा पा जाता है।

नवां समास

प्रयत्न-निरूपण

यहाँ एक श्रोता प्रश्न करते है कि एक व्यक्ति बिल्कुल दुर्बल, अनाचारी दरिद्री, आलसी, पेट्ट, कर्जदार जो मूर्खता वश सब कुछ खो बैठा है और जो खाने को मुँहताज है, जिसके पास न कोई पहनने के लिए कपड़ा है, न बिछाने के लिए बिस्तर, न जिसका कोई घरबार है जिसे सगे-सम्बन्धी मित्र-परिवार कोई न पूछता हो, ऐसा निराश्रित अभागी व्यक्ति क्या करे ?

इस पर वक्ता उत्तर देते हैं—कोई भी काम चाहे छोटा हो या बड़ा बिना किए पूरा नहीं पड़ सकता। इसलिए छोटे-बड़े का विचार न करते हुए हमें कर्तव्य-परायण होना चाहिए तभी हमारा भाग्योदय होगा। जो अन्तर से सावधान नहीं है और जो प्रयत्नशील नहीं है, उसे सुख-संतोष कैसे मिल सकता है ? अतः आलस और दुश्चिंतता का त्याग कर हमें लगन के साथ कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

अब हमारी दिनचर्या कैसी हो, सो बताते हैं। प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठना चाहिए और जागते ही प्रातः स्मरण तथा कुछ स्तोत्र भजन आदि का पाठ नित्य नियम से करना चाहिए। पश्चात शौच आदि के लिए

गाँव के बाहर खुली हवा में दूर तक जाना चाहिए। वहाँ से मुख-मार्जन, स्नान आदि कर देव-दर्शन, देव पूजन यथा विधि सम्पन्न करना चाहिए। बाद में थोड़ा सा जल पान कर अपने उद्योग व्यवसाय में जुट जायें। व्यपार-व्यवसाय में दूसरों को अपना बना लेने की कला साध्य करना चाहिए। हमारे अक्षर सुन्दर सुवाच्य हों। जो कुछ पढ़ें, उसका अच्छा मनन करें और जो बात समझ में न आती हो, वह दूसरों से नम्रता पूर्वक पूछ लें। कोई कुछ पूछे, तो उसका विनय पूर्वक स्पष्ट उत्तर दें। बिना अनुभव के कुछ भी कह देना पाप है। हम सदैव सावधान रहें, नीति नियमों का पालन करें, लोगों की इच्छा के अनुकूल बर्ताव करें। हरि-चर्चा करते रहें। भाषण में नये नये अनुभव प्रसंगों का चतुराई से वर्णन करें, जिससे लोग ऊब जायें। जिससे लोग प्रसन्न होकर जयघोष करने लगे ऐसा ही मधुर भाषण करें। भाषण-प्रवचन में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग आदि साधनों के मार्ग विशद रूप से समायें ताकि उनको श्रवण मनन से भवरोग का निवारण हो सके। हम जैसा बोलें वैसा ही हमारा बर्ताव हो। कथनी और करनी एक सी होनीं चाहिए। जानवरों पर अधिक बोझ लादकर उन्हें कष्ट न दें। मन में हमेशा राम नाम का चिंतन चलता रहे। अनासक्त और निर्द्वंद्व होकर हम अध्यात्म-निरूपण करते रहें। इसके साथ ही साथ यदि संगीत का भी अभ्यास हो तो हमारी लोक प्रियता और वैभव का विकास होता रहेगा। ऐसे पुरुष के समीप असंख्य लोग आकर्षित होंगे पर इसके लिए हमें अपनी बुद्धि विशाल बनानी होगी। बिना विवेक बुद्धि के कैसे सफल हो सकते हैं? बिना विवेक के गुणी व्यक्ति भी सफल नहीं हो सकता। अतः विवेक का विस्तार करते हुए उसमें सारे ब्रह्माण्ड को समा लेना चाहिए तभी हमारा भाग्योदय होगा। फिर हम अभागी कैसे रह सकते हैं? इस प्रकार शंकर-निरसन होने पर श्रोता की बुद्धि प्रयत्न शील होकर उसमें कर्तव्य की प्रेरणा जागृत होगी।

दसवां समास

विभूतियों की पहिचान

वक्ता अब उत्तम पुरुष के लक्षण बतलाते है। उत्तम पुरुष को भर पेट भोजन करने के बाद शेष अन्न दूसरों को बांट देना चहिए। उसे व्यर्थ न जाने दें। इसी प्रकार हम ज्ञान सम्पन्न होकर उसका लाभ दूसरों को दें। तैरने वाले को चाहिए कि वह डूबने वाले की प्राण रक्षा करें। हम सब के सद्‌गुणों का अनुकरण करें और उन्हें अपनाने की दूसरों को भी प्रेरणा दें। प्रतिदिन स्नान संध्या, देवता-पूजन, जप-ध्यान, कीर्तन-निरूपण आदि श्रद्धायुक्त अन्त: करण से करें। शरीर का परोपकार में अधिक से अधिक उपयोग करें। सब की सदा भलाई करते रहें। सबसे मीठे वचन बोलें। दूसरों के दु:ख से दु:खी और दूसरों के सुख से सुखी बनें। मधुर भाषण से सबको अपने वशीभूत करते रहें। दूसरों के अपराध क्षमा करेंदूसरों की यथा संभव सेवा करते रहे। सबसे आत्मीयता पूर्वक व्यवहार करें। लोगों के स्वभाव और गुणों की परीक्षा करते रहें। कम से कम, पर सार्थक बोलें और किसी भी प्रश्न का तत्काल उत्तर दें। क्षमावृत्ति धारण कर क्रोध का परित्याग करें। आलस छोड़ कर उद्योगशील बनें। किसी से ईर्ष्या-द्वेष न करें और सावधान रहते हुए अपने कर्तव्य-कर्म का निष्ठा पूर्वक पालन करें। मृत्यु का सदा स्मरण रखते हुए ईश्वर-भजन में तत्पर रहें। इस प्रकार आचरण करने से मरने के पश्चात भी हमारा यश कायम रहेगा। नियमित रूप से नीति पूर्वक बर्ताव करने वाले पुरुष से सब लोग प्रसन्न रहते हैं। फिर उसे किस बात की कमी हो सकती है? ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त पुरुष ही आदर्श पुरुष कहलाता है और उस की भक्ति से परमात्मा संतुष्ट होता है। लोग कितनी भी निंदा करें फिर भी हम अपनी शान्ति भंग न होने दें। जो दुर्जनों के साथ भी निष्कपट और प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं।

उत्तम गुणों से अलंकृत ज्ञान वैराग्य सम्पन्न पुरुष ही त्रैलोक्य में धन्य है। हम सब प्रकार से कष्ट सहन करते हुए लोक-मंगल में लगे रहें और यश-कीर्ति संपादन करें। यश की इच्छा हो तो सुख को छोड़ना होगा और यदि सुख-सुविधा चाहते हो तो तो यश की आशा छोड़नी होगी।

बिना विवेक के समाधान नहीं मिल सकता। कभी दूसरों का मन न दुखायें। क्षमाशील पुरुष का मूल्य कभी कम नहीं होता। हम सब की सेवा में सदा तत्पर रहें। हम अपने जैसा सबको समझें और दूसरों से ऐसा व्यवहार न करें जो हमें अपने लिए पसंद नहीं दूसरों के अन्तःकरण को दुखाने वाली वाणी अपवित्र है। उससे कभी अपनी भी हानि होती है। जैसा बोयेंगे, वैसा ऊगेगा। जैसा बोलेंगे, वैसा ही प्रत्युत्तर मिलेगा। फिर किसी से कटु वचन क्यों बोले ? अपने पुरुषार्थ और पराक्रम से दूसरों को सुखी करें। दूसरों को पीड़ा पहुँचाना तो राक्षसी कर्म है। दंभ, दर्प, अभिमानी, क्रोध, कठिन वचन यह अज्ञानियों का लक्षण है। यह बात गीता में भी बतलाई गई है। उत्तम गुणों से युक्त भले पुरुष को लोग खोजते फिरते हैं। क्रिया के बिना शुष्क शब्द-ज्ञान तुच्छ हैं।

लोक मंगल के लिए जनता में सद्विचारों का प्रचार करना चाहिए। यही विवेकशील ज्ञानी पुरुषों का कर्तव्य है सबको सुखी बनाने में ही अपना सुख मानना चाहिए।

तेरहवां दशक

पहला समास

आत्म-अनात्म-विवेक

वक्ता कहते हैं—आत्मा कौन और अनात्मा कौन इसका भली भाँति विचार व चिन्तन कर चित्त में उसे दृढ़ करना चाहिए अब उसका चिंतन मनन कैसे करें, यह सावधान होकर सुनिये। चार प्रकार की खामियों एवं चार वाणियों से ८४ लाख जीव-योनियों का विकास हुआ है, ऐसा पुराणों में कहा गया है। सृष्टि में अनेक प्रकार के अनन्त शरीर दिखाई देते हैं, उनमें आत्मा का निश्चय कैसे हो? जो आँखों से देखता है, कानों से सुनता है, जीभ से स्वाद लेता है, नाक से गन्ध लेता है, सब अङ्गों में स्पर्श करता है, वाणी से बोलता है। इस प्रकार सब इन्द्रियों द्वारा अकेला ही सावधान रहकर विविध हलचलें करता है। वही आत्मा है। वही अपना धैर्य धारण करता है, लज्जित होता है, अन्न-जल सेवन करता है, मलमूत्र त्याग करता है, एवं प्रपंच-परमार्थ का विवरण करता है। वही आत्मा हर्ष, शोक, विनोद, चिंता, काया छाया, माया, ममता आदि सब विकारों से नाना प्रकार के पदार्थों की इच्छा करता है, भले-बुरे कार्य करता है, स्वजनों की रक्षा कर दूसरों को मारता है। वही नित्य आता-जाता, हंसता-रोता, पश्चाताप करता, अपने उद्योग के अनुसार भाग्यवान या अभागी होता है। दुर्बल-सबल, न्यायी-अन्यायी उदार-कृपण, पागल या बुद्धिमान, स्वच्छन्द या सहिष्णु सब कुछ आत्मा ही होता है। आत्मा ही ज्ञान अज्ञान में सुख पूर्वक विचरता है। वही सोता, उठता, बैठता, चलता, दौड़ता, डोलता, गाता, वाद-विवाद करता या शान्त रहता है। बिना आत्मा के शरीर शव ही है। आत्मा ही शरीर के संग से सब कुछ करता है।

आत्मा नित्य और शरीर अनित्य है, इसका विवेक करना ही आत्म-अनात्म-विवेक कहलाता है। इस प्रकार का सूक्ष्म विचार ज्ञानी-जन ही किया करते हैं। पिंड में चार देहों को धारण करने वाला जीव कहलाता है और ब्रह्मांड में चार देह धारण करने वाले को शिव कहते हैं। इन आठ देहों में जो आठवां देह है वही मूल माया या मूल पुरुष है, जो त्रिगुणों से परे हैं। उसे ही अर्ध नारी-नटेश्वर कहते हैं। सकल सृष्टि विस्तार का वही उगम-स्थान है। सूक्ष्म विचार करने पर यह प्रतीत होगा कि वह न स्त्री है, न पुरुष। वह चंचल है। उसकी चंचलता का अनुभव होता है मूल माया से लेकर स्थूल पिंड तक अथवा ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जितने शरीर हैं, वे सब अनित्य हैं और उनका संचालन करने वाला आत्मा नित्य है। जितनी जड़ वस्तुएं हैं, वे सब अनित्य हैं और इनमें जो सूक्ष्मतम तत्व है, वह अनित्व है। इसे अनुभव करना ही नित्य अनित्य विवेक कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण व महाकारण इन चार पिंड-देहों को पारकर एवं विराट् हिरण्यगर्भ व अव्याकृत इन तीन ब्रह्मांड के देहों को छोड़कर जो चौथा देह मूल-प्रकृति को प्राप्त करना ही नित्यानित्य विवेक की वृत्ति है। आगे चलकर इस वृत्ति से पीछा छुड़ाकर हम निवृत्ति में कैसे प्रवेश करें, इसका विवेचन अगले समास में करेंगे। आत्मा कौन और अनात्मा कौन और आत्मा चंचल क्यों है, इन बातों को ध्यान में रखते हुए सारासार विवेक को सावधान होकर सुनें।

दूसरा समास

सारा सार निरूपण

वक्ता कहते हैं - सृष्टि का यह जो विशाल आडम्बर दिखाई दे रहा है इसमें सार वस्तु क्या है और असार क्या है इसका विवेक पूर्वक विचार करना चाहिए। जो कुछ दिखाई देता है वह सब नाशवान

है। जो आता है, वह जाता है पर जो अखण्ड अविनाशी होता है, वही सार है। पिछले समास में हमने अनात्मा को पहचान कर उस के संचालक आत्मा का अनुसंधान करते हुए मूल माया तक का विचार किया। उस मूल माया में जो वृत्ति है, उससे भी निवृत्त होने पर सार वस्तु का लाभ होता है। सारासार का विचार करने पर उस चंचल आत्मा का भी अन्त हो जाता है। चंचल अर्थात चलायमान। जो चलायमान न हो वही निश्चल है और यह निश्चित है कि निश्चल में पहुँचकर चंचल का अन्त हो जाता है। ज्ञान और उपासना दोनों का लक्ष्य एक ही है पर उपासना द्वारा ही जन साधारण का सहज उद्धार हो जाता है।

दृष्टा, साक्षी, ज्ञाता, ज्ञान धन, चैतन्य एवं सबका संचालक वही ज्ञान स्वरूप परब्रह्म है। अन्त में उस ज्ञान का रूपान्तर विज्ञान में हो जाता है। विचार पूर्वक देखने से यह भली भांति प्रतीत होता है कि जो चंचल है, वह सब नश्वर है। जिसके मन में इस प्रकार के निश्चय में सदेह है, वह ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। नित्य का निश्चय होने पर भी सन्देह का होना महा मृगजल में बहते जाने के समान है। पर ब्रह्म अक्षय और सर्वव्यापी है। वह निर्विकार है और उसमें किसी प्रकार का हेतु नहीं है। वह आदि, मध्य और अन्त तीनों अवस्था में अचल, अटल और अभेद्य है तथा सर्वदा एक समान रहता है। वह यद्यपि आकाश के समान दिखाई देता है पर वह उससे भी सघन है। उसमें अंजन अर्थात मैल नहीं है। वह निरंजन और सदा सर्वदा प्रकाशमान है। वह निर्गुण अलक्ष है अर्थात किसी भाँति दिखाई नहीं दे सकता। सर्व संगपरित्याग किये बिना उस परब्रह्म को पाया नहीं जा सकता।

इसलिए सर्वसंग का परित्याग कर ही उस ब्रह्म का अनुभव करना चाहिए। पूर्ण विवेक द्वारा विचार करने पर सभी सन्देहों का निरसन

हो जाता है, अर्थात चंचल वस्तुओं का अभाव प्रतीत होने लगता है और केवल निश्चल परब्रह्म ही शेष रह जाता है, जो सार वस्तु है। इस प्रकार विवेक दृष्टि से देखने पर 'सोऽहं हंसः अर्थात मैं ही हूँ और 'तत्वमसि' अर्थात तू भी वही है की अनिर्वचनीय स्थिति उपलब्ध हो जाती है, ऐसा व्यक्ति बाहर से साधक दिखाई देता है पर भीतर से वह ब्रह्मरूप ही होता है। उसका चित्त सब वृत्तियों से शून्य रहता है। सारा सार विचार का अन्त में यही निष्कर्ष होता है। वह साधक धन्य है, जो ऐसे निर्विकार ब्रह्म में लीन होता है। अतएव असार को छोड़कर सारतत्व परब्रह्म को ही ग्रहण करना चाहिए। इस परब्रह्म का अनुसंधान करते करते ज्ञान-भावना भी नष्ट होकर वृत्ति तद्रूप हो जाती है यही आत्म-निवेदन भक्ति भी है।

तीसरा समास

सृष्टि रचना

वक्ता इस समास में सृष्टि-रचना की प्रक्रिया बतलाते हैं। उन्होंने कहा—ब्रह्म घन और पोला भी है। यह निर्मल, निर्विकार निश्चल और आकाश से भी विशाल है। उसी से कालान्तर में सृष्टि की रचना हुई। वह कैसे हुई सो सुनिये।

प्रथम निश्चल ब्रह्म में संकल्प उठा। उसी संकल्प को आदि नारायण, मूल माया, जगदीश्वर, षडगुणेश्वर आदि नामों से सम्बोधन किया जाता है। वह संकल्प की अष्टधा प्रकृति का मूल है। मूल माया के पार गुण माया है, जिससे त्रिगुण पैदा हुए और वहीं से मूल ओऽमकार की रचना हुई। अ, उ, म् मिलकर ओम् बना। बाद में पंचभूतों का विस्तार हुआ। उनमें जो आकाश है, वही अन्तरात्मा है। आकाश से वायु और वायु से तेज अर्थात अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ। दो दिशाओं से बहने वाली वायु के घर्षण से अग्नि प्रकट होती है। शीतल वायु की

लहरों से जल की उत्पत्ति हुई और उस जल के सूखने से पृथ्वी बनी और जल के संयोग से अनन्त बीज पैदा हुए और उनसे विविध रंग और रसों के पत्र, पुष्प, फल, मूल आदि उत्पन्न होकर उन्हीं से अनेक प्रकार के धान्य पैदा हुए। अन्न-धान्य से शुक्र (वीर्य) और वीर्य से प्राणियों का जन्म हुआ। संसार में जारज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज चार कोटि के प्राणी हैं पर इन सबका बीज पृथ्वी और जल ही है। सृष्टि रचना की यह बड़ी चमत्कारिक कथा है। पिंड-ब्रह्माँड से चौरासी लाख योनियों का विस्तार हुआ। अष्टधा प्रकृति मय सब प्राणी जल से ही उत्पन्न हुए हैं। जल के बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता यह प्रत्यक्ष है। वेद, शास्त्र एवं पुराणों के सिद्धाँतों का भी हमे प्रत्यय लेना चाहिए। जिसका अनुभव या प्रत्यय न हो उसे केवल अनुमान मात्र से स्वीकार नहीं करना चाहिए। अनुभव के बिना सब व्यर्थ है। प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति के सब व्यवसाय में अनुभव आवश्यक है। प्रचीति बिना अनुमान का कोई मूल्य नहीं है। अस्तु, सृष्टि-रचना की प्रक्रिया बतला चुके। अब संहार की प्रक्रिया बतायेंगे। उसे सावधान होकर सुनिए।

चौथा समास

संहार विवेचन

वक्ता कहते हैं—शास्त्रों में सविस्तार यह बतलाया गया है कि प्रलय काल में सारी सृष्टि का अन्त होकर पंचभूतों का भी भय हो जाता है। लगातार सौ वर्ष तक अवर्षण (सूखा) होने से सृष्टि तप्त हो जायेगी और पृथ्वी फटकर उसमें अनेक बड़े बड़े पर्वत समा जायेंगे, सूर्य मण्डल बारह कलाओं से तपेगा और उसकी किरणों से निकलने वाली ज्वालाओं से सौ वर्ष तक भूमण्डल जलता रहेगा। पृथ्वी आग के समान लालअंगार होकर उसकी ज्वालायें शेष को पीड़ित करेंगी। फलस्वरूप शेष घबराकर विष-वमन करने लगेगा। उसकी ज्वालाओं

से पाताल-लोक जलकर भस्म हो जायेगा। इससे पंचभूत उग्र स्वरूप धारण कर प्रलय वात और प्रलयाग्नि का विस्फोट करेंगे। प्रलयकाल में ग्यारह रुद्र और बारह सूर्य एकत्र होकर प्रलय ढायेंगे। वायु और विद्युत के प्रहार से पृथ्वी छिन्न-भिन्न होकर उसका कड़ापन नष्ट होगा। चन्द्र, सूर्य और तारा मंडल सब एक रूप हो जायेंगे।

शेष, कूर्म, वराह आदि पृथ्वी का आधार छूट जाने से वे अपना सत्व छोड़कर जल में विलीन हो जायेंगे। तब भयानक तर्जन-गर्जन करते हुए प्रलय मेघ उठेंगे और लगातार बिजली कड़कड़ाती रहेगी। पर्वतों के समान विशाल उल्कापात होकर प्रचण्ड वायु से पर्वत भी उड़ने लगेंगे। अन्त में भयंकर झंझावात होकर सारा ब्रह्मांड अन्धकार में डूब जायेगा। समुद्र और नदियों में प्रचंड बाढ़ आकर सर्वत्र पृथ्वी जल मय दिखाई देगी। तब ब्रह्मांड के बराबर तप्त लोह खंड प्रकट होकर वह सारा जल सोख लेगा और पृथ्वी पर एक बूंद भी जल नहीं बचेगा। जल सूख जाने पर प्रचड अग्नि भड़क उठेगी और महावायु से वह अग्नि वायु रूप हो जावेगी और वायु भीं अंततः आकाश में विलीन हो जायेगी। इस प्रकार सारे पंचभूतों का खेल समाप्त होकर मूलमाया अर्थात महद्‌भूत का स्फुरण भी नष्ट होकर ब्रह्मांड का सर्वथा लोप हो जायेगा। इस प्रकार महाप्रलय से जड़ और चंचल का सर्वनाश होकर केवल निश्चल परब्रह्म की सत्ता शेष रहेगी।

पांचवा समास

सृष्टि की कथा

उदास-वृत्ति से दो साधु पृथ्वी-प्रदक्षिणा करने निकले थे। रास्ते में समय काटने के लिए उन्होंने एक कहानी शुरु की। उनमें से एक वक्ता बना और दूसरा श्रोता। वक्ता ने इस प्रकार कहानी आरम्भ की।

एक स्त्री-पुरुष की दम्पत्ति थी (इन्हें प्रकृति-पुरुष शिव-शक्ति, अर्धनारी-नटेश्वर, मूल पुरुष कुछ भी मानिए) उन दोनों में अत्यन्त प्रेम था। वे दोनों एकरूप होकर विचरण करते थे। उनमें कोई भेद-भाव नहीं था। कालान्तर में उन्हें एक पुत्र हुआ (विष्णु) वह कार्य कर्ता (अनुभूति एवं ज्ञान सम्पन्न) और अत्यन्त भला (सत्वगुणी) निकला। बाद में उसे भी एक पुत्र हुआ (ब्रह्मा) वह पिता से भी अधिक उत्साही पर बाप से कुछ कम बुद्धिमान (रजोगुणी) हुआ। उसका परिवार खूब बढ़ा और उसके अगणित कन्या-पुत्र हुए। उसने अनेक लोक निर्माण किये। इस प्रकार वह लोक संग्रह कर्ता बना। ब्रह्मा का बड़ा बेटा (शंकर) वह अज्ञानस्वरूप और उग्र (तमोगुणी) पैदा हुआ। वह जरा भी कहीं कोई गलती देखता, वहीं संहार करने लगता। इस प्रकार इन सबका एक परिवार संयुक्त रूप से अपना प्रपंच चला रहे थे। पुत्र-पौत्रों का यह गृह प्रपंच देखकर उनका पिता (मूल पुरुष) चुपचाप बैठा था। कुछ काल पश्चात विष्णु का व्यापार खूब फैला। वह ज्ञानी, सर्वज्ञ एवं सज्जन के नाम से विख्यात हुआ। मूल पुरुष का पुत्र (ब्रह्मा) कम बुद्धिमान और चंचल तथा प्रपौत्र (शंकर) महाक्रोधी (तमोगुणी) और संहार कर्ता था। पुत्र सबका पालन-पोषण करता, पौत्र परिवार का विस्तार करता और प्रपौत्र सबका क्रमशः संहार करता जाता। इस प्रकार मूल पुरुष की वंश वृद्धि होती गयी। कुछ समय आनन्द से बीता। अगणित सृष्टि, अनन्त ब्रह्मांड और असंख्य जीवों का निर्माण हुआ। पर आगे चलकर इस विशालतम परिवार में अन्तःकलह आरम्भ हुआ। बड़ों का छोटों द्वारा अनादर होने लगा।

परस्परों के मन एक दूसरों से कलुषित होकर बैरभाव बढ़ने लगा। एकता भंग होकर सब मनमाना स्वच्छन्द व्यवहार करने लगे। जबतक छोटे बड़ों का आदर करते थे और सब मिल जुलकर प्रेम भाव

से रहते थे, तब तक ठीक था पर अब वह समय नहीं रहा था। गृह-कलह बढ़ते गये, जिसमे सबका धीरे धीरे संहार होने लगा। बड़े-बड़े महारथियों में बैरभाव पैदा हुआ। सब यादव उन्मत्त हो आपस में लड़कर मर गये। इस प्रकार अहंकार के वशीभूत होकर सबका संहार हो गया। इस कहानी का जो मनन-चिंतन करेगा अर्थात सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का मर्म समझेगा. वह जन्ममरण के बन्धन से मुक्त हो जायगा। जो श्रोता-वक्ता दूसरी प्रचीति और अनुभव लेंगे, वे भी धन्य होंगे इस प्रकार की सृष्टि की कहानी युग-युगान्तर से चलती आ रही है। इस कहानी का सार श्रोतागण भली भांति ग्रहण करें एवं तत्वों के रहस्य का अनुसंधान करते हुए समाधान प्राप्त करें।

छठवां समास

लघु बोध निरूपण

वक्ता कहते हैं—आप लोग पंच तत्वों के नाम ध्यान में रखते हुए उनके रूपों का विचार करें। बाद में उनमें शाश्वत कौन और अशाश्वत कौन इसका मनन चिंतन करें।

पृथ्वी, आप,तेज,वायु और आकाश ये पंचतत्व या पंचभूतों के नाम है। अब उनके रूप सुनिए। पृथ्वी अर्थात धरती,आप अर्थात पानी,तेज अर्थात अग्नि सूर्य एवं अन्य सतेज पदार्थ, वायु अर्थात हवा, आकाश अर्थात पोलापन, अवकाश। अब इनमें शाश्वत कौन इस पर विचार करें। थोड़े से अनुभव से सारा ज्ञान हो जायेगा। पृथ्वी की उत्पत्ति और समाप्ति होती है, यह अनुभव सिद्ध बात है। सृष्टि में जो जो रचनाएं होती हैं, उनका अंततः नाश होता ही है। जल सूख कर उड़जाता है। तेज प्रकट होकर बुझ जाता है। वायु भी रुक जाता है। साराँश पंच-भूतात्मक सारा कार्य अशाश्वत है, नाशवान है। और आत्मा मात्र

शाश्वत, निराकार और सत्य स्वरूप है। आत्मा का स्वरूप बिना ज्ञान के आकलन नहीं हो सकता। और ज्ञान सन्तों के पास रहता है। अतः शाश्वत आत्म-स्वरूप का बोध सन्तों से प्राप्त करें। सन्तों से पूछने पर वे आत्मा को अविनाशी व जन्म मृत्यु रहित बतलाते हैं। निराकार में आकार और आकार में निराकार प्रतीत होता है, इसलिए आकार-निराकार का विवेक पूर्वक निर्णय करना चाहिए। निराकार नित्य और आकार अनित्य है इसे ही नित्यानित्य विचार कहते हैं। इसी भाँति सार में असार और असार में सार का भास होता है। अतः सारा सार विचार का अनुसंधान करते रहें।

पंचभौतिक पदार्थ मायिक और अनेक है परन्तु आत्मा शाश्वत एक और सर्वव्यापक है। पृथ्वी जल आदि सब भूतों में आकाश व्याप्त है, वैसे ही आकाश में ब्रह्म घनीभूत (भरा हुआ) है। गहन विचार करने से आकाश और ब्रह्म भिन्न नहीं दिखाई देते। उपाधि के कारण आकाश कहलाता हैं और उपाधि न रहने पर वही ब्रह्म हो जाता है। जिसे उपाधि या प्रतीति नहीं है, वह ब्रह्म है। आकाश भी वैसा ही है पर-ब्रह्म परमात्मा निराकार हें यही सबका सार हे।

अब हम कौन है ? इस पर विचार करें। मृत्यु के समय शरीर से वायु निकल जाता है। इसका अनुभव लना हो तो कुछ दर साँस रोककर देखें। सास का रोकन स प्राण व्याकुल होने लगता हे और उसे अधिक दर तक रोके रखें तो शरीर स प्राण (वायु) निकल जाता है और शरीर शव बन जाता है। निष्प्राण शव से फिर कोई क्रिया नहीं हो सकती। बिना शरीर क वायु और बिना वायु के शरीर दोनों एक दूसरे क बिना व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं। यों ऊपरी तोर से हमें मनुष्य का शरीर दिखाई देता हे पर विचार पूर्वक देखन से वह पंचभूतों की पोटली ही प्रतीत होगी, जो नाशवान है। निर्गुण ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है, यह जानकर अभेद भक्ति दृढ़ होती है।

यदि मैं अपने को 'कर्ता' मानता हूँ, तो सब कुछ मेरी इच्छानुसार होना चाहिए पर वैसा होता नहीं है। इसलिए 'मैं कर्ता हूं' यह अभिमान करना व्यर्थ है। यदि मैं कर्ता नहीं हूं तो फिर भोक्ता कौन है, इस पर विचार करें। अविचार से यह ज्ञात नहीं होगा। विचार और अविचार प्रकाश और अन्धकार के समान हैं। जहाँ विचार का प्रकाश नहीं वहां अन्धकार ही रहेगा। इसी भांति प्रत्यय अर्थात न्याय और अप्रत्यय अर्थात अन्याय। जन्म से अन्धे व्यक्ति को नाना रत्नों की पहचान कैसे हो सकती है? इसी प्रकार 'मैं कर्ता, मैं भोक्ता' आदि विकार मिथ्या एवं काल्पनिक है। आत्मा निर्विकार है। उससे अपने को अभेद और अनन्य मानने वाला आत्म परम धन्य है। वही आत्म निवेदन भक्ति के कारण सबके लिए सन्मान्य एवं आदरणीय होता है। ऐसा विवेक सम्पन्न साक्षी स्वरूप ज्ञानी पुरुष ही मुक्त है।

सातवां समास

प्रत्यय विवरण

वक्ता कहते है—निर्मल, निश्चल और निराभास ऐसे ब्रह्म के लिए केवल आकाश की उपमा दी जा सकती है। चारों ओर फैले हुए अवकाश अर्थात पोलेपन को ही आकाश कहते हैं। प्रथम आकाश तत्व सब ब्रह्मांड में व्याप्त है। फिर उसके अन्दर वायु, तेज, जल पृथ्वी ये चार तत्व हैं। यह सब हमें अनुभव से जानना चाहिए। बिना अनुभव के कोरा ज्ञान व्यर्थ है। जैसे आकाश में वायु अथवा घटा काश में घटबिम्ब वैसे ही निश्चल ब्रह्म में चंचल आत्मा रहता है। फिर भी इन दोनों में महदन्तर है। जो आता जाता हैं, वह चंचल, पंचभूत अर्थात अविद्या कार्य, वह भी जड़ है और आत्मा चंचल है। जड़भूत कपूर और आत्म अग्नि अर्थात आत्मा अनात्मा को (जड़ भूतों को) जलाता है और अन्त में स्वयं भी जल जाता है। आकाश और ब्रह्म ये

दोनों निश्चल हैं और इनमें स्थिति वायु और आत्मा चंचल है। परीक्षा वान ही इनकी यथार्थता जान सकते हैं। जड़ तत्व अनेक हैं और आत्मा एक है। इसे आत्मानात्म विवेक रहते हैं।

अतः सार (ब्रह्म) और असार (जड व चंचल) को विवेक से पहचान कर दृश्य भासात्मक प्रकृति से अलिप्त रहना चाहिए। प्रकृति का विचार से निरसन करने पर उसका दृश्य स्वरूप आप से आप लुप्त हो जाता हैं और चचंल आत्मा अध्यात्म श्रवण से निर्गुण में लीन हो जाता है। अन्तरात्मा चंचल होने के कारण वह जिसका सग करने लगता है, तद्रूप हो जाता है। वह जड़ अनात्म की संगति से देहात्म भाव को लेकर अधोगति को प्राप्त होता हैं और निश्चल ब्रह्म का संग करने पर अपना उद्धार कर लेता है। जैसा जिसका संग होता है, वैसा वह बन जाता है। इसलिए सदा श्रेष्ठ मार्ग ही ग्रहण करना चाहिये। अच्छे पक्वान्नोंका वर्णन सुनने से मन तदाकार हो जाता है। किसी सुन्दर लावण्यवती स्त्री का श्रृङ्गार वर्णन सुनकर मन उसमें तल्लीन हो जाता है। इसी प्रकार जिस वस्तु या विषय का हम निदिध्यास करेंगे, हमारा मन तदाकार हो जाएगा।

जो जो हम सुनते और देखते है, उनका चित्त में दृढ़ संस्कार हो जाता है। अतः विवेकी पुरुष अपने हित अनहित का विचार कर तदनुसार वर्तन करते हैं। तात्पर्य हमें एक मात्र निश्चल ब्रह्म का ही अनुसन्धान करना चाहिये। सब सुख पर ब्रह्म परमात्मा की ही देन है पर हम सुखों के पीछे पड़कर सुखदाता भगवान को भूल जाते हैं और सारा जीवन व्यर्थ के उहापोह में बिता देते हैं। गीता में भी भगवान ने कहा है कि सबको छोड़कर एक मेरे ही शरण में आओ। पर हम भगवान के वचनों को भी अनसुनी कर देते हैं। फल स्वरूप जीवन दुखमय बन जाता है। हम निश्चल सुख निधान ब्रह्म को छोड़कर मायावी सुखों में लुब्ध हो जाते हैं। पर उनसे सच्चा सुख कैसे मिल सकता है ? अतः सच्चे विवेकी साधक को इस भ्रम जाल से हटकर

सच्चे सुख का मार्ग अपनाना चाहिए। विवेक का फल सुख और अविवेक का फल दुःख है। कर्ता (ब्रह्म) को पहचानना ही विवेक कहलाता है। विवेक हीन व्यक्ति ही परम दुखी होता है। इसलिए हम कर्ता (परमात्मा) को पहचानें और अपना कल्याण करें।

आठवां समास

कर्ता विवेचन

उपरोक्त सारे विवेचन के बाद श्रोता शंका करते है कि इस चराचर सृष्टि का—ब्रह्मांड का आखिर कर्ता कौन है? अनेक लोग अपने अपने आराध्य देवता एव अपने अपने सम्प्रदाय के देवी-देवताओं को सर्वश्रेष्ठ और सृष्टिकर्ता बताते हैं। कोई कहता है, श्री गणेश सर्वकर्ता हैं, कोई श्री शारदा को सर्व कर्त्री बताते हैं। इसी प्रकार कोई भैरव को, कोई वीरदेव को कोई भगवती को, कोई नर हरी को कोई नारायण को, कोई श्री राम को, कोई श्री कृष्ण को, कोई केशव, कोई पाँडु रंग, कोइ श्री रंग, कोई सूर्य लक्ष्मी कोई हनुमान, कोई दत्तात्रय, कोई विष्णु, कोई ब्रह्मा, कोई शंकर आदि भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं को सृष्टिकर्ता और जगन्नियता मानते है। कोई निर्गुण परमात्मा को कर्ता होकर भी अकर्ता कहते हैं। कोई इसके बारे में मौन हैं। इस प्रकार कर्ता के विषय में सबमें अलग अलग मतमतान्तर फैले हुए हैं। जो जिस देवी देवता को अपना इष्ट मानता है, वही उसकी दृष्टि का आदि कर्ता होता है। अतः ज्ञानी को इस विषय में सावधान होकर विचार करना चाहिए।

अस्तु, अब हम प्रत्यय का विचार प्रस्तुत करते हैं। जो जो कार्य हुआ है, वह कर्ता के पश्चात ही हुआं है, यह बात हमें मान्य करनी होगी। प्रथम कर्ता हुआ, तदुपरान्त कार्य हुआ। जो जो कार्य सृष्टि

में दिखाई देता है वह सब पंचभूतात्मक है और ब्रह्मा विष्णु आदि सकल देवता भी पंच भौतिक ही हैं। अतः इन देवताओं को पंच-भौतिक सृष्टि का कर्ता नहीं माना जा सकता। पंचभौतिक कार्य का कर्ता पंचभौतिक तत्वों से अलग होना चाहिए और पंचभूतों से अलग एक निर्गुण निराकार ब्रह्म ही है। पर उस निर्विकार को हम विकारी कैसे मान लें अर्थात निर्गुण ब्रह्म को भी हम कर्ता नहीं मान सकते और सगुण होने पर वह पंचभूतात्मक हो जाता है। अतः कर्ता कौन? इस प्रश्न का कोई उचित समाधान नहीं मिलता। सृष्टि यदि मिथ्या अर्थात मायावी है तो मिथ्या सृष्टि के कर्ता का प्रश्न ही नहीं उठता। दृश्य सृष्टि सत्य नहीं है, मिथ्या है, भासमान है, इसलिए उसका कर्ता भीं कोई नहीं। सृष्टि अपने स्वभाव से ही दृश्यमान हुई। वह मिथ्या होने के कारण उसका कोई कर्ता नहीं हो सकता, ऐसा ही कहना चाहिए। जो कुछ दिखाई देता है, वह सब मिथ्या है, यह अनुभव होने पर हम किसी भी देवता को उपासना के मिथ्या अभिमान के कारण ब्रह्मांड या सृष्टि का कर्ता मान लें, इसमें क्या तुक है? सृष्टि मिथ्या है और मिथ्या वस्तु का कोई कर्ता कैसे हो सकता है, ऐसा प्रत्यय आने पर सब संदेह नष्ट हो जाता है। यह सब विवेक से अनुभव करने का विषय है। जो हुआ ही नहीं, उसके कर्ता के बारे में उहापोह करना ही व्यर्थ है।

इस पर फिर एक श्रोता प्रश्न करता है कि यदि सृष्टि का कोई कर्ता निर्माता नहीं है, तो शरीर को जो सुख-दुःख होता है, उसका भोक्ता कौन? इसका समाधान अगले समास में वक्ता करेंगे।

नवां समास

आत्म विवेचन

वक्ता कहते हैं—शरीर के संयोग के कारण ही आत्मा को दुःख

चिंता आदि क्लेश सहन करना पड़ता है। और शरीर के कारण ही उसका जीवन भी चलता है। यदि शरीर को भोजन नहीं मिलेगा तो आत्मा जीवित नहीं रह सकना और बिना आत्मा के शरीर भी चेतन नहीं रह सकता। एक के बिना दूसरा निरर्थक है। दोनों के संयोग से ही जीवन–व्यापार चलता है। शरीर में चैतन्य-शक्ति नहीं है और आत्मा में किसी वस्तु को उठाने की शक्ति नहीं है। स्वप्न में मिले हुए भोजन से किसी का पेट नहीं भरता। आत्मा स्वप्न और जागृति दोनों अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। वह नींद में भी शरीर को खुजलाता है। अन्न-रस से शरीर बढ़ता है और शरीर के साथ साथ विचार भी वृद्धिगत होते हैं। वृद्धापकाल में शरीर और विचार दोनों क्षीण होते हैं। नशीले द्रव्य सेवन करने वाले शरीर की संगति से आत्मा भी भ्रमित होकर अपनी सुध बुध खो देता है।

शरीर के विष प्राशन करने पर आत्मा भी निकल जाता है। शरीर के कारण ही आत्मा को बढ़ने, टूटने आने, जाने और सुख दुःख भोगने आदि का अनुभव होता है। जैसे चीटियों के घर के समान यह शरीर पोला है। इसमे अनेक मोटी पतली नाड़ियों का जाल बिछा है। शरीर में अन्न रस तैयार होता है। उसे श्वासोच्छ्वास द्वारा वायु सर्वत्र पहुंचाता है। नाड़ी के द्वारा ही जल दौड़ता है और उसी में वायु भी विचरण करता है। इसी प्रकार आत्मा भी शरीर में सर्वत्र विचरता है। प्यास से शरीर को जल के पास ले जाता है। अवसर के अनुसार आत्मा ही शरीर का संचालन करता है और वही भली बुरी बातें करता है। सुख-दुख का भोगने वाला आत्मा ही है। उसके बिना शरीर केवल शव मात्र है। मन की अनन्त वृत्तियों को जानना यह आत्मा का ही धर्म है। ब्रह्मांड में जितने प्राणी हैं, उन सब में एक ही आत्मा है। जगत में रममाण है, इसलिए जगदात्मा, विश्व में व्याप्त है, इसलिए विश्वात्मा तथा सब घट-घट में समाया है, इसलिए उसे सर्वात्मा कहते हैं।

आत्मा ही सूंघना चखना, सुनना, देखना आदि कार्य करता है। वही नरम और कड़े पदार्थ को पहचानता है और शीत उष्ण का अनुभव करता है। वही सतर्कता पूर्वक अनेक प्रकार के प्रपंच करता है।

वायु के साथ सुगन्ध आती है पर वायु उसको छोड़ देता है। वायु के साथ धूल भी आती है पर वह भी उड़ कर अलग हो जाती है। वायु में शीतलता, उष्णता, सुगन्ध, दुर्गन्ध सब कुछ मिल जाती है पर अन्त में सब मिट जाते हैं और केवल शुद्ध वायु ही शेष रहता है। आत्मा वायु से भी विशुद्ध और चपल है। कठिन पदार्थ को वायु पार नहीं कर सकता परमात्मा उसको भी भेद कर पार हो जाता है। शरीर को सुख मिलने पर आत्मा भी आनन्द का अनुभव करता है। उसकी सारी वासनाएं शरीर के द्वारा ही तृप्त होती हे। देह के बिना आत्मा कुछ नहीं कर पाता। देह और आत्मा के संयोग से ही विवेकी पुरुष ब्रह्मांड का सार विचार कर मुक्त होते हैं। इस प्रकार देह और आत्मा की जोड़ी अभिन्न है।

दसवां समास

शिक्षा

मालायें अनेक प्रकार की होती हैं। कुछ पत्तों की (तुलसी आदि) कुछ फूलों की, कुछ फलों की, कुछ बीजों की, कुछ पत्थरों की, कुछ स्फटिकों की, कुछ मणियों की, कुछ काष्ठों की, कुछ धातुओं की, कुछ रत्नों की मालायें होती है। पर इन सब मालाओं में धागा पिरोया रहता है, जिसके आधार पर मालायें टिकी रहती हैं। यदि इनके बीच में धागा न हो तो सारी मालायें बिखर जायेंगी। इसी भाँति पदार्थ मात्र के भीतर आत्मतन्तु हैं (सूत्रे मणिगणा इव) वह तन्तु अर्थात धागा मणियों के बीच में ही होता है पर आत्म-तन्तु सारे शरीर में व्याप्त रहता है। साथ ही आत्मा चपल और चंचल है, जबकि धागा निर्जीव

और निष्क्रीय रहता है। इसलिए आत्मा को धागे की उपमा यथार्थ नहीं कही जा सकती। देह अनात्मा और देही आत्मा है परमात्मा इन दोनों से परे है। उस निरंजन परमात्म के लिए कोई भी उपमा पर्याप्त नहीं है।

राजा से रंक तक सभी मानव प्राणी ही हैं। फिर भी क्या उन सब की एक ही श्रेणी में गणना हो सकती है? देव, दानव, मानव, ऊंच-नीच योनि उत्तम अधम, पापी-पुण्यवान क्या सब समान हो सकते हैं? सब में एक ही आत्मा का निवास है, यह सत्य है पर योनि और शरीर भेद के अनुसार सबकी सामर्थ्य अलग अलग है। किसी पुण्यात्मा के सम्पर्क से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है और किसी के संग से जीव को नरक-यातनायें भोगनी पड़ती हैं इसलिये क्या कोई मिट्टी खाना पसंद करेगा? विष और पानी दोनों द्रव रूप जल तत्व ही हैं, तो क्या कोई विष पीना मंजूर करेगा? पुण्यवान और पापी दोनों में एक ही अन्तरात्मा है पर उनमें साधु और भोंदु का भेद रहेगा ही। ब्राह्मण और चाँडाल दोनों में एक ही आत्मा होने पर उनका समागम नही हो सकता। पंडित और नटखट लड़के, मनुष्य और गधे, राजहंस और कौए, राजा और बन्दर, गंगाजल और गटर का जल इनमें क्या समानता हो सकती है? इसलिए शुद्ध आचार व निर्मल विचार संपन्न वैराग्य शील एवं सुबुद्ध महात्माओं का पद अलग ही होता है। शूर वीर पुरुषों की बजाय यदि हम कायर व्यक्तियों का गौरव करने लगें तो युद्ध के समय हमें पश्चाताप करने का प्रसंग आयेगा। अत: गुण कर्मों के अनुसार निंदनीय पदार्थ एवं प्राणियों को त्यागकर वन्दनीय वस्तु या व्यक्तियों का ही आदर-सम्मान करना चाहिए और अपनी सत्कीर्ति संसार में फैलाना चाहिए। हमें कनिष्ठ एवं अनिष्ट विषयों का त्यागकर श्रेष्ठ और उत्कृष्ट विषयों में मन लगाना चाहिए। हरि-कथा पुराण आदि का श्रवण-मनन, न्याय नीति पूर्वक आचरण और सबका समाधान करते हुए लोगों को पुण्य मार्ग की ओर प्रवृत्त करने

का प्रयत्न यही हमारी साधना बने । अज्ञानी अबोध बालक को आरम्भ में उस की रुचि के अनुसार चलकर ही धीरे-धीरे सिखाना पड़ता है,उसी प्रकार हमें जन:साधारण को भी हौले हौले शिक्षा देनी चाहिए । सबके मन को राजी रखने की चतुराई हममें होनी चाहिए । किसी अज्ञानी मूर्ख व्यक्ति को भी मूर्ख कहकर उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, न किसी का अपमान कर जी दुखाना चाहिए । अवसर देखकर बर्ताव करना चाहिए । और सबके अभिन्न अंतरंग मित्र बन जाना चाहिये । जो दूसरों का मन रखता है, वही महान है और उसी की ओर सब आकर्षित होते हैं ।

चौदहवां दशक

पहला समास

निस्पृह साधना

वक्ता कहते हैं — अब हम निस्पृह पुरुष के आचरण एवं उसकी युक्ति, बुद्धि और ज्ञान के सम्बन्ध में बातें बतायेंगे । उन्हें सुनकर आप लोगों को अवश्य समाधान होगा । जैसे मंच छोटा सा पर निश्चित सिद्धि को देखने वाला हो या औषधि सामान्य पर गुणकारी हो, वैसे ही मेरा वक्तव्य सरल पर अनुभव सिद्ध है । इसके द्वारा अनेक दुर्गुणों का नाश होकर उत्तम गुणों की उपलब्धि होगी पर इसके लिए श्रोताओं को आलस छोड़कर मेरे शब्द रूपी तीव्र औषधि का विश्वासपूर्वक सेवन करना चाहिए । निस्पृहों को इन गुणों का अभ्यास अवश्य करना चाहिए ।

यदि हमने निस्पृहता धारण करली है, तो फिर उसे छोड़ना नहीं चाहिए और यदि छोड़ दी है तो फिर हमें परिचित लोगों में रहना नहीं चाहिए। निस्पृह व्यक्ति को स्त्री-लोलुपता अर्थात स्त्री-भोग की इच्छा नहीं करनी चाहिए स्त्री सम्बन्धी विचार तक मन में नहीं लाना चाहिए। धीरज के साथ मन को वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिए और यदि हम मन पर काबू न पा सकें तो समाज में न रहकर एकान्त में या निर्जनस्थान में जाकर रहना चाहिए।

निस्पृह व्यक्ति को किसी एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं रहना चाहिए। स्त्री या सम्पत्ति की कभी अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। अपने आचार-विचार को भ्रष्ट नहीं करना चाहिए और कोई धन देता हो तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। हमारा व्यवहार ऐसा आदर्श हो कि कोई हमारी आलोचना न कर सके। उदर पोषण के लिए भिक्षा माँगने में सकोच न करें पर अधिक भिक्षा प्राप्त करने का लोभ भी न करें। किसी के पूछने पर भी अपना पूरा परिचय न दें। हमारे वस्त्र न अत्यन्त उजले लोहा किए हुए हों और न मैले कुचैले या फटे हुए हों बल्कि वे सादे और स्वच्छ होना चाहिए। निस्पृह व्यक्ति को अधिक मिष्टान्न नहीं खाना चाहिए क्योंकि उससे चटोरे पन की आदत पड़ जाती है। किसी बात का दुराग्रह न करें अपितु अवसर देखकर बर्ताव करें। मन को भोगों का आदी (व्यसनी) न बनायें, शरीर-श्रम से न घबराएं और अधिक जीने की भी आशा न रखें अर्थात मरने का भय भी मन से निकाल दें।

निस्पृह पुरुष में विवेक और धैर्य सुदृढ़ होना चाहिये। अपने विवेक को जागृत रखते हुए ज्ञान को मलिन न होने दें। निस्पृह व्यक्ति को चाहिए कि वह सदैव भगवान का करुण भाव से कीर्तन करता रहे तथा अंतस में प्रभु का ध्यान धरते हुये सबसे प्रेम पूर्वक संभाषण करे। चिन्ता और कष्ट के कारण उसे उदास या खिन्न नहीं रहना चाहिये।

किसी भी कठिन प्रसंग में भी उसे धीरज नहीं छोड़ना चाहिए। कोई अपमान करे तब भी चित्त को शाँत रखे और नीति-न्याय से चलते हुये लोक लाज की परवाह् न करे। किसी के उपहास करने से दुखी नहीं होना चाहिये। उसे अपने शुद्ध मार्ग से विचलित न होते हुये दुर्जनों से वाद-विवाद करने मे मुंह मोड़ लें। क्रोध न करते हुए हमें आत्म स्थिति में स्थिर रहना चाहिये। किसी के हंसाने से न हंसें। एक से वेष में या एक ही प्रदेश में हमेशा न रहें। निस्पृह को हमेशा परिभ्रमण करते रहना चाहिये। किसी से अधिक घनिष्ठता न रखें दान आदि स्वीकार न करें और जन समूह में अधिक समय न बैठे। प्रतिदिन कुछ समय तक एकान्त-सेवन अवश्य करते रहें।

निस्पृह को नित्य नियमों का पालन करना चाहिये पर साथ ही नियमों के पक्के गुलाम बनकर भी न रहे परमार्थ का निदिध्यास कभी न छोड़े। किसी भी परिस्थति में परावलम्बी होकर न रहें। स्वतन्त्रता छोड़कर हर समय दूसरों की सहायता की अपेक्षा न करें। वैभव की वस्तुयें न देखें क्योंकि उन्हें देखते रहने पर उन को प्राप्त करने की लालसा पैदा होती हैं। अनेक उपाधियों के सुख में न फंसें और अपने स्वरूप स्थिति का हमेशा एकान्त में बैठकर चिन्तन करते रहें।

निस्पृह व्यक्ति को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिये। उसको किसी चीज की आसक्ति भी न हो। वह परम्पराओं का भी त्याग न करे और अपने दैनिक उपासना-कर्मों को भी न छोड़े। किसी से वितंडा-वाद न करे, क्रोध के वशीभूत हो दुराग्रह न करे. नीति-न्याय के मार्ग को न छोड़े। व्यर्थ की बातें न करें और अपनी आवश्यकताओं को भी न बढ़ने दे और यदि अनिवार्यतः आवश्यकतायें बढ़ती भी हों, तब भी उनके प्रति कोई आसक्ति या मोह न रखें। मान सम्मान की अभिलाषा न करें और अपने को सबसे छोटा समझकर सबके साथ नम्रता पूर्वक व्यवहार करें।

सादगी से रहे । बिना अधिकार के किसी को उपदेश देने की चेष्टा न करें ।

निस्पृह व्यक्ति में वैराग्य, अभ्यास और धैर्य अत्यन्त दृढ़ होना चाहिये पर हृदय और वाणी अत्यन्त कोमल होनी चाहिए बिना आचरण के कोई उपदेश न करे । शिष्यों से अधिक मांग न करें, इन्द्रियों को वश में रखें, विषयों का चिन्तन न करें क्योंकि उससे कामादि विकार बलवान होकर मन विषयों की ओर प्रवृत्त होने लगता है । 'मैं मुक्त हूं' ऐसा अहंभाव कर स्वैराचार न करें । सन्त-महात्माओं की निम्न से निम्न सेवा करने में संकोच न करें । वैभव प्राप्त होने पर उन्मत्त एवं अहंकारी न बनें और ज्ञान के अभिमान से क्रोधी न बनें । बड़प्पन के घमण्ड में सज्जनता न छोड़े अनुशासन हीन न बनें और केवल अनुमान से ही किसी बात का निश्चय न करें । कोई अच्छी बात बतायें तो उसे निःसंकोच होकर स्वीकार कर लें । हमेशा सावधान, सतर्क और व्यापक बनकर रहें । आलस में आनन्द न मानें, बुरी कल्पनायें मन में न आने दें । स्वार्थ के लिये किसी को कोई आदेश न दें और यदि आदेश देना ही हो तो वह लोक-मङ्गल के लिये दें ।

निस्पृह व्यक्ति को धन के लालच से कथा-प्रवचन आदि नहीं करना चाहिए । किसी भी ग्रन्थ का पूर्ण मनन किये बिना और उसके भावार्थ को ठीक समझे बिना उसका निरूपण प्रवचन न करें । ज्ञान का अभिमान रखकर किसी से कोई प्रश्न शंका न करें । किसी से छल न करे, किसी के काम में हस्तक्षेप न करें । राजनीति द्वारा जनता की सेवा करने का व्यर्थ आडम्बर न करें किसी को बोझ प्रतीत हो ऐसी भिक्षा न मांगे और किसी बड़े परमार्थ के लिए मैंने भिक्षावृत्ति स्वीकार की है, ऐसा अहंकार न दर्शायें । किसी के विवाह-कार्य आदि के झमेले में न पड़ें, मध्यस्थ न बनें । उपाधियों से यथा सम्भव दूर रहें ।

निस्पृह व्यक्ति को प्रपंच की बातों से सदा अलग ही रहना चाहिये। उसे अधिक आहार भी नहीं करना चाहिये वह किसी मेहमान के साथ निमन्त्रण में न जाये। विवाह आदि में होने वाले भोजों में भी वह सम्मिलित न हो। धन प्राप्ति के लिये भजन कीर्तन या कथा प्रवचन आदि का प्रयोजन न करे और निस्पृह भाव से ही कर्तव्य समझकर सब कार्य करें।

निस्पृह व्यक्ति को किसी मन्दिर का पुजारीपन या अन्य कोई कार्य पैसा लेकर नहीं करना चाहिये तथा कोई पुरस्कार या इनाम दे तो उसे भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। उसे किसी मठ या गद्दी का मठाधीश या मालिक बन कर नहीं बैठना चाहिये। उसे किसी पद की अभिलाषा नहीं करनी चाहिये और सब साँसारिक कार्य करते हुये भी उनसे अलिप्त रहना चाहिये। उसे आलस छोड़कर सदा उद्योगी और उपासक बनकर जीवन-यापन करना चाहिये वह न अति कष्ट करे और न आलसी बनकर रहे, न अतिभाषण करे, न मौन ही रहे न आहार करे, न अति उपवास करे, न अति निद्रा करे और न अति जागरण करे। न हर दम जन-सम्पर्क में रहे न निर्जन वन में, न शरीर का अति लाड़ करे और न उसकी अति उपेक्षा। निस्पृही बहुतों का सङ्ग न करे पर सत्सङ्ग को न चूके। न वह अति-कर्मठ बने न अकर्मण्य। लोकाचार को न छोड़े पर लोगों के रुचि के अनुसार ही सदा न चलता रहे। उसमें न किसी के प्रति अति प्रीति हो न निष्ठुरता। वह अति संदेही न हो, साथ ही सर्वथा निर्द्वन्द और निस्संदे-ही भी न बने।

निस्पृह पुरुष को असङ्ग रहकर भी सब चीजों का अनुभव लेना चाहिए। मन की सहायता के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता पर मन को उन्मन अवस्था में रखने का भी अभ्यास करना चाहिये। परमात्म वस्तु अलक्ष्य होने के कारण दिखाई नहीं देती पर उसको देखने की

ज्ञान–दृष्टि प्राप्त करने की अहर्निश चेष्टा करते रहना चाहिये। वह मन बुद्धि के परे है फिर भी बुद्धि के बिना अज्ञान अन्धकार दूर नहीं किया जा सकता और बिना अज्ञान दूर हुए स्वरूप का अनुभव नहीं हो सकता। वस्तु तर्क के परे है फिर भी हमें तर्क का आश्रय लेना ही पड़ेगा। हम दृश्य का स्मरण न रखें और स्वरूप का विस्मरण न होने दें। अति चर्चा न करें, आशावद्ध न बोलें, विवेक हीन न बनें, बिना अध्ययन, मनन, चिंतन के न रहें, किसी के साथ मतभेद होने पर किसी का अपमान न करें, दुराग्रही न बनें। श्रोताओं के प्रश्नों और शंकाओं से विचलित या संतप्त न हों। ये सब बातें निस्पृह व्यक्ति को अपने जीवन में उतारना चाहिये। ऐसा करने से उसे सब सुख सुलभ होंगे और अनायास ही उसे श्रेष्ठ पद प्राप्त होगा।

दूसरा समास

भिक्षा विवेक

वक्ता कहते है—ब्राह्मणों की मुख्य दीक्षा भिक्षाटन अर्थात भिक्षा माँगना है। उपनयन संस्कार (जनेऊ) के समय उसे 'ओम् भवति भिक्षां देहि' की दीक्षा दी जाती है उसका उसे यथाविधि पालन करना चाहिये। भिक्षा में प्राप्त अन्न निराहार के समान होता है। भिक्षा माँगने वाला प्रतिग्रह के दोष से मुक्त रहता है अर्थात दान ग्रहण करने का दोष उसे नहीं लगता। भले बुरे सभी ग्रहस्थों के घर से वह पका हुआ भोजन करता है, जो अमृत प्राशन के समान है। कहा गया है कि—

भिक्षा हारी निराहारी भिक्षा नैव प्रतिग्रहः।
असंतो वापि संतो वा सोम पानं दिने दिने॥

ऐसी भिक्षा की महिमा है। भिक्षा शंकर जी को प्रिय है वे उसकी

महिमा जानते हैं इसलिये वे भी भिक्षा मांगते हैं। श्री गुरु दत्तात्रय, श्री गोरखनाथ आदि सिद्ध योगी जन भिक्षाटन ही करते थे। भिक्षा से निस्पृहता बढ़ती है। माधुकरी माँगने वाला (नियमित दिन एक एक परिवार में भोजन करने वाला) या नित्य किसी एक के यहाँ भोजन करने वाला पराधीन हो जाता है। नित्य नये नये प्रदेश, गाँव या घर में भिक्षा माँगने में निस्पृहता, स्वतन्त्रता और देश-पर्यटन का आनन्द मिलता है। देशाटन कर भिक्षा माँगना श्रेयस्कर है। जिसे निरन्तर भिक्षा का अभ्यास होगा, वह जहाँ जायेगा वहीं उसे स्वदेश सा अनुभव होगा। कहीं पर भी देश की प्रचीति नहीं होगी। भिक्षा माँगने में परेशानी, संकोच या लज्जा का अनुभव नही करना चाहिए। हमेशा परिव्राजक के रूप में परिभ्रमण करते रहना चाहिए। भिक्षा पाने पर कृतज्ञता भाव से परमात्मा का गुणानुवाद गाते रहना चाहिये। ऐसे निस्पृह भिक्षार्थी साधु-ब्राह्मण को देखकर आबाल वृद्ध सभी चकित होकर उसका आदर करते हैं।

भिक्षा को सामान्य बात न समझें। वह नित्य अमृत देने वाली कामधेनु हैं। जिसे भिक्षा पसन्द नहीं वह योगी अभागी और अहङ्कारी ही माना जायेगा भिक्षा के द्वारा अनेक लोगों से परिचय होता है, अनेक भ्रम संदेह दूर होते हैं और साधारण भिक्षा देना किसी को नहीं अखरता।

भिक्षा से निस्पृहता, निर्भयता और स्वतन्त्रता के साथ ही महानता भी प्रकट होती है तथा भिक्षा वृत्ति से भगवन प्राप्ति भी होती है भिक्षा के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। भिक्षा पर निर्भर रहने वाला व्यक्ति स्वतन्त्र रहता है और सब समय सार्थक कार्य में व्यतीत होता है। भिक्षा यह अमृत वल्ली है। वह नाना फलों से सुसज्जित रहती है अर्थात उसके द्वारा अनेक लाभ मिलते हैं। भिक्षा संकोच और लज्जा विहीन होने से वह संकट समय में बड़ी उपयोगी एव तारक सिद्ध होती

है। पृथ्वी तल पर अनेक देश हैं, इसलिये भिक्षाटन करने वाला कभी भूखा नहीं रह सकता। कृषि गोरक्षा और वाणिज्य (व्यापार) से भी भिक्षा की प्रतिष्ठा अधिक है। इसलिये ब्राह्मणों को भिक्षा के लिये झोली फैलाने में संकोच नहीं करना चाहिये। भिक्षा के समान वैराग्य नहीं है और वैराग्य के समान सौभाग्य नहीं है भिक्षा में लोभ नहीं होना चाहिये। एकबार माँगने पर मिले तो ठीक अन्यथा आगे बढ़ जाना चाहिये। भिक्षार्थी को अल्प सन्तुष्ट होना चाहिये। कोई अधिक भिक्षा दे तो नहीं लेना चाहिये और सबके साथ मधुर भाषण करना चाहिये। यह निस्पृह के लक्षण हैं।

तीसरा समास

कविता के लक्षण

वक्ता कहते हैं—काव्य शब्द सुमनों की सुन्दर माला है, जिसके अर्थ रूपी सुगन्ध से सन्त रूपी भौरो को आनन्द होता है। ऐसी मालायें अत:करण के भावों से गूंथकर श्री राम प्रभु के चरणों में समर्पित करें। यही प्रभु की पूजा है। ऐसी माला ओंकार तंतू से सुसज्जित हो और वह तन्तु अखण्ड रहे। काव्य, रचना परोपकार अर्थात लोकमंगल के लिये ही की जाय।

अब ऐसे आदर्श काव्य के लक्षण बतलाते हैं। भक्ति और वैराग्य पूर्ण काव्य को लिखने के पहले हमें अपनी योग्यता और ज्ञान का भली भांति विकास करना चाहिये। बिना क्रिया के केवल शब्द जाल से सज्जनों को संतोष नहीं हो सकता। इसलिये अनुताप से प्रभु को प्रसन्न करना चाहिये। और प्रभु-प्रसाद से जो जो भाव-स्फुरता हो, उसे ही शब्दों द्वारा काव्य रूप में प्रकट करना चाहिये। इसे ही प्रासादिक काव्य कहते हैं। काव्य के ढीठ पाठ और प्रासादिक ऐसे तीन प्रकार हैं। मनमाने शब्दों की अर्थ शून्य रचना ढीठ काव्य कहलाता है। बहुत

से ग्रन्थों का पाठान्तर कर पाठ शक्ति के बल पर उनका अनुकरण करते हुए काव्य लिखना पाठ-काव्य कहाता हैं। तत्काल किसी विषय पर कवित्व करना ढीठ पाठ है। शृंगार, वीर, हास्य, विनोद आदि नवरसात्मक काव्य भी ढीठ-पाठ है। मन में विषय चिंतन होने पर श्रृङ्गार पूर्ण कविता का प्रणयन, अथवा धन के लालच से किसी व्यक्ति की प्रशंसा में रचा हुआ काव्य भी ढीठ पाठ ही कहलायेगा। ऐसी कविता या काव्य भवमोचक या भव-तारक नहीं है।

काव्य ढीठ-पाठ या खींच तान कर प्रयास पूर्वक रचा हुआ नहीं होना चाहिये। वह पाखण्ड पूर्ण, विवाद को बढ़ाने वाला दृष्टान्तहीन, रूक्ष अथवा रस भङ्ग करने वाला न हो। काव्य में अनेक ऊल जलूल भाव, कल्पनायें न हों, न उसमें कुटिल मतों एवं हीन विचारों का ही समावेश हो। उसमें छन्द, प्रास, अनुप्रास वृत आदि की यथोचित साव-धानी रखी जाय। वह ज्ञान कला, तर्क से युक्त आकर्षक और भक्ति ज्ञान वैराग्य से पूरित हो। भक्ति हीन काव्य केवल विनोद है। प्रेम-प्रीति के बिना काव्य किस काम का ? ऐसा काव्य तो अहंकार से प्रेरित ढीठ पाठ ही माना जायेगा।

अब प्रासादिक काव्य के लक्षण सुनिये। जिसके लिये संसार का वैभव विलास कामिनी (स्त्री) और कांचन (सम्पत्ति) व मन के समान है; जिसका चित्त भगवद् भजन और सत्संग में रमा रहता है जिसके मन में भक्ति भावना चँद्रकला के समान उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है, सदा सर्वदा जो भक्ति के रङ्ग से रङ्गा रहता हैं और जिससे हृदय सिंहासन पर भगवान विराजे रहते हैं, ऐसे भगवद् भक्त के मुख से जो शब्द काव्य महज भाव से प्रसूत होगा, वह ब्रह्म निरूपण ही होगा। ऐसा सन्तपुरुष भक्ति प्रधान सरस काव्य ही लिखेगा। उसके अन्त रङ्ग की मधुरता के समान ही उसकी वाणी भी से प्रेम धारा का प्रसार होता है। जो करूण कीर्तन के उल्लास में देह भान भूलकर निःसंकोच

प्रेमोन्मत्त हो नाचने लगता है, जिसके अहंकार को सर्वथा मिटा दिया है। जिसको जगत और जनता में ही जनार्दन प्रतीत होता है, जिसके चित्त और नेत्र में भगवान का रूप ही भरा रहता है। जो स्वेच्छा से सदा भगवान के नाना रूप, नाना ध्यान एवं उनके यशकीर्ति प्रताप का संगीर्तन करता रहता है, ऐसे वैराग्य सम्पन्न और मुक्ति सुख भोगने वाले भक्त के मुख से सहज भाव से जो वैराग्य-भक्ति की बातें बोलेगा, वह प्रासादिक काव्य ही है।

काव्य निर्मल, सरस और सुबोध होना चाहिए। काव्य में अहं-भाव न हो तथा उसमें अर्थ गौरव अच्छा हो। उसमें हरिकीर्ति की प्रधानता हो तथा वह रमणीक मधुर, सरल, स्वल्प, यमक शुद्ध, कोमल, कलापूर्ण, छन्द बद्ध आदि गुणों से मुक्त हो। वह मुक्ति-बुद्धि-सिद्धि सम्पन्न हो। उसमें तर्क, पूर्व पक्ष, सिद्धान्त, गति, व्युत्पत्ति, स्फूर्ति, घृति, धारणा समाधान, दृष्टांत, एवं निस्संदेह ज्ञान का यथोचित समन्वय हो। प्रासादिक काव्य में सुविचार, योग, विवरण, तत्वचर्चा, सशय उच्छेद पुरश्चरण, तीर्थाटन आदि का भी वर्णन हो। जिस काव्य से प्रपंच भावना हटे, अज्ञान वृत्ति मिटे, भक्ति मार्ग का बोध हो, देह बुद्धि टूटे, पाखंड का नाश हो, सदबुद्धि और विवेक जागृत हो, सद्‌वस्तु का ज्ञान होकर भेद दृष्टि दूर हो एवं संसार-बन्धन छूटकर आत्म-समाधान का आनन्द प्राप्त हो, वही सच्चा काव्य है।

चौथा समास

कीर्तन कला निरूपण

वक्ता कहते हैं—कलियुग में निरन्तर भगवान का गुण-संकीर्तन करते रहना चाहिए। कीर्तन कोमल स्वर में कुशलता पूर्वक गाया जाय। किसी से झगड़ा-बखेड़ा न करें। भगवद् कीर्तन भजन द्वारा जनता जनार्दन को सन्तुष्ट करें जहाँ कीर्तनकार तन्मय होकर कीर्तन

करता है और जब उसके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगते हैं, तब प्राणि-मात्र आकर्षित होकर उसके पास पहुंच जाते हैं। किसी को बुलाना नहीं पड़ता।

कीर्तन के लिए पूर्ण आत्म-विश्वास पूर्वक खड़े रहना चाहिए। बड़े उल्लास पूर्ण ढङ्ग से सुन्दर और सुमधुर स्वर से गायन करना चाहिये। कीर्तन में विविध भांति के अभिनय और कौतुक दिखाना चाहिए, जिससे पाप भावना नष्ट होकर पुण्य की प्रवृत्ति बढ़े। कीर्तन में व्यर्थ की बकवास या किसी की निंदा नहीं होनी चाहिये। ऐसा कीर्तन ही सब लोग पसन्द करते हैं और उसको श्रवण करने के लिए दौड़े-दौड़े आते हैं। अच्छे कीर्तन से लोगों के हृदय में ईश्वर के प्रति भक्ति भाव बढ़ता है, अन्तःकरण निर्मल होता है और मन में दया उत्पन्न होती है। कीर्तन में न तो व्यर्थ का ऊहापोह करना चाहिए और न विस्तार कर उसे बोझिल बनाना चाहिए। कीर्तन प्रवचन में विनम्र भावों से अपने तर्क पूर्ण वक्तव्य से लोगों को संतुष्ट करना चाहिए। सज्जनों को साहित्य और संगीत बहुत भाता है। अतः शास्त्र तथा श्रुतियों के तत्वों को संगीत द्वारा सुगम भाषा में लोगों को समझाना चाहिए। अच्छे कीर्तनकार के कंठ की बराबरी शुक सारिकाएं भी नहीं कर सकतीं। हमें केवल सांसारिक भोग-विलास और आनन्द में ही मग्न न रहकर उस अनिर्वचनीय, अलक्ष्य परब्रह्म परमात्मा की ओर ध्यान लगाते रहना चाहिए। ऐसा करते रहने से किसी समय वह अलक्ष्य भी अकस्मात प्रकट हो जाता है।

पांचवां समास

कथा निरूपण

वक्ता कहते हैं—अब हरिकथा के लक्षणों को चतुर श्रोता सुनें। हरिकथा किस प्रकार की जाय और रघुनाथ जी के कृपापात्र कैसे बनें,

यह बतलाते हैं। सुवर्ण में सुगन्ध होने पर अथवा गन्ने के पेड़ में मीठे रस भरे फल लगने पर कितना आनन्द होगा। इसी भांति यदि हरि-भक्त होकर यदि कोई विरक्त हो, ज्ञानी होकर भी प्रेमी भक्त हो, व्युत्पन्न (बुद्धि सम्पन्न) होकर भी वाद-विवाद से अलिप्त हो तो कितना आश्चर्य होगा? संगीत कला निपुण होकर भी ब्रह्मज्ञानी, निरभिमानी, निर्मत्सर, सन्तप्रिय, चतुरस्त्र एवं अन्तर्निष्ठ होना दुर्लभ है। श्री राम, श्रीकृष्ण आदि अवतारी पुरुषों की जयतियों के अवसर पर तथा प्रसिद्ध तीर्ण स्थानों में परमात्मा सामर्थ्य रूप से उपस्थित रहता है। तीर्थों को न मानने वाले पामरों को भला भगवान कैसे प्राप्त होंगे? निर्गुण ज्ञान संदेहो से ढक गया है और सगुण प्रेम भक्ति शाब्दिक ब्रह्मज्ञान से नष्ट हो गयी है। इस भाँति अहंकार क कारण निर्गुण और सगुण दोनों के आनन्द से ऐसे पायर वंचित रहते हैं। सगुण मूर्ति सम्मुख होते हए जो सगुण भक्ति को छोड़कर निर्गुण का प्रतिपादन करते हैं, वे पढ़त मूर्ख ही हैं। सगुण मूर्ति के सामने हमें करुणा भरे भावों से कीर्तन करना चाहिये। भगवान के ध्यान का वर्णन कर उनकी महानता की स्तुति करनी चाहिये, जिसे सुनकर श्रोताओं के हृदय में प्रेम-सुख का आँदोलन उत्पन्न हो। सगुण के प्रवचन या कथा कीर्तन में निर्गुण को सम्मलित न करें। दूसरों के गुण दोषों की चर्चा न करते हुये प्रभु के वैभव, महत्ता और प्रेम का वर्णन करें और संकोच एवं धन की लालसा छोड़कर नित्य कीर्तन के लिये नया उल्लास पैदा करें। हरि-मन्दिर में प्रभु को निःसंकोच साष्टाँग नमस्कार करें और तालियाँ बजाते, गाते नाचते प्रभु का जयघोष करें। एक देवता की स्तुति दूसरे देवता के सम्मुख न गायी जाय।

जब सगुण मूर्ति सन्मुख न हो और साधु जन श्रोताओं में बैठे हों, तब अद्वैत निर्गुण स्वरूप का निरूपण करना चाहिये। भाविक भक्तों को अनुताप एवं वैराग्य का महत्व समझायें। श्रृंगार रस की बातें

कथा प्रसंग में न कहें। शृंगार रस और स्त्रियों के वर्णन में रुचि रखने वाला ईश्वर से वंचित ही रहता है। राग, ताल, स्वर आदि कलायें कीर्तन करने वाले भक्त को अवश्य अवगत करना चाहिये पर यदि वह उन कलाओंका प्रदर्शन करते हुए उन्हीं में मग्न रहता है, तो वह सच्चा भक्त नहीं। कभी कभी रागों का ज्ञान भक्ति भाव में रोड़ा सिद्ध होता है। जैसे कोई व्यक्ति राजा के दर्शन को जाता हो और रास्ते में ही उसे अन्य कोई बेगार में पकड़ले वैसी ही दशा उसकी हो जाती है, जो हरिकथा में भगवद प्रेम को भूलकर ताल–स्वरों के आडम्बर में फंस जाता है। जो प्रभु के चरणों में अपने आपको समर्पित कर हरिकथा करता है, वही भक्त धन्य है। हरिकथा में जिसका प्रेम नित्य बढ़ता रहता है, उसी को सर्वेश्वर परमात्मा की प्राप्ति होती है। जो आलस, निद्रा त्यागकर तत्परता पूर्वक हरिकथा के लिये दौड़ा करता है, वही सच्चा हरिभक्त है। ऐसे हरिभक्तों के यहाँ परम दयालु भक्त वत्सल भगवान उनके सब कार्यों में प्रत्यक्ष सहायता करते हैं। प्रभु के परम पवित्र नाम स्मरण जिसका अटल विश्वास है, वही हरिदास है।

छठवां समास

चातुर्य निरूपण

वक्ता कहते है—रूप लावण्य अभ्यास या प्रयत्न से प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो गुण स्वाभाविक होते हैं, वे प्रयत्नों से प्राप्त नहीं होते पर जो गुण आगन्तुक अर्थात उपजल नहीं हैं, उनकी प्राप्ति के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। काला मनुष्य गोरा नहीं हो सकता, जिसके चेहरे पर चेचक के दाग हों, वे दूर नहीं किये जा सकते इसी प्रकार गूंगा व्यक्ति बातचीत नहीं कर सकता, अन्धा देख नहीं सकता और न बहरा व्यक्ति सुन ही सकता है। ये सब स्वाभाविक

त्रुटियाँ है। पर अवगुणों को दूर किया जा सकता है और गुणों को ग्रहण किया जा सकता है।

हम प्रयत्नपूर्वक बुरे मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर चल सकते हैं। सन्मार्ग पर चलने वालों का सज्जन लोग सम्मान करते हैं। शरीर को चाहे जितना सजाया जाय पर यदि हम में चातुर्य (चतुराई) न होगी, तो हमारी सारी साज-सज्जा व्यर्थ है। यदि भीतर गुण न हों तो बाहरी सजावट का कोई मूल्य नहीं।

हमें वस्तुत: बाहरी सजावट को छोड़कर अन्तःकरण की शोभा बढ़ानी चाहिए। हमें नाना प्रकार के उद्योग और कलायें सीख कर सम्पत्ति अर्जित करना चाहिये और उसका सदुपयोग करते हुए आनन्द पूर्वक जीवन बिताना चाहिये। जो व्यक्ति प्रयत्न नहीं करता, ज्ञान एव कला प्राप्त नहीं करती, परिश्रम नहीं करता और न उत्तम गुण ही ग्रहण करता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। हम दूसरों के साथ जैसा व्यवहार करेंगे, वैसा ही हमें उसका प्रतिफल मिलेगा। दूसरों को कष्ट देने पर हमें भी कष्ट भोगना पड़ेगा। जो न्याय से चलता है, वह सज्जन है और अन्यायीं नीच हैं। चातुर्य के लक्षण चतुर लोग ही भली भाँति जानते हैं। आप यदि चाहते हो कि सब लोग आपके वश में रहें तो आपको सबके साथ सज्जनता का व्यवहार करना चाहिये। समाधान से ही समाधान मिलता है और मैत्री भाव से ही मैत्री का आनन्द मिलता है।

हर कोई चाहता है कि मुझे अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र और पर्याप्त धन मिले और सब कोई मेरा आदर करें पर जब तक कोई व्यक्ति शरीर से परिश्रम नहीं करता और मन को सद्गुणों से नहीं भरता तब तक उसका समाज में सम्मान नहीं हो सकता।

अतः हमें दूसरों को सुखी बनाने की चेष्टा करनी चाहिये। दूसरों को सुख पहुँचा कर ही हम सुखी हो सकते हैं। दूसरों को कष्ट देने से हमें स्वयं कष्टों का सामना करना पड़ेगा।

जितना हम परिश्रम करेंगे, उतने ही हम भाग्यवान होंगे। भाग्यवान बनने का एक मात्र उपाय परिश्रम अर्थात उद्योग है। आलस करने से कार्य की हानि होती है और उद्योग से सब कार्य क्रमशः सफल होते हैं। स्नेह बढ़ाने से मित्रता दृढ़ होती है और मित्रों की सहायता से अनेक कार्य सिद्ध होते हैं।

जो पुरुष सन्मार्ग से चलते हुए लोगों से मित्रता का व्यवहार नहीं बढ़ाते बल्कि द्वेष-भावना का विस्तार करते है ऐसे भावों और अभागियों को सुख का लाभ कहाँ से हो सकता हैं? जिसका किसी से न पटती हो और जो हर किसी से लड़ाई-झगड़ा करने को तत्पर रहता हो, उसे संसार में सफलता भी कैसे मिल सकती है? अतएव हमें सब से हिल मिलकर सबके साथ में प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हुए सबके प्रियभाजन बनना चाहिए। साथ ही लोगों के सन्मार्ग का उपदेश करते हुए उनमें भगवद् भक्ति का भी प्रचार करना चाहिये।

सातवां समास

युग-धर्म-लक्षण

वक्ता कहते है—संसार में अनेक वेष और अनेक आश्रम हैं, पर सबका मूल केन्द्र गृहस्थाश्रम ही है, जिसके द्वारा तीनों लोकों के प्राणियों को विश्राम मिलता है। देव, ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी, वैरागी, अतीथि अभ्यागत, पितर आदि सब इसी गृहस्थाश्रम से ही पैदा हुए और आश्रम बदलने पर भी गृहस्थों के आधार पर ही जीवन यापन किया करते हैं।

जिस आश्रम में भजन-भाजन (यज्ञ हवन आदि), अध्ययन, अध्यापन, दान व प्रतिग्रह वह षट्कर्म नित्य चलते रहते हैं, जहाँ प्राणीमात्र के मधुर वाणी से वर्ताव किया जाता है, जहां सब प्रकार के आचार

शास्त्रानुसार किये जाते हैं, जहाँ भक्तिमार्ग से सब लोग चलते हैं, जहां गायत्री आदि के पुरश्चरण दृढ़ व्रत पूर्वक संयम के साथ शरीर कष्ट सहते हुए किये जाते है। जहां काया वाचा मनसा भगवान की उपासना में ही काल क्षेप होता है, ऐसा गृहस्थाश्रम परम वन्य है। ऐसे गृहस्थाश्रम को सुचारु रूप से सम्पन्न करते हुए यदि किसी के मन में सच्चा वैराग्य प्राप्त होकर वह गृह त्याग करता है, तो वह महा भाग्य शाली है।

केवल विषय-सुख में आसक्त रहना यह बड़ा दुर्भाग्य है। जनक, भर्तृहरी के समान अनेक राजा अपने राज्य-वैभव छोड़ भगवत् प्राप्ति के लिये बाहर निकल गये, कीर्ति रूप में अमर हो गये हैं। इसी प्रकार योगेश्वर के मन में सद् विचार उत्पन्न होकर वे प्राणिधात्र के अन्तःकरण को पावन करते है। जिस महापुरुष की ऐसी वैराग्य-वृत्ति हो और जो आत्म ज्ञान संपन्न हो. उसके दर्शन मात्र से लोगों को परम शांति एवं समाधान प्राप्त होता है। ऐसा पुरुष अनेक लोगों का उपकार करता है और किसी कल्याणकारी कार्य में बाधा नहीं डालता उसका चित्त अविकल रूप से भगवान में लगा रहता है। वह कभी तो अपने उपास्य देवता के ध्यान में या आत्मानुसंधान में मग्न रहता है, या अध्यात्म का श्रवण-मनन किया करता है। पूर्वजों के महान पुण्य प्रताप से ही प्रपंची जीवों को ऐसे महापुरुष का सत्संग लाभ हो सकता है।

जिस ज्ञान के साथ आत्मानुभव की प्रतीति नहीं, वह ज्ञान नहीं, केवल अनुमान ही है। ऐसे ज्ञान से प्राणियों का परमार्थ सिद्ध नहीं हो सकता , अतः प्रतीति अर्थात अनुभव ही मुख्य चीज है। मूर्ख लोग भावनावश घर-गृहस्थी छोड़कर साधु सन्यासी बन जाते हैं और भटकते दुःख भोगते हुए ही मर जाते हैं। ऐसे व्यक्ति इहलोक तथा परलोक दोनों से वंचित रह जाते हैं। ऐसा व्यक्ति क्रोध के आवेश

में घर छोड़कर चला जाता है पर क्रोधी स्वभाव के कारण लड़ने-झगड़ने में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। वह स्वयं भी कष्ट पाता है तथा दूसरों को भी कष्ट देता है। जो लोग घर में खाने पीने की तंगी के कारण घर से निकल भागते हैं, वे अन्यत्र चोरी आदि कर दंड के भागी होते हैं। पर जो व्यक्ति ज्ञान-विवेक पूर्वक संसार को मिथ्या मानकर घर बार छोड़कर सन्यास लेता है, वह लोगों को सदुपदेश कर अपने समान ही पावन बनाता है। एक के सन्संग से लोग पावन होकर तर जाते हैं और दूसरे के समागम से भव सागर में और डूब जाते हैं। इस लिये हमें सत्पुरुष को भली भांति पहचान कर उनका सत्संग करना चाहिए। अविवेकी व्यक्ति घर घर भीख माँगता रहेगा फिर भी उसको भीख तक न मिलेगी पर जो विवेकी लोक-मंगल के उद्देश्य से विचरण करता होगा, उसे संसार में कहीं कभी किसी बात की कमी महसूस नहीं हो सकती।

समय की बलिहारी है। आज नीच लोग गुरु बने बैठे है, जिसके फल स्वरूप आचार-धर्म का लोप हो गया है। ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने का अधिकार सच्चे ब्रह्मणों को ही है। चारों वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं, ऐसा शास्त्रों का कथन है पर आज ब्रांह्मणों की क्या दशा है? ब्राह्मण बुद्धि भ्रष्ट और आचार भ्रष्ट हो गये हैं। अपने गुरुपद की श्रेंणी छोड़ आज वे जिनके गुरु बनना चाहिये, उन्हीं के शिष्य बने हुए हैं। आज सर्वत्र निम्न श्रेणी के लोगों के पास गुरुपद जाने से उनका उत्कर्ष हो रहा है और शूद्रों ने ब्राह्मणों को अपनी अधोगति का भान नही है। आज ब्राह्मणों का प्रपंच और परमार्थ कहीं भी महत्व नहीं रहा है। ब्राह्मणों को अन्य जातियों ने अपने पराक्रम से सत्व शून्य बना दिया है। जिस विष्णु भगवन ने ब्राह्मण के सत्ता प्रहार को श्री वत्स के रूप में सम्मानित किया था, उसी विष्णु ने परशुराम अवतार में ब्राह्मणों को शाप दिया था, जिसका फल आज ब्राह्मण भोग रहे हैं।

रहे हैं। अस्तु जो कुछ अनाचार और भ्रष्टाचार हमारे पूर्वज कर गये हैं, उनका पश्चाताप पूर्वक प्रायश्चित लेकर हमें पुनः अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए लोक मंगल के कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये तभी हम अपने पूर्व वैभव को पुनः प्राप्त कर सकेंगे।

आठवां समास

ध्यान साधना

वक्ता कहते हैं—पिछले समास में ब्राह्मणों की अधोगति का वर्णन कर चुके हैं। अतः अब यदि हमें पुनः प्रतिष्ठित होना है, तो पूर्व परिस्थिति से सबक लेना चाहिये। ब्राह्मणों को पवित्र हाथों से देव पूजन करना चाहिए, जिससे उनका पुनः भाग्योदय हो। मूर्ख, अज्ञानी पाखण्डी एवं अव्यवस्थित व्यक्ति ही दारिद्रय का दुःख भोगा करते हैं। प्रभु को अन्तःकरण से पहचान कर उसका एक निष्ठा से भजन पूजन करना चाहिये। वह प्रभु सबसे उत्तम अर्थात सर्वोत्तम है। आत्मा और अनात्मा का विवेक पूर्वक विचार करना चाहिये। सब जानते हुए देह की रक्षा करने वाला द्रष्टा, अन्तर साक्षी, पदार्थ मात्र की परीक्षा करने वाला ही आत्मा है। आत्मा का निवास सब देह धारियों में है। जगदात्मा प्राणिमात्र के अन्तरंग में है, इसलिये सबके अन्तःकरण को राजी रखना चाहिये यही परमात्मा की सच्ची पूजा है। दाता भोक्ता वही एकमात्र परमात्मा है। वही सब में विराजमान है परन्तु देह प्रकृति की भिन्नता के कारण वह भिन्न-भिन्न भासित होता है। देह के आकार अलग अलग हैं पर सबका अन्तरात्मा एक ही है।

सब प्राणी, पशु-पक्षी, कृमि-कीटक, खेचर (आकाश में उड़ने वाले) वनचर (जंगलों में वास करने वाले) भूचर (जमीन पर चलने वाले) और जलचर (जल में रहने वाले) चारों श्रेणी के सभी प्राणि अन्त-

रात्मा के सयोग से ही जीवन चला रहे है। अन्तरात्मा सब सृष्टि के अन्तर में एक ही है। अतः उसे वश कर लेने पर सब प्राणी वश हो जाते हैं। सब प्राणियों को वश करने की युक्ति हमारे पास है। वह है जगदात्मा अर्थात परमात्मा को वश करना। सबको राजी रखने से परमात्मा प्रसन्न होकर अपने वश हो जाता है। दुर्जनों में भी परमात्मा है, अतः उनके दुष्ट स्वभाव को देखकर परमात्मा का तिरस्कार नहीं करना चाहिये। नाना वनस्पतियों के गुण धर्म और रसास्वाद भिन्न भिन्न होने पर भी सब में जीवन तत्व (जल) एक ही है वैसे ही साक्षाभाव से सुष्ट और दुष्टों में एक ही आत्मा का निवास है। अपने अन्तरात्मा से ही जगत के अन्तरात्मा का अनुसंधान करना चाहिए। उसी अन्तरात्मा के बल से मनुष्य में विवेक जागृत होता है। जागृति और स्वप्न के सारे व्यापार उसी के द्वारा सम्पन्न होते हैं। इसी सर्वांतर्यामी परमात्मा का अखण्ड स्मरण और ध्यान करना चाहिये परमात्मा का अनुसंधान करने से सहज ध्यान होने लगता है। उसके लिये फिर कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। प्रयत्न पूर्वक ध्यान करना आत्मा को छोड़कर अनात्मा का ध्यान करना है। सहज ध्यान ही अन्तर्निष्ठा ध्यान हैं।

अज्ञानी लोग स्थूल वस्तु या शरीर का ध्यान कर व्यर्थ परेशान होते हैं। भगवान को देहधारी मानने से नाना विकारों से मन ग्रसित हो जाता है। देह की कल्पना करते ही भोग त्याग और विपत्ति आदि विकल्प मन में बैठकर अनहोनी बातें स्वप्न में दिखाई देने लगती है।

ध्यान में ध्याता और ध्येय की अनन्यता होनी चाहिये। वस्तुतः इन दोनों में अनन्यता स्वतः सिद्ध है पर साधक उसका अनुसंधान नहीं कर पाता है, इसलिये भ्रमित रहता है। ज्ञानी पुरुष उनकी एकता का अनुभव कर समाधान पाते है। सारासार विवेक के बिना मनुष्य मूढ़ ही बना रहता है। प्रत्यय अर्थात अनुभव प्राप्त न कर केवल अहंकार पूर्वक उपदेश देना व्यर्थ है। सारे अभिमान को त्यागकर विवेक पूर्वक

हमें परमात्मा का परिचय प्राप्त करना चाहिये। यही सच्चा अखंड ध्यान और सहज समाधि है।

नवां समास

नित्यानित्य लक्षण

वक्ता कहते हैं—देह के करतब तो आप लोगों ने देख ही लिये और आत्मा-अनात्मा के वारे में सब बातें भी आपको विदित हो चुकीं। इससे ज्ञात हो गया होगा कि पिंड (देह) अनात्मा है और आत्मा ही उन सबका कर्ता है। आत्मा के प्रति अनन्य भाव रखने के लिये कहा गया है, आप लोगों को विवेक द्वारा उस पर भी विश्वास हो गया। होगा। अब पिंड से यह ब्रह्मांड कैसे उत्पन्न हुआ, इसके बारे में समझायेंगे।

पिण्ड कार्य है और ब्रह्मांड उसका कारण। इन दोनों का कैसा समन्वय करना चाहिये, यह आगे बतलायेंगे। असार अर्थात नष्ट होने वाला और शाश्वत अर्थात सदा रहने वाला। जिस वस्तु का कल्पान्त में (प्रलय काल में) नाश हो, वह शाश्वत नहीं हो सकती। पृथ्वी जल से उत्पन्न होती है और पुन: जल में ही विलीन हो जाती है। जल तेज से उत्पन्न होता है और अन्तत: तेज ही उस जल को सोखकर नष्ट कर देता है। तेज की उत्पत्ति वायु तत्व से होती है और वायु से ही तेज का अन्त हो जाता है।

वायु आकाश से उत्पन्न होता है और अन्त में वह भी आकाश में विलीन हो जाता है। वेद शास्त्रों में कल्पान्त का ऐसा ही वर्णन किया गया है। गुण माया और मूल माया का भी परब्रह्म में लय हो जाता है।

जिस निर्गुण परब्रह्म में सब उपाधियों का लय हो जाता है और जिसमें द्रष्टा और दृश्य का कोई विवाद नहीं रहता, वह सबमें सर्वत्र

व्याप्त है । किसी भी कल्पान्त में उसका नाश नहीं होता । अत: माया को त्यागकर उसी परब्रह्म शाश्वत तत्व को पहचानना चाहिए । देह में स्थित अन्तरात्मा सगुण है और उसी सगुण में निर्गुण भी मिला रहता है । उसी निर्गुण परमात्मा के ज्ञान से ही विज्ञान अर्थात अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त होता है । उस कल्पना से परे निर्मल परमात्मा में माया का मैल नहीं है । सारे दृश्य माया से ही होते हैं, जो मिथ्या हैं । इस माया ग्रसित सृष्टि में जो कुछ दीखता है या उत्पन्न होता है, वह सब अन्त में नष्ट हो जाता है । अत: जिसका कभी नाश नहीं होता, उस शाश्वत परब्रह्म परमात्मा को पहचानना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है ।

ज्ञान, अज्ञान और विपरीत ज्ञान इन तीनों को पार कर विज्ञान में प्रवेश करना चाहिए । वेदान्त, सिद्धान्त और अनुभव के द्वारा यह अनुभव होना चाहिये कि निर्विकार परब्रह्म सर्वत्र प्राप्त और प्रकाशित है । उस परब्रह्म को ज्ञान दृष्टि से अवलोकन कर उसमें अनन्य भाव से लीन हो लाना चाहिए । इसी का नाम आत्म-निवेदन है ।

दृश्य आंखों से दिखाई देता है और उसका आभास मनको होता है पर वह अविनाशी परब्रह्म दृष्टि और आभास दोनों से परे है । यद्यपि देखने से वह अति दूर दिखाई देता है, पर सबके अन्दर बाहर वही है । उसका कोई अंत नहीं है । चंचल (माया) कभी स्थिर नहीं होती और निश्चल (परब्रह्म) कभी चलायमान नहीं होता । चंचल बादल आते जाते रहते हैं पर निश्चल आकाश ज्यों का त्यों बना रहता है ।

जिसके अन्त:करण में भ्रम हो और जो माया जाल में फंसा हो, वह इस विशाल संसार-चक्र का रहस्य कैसे समझ सकता है ? उसे न व्यवहार और सिद्धान्त का ही ज्ञान रहता है और न अन्त.करण में स्थित अंतरात्मा का ही उसे पता रहता है ।

यदि रोगी को वैद्य पर विश्वास न हो और वह उसका उपचार

भी न छोड़ता हो, तो समझना चाहिए कि रोगी का अन्त निश्चित है। जो व्यक्ति सच्चे राजा को पहचानता है, वह अन्य व्यक्तियों को राजा नहीं मानता। वैसे ही जो परमात्मा को पहचान लेता है, वह सबका संग छोड़ कर स्वयं परमात्म-स्वरूप हो जाता है।

विवेक पूर्वक विचार करने से सब बातें समझ में आ जाती हैं। संदेह, संकोच और भय माया में ही रहता है और माया के परे परमात्मा में भय का स्थान नहीं है। मिथ्या वस्तु और प्राणी का भय करना और भ्रम के कारण विपरीत व्यवहार करना विवेक का लक्षण नहीं है। अतः सब मिथ्या और अनिष्ट वस्तुओं का त्याग कर सत्य वस्तु का अनुसंधान करना चाहिए। माया का त्याग करने से ही परब्रह्म परमात्मा की पहचान हो सकती है। अगले समास में उसी माया के लक्षणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। श्रोतागण उसे सावधान होकर सुनें और उस पर विचार करें।

दसवां समास

माया के लक्षण

वक्ता कहते हैं—माया यद्यपि दिखाई देती हैं, पर वह नश्वर है और परब्रह्म अदृश्य रहने पर भी अविनाशी है। माया सत्य प्रतीत होती है पर वह सर्वथा मिथ्या है। जैसे कोई भिखारी कल्पना से अनेक महल बनाया करता है पर उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता, वैसे ही माया कल्पना रूप है। स्वप्न में उत्तम स्त्री और अमित धन प्राप्त हो जाता है और अनेक प्रकार के भोग विलास का अनुभव होता है पर जागने पर वह सब काल्पनिक और मिथ्या अनुभव होता है। उसी भांति स्वरूप जागृति होते ही सारी दृश्य सृष्टि मिथ्या भासित होने लगती है। बहुरूपियों का वैभव सच्चा दिखाई देने पर भी वस्तुतः झूठा होता

है। ठीक यही बात माया के सम्बन्ध में भी है। जैसे बहुरूपिया श्री राम का वेष बनाकर घर घर घूमता है और सब के सामने हाथ पसार कर भीख मांगता है, वैसे ही माया भी मनुष्य को भटकाती है।

जहाँ छाया और अन्धकार दोनों हों, वहाँ उनका स्वतंत्र रूप से विचार करना व्यर्थ है। इसी प्रकार माया का विचार भी है। कभी कभी सूर्य-किरणों के प्रकाश से कान, अंगुलियाँ, हथेली आदि शरीर के विभिन्न अवयव बड़े सुन्दर और चमकीले दिखाई देते हैं। यही बात माया के सम्बन्ध में भी है। कभी कभी गेरुए रंग के वस्त्रों को देखकर अग्नि का भास होने लगता है पर विचार करने पर उसकी यथार्थता प्रकट हो जाती है। ऐसी ही माया है। मनुष्य को चक्कर आने पर उसे पृथ्वी घूमती हुई प्रतीत होती हैं। पीलिया रोग से ग्रसित व्यक्ति को सब वस्तुयें पीली दिखाई देती हैं और सन्निपात के रोगी को पृथ्वी का क्रमशः विनाश दिखाई देता है। माया का भी यही हाल है। यदा-कदा कोई पदार्थ व्यर्थ ही विकार की भाँति प्रतीत होता है या उसका वैसा आभास होने लगता है पर वास्तव में वह कुछ और ही होता है। ऐसी ही बात माया की है।

●●
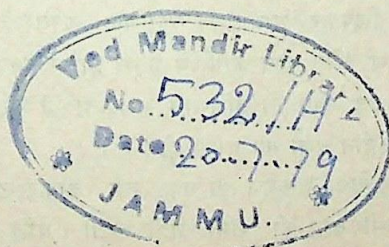
पन्द्रहवां दशक

पहला समास

चातुर्य लक्षण

वक्ता कहते हैं—अस्थि माँस युक्त शरीर में जीव का निवास रहता है और वह अनेक मनो विकारों से ग्रसित होता है। उसे गाढ़े और पतले, स्थूल और सूक्ष्म पदार्थो का ज्ञान रहता है। क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिये, यह भी वह जानता है। किसी को भीख माँगने पर कोई चीज मिलती है और किसी को न माँगने पर भी लोग उसको बुलाकर देते हैं। अतः सत्पुरुष के लक्षण अनुभव से जानना चाहिए। दूसरों के साथ एकरूप होकर आत्मीयता पूर्वक उनके मनोभावों को समझना चाहिए। आप पर भाव से सन्देह बढ़ते हैं, जिससे आगे चलकर कार्य की हानि होती है। विवेकशील पुरुष ऐसा सन्देह नहीं होने देते और सबको अपना आत्मीय मानकर ही सबके साथ प्रेम मय आत्मीयता का व्यवहार कर उन्हें अपने वश में कर लेते हैं।

श्रेष्ठ कर्म से ही मनुष्य श्रेष्ठ होता है और कनिष्ठ कर्म करने वाला कनिष्ठ (नीच) कहलाता है। राजा हमेशा राजमार्ग से विचरता है, जब कि चोर लुक छिपकर भागने की कोशिश करता है। अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए मूर्ख लोग नीच कार्य में प्रवृत्त होकर स्वयं अपना ही नुकसान करते हैं। वह अपने को बुद्धिमान समझता है पर अन्त में स्वयं ही धोखा खाकर हीन दशा को प्राप्त होते हैं।

जो जनता जर्नादन के अंतःकरण से एक रूप होकर उसमें घुल मिल जाता है, उसे किसी बात की कमी नहीं रहती। बुद्धि के द्वारा ही मनुष्य जागृत रहकर स्वाभिमान पूर्वक संसार के सब काम सबके सहयोग से सफलता पूर्वक सम्पन्न करता है।

बुद्धि मान और विवेकी पुरुष को अपने व्यवहार से दूसरे की बुद्धि को भी प्रकाशित करते रहना चाहिए। नीति न्याय का पुरस्कार करते हुए पाखण्ड को समाज में फैलने से रोकना चाहिए। सरल व्यवहार और उदार विचार हमारी नीति हो। हमें निस्पृह अर्थात निरपेक्ष वृत्ति से रहकर सबका विश्वास सम्पादन करना चाहिए। निस्पृह व्यक्ति को सर्वत्र सदा घूमते रहना चाहिए। एक ही जगह बैठे रहने से उसका लोक-मंगल का व्यापक उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इसलिए उसे सदा भ्रमण करते हुए जन-सम्पर्क द्वारा जनता में सद् विचारों का प्रचार करते रहना चाहिए।

दूसरा समास

निस्पृह न्याय निरूपण

वक्ता कहते हैं—संसार में अनेक प्रकार के छोटे बड़े मनुष्य हैं, जो हर घड़ी अपने मनोविकार बदलते रहते हैं। जितने मनुष्य हैं, प्रकृतियां हैं। सबकी अलग अलग प्रकृति-स्वभाव होते हैं।

प्रकृति और स्वभाव भेद के कारण अनेक लोग धर्म त्यागकर म्लेच्छ (मुसलमान) हो गये और बहुत से फिरंगी (ईसाई) बन गये इस प्रकार महाराष्ट्र के मूल मराठा लोग बहुत कम बचे हुए हैं और जो बचे हैं, वे उनमें से बहुतेरे राजनीति में फंसे हुए हैं। ऐसे लोग अपने कार्यों में इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें भोजन करने तक की फुरसत नहीं मिल पाती। कई लोग लड़ाई-झगड़ों में ही उन्मत्त हो रहे हैं.। वे दिन रात लड़ने की ही चर्चा किया करने है। व्यापारी अपने व्यवसाय-धन्धे में इतने फंसे रहते हैं कि उन्हें अन्य बातों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिलता। देश में विभिन्न प्रकार के मत-मतान्तर. दर्शन और धर्म के नाम पर पाखण्ड का बोलबाला है और इन्हीं के सर्वत्र जोरों से प्रचार हो रहा है। बचे खुचे लोगों का स्मति

(शैव) और वैष्णवों ने आपस में बंटबारा कर लिया है। इस भाँति समाज में धाँधली फैली हुई है। अनेक लोग कामनाओं के वशीभूत होकर आसक्त जीवन विता रहे हैं। न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का किसी कों ध्यान नहीं है। वैदिक लोग अपने हरिभजन में ही मस्त हैं। वे भी प्रत्ययात्मक अनुभव जन्य ब्रह्मज्ञान से कोसों दूर हैं।

ऐसी परिस्थिति में ज्ञान वहुत दुर्लभ हो गया है। बड़े भाग्य से किसी को यह अलभ्य लाभ मिल पाता है। विचारशील व्यक्तियों के लिए सभी कार्य सुलभ होते हैं। विवेक शील चतुर पुरुष सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं को पाकर अपने कार्य में सफल हो जाते है। ऐसे चतुर पुरुष का सभी सम्मान करते हैं। वह अच्छे सदुपदेश देकर लोगों को सन्मार्ग में प्रेरित करता है। वह अपने अनुभव जन्य ज्ञान द्वारा सभी मत-मताँतरों के पाखण्डों को दूर कर लोगों को अपने वश कर लेता है। वह समयानुसार लोगों को नीति का उपदेश कर अपने निस्पृह और उदासीन स्वभाव के कारण शीघ्र ही एक जगह से उठकर दूसरी जगह चल देता है। उसकी अनुभव सिद्ध बातों से प्रभावित होकर लोग पुनः उसके सत्संग की उत्कंठा से बाट जोहते हैं और अन्य सभी मार्ग छोड़कर उसकी शरण में जाना चाहते हैं पर वह पुनः मिलता ही नहीं। ऐसे निरपेक्ष पुरुष का वेष बिलकुल दीन हीन के समान होता है। भिखारी वेष में रहने हुये भी वह गुप्त रूप से अनेक बड़ें-बड़ें लोकोपकारी कार्य करता है। इस प्रकार न चाहते हुए भी उसका यश और प्रताप चारों ओर फैल जाता है और वहीं से लोक कल्याण की चिंता किया करता है वही एकान्त गुफा में बैठा हुआ राजनीति को प्रभावित करता है। उसके असंख्य अनुयायी जगह जगह संगठित रूप से परमार्थ का प्रचार करते हैं। उसके मार्ग दर्शन से प्राणिमात्र का उद्धार हो जाता है जो इस प्रकार लोक-कल्याण के महान कार्य में प्रवृत्त रहता है, उसी का इस संसार में जन्म लेना सार्थक है।

तीसरा समास

विकसित अन्तरात्मा

वक्ता कहते हैं— मूल माया से लेकर पंचभूतात्मक यह जो संसार का विस्तार दिखाई देता है, उसमें अन्तरात्मा सूत्र रूप से सर्वत्र विद्यमान है। जैसे दोनों ओर सेनायें खड़ी हों और बीच में राजसिंहासन पर राजा बैठा हो। सब देह हाड़ मांस के बने हुए है। राजा का देह भी उसी भांति का है। राजा की सत्ता से सेना का नियन्त्रण होता है, वैसे ही अन्तरात्मा की शक्ति से सृष्टि का नियन्त्रण होता है। विवेक ज्ञान से जो महान हो गये उन्हें लोग अवतार मानने लगते हैं और जिनमें ज्ञान नहीं होता वे अभागी बने रहते हैं; महान पुरुष साहस पूर्वक संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं, इसीलिए वे भाग्यशाली होते हैं।

महानता का लक्षण यह है कि उसमें अच्छे गुण होने चाहिए। ऐसे सद्‌गुणी व्यक्ति का सदा आदर करना चाहिए। संसार में बुद्धिमान और सद्‌गुण सम्पन्न व्यक्ति का ही सम्मान होता है और मूर्ख एवं अज्ञानी मनुष्य को सब जगह अपमानित होना पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति धनवान बनना चाहता हो तो उसे भी बुद्धिमान होना चाहिए। इस प्रकार बुद्धि और चतुरता प्राप्त करने के लिए हमें चाहे जितने कष्ट क्यों न उठाने पड़ें, उसके लिए हमें तत्पर रहना चाहिए। जिसे बहुत से लोग प्रतिष्ठा देते हों, उसे ही चतुर कहा जायेगा। ऐसे चतुर व्यक्ति के लिए संसार में कोई चीज दुर्लभ नहीं होती। इस संसार में आकर जो अपना कल्याण नहीं करता, वह आत्म-घातकी ही कहलायेगा। ऐसे मूर्ख के समान कोई पापी नहीं, बुद्धिमान एवं चतुर व्यक्ति अपना जीवन इस प्रकार के कष्ट में नहीं

बिताता और न वह लोगों को अप्रिय ही होता है। साधकों को अपना जीवन किस प्रकार आदर्श रूप से बिताना चाहिए, यह सहज स्वभाव और स्वानुभव के आधार पर हमने यहाँ बतलाया है। यदि उन्हें हमारी बातें उचित प्रतीत हों तो ग्रहण करें अन्यथा छोड़ दें। आप श्रोतागण परम दक्ष हैं। सत्या सत्य का विवेक आप भली भांति जानते हैं। अतः अधिक कहना व्यर्थ है।

चौथा समास

शाश्वत ब्रह्म

वक्ता कहते हैं—पृथ्वी से पेड़ पैदा होते हैं और बाद में पेड़ों की लकड़ियां जलकर पुनः उनकी राख हो जाती है अर्थात पेड़ पुनः पृथ्वी हो जाते हैं। पृथ्वी से तेड़ में डालियाँ, पत्तें, फूल आदि पैदा होते हैं और वे पुनः सूख कर पृथ्वीं में ही मिल जाते हैं। नाना भाँति के अन्न मनुष्य खाते हैं और पश्चात मल के रूप में उन्हें पृथ्वी को ही वापिस कर देते हैं। यही हाल पशुपक्षियों के आहार का भी हैं। मनुष्य के मरने पर उनके शव भी कृमि, भस्म या मिट्टी के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। चारों श्रेंणी के अनन्त प्राणियों के देह भी इसी प्रकार पृथ्वी तत्व में पुनः लौट जाते हैं। घास लता आदि सड़कर. कीड़े आदि मर कर सब पृथ्वी में ही समा जाते हैं। पृथ्वी बिना इन सबको अन्य कोई आश्रय नहीं है। पेड़-पौधे, घास-फूस, गोबर खाद, मलमूत्र, भस्म आदि सब पृथ्वी तत्व में मिल जाते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और संहार से सम्बन्धित सभी प्राणी और पदार्थ जिनका आवागमन और अस्तित्व दिखाई देता है, सभी पृथ्वी के ही पेट में समा जाते हैं।

लाखों वृक्ष आदि में बीज अंकुरित होते हैं और बीजों से गगन चुम्बी वृक्ष बढ़कर पुनः पृथ्वी में लुप्त हो जाते हैं। अनेक प्रकार के

धातु, सुवर्ण, पाषाण आदि अंततः पृथ्वी के ही अंग हैं। मिट्टी से ही सुवर्ण, पाषाण आदि उत्पन्न होते हैं और फिर प्रखर अग्नि के ताप से पिघल कर या भस्म होकर पृथ्वी में ही मिल जाते हैं। सोने की जरी बनकर वह सड़ जाती है। पृथ्वी से निकलने वाली अनेक धातुओं का अग्नि के संसर्ग से रस होकर वे पुनः ठोस रूप धारण करते हैं और पुनः पृथ्वी में मिल जाते हैं। जलों का गन्ध भी पृथ्वी का ही रूप है। जल सूखकर पृथ्वी बन जाता है। प्राणी पत्र पुष्प फल आदि का आहार करते हैं और मरने पर पृथ्वी रूप ही हो जाते हैं। जो जो आकार दिखाई देता है, प्राणियों का जो आस्तित्व विनाश होता है, सब पृथ्वी का ही परिवर्तित रूप रहता है। उत्पत्ति और संहार इन सब का बीज पृथ्वी में ही है।

पानी जलकर या सूखकर पृथ्वी रूप धारण करता है और पृथ्वी पुनः जल में विलीन हो जाती है। जल तेज से पैदा होता है और अंत में तेज ही जल का शोषण कर लेता है। तेज वायु से प्रकट होता है और अंततः वायु ही उसे अपने में समा लेता है। वायु आकाश से निर्मित होता है और आकाश में ही सिमट जाता है। इसी को उत्पत्ति और संहार की प्रक्रिया कहते हैं। जो जो जहां उत्पन्न होता है, वह वहीं समाप्त हो जाता है। इस प्रकार पंच महाभूतों का नाश हो जाता है। भूत का अर्थ ही उत्पन्न होना है और जहाँ उत्पत्ति है, वहाँ विनाश निश्चित है। उत्पत्ति-नाश विरहित शाश्वत तत्व केवल परब्रह्म ही है। उस परम तत्व की जब तक पहचान नहीं हो पातीं है तब तक जन्म-मृत्यु का फेरा नहीं चूक सकता है। सभी प्राणियों का जन्म-मृत्यु अटल है। जड़ का मूल चंचल अर्थात भौतिक पदार्थों का मूल अन्तरात्मा और चंचल का मूल निश्चल पर ब्रह्म परमात्मा का कोइ मूल नहीं है। वह अनादि और अनन्त है। संसार सत्य है यह पूर्वपक्ष और वह मिथ्या है, यह सिद्धान्त तथा इन दोनों के परे परब्रह्म है, इसे

अनुभव से जानना चाहिए यह सब विवेक से ही हो सकता हैं । विवेक-विचार छोड़कर व्यर्थ का उहापोह मूर्खता है जड़-चंचल के अर्थात माया के प्रभाव में जो दबा रहेगा वह ज्ञानी होने पर भी निश्चल पर-ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता । वह चाहे माया की बातें खूब बढ़ा चढ़ाकर ही क्यों न करता । माया के निःशेष होने पर क्या अवस्था होती है, इसका ज्ञानी पुरुष को 'भलीं भाँति विचार करना चाहिए । माया का विस्तार होते ही सच्चा आत्म निवेदन होता हैं । वहाँ फिर वाणी का प्रयोजन नहीं रहता । अतः उस ब्रह्म लीन स्थिति का स्व-स्वरूप स्थिति का वर्णन कैसे किया जाय ? जो जन मानस के प्रवाह में बह गया वह अंततः अनुमान और संदेह के भंवर में डूब जायेगा । अतएव विवेक पूर्वक स्वानुभव के आधार पर ही हमें सत्य वस्तु पर-ब्रह्म परमात्मा का अनुसंधान और अवलोकन करना चाहिए । यही जीवन की सार्थकता है ।

पांचवां समास

चंचल वृत्ति निरुपण

प्रकृति और पुरुष-जड़ और चेतन-इन दोनों के अनुसार तीनों गुणों का निवास होता है । निर्गुण से अष्टधा प्रकृति उत्पन्न होती है, जो उच्च और निम्न दोनों स्थानों को छोड़कर अन्तरीक्ष में रहा करती है । परदादा (अग्नि) अपने परपोते (देह) को भक्षण करता हैं और पुत्र (भूततत्व) अपने ही पिता को (उस तत्व को जिससे वह उत्पन्न हुआ है) खा लेता है और चारों तत्वों का अधिपति आकाश अदृश्य रहता है । देवता (अंतरात्मा) देवालय (देह) में बैठा हुआ है । अतः देह रूपी देवालय की पूजा उस देवता को ही प्राप्त हो जाती है, जो देवालय में प्रतिष्ठित है । यही बात प्रत्येक प्राणी के लिए लागू है । लोगों ने

प्रकृति और पुरुष को अलग अलग कल्पना कर ली है पर वस्तुत: वे दोनों एक ही है। वह परमात्मा न पुरुष है और न स्त्री। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो कुछ भी नहीं है। जैसे लोग नदी को स्त्री और नाले को पुरुष वाचक मानते हैं पर दोनों में कोई भेद नहीं हैं। दोनों में एक ही जल तत्व है।

हम स्वयं अपने बारे में भी कुछ नहीं जानते। वह ब्रह्म ही एक से अनेक और अनेकों भी एक हैं। लेकिन वह माया के प्रपंच को जरा भी सहन नहीं कर सकता। वह चैतन्य शक्ति एकमात्र होने पर भी सबमें सर्वत्र व्याप्त है। वनस्पति में जल अदृश्य रूप से विद्यमान रहता है। बिना जल की शीतलता के वनस्पति जीवित नहीं रह सकती। यद्यपि बड़े बड़े वृक्ष बढ़कर खूब ऊंचे हो जाते हैं और पृथ्वी से अलग दिखाई देते हैं पर उनका जीवन जल ही है जल के प्रभाव से ही वे हरे भरे रहकर बढ़ते रहते है। उस जल रूपी अन्तरात्मा के बल से ही वृक्ष जीते हैं और उसके न रहने पर सूखकर लकड़ी मात्र हो जाते हैं। एक वृक्ष पर दूसरा वृक्ष भी बढ़ने लगता है, जिसकी जड़ें पृथ्वी में नहीं होतीं। वह पहले वृक्ष से ही पोषण पाता है।

अत: हमें समझ लेना चाहिए कि सबमें अन्तरात्मा का वास है, वह चाहे जिस रूप में हो। अब हमें यह अनुभव करना चाहिए कि इस सबका आखिर उत्पन्न करने वाला कौन है? यह ज्ञान होते ही मनुष्य अपने सत स्वरूप को पहचान लेता है अंतर्निष्ट महापुरुषों का पद बहुत ऊंचा है और बहिर्मुखों का, अर्थात जो केवल बाहरी चीजों का ही विचार करते हैं और अन्तरात्मा का अनुभव नहीं कर पाते, संग भी त्याज्य है। मूर्ख व्यक्तियों को इन सब बातों का ज्ञान कहाँ? चतुर ही इसका रहस्य जान सकते हैं।

उस परब्रह्म परमात्मा से अनन्यता होने पर ही उस निरंजन के दर्शन होते हैं और मायारूपी चंचल चक्र को वेध कर मनुष्य उस

परम प्रभु के पास पहुंच सकता है। एकबार उस परब्रह्म की झलक हो जाने पर फिर वह सदा-सर्वदा सर्वत्र भरा हुआ दिखाई देने लगता है। पर वह इन चर्म-चक्षुओं से दृष्टि गोचर नहीं हो सकता उसके लिए ज्ञान की दिव्य-दृष्टि चाहिये। चंचल माया ही सब शरीरों में हलचल पैदा करती है अर्थात वह पर ब्रह्म सभी स्थान और परिवेश में सदा सन्निहित रहता है। पर वह चंचल निश्चल तत्व का अनुमान नहीं कर सकता। जैसे आकाश में फेंका हुआ आकाश बाण आकाश को पार नहीं कर सकता वैसे ही यह एक देशीय तत्व उस सर्व देशीय ब्रह्म को कैसे आकलन नहीं कर सकता। एक देशीय मनोधर्म वाला मनुष्य भी उस निर्गुण को भूलकर अन्तरात्मा को ही पर ब्रह्म मान लेता है। असार को छोड़कर सारभूत निर्गुण ब्रह्म को न पहचान सके तो अन्धकार में ही रहेगे। अतः असत्य का त्याग कर सत्य को ग्रहण करना यही सूज्ञ पुरुषों का धर्म है। ब्रह्मांड के उपादान महाकारण मूल माया से ही पंच भूतों की उत्पत्ति हुई है, यद्यपि महावाक्य का विचार इससे बिलकुल विपरीत है। महत् तत्व ही महत् भूत कहलाता है और उसी को परब्रह्म समझना चाहिए। उस परम पद पर पहुंचने पर उपासना, भक्ति, साधन आदि सब कर्मकाण्ड समाप्त हो जाते हैं। कर्म उपासना और ज्ञान की त्रिगुणात्मक उपासना का वर्णन वेदों में है और इसीलिए उसे सब लोग मान्य करते हुए तदनुसार आचरण करते हैं पर परब्रह्म में पहुंचने पर ज्ञान-विज्ञान भक्ति उपासना, मनन-चिंतन, साधन-साध्य आदि सभी द्वैत का अन्त हो जाता है और एक सत्स्वरूप परब्रह्म ही शेष रह जाता है।

छठवां समास

चातुर्य लक्षण

पीले रङ्ग से (पीली जुंआर से) काली स्याही तैयार हुई और उससे अनेक वेदशास्त्र पुराण आदि ग्रन्थ लिखे गये। इन महान ग्रन्थों के विना मनुष्य को ज्ञान प्राप्त न हो पाता स्याही जैसी साधारण वस्तु ने ब्रह्माण्ड के सारे ज्ञान को संग्रहित किया है। ग्रन्थों में राम कृष्ण आदि अवतारी पुरुषों के सद्‌गुणों एवम् रावस कंस आदि दुरात्माओं के अधम गुणों का यथास्थित वर्णन किया है। महीसुत अर्थात पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न कलम द्वारा लेखन किया सम्पन्न की गयी। श्वेत कागज अश्वेत कलम और कृष्ण अर्थात काली स्याही के संयोग से लेखन, वाचन, अर्थ बोध आदि का लाभ मिला। जो सद्‌ग्रन्थों का स्वाध्याय करेगा वह मूर्ख भी ज्ञानी बन जायगा और स्वाध्याय के मनन चिन्तन से वह परमार्थ का अधिकारी बनकर मानव जन्म को कृतार्थ करेगा।

ज्ञान के द्वारा मनुष्य अपना भाग्य बदल सकता है। हम संसार में सबकी बातें सुनें पर उनमें सत्यासत्य का विचार कर जो ग्राह्य हो उसे ही आचरण में लावें, तात्पर्य सबकी सुनें पर मन की करें। हम सद्‌विचारों द्वारा न केवल अपना ही परमार्थ साध्य करें अपितु जन्म अज्ञानी लोगों को भी सन्मार्ग पर लाने का भरसक प्रयत्न करें, इसी में हमारे जन्म की सार्थकता है।

प्रथम हमें लोगों की भली बुरी बातें शान्ति से सुन लेना चाहिये और पश्चात उन्हें अपने विचारों से प्रभावित कर अपने वश में करना चाहिए। इस प्रकार उनको परमार्थ का मार्ग दिखाकर उनका कल्याण करना चाहिये। वितंडावाद करना व्यर्थ है। वितंडावाद से द्वेष और कलह बढ़ता है। इसलिए दूसरों के आक्षेप, विरोध, अपशब्द आदि सहन करते रहना चाहिये। ऐसा करने से आगे चलकर विरोधियों को पश्चा-

ताप होकर वे स्वयं अपने विचारों से सहमत हो जाते हैं। अवसर देखकर लोगों को उपदेश करना चाहिये पर अपने ज्ञान का कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। सबसे सब जगह नम्रतापूर्वक व्यवहार करें। सर्वत्र संचार करते हुए भिक्षा के माध्यम से सबका सम्पर्क साधना चाहिए और जिसमें जो गुण दिखाई दे, उसे निरहङ्कार वृत्ति से ग्रहण करना चाहिए तथा चतुर व्यक्तियों का स्नेह सम्पादन करना चाहिये।

घर में आलसी होकर बैठे रहने से कुछ भी ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता। अतः नित्य देश भ्रमण और सत्सङ्ग करते रहना चाहिये। इस प्रकार भ्रमण करते हुए अनेक सद्ग्रन्थों का परिशीलन एवम् काव्य-भजन आदि का अभ्यास करते हुए जनता को सन्मार्ग का उपदेश करना चाहिये, ताकि सबके चित्त को समाधान प्राप्त हो। जो उत्तम उपदेश या भजन लिखकर देने का अनुरोध करे, उसे लिखकर देना चाहिए। इस कार्य में जरा भी प्रमाद या आलस न करें। यह बड़े परोपकार एवम् पुण्य का कार्य है। जिसे जिस चीज की आवश्यकता हो, उसे अपने पास होने पर तत्काल दे देना चाहिये। इस प्रकार के व्यवहार से सब लोग हमारा आदर सन्मान करेंगे। संसार में जो सर्वमान्य अर्थात लोकमान्य हो गया, उसके भाग्य को कौन नहीं सराहेगा? अनेक लोग ऐसे सत्पुरुष के अनन्य भक्त एवम् अनुयायी हो जाते हैं और ऐसे व्यक्ति का यश संसार में फैलकर वह अमर हो जाता है। चतुर अर्थात ज्ञानी पुरुष के यही लक्षण हैं। जिस पुरुष में इस प्रकार लक्षण होंगे, वे जहाँ भी जायेगा लोग उसे अपनाकर उसकी सारी आवश्यकताओं की स्वेच्छा से पूर्ति करेंगे। ऐसे द्विविजयी को संसार में कहीं भी किसी बात की कमी नहीं हो सकती।

सातवाँ समास

अधो-उर्ध्व निरूपण

वक्ता कहते हैं—नाना विकारों का मूल अर्थात आदि विकार मूल माया ही है। माया ही निश्चल परब्रह्म में अतिसूक्ष्म रूप से चंचल हुई। वह केवल अनुभूतिरूप मूल ब्रह्म का वायुरूप मूल सङ्कल्प मात्र है। इसी मूलमाया को षड्‌गुणेश्वर, प्रकृति-पुरुष, शिव-शक्ति, अर्धनारी नटेश्वर, जगज्ज्योति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। सङ्कल्पों का स्फुरण ही मूलमाया है। वह वायुरूप होते हुए त्रिगुण एवम् पंचभूतात्मक अष्टधा प्रकृति अति सूक्ष्म रूप से उसमें सन्निहित है। किसी पेड़ की जड़ें बहुत गहरी भूमि में गड़ी रहती हैं। उन्हीं जड़ों से पत्र, पुष्प फल आदि का विस्तार होता है अर्थात ये सब चीजें उनमें विद्यमान रहती हैं। इसी प्रकार अनेक रङ्ग, आकार, विकार, स्वाद सुगन्ध आदि सब उसी जड़ में बीज रूप से छिपे रहते हैं। बीज को फोड़कर देखने से उसमें कुछ भी दिखाई नहीं देगा पर वही बीज बोये जाने पर पल्लवित होकर पत्र पुष्प और फलों से लदा हुआ वृक्ष बन जाता है। यही प्रकार मूल माया का भी है। तीन गुण और पंचभूतों का उसमें सूक्ष्मरूप से समावेश है। पर यह सब विवेक से ही जाना जा सकता है। जड़ मूल में बीज, बीज में जलरूप से बीज और अन्त में फलरूप से बीज, इस प्रकार बीज का ही सब विस्तार है। बीज से उत्पन्न सृष्टि अर्थात पत्र पुष्प फल आदि के विस्तार से मूल की वस्तुस्थिति का पता चल जाता है। जो जहाँ से उत्पन्न होता है, फिर वहीं वह समाप्त हो जाता है। इसी भाँति मूल माया से उत्पन्न पिंड-ब्रह्माण्डात्मक नाना जीवों की सृष्टि उसी मूलमाया में अन्ततः विलीन हो जाती है। इसी प्रकार जन्म-मरण का चक्र चला करता है। जो आत्मज्ञानी होता है, उसे इस भव बन्धन का और जन्म-मृत्यु का भोग नहीं भोगना पड़ता।

यह सब आत्म-ज्ञान से ही होता है पर आत्मज्ञान इतना सुलभ नहीं है।

अन्तरात्मा के आधार से ही संसार के सारे कार्य चलते हैं। उसी के बल पर सब प्रकार के विषय भोग भोगे जाते हैं। पर हमें स्थूल कार्यों एवम् वस्तुओं से दृष्टि फेरकर सूक्ष्म की ओर लगानी चाहिये। अन्तरात्मा जगत का और अपना एक ही है। शरीर भेद से वह भिन्न-भिन्न दिखाई देता है। आत्म-ज्ञान द्वारा ही इस बात की प्रतीति हो सकती है।

कभी-कभी अपनी रखी हुई वस्तु ही हमें विस्मरण के कारण नहीं मिलती। यह सब का अनुभव है। अपनी बात का ही अपने को स्मरण नहीं रहता। हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार-तरङ्ग उठा करते हैं, जिनका भी हमें ध्यान नहीं रहता। चंचल माया का ही यह सब खेल है। स्मरण और विस्मरण सबको होता है। जिनको नित्य स्मरण रहता है, वे ही देवता हैं और जिनको विस्मरण हो जाता है, उन्हें दानव कहा जाता है। कुछ स्मरण और कुछ विस्मरण वाले मानव-प्राणी है।

इसी भांति देवी और आसुरी दो प्रकार की सम्पत्ति हैं। विवेक द्वारा ही इनका विचार किया जा सकता है। जैसे दर्पण में आँख से ही आँख देखी जाती है, वैसे ही विवेक से विवेक और आत्मा से ही आत्मा का परिचय होता है। स्मरण का विस्मरण होने से ही सृष्टि में भेद दिखाई देते हैं। जीव एक देशीय होने से व्यापक नहीं हो सकता और उसकी बिना आत्म ज्ञान के सर्वत्र पहुँच नहीं हो सकती। विस्मरण उसका स्वभाव है। तुरीयावस्था स्मरण रूप और सुषुप्ति विस्मरण रूप है और जीव में दोनों हैं।

आठवां समास

सूक्ष्म-जीव-लक्षण

वक्ता कहते हैं—संसार में असंख्य कृमि-कीटक-जन्तु आदि हैं, जिनमें कुछ रेणु से भी सूक्ष्म होते हैं और उनकी आयु, युक्ति एवम् बुद्धि भी अति अल्प होती है। ये जन्तु सामान्य आँखों से दिखाई भी नहीं देते पर उनमें भी अन्तःकरण पंचक (अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) का अस्तित्व है। उनका ज्ञान, विषय, इन्द्रिय आदि उनके अनुपात में ही छोटे होते हैं। इसी भाँति पक्षी, सर्प, मछली आदि जीव हैं और इनसे बड़े हाथी, बाघ आदि बड़े प्राणी हैं। इस प्रकार अनेक रङ्गों के, अनेक आकार के कुछ सुन्दर, कुछ कुरूप, कुछ कोमल, कुछ कठोर ऐसे असंख्य जीव जगदीश्वर ने निर्माण किये हैं। शरीर, आहार, वाणी, गुण आदि के अनेक भेद होने पर भी सबमें एक ही अभिन्न अन्तरात्मा का वास है। इन सब नाना प्रकार के चित्र विचित्र जीवों को देख कर परमात्मा की करनी पर बड़ा आश्चर्य और कौतुक होता है। पशु-पक्षी कीटक आदि असंख्य प्राणियों का पता कौन लगा पाता है? प्रत्येक प्राणी को अपना ही थोड़ा बहुत ज्ञान रहता है। यह नवखण्ड पृथ्वी और उसके चारों ओर फैला हुआ सप्त सागर का विशाल घेरा इन्हें कौन जानता है? उन समुद्रों में असंख्य जीव रहते हैं। उनका किसे पता है? जहाँ जल है, वहाँ जीवन है। पृथ्वी के गर्भ में भी जल भरा हुआ है। उसमें भी असंख्य जीवों का वास है। कुछ पक्षी पङ्ख फूटने पर आकाश में उड़ जाते हैं। वे पुनः पृथ्वी पर नहीं आते। पृथ्वी पर खेचर, भूचर, वनचर, जलचर आदि ८४ लक्ष योनियों के अनन्त प्राणी हैं उन सबको कौन जानता है? प्रत्येक जीव केवल कल्पना मात्र से उत्पन्न होते हैं। कई तप आदि की सामर्थ्य से होते हैं। अनेक इच्छा मात्र से होते हैं। कई शाप भ्रष्ट पुनः उःश्राप से जी उठे हैं।

प्रत्येक देव मायावी हैं, प्रत्येक देवता अनेक देह धारण करने वाले होते हैं। क्रोध, तप, उश्राप से कई देह उत्पन्न हुए हैं। भगवान की लीला बड़ी विचित्र है। माया के बल से यह सब होता है। यह सृष्ठि रचना भगवान की विचित्र करनी है। मनुष्य जीवन निर्वाह की अल्प-स्वल्प विद्या प्राप्त कर ज्ञाता होने का अभिमान करने लगता है। वास्तव में सब प्राणियों में सर्वात्मभाव से व्यापक अन्तरात्मा ही सच्च ज्ञाता है, पर उसकी महिमा मानवी बुद्धि को कैसे आकलन हो सकती है?

हमारे पिंड (शरीर) में भी असंख्य जीव-जन्तु हैं। उनके बारे में भी हमें ज्ञान नहीं है, फिर सारे ब्रह्माण्ठ के जीवों का ज्ञान हमें कैसे हो सकता है? मनुष्य अति अल्प ज्ञान से भी अहङ्कारी और उच्छृङ्खल बन जाता है। अणु रेणु जैसे सूक्ष्म जीव की तुलना में हम मनुष्य विराट पुरुष ही हैं। उनकी तुलना में हमारी सौ वर्ष की आयु भी कितनी बड़ी है? परमेश्वरी लीला धन्य है। हम उसका कदापि अनुमान नहीं कर सकते। फिर भी दुष्ठ अहङ्कार जीव को व्यर्थ नचाया करता है। अतः अहङ्कार छोड़कर हमें परमात्मा का नित्य गुणानुवाद करना चाहिये। अल्प आयु. क्षण भंगुर देह, किसी का कोई भरोसा नहीं। तब हम किस बात का अहङ्कार करें? यह देह अपवित्र एवम् आधि-व्याधियों से ग्रस्त हैं। लोग व्यर्थ ही उसका अहङ्कार करते हैं। काया-माया सब दो दिन का खेल है। आदि अन्त में सब- फजीहत है। लोग अपने शरीर को वस्त्र अलङ्कारों से खूब सजाया करते हैं पर अन्त समय में उसे नङ्गा ही जाना पड़ता है। मृत्यु कं पश्चात शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। अतः विवेक से जो इन सब बातों का चिन्तन करता है, वही धन्य है। व्यर्थ के झगड़ों में न फँस कर अहङ्कार को छोड़कर हम विवेक से पर-ब्रह्म का अनुसन्धान करें यही सर्वोत्तम है।

नवां समास

पिंडोत्पत्ति निरूपण

वक्ता कहते है—चारों खानियों के असंख्य प्राणी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं पर इन सबका विकास जल तत्व से ही होता है। अन्तरात्मा सहित यह सारा शरीर पंच तत्वों की पोटली है पर उसमें मूलतत्व जल है अन्न रस से देह रस और देह रस से रक्त एवंम् शुक्र धातु बनती है। बाद में शुक्र धातु से ही बालक का कोमल शरीर बनता है। पश्चात कठिन अवयव आदि उसी जल तत्व से आकार ग्रहण करते-करते अन्ततः पूर्ण बालक के रूप में वह प्रकट होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सब जीवों का एक ही क्रम है। जल से ही वृक्ष आदि के बीज अंकुरित होकर जड़े नीचे पाताल में और डालियां पत्र पुष्प अन्तराल में फैलती हैं। इस प्रकार वृक्ष पत्र पुष्प फलों से समृद्ध होते हैं, फल से लेकर जड़ों तक का विचार करें तो फलों के पहले पुष्प, पुष्प के पहले पत्र, पत्र से पहले डाली और डालियों के पहले मूल की उत्पत्ति होती है। मूल का पोषण जल से होता है और जल को पृथ्वी धारण करती है। अर्थात पृथ्वी ही सबका मूलाधार है। अब और पीछे चलें पृथ्वी के पहले जल, जल के पहले अग्नि (तेज) अग्नि से पहले वायु और वायु से पहले आकाश अर्थात अन्तरात्मा का स्वभाव। तात्पर्य सबके मूल में अन्तरात्मा है यह सिद्ध होता है।

जो इस सर्वभूतों में बसने वाले अन्तरात्मा को नहीं पहचानता वह दुरात्मा है। उस अन्तरात्मा का अनुभव न करने वाला 'गोद में लड़का गाँव में पुकार' के समान भूला हुआ भ्रमित सा रहकर अपना देव दुर्लभ नर देह को व्यर्थ गँवा देता है। इसलिए सबके अन्तर्यामी अन्तरात्मा से अनन्य होकर रहने का प्रयत्न एवम् अभ्यास करें। ऐसा करने से

प्रकृति का स्वभाव भी बदलने लगता है और वह अपने अनुकुल हो जाती है। तब वह हमारे ध्यान और निदिध्यास को भङ्ग नहीं होने देती तथा हमारी बोलचाल में भी कहीं भूल नहीं होती।

उस सर्वान्तिर्यामी अन्तरात्मा का, नारायण का सदा सर्वदा स्मरण करते रहना चाहिये। फिर उसकी लक्ष्मी (प्रकृति) उसे छोड़कर कहाँ जायेगी ? सारे संसार में नारायण भरा हुआ है। उसी की पूजा उपासना करते रहें। उसकी पूजा अर्थात सब प्राणियों में परमात्मा को देखना, सब को सन्तोष देना। उपासना अर्थात विश्व के सभी प्राणियों को सुख देना, उनका प्रतिपाल करना। उपासना का मूल खोजने पर यही विश्व में व्याप्त विश्वम्भर—शिवनाथ का दर्शन और सेवा ही सच्ची उपासना प्रतीत होगी जो कुछ दिखाई दे रहा है, सब प्रभु का ही रूप है, इस भावना से लोक मङ्गल के लिये जो कार्य किया जायेगा, सब प्रभु उपासना ही होगी। मेरी कामोपासना भी इसी प्रकार की है।

अन्तरात्मा नारायण की इस प्रकार की उपासना क्रमशः बढ़ते-बढ़ते हमें मूल माया के परे निरंजन, रिर्गुण, विमल ब्रह्म तक ले जाती है। अन्तरात्मा नारायण, सारे क्रिया काण्ड, ध्यान-समाधि सब उसी के लिये हैं। उपासना उसी की, उपासक भी उसी के। ज्ञान ज्ञानी उसी के प्राप्ति के लिए निमित्त कारण हैं। अनेक शास्त्र पुराणों में उसी का विस्तार है। सारी कुछ उसी की महिमा है। हम अपने अधिकार के अनुसार उसके अनुसन्धान के लिये प्रयत्नशील रहें, यही हमारी इति कर्तव्यता है। आवाहन (मूल माया से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति) और विसर्जन (ब्रह्माण्ड का संहार) कैसे हुआ करता है इसको अनासक्त अलिप्त निर्विकार भाव से द्दष्टा बनकर देखते रहे यही परब्रह्म परमात्मा की उपासना है। यह पूर्वपक्ष हुआ। इसके पश्चात सिद्धान्त के अनुसार शास्त्र, गुरु और स्वयं अपनी प्रचीति (अनुभव) द्वारा सृष्टि और प्राणि-

मात्र की एकात्मकता को पहचानें और अन्ततः पंचीकरण द्वारा पिंड ब्रह्माण्ड का विचार कर उस अनुभव का भी त्याग कर महावाक्य के विवेक से ब्रह्म स्वरूप में लीन होना यही सर्वश्रेष्ठ स्थिति अर्थात मुक्तावस्था है। इसे ही सहज समाधि कहा गया है।

दसवां समास

सिद्धान्त लक्षण

वक्ता कहते हैं—आकाश में सब कुछ घटित होता रहता है पर आकाश के समान कोई स्थायी नहीं रह पाता। इसी प्रकार निश्चल परब्रह्म में चंचल माया भी टिकती नहीं है। घने अन्धकार में आकाश काला दिखाई देता है, सूर्य प्रकाश में पीला भासता है। हिमपात होने पर लगता है कि आकाश शीतल है और ग्रीष्म-ऋतु की तपती दोपहरी में लगता है कि आकाश सूख गया है पर आकाश इन सब स्थितियों से अछूता रहता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। आकाश खण्ड और निराभास है। सारे आभास मिथ्या हैं। इसी भाँति जल वायु आदि तत्वों का बाहर विस्तार होने पर ही उनका भास होना है वरना वे भी मूल रूप में निराभास ही हैं। चंचल कौन और निश्चल कौन इसका अनुसन्धान करते रहने पर धीरे-धीरे अनुभव होने लगता है। विवेक द्वारा तत्व-विचार करते-करते निवृत्ति पद में स्थित होने पर पुनः उस पद से विचलित नहीं हो सकते। वहां पहुँचने पर ज्ञान विज्ञान में मन उन्मन में परिणित होकर तत्व निरसन के पश्चात उस निर्गुण पद से अनन्यता हो जाती है। अन्तरात्मा के अनुसंधान से ही चंचल से निश्चल की प्राप्ति होती है। फिर वहाँ भक्त और भगवान की द्वैत भावना लुप्त हो जाती है। अज्ञान वृत्ति के साथ ही ज्ञान वृत्ति भी नष्ट होकर केवल निवृत्ति पद शेष रह जाता है। वहाँ चंचलता नहीं रहती। यही मुख्य शक्तिपात है।

महावाक्य (तत्वमसि) के विचार का अधिकार सन्यासी को है अथवा जिस पर प्रभु कृपा हुई है, वही उसका विवरण कर सकता है। सन्यासी अर्थात षड्रिपुओं का (काम. क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) जिसने न्यास (त्याग) कर दिया हो, ऐसा जितेन्द्रिय, वासना रहित विवेकी पुरुष। ऐसे विवेकी पुरुषों में निस्संगता होती है। वे संसार का सारे कार्य करते हुए भी सबसे अलिप्त रहते हैं। इसके विपरीत देहाभिमानी देह का अभिमान बढ़ाते रहते हैं।

ब्रह्म वस्तु आकाश के समान शब्दातीत, कल्पनातीत मन बुद्धि के परे है। इसका अन्तर्यामी विचार करने पर अनुभव होता है। फिर अनुभव की बात भी व्यर्थ हो जाती है। अनुभव भी ब्रह्म पद में समाप्त हो जाता है। ऐसे उस सूक्ष्मतम अनुभव का शब्दों द्वारा कैसे वर्णन किया जाय ? ज्ञानी शाश्वत वस की खोज करते-करते ज्ञानस्वरूप हो गया, विकार त्याग से निर्विकार में लीन हो गया, जागृति में दुःस्वप्न भङ्ग हो गया फिर पुरानी स्मृतियाँ सब मिथ्या ही प्रतीत होने लगेंगीं।

ऐसे ब्रह्मलीन ज्ञानी का प्रारब्ध योग से शरीर रहे या न रहे इसकी चिंता उसे नहीं होती। ज्ञानी का वासना-बीज ज्ञानाग्नि में जल जाता है। वह पुनः अंकुरित नहीं होता। केवल बुद्धि से आत्म चिंतन करने मात्र से वह कृतकार्य हो जाता है। पंचभौतिक पदार्थों का ध्यान करने वाला इसी पंचभौतिक संसार में अटका रह कर जन्म मृत्यु के पाश में जकड़ा रहता है। चंचल अन्तरात्मा का ध्यान करने वाला चंचल और निश्चल परब्रह्म का ध्यान करने वाला निश्चल परम पद पाता है। जिसे निश्चल ब्रह्म का परम लाभ मिल गया, ऐसे अन्तर्निष्ठ ज्ञानी को मिथ्या माया का क्या आकर्षण ? मिथ्या माया का बोध होने पर वह माया के भय से अभय हो जाता है। यह परम लाभ परमात्मा की उपासना—घट-घट में व्याप्त परमात्मा की उपासना—से ही हो

सकता है। सद्भक्त को इसी उपासना मार्ग का अवलम्ब करना चाहिये।

अस्तु पिछले समास में अन्तरात्मा का आवाहन (उत्पति का वर्णन) किया था और इस समास में उसका विसर्जन (उपसंहार) किया है। अब हम शब्दों के माध्यम से अधिक क्या समझा सकते हैं। अन्तर्मुख होकर स्वयं सब बातों का अनुभव करने से ही सद्वस्तु का ज्ञान हो सकता है।

सोलहवां दशक

पहला समास

महर्षि वाल्मीकि स्तुति

वक्ता कहते हैं – ऋषियों में पुण्य श्लोक एवम्. त्रैलोक्य पावन वाल्मीकि ऋषि धन्य है। आजकल संसार के साहित्य में ऐसा उदाहरण नही है, जिसमें किसी ग्रंथ कर्ता ने कोई भविष्य वाणी की हो और वह शतप्रतिशत सत्य साबित हुई है। किसी की कोई छोटी-मोटी भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध होने पर उसका बड़ा डिंडोरा पीटा जाता है। बिना शास्त्राधार के राम का अवतार होने के पूर्व ही पूरी रामायण सविस्तार लिख डाली, उन वाल्मीकि ऋषि का साहित्य-साधना देखकर शङ्कर भगवान सन्तुष्ट हुए और तब अन्होंने सौ करोंड़ रामायण तीनों लोकों में वितरित कर दी। वाल्मीकि की काव्य-प्रतिभा का रहस्य शङ्कर जी को ही विदित हुआ। दूसरों को यद्यपि वह गूढ़ ज्ञान नहीं हो सकता, फिर भी राम भक्तों को उससे अत्यन्त सन्तोष हुआ। वाल्मीकि

जैसा कवि श्रेष्ठ आज तक न कभी हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा। पूर्वायुष्य में उनसे जो छोटे पाप कर्म हुए थे, वे राम नाम से पावन हो गये। दृढ़ श्रद्धा के साथ किये गये उनके नाम-स्मरण कर पुण्य असीम है।

वाल्मीकि पहले मनुष्यों की हत्या करने वाले डाकू थे पर वे ही आगे चल कर बड़े-बड़े ज्ञानियों और कवि श्रेष्ठों के वन्दनीय बने।

प्रखर वैराग्य और पश्चाताप से वाल्मीकि के सब पाप भस्म होकर उनका पुनर्जन्म हो गया तथा वे पुण्य स्वरूप बन गये। उनकी कठोरतम तपश्चर्या को देखकर बड़े-बड़े तपस्वी भी घबड़ा जाते थे वे महान तपस्वी और श्रेष्ठ कविश्वर थे। उनकी वाणी सन्देह रहित और निश्चयात्मक है। उनकी साधारण राम भक्ति एवम् धारणा शक्ति देखकर साधकों की आस्था दृढ़ होती है। समर्थ (राम भक्त रामदास) के कवीश्वर और ऋषि श्रेष्ठ वाल्मीकि धन्य हैं। उन्हें मेरा बारबार साष्टांग नमस्कार है। यदि वाल्मीकि ऋषि रामायण न लिखते तो हम सब लोग उनकी यह पावन कथा कैसे जान पाते ? वाल्मीकि ऋषि ने रामायण द्वारा श्रीराम भगवान का यश सारे ब्रह्माण्ड में फैला दिया और राम भक्तों को सुख पहुँचाया साथ ही अपना जन्म भी सार्थक किया। वाल्मीकि जैसे ही जो अन्य श्रेष्ठ राम भक्त हो गये हैं, उन सब का में नम्र सेवक अर्थात दासानुदास हूँ (उन्हीं के कृपा प्रसाद से मैं यह ग्रन्थ लिखने की धृष्ठता कर रहा हूँ। मुझे अज्ञानी जान मेरी त्रुटियों के लिये वे मुझे क्षमा करें।) -

दूसरा समास

सूर्य स्तुति

सब वंशों में श्रेष्ठ सूर्यवंश परम धन्य है। इस वंश के मूल पूर्वज सूर्य नारायण का प्रकाश सारे भू-मण्डल पर फैला हुआ है। चन्द्र पर

कलङ्क-कालिमा है। चन्द्र कृष्ण पक्ष में क्षीण होता है और सूर्य के सन्मुख वह निस्तेज रहता है, अतः सूर्य की समानता कोई नहीं कर सकता।

सूर्य से ही प्राणी मात्र को प्रकाश मिलता है। सब प्रकार के सरल कठिन, भले-बुरे, धर्म-कर्म एवम् व्रत-नियम सूर्य के कारण ही सम्पन्न होते हैं। वेद-शास्त्र-पुराण, मंत्र-तन्त्र, अनेक प्रकार के साधन, स्नान-सन्ध्या, जप-ध्यान, नाना भांति के योग एवम् प्रपंचिक तथा पारमार्थिक कार्य सब सूर्योदय के अनुसार ही चलते है सूर्य का अधिष्ठान नेत्र हैं और नेत्र के बिना सब अन्धकार ही रहता है। सूरदास जैसे कुछ अन्ध भक्त भी आभ काव्य सृजन करते हैं पर उनकी बुद्धि को प्रकाश देने वाला भी सूर्य के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? बुद्धि में उष्णता (तेज) न रहने पर वह कैसे प्रकाशित हो सकती है? उष्ण प्रकाश सूर्य से और शीतल प्रकाश चन्द्र से मिलता है। शरीर में उष्णता न रहने पर वह जीवित नहीं रह सकता। अतः सूर्य के बिना संसार का अस्तित्व ही असंभव है।

हरिहर अथवा शिव शक्ति के पृथ्वी पर अनेक अवतार हो गये हैं पर उन सबके पहले भी सूर्य था और आज भी है जो-जो देह धारी इस संसार में आया, उसका सारा जीवन इसीं सूर्य के प्रभाव से चला और उसी के रहते सब मरण धर्मा बने। सूर्य सारे विश्व का ही नेत्र है। सूर्य प्रकाश के अभाव में सदा अन्धकार रहने पर मनुष्य का सारासार विवेक भी नष्ट हो जायगा। ऐसे सूर्य भगवान सर्वोपकारक सूर्य प्रभु रघुकुलभूषण भगवान श्री रामचन्द्र के पूर्वज हैं। उनकी अगाध महिमा का वर्णन करना पामर मनुष्य कैसे कर सकता है? रघुवंश अनादि और महान है। उसमें एक से एक बढ़कर विभूतियों का जन्म हुआ है। राम भक्तों के सम्मेलन में मेरा चित्त लगा हुआ है, अतः में क्षुप्र उस पवित्र वंश का वर्णन कहाँ तक और कैसे कर सकता हूँ? सूर्य भगवान

को प्रतिदिन नमस्कार करते रहने से सब दोषों का परिहार होता है और नित्य सूर्य दर्शन से स्फूर्ति मिलती है।

तीसरा समास

पृथ्वी-स्तुति

वक्ता कहते हैं—यह पृथ्वी धन्य है। उसरी महिमा कहाँ तक कहें ? सब प्राणी मात्र उसी के सहारे जीवित हैं। कई प्राणि अन्तरिक्ष में रहते हैं पर यह भी पृथ्वी का ही धर्म है। उनके देह जड़ (पृथ्वी के) न होते तो वे कैसे जीवित रहते ? पृथ्वी को लोग जलाते, खोदते जोतते, उस पर मलमूत्र त्याग करते है। वड़े, गले पदार्थ उस पर डालते हैं। मृत्यु के वाद शव भी उसी पर रखते हैं। भले बुरे सबका आधार पृथ्वी ही है। अनेक धातु और द्रव्य पृथ्वी के पेट में ही उपलब्ध होते हैं। प्राणी भी एक दूसरे की हत्या करते हैं पर वे भीं धरती के आधार से ही। आखिर वे पृथ्वी छोड़कर जायेंगे ही कहाँ ! गढ़, परकोटा, नगर आदि का परिचय पृथ्वी-पर्यटक से हीं होता है। देव, दानव मानव सब पृथ्वी के ही निवासी हैं। अनेक प्रकार के रत्न, हीरे, पारस, विभिन्न धातु, द्रव्य आदि वहुमूल्य पदार्थ पृथ्वी के उदर में ही हैं। मेरू, मांदार, हिमाचल, अनेक पर्वत नाना प्रकार के पक्षी, मछलियाँ सांप आदि सब पृथ्वी पर ही हैं।

नाना पदार्थों की खानें, धातु और रत्नों के भण्डार, कल्पतरु, चिंतामणि, अमृत-कुण्ड अनेक द्वीप द्वीपान्तर, खण्ड, अरण्य सब आवादियाँ पृथ्वी में ही हैं। चन्द्रागिरि, द्रोणागिरि, मैनाक आदि विख्यात पर्वत आदि यहीं पर हैं। यह वसुन्धरा अनेक रत्नों से भरपूर हैं। इस पृथ्वी के समान महान और क्या है ? अनेक प्रकार के धन-धान्य इसी पृथ्वी से पैदा होते हैं। स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनों लोकों का आधार

पृथ्वी ही है और पृथ्वी में सर्वत्र एक मात्र जगदीश्वर परमात्मा का ही निवास है। संसार में ऐसे अनेक बलशाली सम्राट हो गये, जो पृथ्वी पर अपना प्रभुत्व जमाने और उसको अपने अङ्कित करने में असफल होने पर क्रोध करते रहे, पर उनमें ऐसी सामर्थ्य नहीं थी कि वे पृथ्वी से अलग हो पाते। इसी पृथ्वी पर अनेक अवतार हुए सारे जीवन का आधार यह पृथ्वी ही है। बहुतेरे लोग अपने को भूमिका स्वामी मानते हैं और अन्त में स्वयं ही भूमि को छोड़कर अकेले स्वर्ग को सिधार जाते हैं। न आने कितने युग बीत चुके, पृथ्वी ज्योंकि त्यों कायम है। पृथ्वी पर अनेक एक से एक बढ़कर शक्तिशाली सम्राट आये और गये पर पृथ्वी का कोई कुछ न बिगाड़ सके। यह है पृथ्वी की महिमा। ब्रह्मा से लेकर हम सब उसी पृथ्वी माता के आश्रित हैं।

चौथा समास

जल-स्तुति

क्या कहते हैं—अब सब का जन्म-स्थान, सब जीवों का जीवन उस आपो नारायण (जलतत्व) का स्तवन करें। पृथ्वी को सप्त सागरों ने घेर रखा है। उनका जल और मेघों से बरसने वाला पानी सब पृथ्वी पर ही बहता है। विभिन्न देशों की अनेक नदियाँ बहते-बहते अन्त में समुद्र में जाकर मिलती हैं। उनमें कई पुण्य पावन हैं और उनकी महिमा भी भारी है। कुए, बावलियाँ, सरोवर, नहर, झिरने, प्रपात आदि नाना प्रदेशों में जल से भरपूर रहते हैं। कहीं बर्फ के समान शीतल जल तो कहीं उबलता जल भरा रहता है। अनेक बेलों, फलों, पुष्पों, कन्दमूलों आदि में जो औषधि तुल्य गुणकारी रस मिलता है, वह भी सब जल का ही अंश है। जल के खारा, मीठा, जहरीला, अमृत के समान आदि अनेक प्रकार हैं। गन्ना तथा अन्य अनेक प्रकार के

स्वादिष्ट फलों के रस, दूध, दही, घी, आदि गो-रस, शहद, पारा, गुड़, शक्कर आदि पदार्थ सब जल तत्व से ही बनते हैं। इसी प्रकार मोती, रत्न, शस्त्र आदि पर झलकने वाला पानी, रक्त, शुक्र-धातु, रेत, लार, मूत्र, पसीना आदि सब जल के ही अङ्ग हैं। सारे देह जल से ही उत्पन्न हुए है। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह भी जल का ही उत्पादन है। क्षीर सिन्धु (खारा समुद्र) क्षीर सागर (दूध का समुद्र) सुरासिन्धु (शराब) आज्यसिंधु (घी का समुद्र) दधिसिंधु (दही) इक्षुरसिंधु (गन्ने का रस) और शुद्धोदक सिंधु ये सप्त समुद्र सब जलके ही प्रकार हैं सब कहीं जल ही भरा है। कहीं वह प्रकट है तो कहीं गुप्त है। वह जिस बीज में मिलता है, उसी का गुण लेकर उठता है। गन्ने के साथ वह मीठा बन जाता है और करेले के साथ कड़वा। शरीर भी जल से बँधा हुआ है और जल से ही बढ़ता है। जल तारक भी है और मारक भी। जल अत्यन्त सुखदायी है। अतः वह अमूल्य है। पृथ्वी के नीचे पानी-ही-पानी भरा हुआ है। स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनों लोक में एक ही महा नदी बह रही है। मेघोदक की अन्तराल से वृष्टि होती है। पृथ्वी का मूल पानी, पानी का मूल अग्नि अग्नि, का मूलवायु, वायु से ऊपर परमेश्वर (आकाश या अन्तरात्मा) और इन सबका अंतिम आधार परात्पर परब्रह्म परमात्मा है।

पांचवां समास

अग्नि

समर्थ वक्ता कहते हैं—धन्य है यह वैश्वानर अग्नि देव। यह विश्वव्यापक विश्वम्भर हैं। इसके मुख के द्वारा ही भगवान हविषान्न (यज्ञ की आहुति) ग्रहण करते हैं। यज्ञ यागादि प्रसंगों से वह ऋषियों को सुफल दायक होता है। ऐसा यह विश्व कर्ता अन्धकार और ठंड

तथा रोग का निवारण करने वाला है। प्राणियों में अनेक वर्ण भेद होने पर भी सब जीवों तथा ब्राह्मादिकों को भी यह अभेद अर्थात एक रूप है। अग्नि के कारण ही सृष्टि का संचालन होता है। लोग उसी की सहायता से भोजन पकाकर तृप्त होते हैं और शरीर में अग्नि तत्व है इसीलिए जीवित हैं। अग्नि ने जल का शोषण कर इस भूमंडल का निर्माण किया जिसके फलस्वरूप प्राणियों को रहने के लिए स्थान मिल सका। छोटे बड़े द्वीप और ज्वालायें अग्नि से ही प्रदीप्त होती हैं। पेट में जठराग्नि है, इसीलिए भूख लगती है। अग्नि सब में भरा हुआ है। उष्णता है तब तक ही प्राणी जीवित रह सकता है, गरमी समाप्त होती है, वह मर जाता है। अग्नि मांद्य (मंदाग्नि) होने पर लोग मरणासन्न हो जाते हैं। अग्नि के बल से शत्रुओं का नाश किया जा सकता है। अग्नि है, तब तक ही जीवन भी है।

अनेक प्रकार के औषधि-रस अग्नि से निर्माण होते हैं और उनसे अनेक असाध्य रोगियों को आरोग्य लाभ होता हैं सर्वश्रेष्ठ सूर्य पर भी अग्नि का ही प्रकाश है। अंधेरी रात में। अग्नि ही मार्ग दर्शन का काम करती है। अग्नि में किसी प्रकार का दोष नहीं, बल्कि वह अनेक दोषों को दूर करती है स्वयं पवित्र अग्नि सर्वत्र पावन है। यज्ञ याग, अग्नि होत्र आदि अग्नि द्वारा ही सम्पन्न होते हैं, अग्नि देवता तृप्त होने पर प्रसन्न होकर संसार का कल्याण करता है। देव, दानव, मानव सबके लिए अग्नि की आवश्यकता अनिवार्य है। विवाह-शादियों में अथवा अन्य महोत्सवों में जो आतिश बाजी उड़ाई जाती है, वह सब अग्नि का ही चमत्कार है। प्राणियों में जठरानल, समुद्र में वडवानल, पृथ्वी के चहुँ ओर आवरणानल और शिवजी के तृतीय नेत्र की विद्युल्लता सब अग्नि ही है। काँच (आतशी शीशे) से भी अग्नि प्रकट होती है और लकड़ी (बांस) या चकमक पत्थर की रगड़ से भी अग्नि प्रज्वलित होती है।

अग्नि का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। विवेक के बिना उसका उपयोग हानिकारक ही होगा। अग्नि जीवित अवस्था में मनुष्य को सुख पहुँचाती है और मरने पर उसके शव को जलाकर भस्म कर देती है। अग्नि सर्वभक्षक है। उसकी महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाये ? प्रलय-काल में सारी सृष्टि का ही सर्वनाश अग्नि ही करती है। अग्नि से कोई चीज नहीं बच सकती। अष्टधा प्रकृति और तीनों लोकों में अग्नि का संचार है। इसी लिए शास्त्रों में कहा गया है कि अग्नि के चार हाथ, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। यह क्या बिना किसी प्रमाण के ही कहा गया है ? ऐसे सकल कल्याण कारी और सर्व संहारक अग्नि देवता का मैंने यहां संक्षेप में अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है। इसमें जो कुछ त्रुटि रही हो, उसे उदार चित्त श्रोतागण क्षमा करें।

छठवां समास

वायु स्तुति

वक्ता कहते हैं—यह वायु देव भी धन्य है। इसका स्वभाव बड़ा विचित्र है। वायु है, इसलिए प्राणी जीवित हैं। वायु के कारण ही जीव श्वासोच्चास करते हैं। उसी के बलपर शरीर की हलचल होती है। चलन,वलन, धावन, प्रसारण और आकुंचन तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान एवं नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ऐसे वायु के अनेक स्वभाव हैं। (चलन अर्थात चलना, वलन अर्थात मुड़ना, धावन अर्थात दौड़ना, प्रसारण अर्थात फैलाना और आकुंचन अर्थात सिमटना) ये वायु के पाँच तत्व अर्थात धर्म हैं। अब वायु के प्राण-पंचक को समझें। प्राण यह जीव के हृदय स्थान में रहता है। दिन-रात में २१६०० श्वासोच्छ्वास लेना यह इसका काम है। अपान =गुदास्थान मे रहता है और मल-विसर्जन करना इसका कार्य है।

व्यान=सब शरीर में घूमता है और शरीर के संधियों को (जोड़ों को) आगे पीछे करना, हिलाना आदि इसके काम हैं। उदान=कंठ स्थान में रहता है और अन्न-रस का विभाजन करना, हिना नामक नाड़ी से हिचकी पैदा करना, स्वप्न दिखाना यह इसका काम है। समान—नाभि-स्थान में रहना हैं और नाड़ियों के द्वारा अन्न को रोम-रोम में पहुँचाना इसका काम है। इसके बाद नाग कूर्म आदि पंच उपप्राण हैं। नाग वायु से डकार आती है। कूर्म से आँखों की पलकें खुलतीं बन्द होती हैं। कृकल से छींक आती हैं। देवदत्त से जमुहाई आती है और धनंजय से शरीर पुष्ट होता है और शव को फुलाकर भारी कर देता है। स्वर्ग के देवता, प्रतापी दानव, राजा से रंक तक सारे मानव नाना प्रकार के पशु वनचर, जलचर, खेचर आदि सभी प्राणीयों में वायु का सचार है। आग की ज्वालायें वायु से ही उत्पन्न होती हैं। वायु ही बादलों में भाप भरता है फिर उन्हें ढकेलकर पानी बरसता है। व्यापकता में वायु की तुलना और किसी से नहीं की जा सकती। पर्वत-शिखरों से बादलों के समूह उठकर बिजली की कड़ कड़ाहट के साथ घनघोर वर्षा करते हैं। यह सब वायु का ही प्रताप है। चंद्र, सूर्य, नक्षत्र माला, तारागण, मेघमंडल ये सब वायु के कारण ही अस्तित्व में हैं।

पंचभूतों का जो मिश्रण हो गया है और जिसे कोई पृथक नहीं कर सकता, वह सब वायु की ही करामात हैं। तूफान आता है, मूसलाधार वर्षा होती है, ओले गिरते हैं, यह भी वायु की प्रबलता के ही कारण। तैंतीस करोड़ देवता, अठ्ठासी हजार ऋषि-मुनि, सिद्ध, योगी सब वायु रूप हैं। नौ करोड़ कात्यायनी, छप्पन करोड़ चामुंडिनी साढ़े तीन करोड़ भूतयोनि के प्राणी, भूत-पिशाच दैवत, एवं अनेक शक्तियाँ सब वायु रूप ही हैं। पिंड और ब्रह्मांड में सम्पूर्णतः भरकर एवं ब्रह्मांड के बाहर भी उसका आवरण बनकर रहने वाला यह

वायु सर्वव्यापी परम समर्थ तत्व है। उसी वायु का पुत्र (पवन-तनय) हनुमान, जिसने अपना तनमन भगवान राम को अर्पित कर दिया था। वीर हनुमान भी अवतार ही थे। सिंहासन पर विराजमान अहंकारी रावण को गुद्दे लगाकर उसकी पीठ नरम करना ऐसे ही शक्तिशाली का कार्य हो सकता है। जब हनुमानजी लंका जाने के लिए निकले तब मार्ग में समुद्र भी उनको नहीं रोक सका। ऐसे महान पराक्रमी महावीर हनुमान वायु देवता के ही पुत्र थे।

सातवां समास

महाभूत लक्षण

वक्ता कहते हैं—पिछले समास में हम बतला चुके हैं कि पृथ्वी का मूल जीवन (जल) जल का मूल अग्नि, अग्नि का मूल पवन (वायु) और पवन का मूल अन्तरात्मा है, जो सब में व्याप्त है तथा अत्यन्त चंचल है। वह आता जाता रहता है फिर भी किसी को दिखाई नहीं देता, स्थिर भी नहीं रहता। उसके रूप का श्रुति पुराण शास्त्रों को भी अनुमान नहीं होता। परब्रह्म, में मूल स्फुरना होकर जो आदि संकल्प हुआ, वही अन्तरात्मा का स्वरूप है। वही जगदीश्वर है, जिससे आगे चलकर सत्व, रज और तम ये तीन गुण उत्पन्न हुए। इन त्रिगुणों से बाद में पंचभूत अर्थात पंच तत्व प्रकट हुए। पंच महाभूतों में भी विशेष एवं सर्व प्रकाशक आकाश तत्व हैं।

उसी आकाश तत्व (अन्तरात्मा) को 'एकोविष्णुर्महद्भुतम्' कहा गया है। वह सर्व व्यापक है और अनुसंधान से ही अनुभव में आता है। उसकी चंचलता के आगे वायु की चंचलता का क्या हिसाब ? आत्मा दिखाई नहीं देता पर उसके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता।

वह गुप्त रहकर भी सब विचार करता है। वह पिंड-ब्रह्मांड में भरा हुआ अनन्त शरीरों में विलास करता है। विवेकी पुरुष उसका सारे संसार में अनुभव करते हैं। उसके बिना देह हलचल नहीं कर सकता अथवा प्रकृति से उत्पन्न अनन्त जीव उसी के कारण प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। मूल माया से लेकर अन्त तक (जीव के देह तक) सब कुछ आत्मा का ही खेल है। आत्मा के परे केवल परमात्मा अर्थात निर्विकल्प परब्रह्म ही है। आत्मा शरीर में रहकर इन्द्रियों का संचालन करता है तथा देह संसर्ग से अनेक सुख दुःख भी भोगता है। आत्मा ही शब्द सुनता है, उसका अर्थ समझता है और सोच समझकर प्रश्न का उत्तर भी देता है। वही त्वचा (चमड़ी) के द्वारा शीत उष्ण का अनुभव करता है आंखों से देखता है, एवं पदार्थ की परीक्षा करता है। नेत्रों की क्रूरता, सौम्यता, प्रकट, दया आदि वृत्तियां उसे ही दिखाई देती हैं। जिह्वा, घ्राण, गुदा, शिश्न आदि के व्यापार उसी से होते हैं। उसका व्याप अवर्णनीय है। सब विद्याएं, कलाएं, इस सृष्टि का व्यापार और परलोक का विचार वही जानता है। नाना प्रकार के मतमतांतर, वाद-विवाद आदि का निर्णय वही करता है।

आत्मा इस प्रकार बहुरूपी और बहुरङ्गी है। बहादुर प्रतापी भी वही और कायर डरपोक भी वही। वही स्वय अपना खेल देखता भी रहता है। वह दम्पत्ति भाव से स्त्री-पुरुष दोनों में एक रूप ही है। पुरुष को स्त्री की कामना है और स्त्री को पुरुष की, दोनों परस्पर मिलकर आनन्द का उपभोग करना चाहते हैं। इसलिए वह दोनों में भिन्न लिंगी होते हुए भी अभेद रूप से एक ही रहता है। स्थूल की दृष्टि से दोनों में कोई भेद है पर सूक्ष्म दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं। पुरुष की इच्छा में प्रकृति का और प्रकृति की इच्छा में पुरुष का आकर्षण रहता है। द्वैत की इच्छा मूल माया में ही है (मूल माया प्रकृति पुरुषात्मक है) इसीलिए वह स्थूल शरीर में भी द्वैतात्मक दिखाई देती

है। सृष्टि में स्त्री-पुरुष का जो भेद दिखाई देता है, वह मूल माया में भी है। इस प्रकार हमें सारी बातों का बहुत बारीकी से विचार करना चाहिए। आशा है प्रकृति और पुरुष के बारे में जो विवेचन किया गया है, उससे श्रोताओं की शंकाओं का समाधान हो गया होगा।

आठवां समास

अन्तरात्मा का स्पष्टीकरण

वक्ता कहते है—अब हम मंगल मूर्ति गणेश की वन्दना करते है, जो हमारी बुद्धि को प्रेरित कर अन्तरात्मा के गुणानुवाद गाने के लिए प्रोत्साहित करता है। साथ ही हम अन्तःकरण में बुद्धि का प्रकाश भरने वाली, नाना विद्याओं को विवरण करने की स्फूर्ति देने वाली सरस्वती की वन्दना करते हैं। संसार में रामनाम सर्वश्रेष्ठ है। उसी के प्रभाव से शंकर जी के शरीर का दाह कम होकर उन्हें आराम मिला। नाम स्मरण की महिमा विलक्षण है। उसके द्वारा परातपर परमेश्वर अर्थात त्रैलोक्यवासी आतमा राम के सर्वत्र व्याप्त होने का अनुभव होता है। शिवातमा, परमातमा,जगदातमा, विश्वातमा, सूक्ष्मातमा आदि सब अन्तरात्मा के ही नाम हैं। देव, दानव, मानव, सब में वही व्याप्त है। अवतारी महात्माओं के असामान्य कार्यों का कर्ता वही है। ब्रह्मादि देव सब उसी से व्यवहार करते हैं। नाद, ज्योति, साक्षित्व, सत्ता आदि सब उसी के रूप हैं। नरोत्तम, वीरोत्तम, पुरुषोत्तम, रघूत्तम, सर्वोत्तम सब उसी के विश्लेषण हैं। उसके अभाव में सब कुछ शून्य एवं जड़ हो जायगा। आत्म ज्ञानी पुरुष जन जन में उसका दर्शन करते हैं।

पति सुन्दर पत्नी पर मोहित होता है पर जब तक पत्नी के देह में आतमा है, तब तक ही। आतमा का वियोग होने पर वही पत्नी शव

(मुद्रा) कहलाने लगती है। आत्मा के बल पर ही मन नाना कल्पनायें और विचार किया करता है। आत्मा शरीर में रहता है पर सारे ब्रह्मांड का विचार करता है। उसी में नाना वासना एवं भावनायें पैदा होती हैं। अनंत प्राणियों की अनंत कल्पनायें राजनीति, सुबुद्धि, कुबुद्धि, गुप्त विचार, धोखे बाजी सब आत्मा की प्रवृत्ति है। कोई किसी की हानि करता है। कोई किसी से दुश्मनी करता है और कोई परोपकार में मग्न रहता है। पर इन सब भेदमय प्रवृत्तियों में आत्मा का अभेदत्व अटल है। सब प्राणियों के शरीर आहार-विहार, सुखानुभव में यद्यपि भेद होता है पर सब में एक ही आत्मा अभेद और एक रूप होता है। देह और आत्मा के संयोग से जो जो कार्य होते हैं, उनका सूक्ष्म अनुसंधान करने पर ही अन्तरात्मा का अनुमान हो सकता है। अन्तरात्मा के प्रत्यय अर्थात अनुभव के लिए ही इतने विस्तार से उसके विषय में निरूपण किया गया है।

नवां समास

विभिन्न उपासनाएँ

श्रोता प्रश्न करते हैं—संसार में अनेक प्रकार के लोग है। सबकी अपनी अपनी उपासना पद्धति है। वे अपनी अपनी भावना और श्रद्धा के अनुसार अपने अपने देवताओं में पूज्य भाव रखते हुए उनका भजन-पूजन किया करते हैं। अनेक लोग अपने को निर्गुण उपासक मानते हैं। अतएव इन सबका मेल कैसे किया जाय ?

इस पर वक्ता समाधान करते हैं कि उपासना का स्वभाव ही ऐसा है। 'पिंडे पिंडे मति भिन्न:' प्रत्येक व्यक्ति का अलग अलग स्वभाव और भिन्न भिन्न रुचि होती है। इससे हानि नहीं हैं। देखिए, निर्गुण अर्थात बहु गुण- सब गुण और बहुगुण याने अन्तरात्मा। सबके देवता उसी के

अंश हैं। अतः किसी भी देवता की उपासना करने पर वह अन्ततः और तत्वतः उसी अन्तरात्मा की ही उपासना होती है।

श्रोता पुनः शंका करते हैं—यदि सब देवताओं की उपासना अन्ततः निर्गुण अन्तरात्मा की ही उपासना है तो सब उसी निर्गुण को ही क्यों नहीं भजते ? अनेक देवी देवताओं के भ्रम-जाल में क्यों फँसते हैं ? जैसे पेड़ की जड़ में जल सिंचन करने पर वह हर पत्ते तक पहुँच जाता है, वैसे ही एक निर्गुण की उपासना करने से वह सब देवताओं को भी पहुँचेगी ही।

इस का समाधान करते हुए वक्ता कहते हैं—ठीक है पर यदि तुलसी के पौधे पर अर्थात उसके पत्रों मर भी जल चढ़ाया जाय, फिर भी वह अन्त में जड़ में ही जाकर पहुँचता है इसी प्रकार किसी भी देवता की पूजा मुख्य परमात्मा को ही प्राप्त होती है। सगुण-निर्गुण विवेक अत्यन्त सूक्ष्म है, शब्दातीत है। मत-मतान्तरों का विवाद तो चलता ही रहेगा। इस सृष्टि में अनेक देश, अनेक भाषा, अनेक ऋषियों एवं विचारकों द्वारा प्रकट भिन्न भिन्न मत आदि का ही कहाँ तक विश्लेषण किया जाय ? पंचभूतात्मक त्रिगुण सम्पन्न सृष्टि मूल माया से प्रकट होकर क्रमशः अनन्त आकृतियों में परिणत हुई है, उनका कहाँ तक चुनाव किया जाय ? प्रकाश और अन्धकार, विचार और अविचार न्याय और अन्याय, अनुभव और अनुमान का झमेला संसार में चलता ही रहता है। इसमें से विवेक द्वारा ही हमें सत्य-असत्य का निर्णय कर असार को त्यागते हुए सार, शाश्वत एवं निर्गुण परमात्मा को ही स्वीकार करना चाहिए।

दसवां समास

गुण-भूत-विवेचन

वक्ता कहते हैं - यह संसार पंच महाभूतों का ही मेला है। पंच-भूतों का विनाश होने पर शेष क्या बचता है ? तब श्रोता प्रश्न करते हैं कि आपने पंचभूतों की तो इतनी महिमा बताई पर आपने यह नहीं बतलाया तीनों गुणों का क्या हुआ ?

इस पर वक्ता समाधान करते हैं कि अन्तरात्मा पांचवां भूत-तत्व है और तीनों गुण उसी के अन्तर्गत हैं। जो कुछ प्रकट हुआ है, वह सब उसी तत्व का खेल है और उसी में तीनों गुण भी समाविष्ट हैं। सृष्टि में पंचभूतों से भिन्न कुछ भी नहीं है। साथ ही सब पंचभूत एक दूसरे से मिले हुए हैं। एक दूसरे के संयोग के विना किसी वस्तु या प्राणि का अस्तित्व नहीं हो सकता। बताया जाता है कि आत्मा से पवन अर्थात वायु की उत्पत्ति हुई है। पवन से अग्नि और अग्नि से जीवन याने जल उत्पन्न हुआ। सूर्य की उष्णता से जल सूख जाता है और अग्नि तथा वायु के संयोग से वह भूमण्डल बन जाता है। यदि अग्नि वायु और सूर्य न होते तो सृष्टि में अत्यन्त शीतलता होती। परमात्मा ने बड़ी कुशलता से इस विचित्र संसार की रचना की है। यदि सर्वत्र शीतलता ही होती तो संसार में प्राणि मात्र जीवित न रह पाते और यदि उष्णता का प्रकोप होता तो सारा संसार जल जाता। जब सूर्य की उष्णता से सारा भूमण्डल सूख गया, तब ईश्वर ने इसे सजीव रखने के लिए उपाय किये। वर्षा ऋतु की रचना की जिससे सृष्टि में शीतलता आयी और जब शीत काल से प्राणियों को कष्ट होने लगा तब उष्ण काल का आयोजन किया। इसमें भी प्रातः काल, मध्यह्न, और संध्या के रूप में एक ही दिन में उष्ण और शीत काल का विभाजन किया। इस प्रकार सब चीजें सुसंगत एवं नियमित की गयीं।

इसी प्रकार जब अनेक प्रकार के कठिन रोगों से मनुष्य पीड़ित होने लगे तो उनके कष्ट निवारणार्थ भांति भांति की औषधि-वनस्पति का निर्माण हुआ। अब जीव सृष्टि की उत्पति का विवरण सुनें। देह का मूल रक्त और रेत (वीर्य) है, जो जल तत्व से बनते हैं। इसी जल से दाँत निकलते हैं। सब का मूल जीवन जल ही हैं। मुक्ता फल (मोती) शुक्र तारे के समान चमकीले हीरे, मणि-माणिक, इन्द्र नील आदि रत्न होते हैं। सब में पंचभूतों का ही मिश्रण रहता है। किसी में कोई भूत तत्व कम और किसी में अधिक।

आत्माराम ही सबका पालन पोषण और तीनों लोकों का संचालन करता है। जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ कुछ भी नहीं। आत्मा के अभाव में तीनों लोकों के प्राणी मृतक ही हैं। आत्मा के बिना कोइ बात विवेक पूर्वक समझी भी नहीं जा सकती। अतः सब को जगदीश्वर का भजन करना चाहिए। सब मनुष्यों के लिए परब्रह्म परमात्मा की उपासना ही बड़ा सम्बल है। उसके बिना सब निराश्रित ही रहेंगे। परमात्मा के सहारे के बिना बिना अन्य किसी भी उपाय से कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। जिसे सर्व-समर्थ परमात्मा का सहारा नहीं होगा, उसे कोई भी व्यक्ति, प्राणी या विषय विनष्ट कर देंगे। इसलिये सदा सर्वदा चलते-फिरते, उठते-बैठते भगवान का भजन, नामस्मरण करते रहना चाहिए। भजन,साधन और अभ्यास से ही परलोक सुन्दर बन सकता है। आपको इन सब बातों पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए।
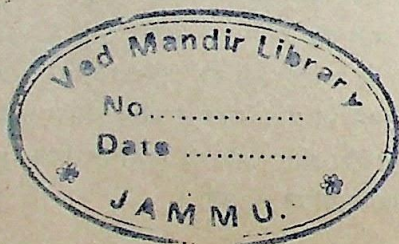
सत्रहवां दशक

पहला समास

देव-बल-निरूपण

वक्ता कहते हैं— निश्चल ब्रह्म से चंचल आत्मा (मूल माया) उत्पन्न हुई। वह परब्रह्म पंचभूत और त्रिगुण से परे हैं। उसी के परमात्मा, चैतन्य, साक्षी, ज्ञानात्मा, षड्गुणेश्वर आदि नाम हैं। वह सारे जगत का ईश है, इसलिए उसे जगदीश्वर कहते हैं। उसी से सृष्टि का विस्तार हुआ है। शिव शक्ति जगदीश्वरी, प्रकृति पुरुष, मूल माया, गुण-माया, क्षेत्रज्ञ, द्रष्टा, कूटस्थ शुद्ध सत्व, महतत्व आदि सब नाम उस चचल आत्मा के अर्थात अन्तरात्मा के है। वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अन्त पिंडों के जीव, सब प्राणि मात्र को जानता है। देह-मंदिर में बैठकर जो उसकी उपासना नहीं करते, उन्हें वह दण्ड देता है, इसलिए उसके भय से लोग उसका भजन करते हैं। भजन में प्रमाद करने वाले को वह उसको ताड़ना देता है इसलिए। सब लोग उसके सामने विनम्र होते हैं। उससे जो कुछ मांगा जाय, वह प्राप्त हो जाता है, इसलिए प्राणि मात्र उसकी शरण जाते हैं। उसके लिए शब्दादि पंच विषयों का नैवेद्य सदा तैयार रखना पड़ता है। अन्यथा वह देह को अनेक रोगों से ग्रसित कर देता है। उसे नैवेद्य न मिलने पर वह रुष्ट होकर नाना प्रकार के भोग पदार्थ वैभव आदि सब छोड़कर चला जाता है। वह कैसे चला जाता है। इसका किसी को कुछ पता नहीं चलता। उसके साथ अनन्य हुए बिना वह अपना रूप किसी को नहीं दिखाता। उस देवता के दर्शन के लिए मंदिरों में जाना पड़ता है, तब वह कहीं किसी संत सद्गुरु में प्रकट होता है। मंदिर अर्थात शरीर जिसमें जीवेश्वर रहता है। शरीर अनन्त और भिन्न-भिन्न हैं। इसी चलते-फिरते

मन्दिर में भगवान रहते हैं। सब शरीर रूपी मन्दिरों में देवता (अन्त-रात्मा) का निवास है, यह हमें भली भाँति जानना चाहिए। मच्छ, कच्छ, बराह तथा भूमण्डल के सभी प्राणियों में वह रहता है। कई शरीरों में वह केवल सुख की इच्छा करता है पर वह सुख स्थायी नहीं होता। सब मनुष्यों को उसी अन्तरात्मा को अपना स्वामी मानना चाहिए। उसकी ओर उन्मुख होते ही हम उससे अभेद हो जाते हैं और उससे मुँह मोड़ने पर दुःख सागर में डूब जाते हैं। इस प्रकार उससे सुख और दुःख का सम्बन्ध है।

नित्य और अनित्य के विवेक से जिसने इहलोक तथा परलोक (प्रपंच और परमार्थ) दोनों को साध्य कर लिया उसका जन्म सार्थक हो गया। मनन शील पुरुषों अनादि अनन्त अखंड परमेश्वर सदा निकट रहता है। ऐसा मनुष्य ही दूसरों को सन्मार्ग पर ला सकता है। जिसे तैरना आता हो, उसे दूसरे मनुष्य को डूबने नहीं देना चाहिए स्थूल और सूक्ष्म तत्वों का विश्लेषण कर पिंड-ब्रह्माण्ड के विवेक द्वारा आत्मानुभव प्राप्त करने वाला व्यक्ति विरला ही होगा। ऐसी विवेकी महात्मा का सत्संग जिसे मिल सके वह धन्य है। उनके मुख से प्रतिपादित निरूपण सुनकर प्राणि मात्र का उद्धार हो जाता है। सत्संग और सत् शास्त्र के श्रवण से मनुष्य में परोपकार की प्रवृत्ति पैदा होती है। ऐसे सत्पुरुष परमात्मा के ही अंश माने जाते हैं। उन्हें ही संसार में व्याप्त अधर्म और अनाचार को मिटाकर धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने की अभिलाषा रहती है। ऐसे महात्मा पुरुष सारासार विवेक द्वारा जीवों का उद्धार कर स्वयं असंग वृत्ति से रहते हुए ब्रह्म स्वरूप में विलीन हो जाते हैं।

दूसरा समास

शिव-शक्ति का स्वरूप

वक्ता कहते हैं—ब्रह्म आकाश के समान निश्चल, निर्मल, निराकार और निर्विकार है। वह अनन्त अनादि और अविनाशी है। आकाश

के समान वह फूटता, टूटता नहीं है। वहाँ न ज्ञान है और न अज्ञान, न स्मरण है, न विस्मरण वह स्वयंम् है, अखण्ड है और निर्गुण है। वहाँ सूर्य चन्द्रादि नहीं है। न वहाँ प्रकाश है, न अन्धकार। ऐसा वह ब्रह्म अद्वैत और सकल उपाधि रहित है। निश्चल में जो चल न स्मरण और चैतन्य की कल्पना के साथ सत्व-रज-तम इन तीनों गुणों का विकास हुआ, उसी को गुण माया यह संज्ञा दी गयी। उसी स्मरण, चैतन्य अथवा चंचलता को मूल माया भी कहा गया है। निर्गुण में यह जो आकाश में बादलों के समान विकार पैदा हुआ उसी को षड्गुणेश्वर अर्धनारी नटेश्वर आदि शिव शक्ति आदि नाम दिये गये हैं। उसी मूल सृष्टि-रचना की सर्व शक्ति है और उसी से अनेक तत्वों का उदय हुआ माया में है। जैसे बीज में फल होता है पर दिखाई नहीं देता, वैसे ही पिंड में ब्रह्माण्ड के समान रचना होते हुए भी वह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती। तात्पर्य स्थूल से सूक्ष्मकी-दृष्ट से अदृष्ट की कल्पना करनी चाहिए। कल्पना से ही सृष्टि हुई है, ऐसा वेद शास्त्रों का कथन है पर कल्पना दिखाई नहीं देती, इसलिए वेद शास्त्रों को हम मिथ्या नहीं कह सकते। एक-एक जन्म एक-एक परदा है। इस प्रकार अनेक जन्मों के परदों का आवरण हो जाने से मूल वस्तु का विचार ज्ञात नहीं हो पाता। निश्चित रहस्य गूढ़ होते हैं। वे विवेक के बिना अवगत नहीं होते। पिंड में स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण रहता है। स्त्री को स्त्री का आकर्षण नहीं और पुरुष को पुरुष का आकर्षण नहीं होता। पिंड में भिन्न वासना होती है। वासना अभिन्न है पर देह-सम्बन्ध के कारण वह भिन्न दिखाई देती है। देह-सम्बन्ध नष्ट होते ही, वासना का भेद भी समाप्त हो जाता है। सारी उपाधियाँ स्त्री के कारण है। प्रेम प्रीति से प्रपंच में जकड़ कर रखना यह स्त्री का ही काम है। पुरुष का विश्वास स्त्री पर और स्त्री के संतोष का स्थान स्त्री। इस प्रकार वासना ने दोनों को एकत्र बाँधकर रखा है। मूल माया में शिव-शक्ति का सूक्ष्म भेद है। वही उत्पत्ति कार्य का का कारण है। सूक्ष्म की शिव-

शक्ति स्थूल में नर-नारी के रूप में प्रकट होती है। इसी से ८४ लाख योनियों का निर्माण हुआ है। शिव-शक्ति का जो स्वरूप यहाँ बताया गया है, उसका विवेक पूर्वक अच्छा मनन-चिन्तन करना चाहिए।

तीसरा समास

श्रवण-निरूपण

वक्ता कहते हैं—सब श्रवण में श्रेष्ठ अध्यात्म का श्रवण है। मत एकाग्रकर ग्रन्थ के तत्वों का मनन करें। प्रथम श्रवण का मनन और बाद में मनन का निदिध्यास (चिन्तन) करें। निदिध्यास होते होते ही साक्षात्कार हो जाता है। मोक्ष उधार सौदा नहीं है। प्रत्यय का तत्काल अनुभव लेना चाहिए। नाना रत्न, मोती हीरे, सुवर्ण आदि की परीक्षा बड़ी सावधानी से की जाती है। उससे करोड़ गुनी सावधानी और बुद्धि की सूक्ष्मता अध्यात्म ग्रन्थ के विवरण के लिए आवश्यक है। कथा-कहानियाँ, अवतारों के चरित्र-वर्णन आदि से आध्यात्म-विद्या श्रेष्ठ है। कथा पुराणों से क्या मिलने वाला है! पुण्य लाभ की बात कही जाती है पर पुण्य कुछ दिखाई नहीं देता। आध्यात्म की बात ऐसी नहीं है इसी लोक में तत्काल मोक्ष-फल देने वाला अध्यात्म ही है। इसका अनुभव होते ही अनुमान ग्रासित संशय-ज्ञान नष्ट हो जाता है बड़े बड़े लोगों ने आत्म-लाभ के लिए ही प्रयास किये हैं। उस आत्मा की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? युग युगान्तर से वह अकेला आत्मा ही त्रैलोक का संचालन कर रहा है।

आत्म-ज्ञान सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। पृथ्वी, आप, तेज, वायु इन तत्वों से आकाश तत्व (अन्तरात्मा) अलग है। वह सब तत्वों का बीज है। वायु तत्व के परे जो विचार करेगा, उसे अन्तरात्मा निकट ही प्रतीत होगा। वायु के परे आकाश और उसके परे गुण माया। बाद में प्रकृति-पुरुष

अर्थात मूल माया है । यह सब उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं और सूक्ष्म रूप में ही उनका अनुभव लेना चाहिए । माय के जंजाल में जकड़े हुए जीव इतना सूक्ष्म विचार प्रायः नहीं कर पाते पर जो विवेक पूर्वक सूक्ष्म में प्रवेश करेगा, वह निःसंदेह होगा । पदार्थ रमणीय दिखाई देते हैं पर वे नाशवान हैं । पदार्थ-ज्ञान सब अनुमानिक है । अतः इन सबको छोड़कर निरंजन का शोध करना चाहिए । अष्टांगयोग और पिंड ज्ञान निम्न श्रेणी का है । उससे तत्व ज्ञान ऊँचा है और आत्मा ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है । मूल माया के अन्त में विमान ब्रह्म है, जिसमें आदि संकल्प उठता है । उसी में साधक को उपासना-योग से सर्वस्व अर्पण करना चाहिए । उसके पार निश्चल ब्रह्म है, जो सर्वत्र व्याप्त है । अत्यन्त सूक्ष्म विचार से पिंड-ब्रह्माण्ड का निरसन होने पर ही उसका आकलन होता है । सारे तत्वों का विश्लेषण कर सारासार विचार से शुद्ध ब्रह्म का अनुभव लेना चाहिए ।

चौथा समास

अनुमान-वक्तृत्व-निरूपण

वक्ता कहते हैं—यदि कोई श्रोता 'बहुजन-सुखाय बहुजन हिताय' कोई कल्याण की बात पूँछे, तो वक्ता को उससे दुखी नहीं होना चाहिए तथा भाषण करते समय विषयान्तर न करे । वक्ता को श्रोता की प्रत्येक शंका का उचित समाधान करना चाहिए विषय-प्रतिपादन में परस्पर विरोधी बाते न हों । स्थूल से सूक्ष्म तक के सारे सिद्धान्तों का वक्ता को कुशलता पूर्वक विवेचन करना चाहिए ताकि विषय का पूर्ण ज्ञान श्रोता को होकर उसे समाधान प्राप्त हो सके । सूक्ष्म तत्वों के जो जो नाम लिये जांय; उनके रूप का यथार्थ ज्ञान श्रोताओं को कराना ही विवेकवान वक्ता का कर्तव्य है ।

विवेकी वक्ता विषय का अधिक विस्तार या चर्चित चर्वण न करते हुए अनिर्वचनीय ब्रह्म का स्वरूप श्रोताओं को भली भाँति समझा देता है ।

अन्य तथा कथित विद्वान वक्ता कभी ब्रह्म को निश्चल बतलाता है, कभी उसे साक्षी बताता है, कभी निश्चल को चंचल और चंचल को निश्चल कहता है। इस प्रकार वह असम्बद्ध बातें किया करता है और निश्चयात्मक कुछ नहीं कहता। ऐसा वक्ता जो स्वयं असमंजस में पड़ा हो, श्रोताओं को निश्यचात्मक ज्ञान कैसे दे सकता है ? ऐसा वक्ता भ्रम को परब्रह्म बताता है तथा परब्रह्म को भ्रम और ज्ञान का दम्म करता है। वह शास्त्र-वचनों का आधार लेकर बड़ा पांडित्य पूर्ण प्रवचन करता है, पर अनुभव के नाम पर शून्य होता है। धन प्राप्ति के लिए पंडिताई बताने वाले ये पामर ब्रह्मज्ञान क्या बतायेंगे ? जैसे कोई वैद्य अपनी औषधि की प्रशंसा करता है, पर उससे यदि रोगी को लाभ नहीं होता। वैसे ही वक्ता खूब लम्बी चौड़ी बातें करता है पर श्रोताओं को यदि उससे प्रचीति और समाधान नहीं मिलता तो उसका क्या उपयोग जिस ज्ञान द्वारा सार-असार का निर्णय नहीं हो सके वह ज्ञान नहीं, अज्ञान ही है। 'सर्व ब्रह्म' प्रतिपादन करने वाले के लिए पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, विचार-अविचार सब समान ही होंगे फिर उसमें सत्य और मिथ्या का विश्लेषण ही कैसे हो सकता है ? सर्वसंग परित्याग और स्वेच्छाचार को एक मानने पर साधक क्या निश्चय करे ? अत: सावधान और स्वानुभवी वक्ता से ही ज्ञान ग्रहण करना चाहिए जिससे स्वरूप लाभ की प्रचीनि तत्काल हो सके।

पांचवां समास

अजपा-साधना

वक्ता कहते हैं—प्रत्येक प्राणी के श्वासोच्छ्वास नित्य चलते रहते हैं। उनकी ओर एकाग्रता से ध्यान देना 'अजपा' जप कहलाता है। विचार करने पर इसका साधन कोई कठिन नहीं है। मुख में और नासिका में प्राण होते हैं, जिसके श्वास-उच्छ्वास दिन रात लगातार

चलते रहते हैं। इनका हमें सूक्ष्म दृष्टि से नित्य निरीक्षण करते रहना चाहिए। मूल में स्वर एक ही है। उसी तार, मंद्र और घोर (षड्ज के तीन प्रकार) ऐसे तीन भेद हुए हैं। इन स्वर-भेदों से भी अजपा का विचार सूक्ष्म है। नाभि स्थान में स्थित परावाणी के इस पार और हृदय स्थान में स्थित पश्यन्ति वाणी के नीचे अर्थात नाभि और हृदय के बीच में स्वर का उद्गम-स्थान है। निवान्त स्थान पर बिल्कुल शान्त और स्थिर होकर बैठने पर इसका अनुभव मिलता है। वायु को भीतर खींचे और फिर बाहर छोड़ें। मौन रहें और सूक्ष्मता से देखें तो भीतर से 'सोऽहं सोऽहं' यह ध्वनि सुनाई देगी। बिना उच्चारण के ये शब्द प्रकट होते हैं, इसलिए इसे 'सहज-शब्द' कहा गया है। इन शब्दों का अनुभव होता है, पर उनका नाद नहीं होता। इन्हें भी छोड़कर जो शान्त रहता है, वही सच्चा मौनी है। योगाभ्यास कर जो साधना किया जाता है, वह इसी के लिए है। ध्यानस्थ होने पर यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि 'सोहं' शब्द का भीतर अखंड जप चल रहा है। श्वास लेते समय 'स' और बाहर छोड़ते समय 'अहम्' इस प्रकार 'सोऽहं' का निरंतर जप चलता रहता है।

सृष्टि में जारज, अंडज, स्वदेज और उद्भिज इस भाँति चार प्रकार के प्राणी हैं। इस सब प्राणियों का यह जप सहज रूप से चला करता है। बिना श्वासोच्छ्वास के प्राणियों का जीवन असंभव है। इस सहज-जप को छोड़कर प्रयत्न पूर्वक अन्य जप करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे सहज निश्चल परब्रह्म परमात्मा है। प्रयत्न से गढ़ा हुआ ईश्वर फूटेगा, टूटेगा। ऐसे नाशवत ईश्वर पर कौन विश्वास करेगा ? जगद्-व्यापी अन्तरात्मा का दर्शन होने पर सहज ध्यान अखंड हुआ करता है। उसी के इच्छानुसार प्राणियों के जीवन-व्यवहार चला करते हैं।

हमारा खान-पान, भोग-विलास आदि द्वारा उसी का समाधान होता है। बुद्धि पूर्वक अर्पण किये ही नहीं, अपितु अनजाने। किए हुए सब कर्म भी उसी आत्माराम को समर्पित होते हैं। अपने उदर में

वैश्वानर रूपी जो यज्ञ पुरुष है, उसी को हम सब आहुतियां अर्पण करते हैं। सब कुछ उसी के आदेशानुसार होता है। जप-ध्यान स्तुति-स्तवन आदि क्रियाए हमसे सहज भाव से हो जाती हैं। जो जो कार्य सहजभाव से सम्पन्न होते हैं, वे सब भगवान को मान्य होते हैं। जो सहज हो रहा है. उसी को प्रयत्न पूर्वक जानने के लिए लोग हठयोग का अवलम्ब करते हैं।

धन कहां गड़ा हुआ है, इसका ठीक पता न होने के कारण मनुष्य व्यर्थ ही दारिद्रता का अनुभव करता है। वह जहाँ बैठा हुआ है, उसी के नीचे धन का हंडा गड़ा हुआ है पर अज्ञान वश वह भिखारी के समान जीवन व्यतीत कर रहा है। क्या किया जाय ? उस बेचारे को इस बात का पता ही नहीं है। सब ओर धन ही धन भरा पड़ा है पर लक्ष्मी निवास में बैठा हुआ भीं वह अभागी, दरिद्री बना हुआ है। यह सब अविवेक के कारण है। हृदय में नारायण होने पर लक्ष्मी कहां जायेगी ? अतः लक्ष्मी जिनकी दासी है, उन नरायण भगवान को ही अंतःकरण में धारण करें।

छठवां समास

देहात्म निरुपण

वक्ता कहते हैं—अंतरात्मा देह में रहकर अनेक सुख दुःख भोगता है और अन्त में एक वारगी शरीर छोड़कर चला जाता है। युवावस्था में शक्ति के रहते हुए सुख भोगता है और बुढ़ापे में शक्ति का क्षय होने पर दुःख भोगता है ये दुःख बड़े दुर्धर होते हैं। मृत्यु की इच्छा न होने के कारण देह त्याग करते समय हाथ पैर पटकता है। देह और आत्मा के समागम में कुछ सुखोपभोग कर आत्मा अन्त समय झींकते हुए देह-त्याग करता है। यह आत्मा भी दो दिन का भ्रम है पर कोई उसे ही

परब्रह्म मानते हैं। अल्प समय तक सुख भोगनेके बाद दुःख निश्चित ही है। जन्म से लेकर अब तक कितने दुःख भोगने पड़े हैं, इसका विचार करना चाहिए। कुछ सुख कुछ दुख यह जीवन भर का अनुभव है। अनेक बातें इच्छा के विरुद्ध हुआ करती हैं। अनेक व्यक्तियों के वियोग सहन करने पड़ते हैं। अनेक कृमि-कीटक, बिच्छू, साँप, शेर, दुर्जन आदि से कष्ट भोगने पड़ते हैं। अन्तरात्मा रोते धोते, चीखते-चिल्लाते एवं तड़फड़ाते प्राण देता है, और उसे ही अज्ञानी लोग पर ब्रह्म कहते हैं।

पर ब्रह्म अचल है। वह किसी को दुःख नहीं देता। उसके पास निंदा-स्तुति को स्थान नहीं। बाजार में अनेक चीजें बिका करती हैं पर भले आदमी उनमें से अच्छी वस्तुओं का चुनाव करते हैं। इसी प्रकार अन्न-वस्त्र, देवतार्चन, ब्रह्म ज्ञान आदि प्रारब्ध के अनुसार ही मनुष्य को मिला करते हैं। सभी लोग संसार में जैसे तैसे अपना जीवन-निर्वाह कर लेते हैं और सुख दुःख में जीवन काट लेते हैं पर राजा का वैभव किसी अभागी को कैसे प्राप्त हो सकता है? अन्त में सबको मृत्यु का दुःख समान रूप से भोगना ही पड़ता है। युवावस्था में सुखों का उपभोग किये जाने से अन्त समय के दुःख भोगने में बड़ा कष्ट होता है। आत्मा खुशी से शरीर छोड़ना नहीं चाहती। मृत्यु का दुःख सभी को कष्ट दायक होता है। रूप की सुन्दरता चली जाती है, शरीर—बल क्षीण हो जाता है और पास कोई न रहने पर तड़प कर मरना पड़ता है। अन्त समय सब दीन बन जाते हैं। ऐसा यह अन्तरात्मा दुर्भागी और दुःख कारक है। उसे 'भोग कर अभोक्ता' कहने वाले अज्ञानी हैं। वास्तव में अन्त समय पर प्राणी की दीन न हीन भिखारी जैसी करुणा जनक दशा होती है।

सातवाँ समास

जग-जीवन-निरुपण

वक्ता कहते हैं—जल मूलत: निर्मल होता है पर अनेक वृक्ष-लताओं के संसर्ग से वह खट्टापन, मीठा, चरपरा, कड़वा आदि हो जाता है। वैसे ही आत्मा आत्म रूप से निर्विकार और निर्मल है पर देह के संसर्ग से वह विकार ग्रस्त हो जाता है और अहंकार के वश होकर कुमार्ग पर चलने लगता है। सत्संग मिलने पर वह, जैसे गन्ने के जल में मिठास आ जाती है, मीठा और भला बन जाता और दुर्जनों के संग में विषवल्ली के समान दुर्गुणी बनकर नष्ट हो जाता है।

आत्मा स्वयं अपना मित्र और वही अपना शत्रु भी है। इसलिए हमें विवेक पूर्वक अपने कल्याण अकल्याण की बात सोचकर स्वयं अपना उद्धार कर लेना चाहिए। ऐसा ही मनुष्य धन्य है। पुण्यवानों का सत्संग और पापियों को दुःसंग मिलता है। सद्गति और दुर्गति का कारण संग ही है। इसलिए हमेशा सत्संग का लाभ लेना चाहिए। हमें स्वयं अपने उद्धार की चिंता करनी चाहिए और ज्ञानी पुरुष अपनी विवेक बुद्धि से कैसे मुक्त हो जाते हैं, इसका मनन-चिंतन करना चाहिए। उत्तम संगति से सुख और अधम संगति से दुःख मिलता है। तब आनन्द छोड़कर हम दुःख शोक देने वाले मार्ग का अनुकरण क्यों करें ?

यह वसुन्धरा पृथ्वी बहु रत्ना है अर्थात इस पृथ्वी पर अनेक ज्ञानी सत्पुरुष रहते हैं। अत: ऐसे सज्जनों और ज्ञानियों के सत्संग का लाभ लेना न चूकें। इस संसार में दुखी-दुर्बल और सुखी-सम्पन्न अज्ञानी और ज्ञानी दोनों प्रकार के लोग रहते हैं। कुछ सम्पन्न व्यक्ति अ तत:

विनाश को प्राप्त हैं होते और दुखी दरिद्री भाग्यशाली बन जाते हैं। संसार का कालचक्र इसी प्रकार चलता रहता है। धन-संपत्ति क्षण भंगुर है। आयु क्षीण होती रहती है। बाल, युवा और वृद्धाकाल का समय बीतने पर मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है यह जानते हुए मनुष्य को अपना जीवन सत्संग द्वारा सार्थक करना चाहिए। प्रयत्न से ही कार्य सिद्धि होती है यह सोचकर मनुष्य अपने दुखों का विवेक पूर्वक स्वयं निराकरण करे।

आठवां समास

तत्व सार

वक्ता कहते हैं—नाभिस्थान में जो प्रथम स्फुरणा होती है, वह परावाणी। वही हृदय-स्थान में ध्वनि रूप धारण कर पश्यन्ती बन जाती है। कंठ में आकर वह नाद रूप में मध्यमा कहलाती है और जिव्हा पर उद्‌गार रूप में वही वैखरी बन जाती है। नाभि-स्थान में ही सहज स्फुरणा होती है। हाँ या नहीं, करूं या न करूं इस प्रकार की चंचल वृत्ति ही मन है। करूंगा या नहीं करूंगा इस प्रकार का निश्चय करने वाली बुद्धि है। जिसका निश्चय किया, उसका चिंतन करना चित्त का काम है और कार्य का अभिमान करते हुए कार्य में प्रवृत होना ही अहंकार है। यह अंत.करण पंचक कहलाता है। इस प्रकार पाँच पंचक होते हैं—अंत:करण, पंचक, प्राण-पंचक, ज्ञानेन्द्रिय पंचक, कर्मेन्द्रिय पंचक और विषय-पंचक। अंत:करण पंचक, के पाँच तत्व अन्तकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। प्राण-पंचक के पांच तत्व व्यान, समान, उदान, अपान, और प्राण। ज्ञानेन्द्रिय पंचक के पाँच तत्व—श्रवण, त्वचा, चक्षु, जिव्हा, घ्राण। कर्मेन्द्रिय पंचक के पाँच तत्व – वाचा, हस्त, पाद, शिस्न और गुद तथा विषय-पंचक के

पाँच तत्व—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध । इस प्रकार पांचों पंच को के पच्चीस तत्व मिलकर सूक्ष्म देह बनता है ।

अब स्थूल देह के २५ तत्व सुनिये । आकाश के—काम, क्रोध, शोक, मोह, भय । वायु के—चलन, वलन, प्रसारण, निरोध, आकुंचन । तेज के—क्षुधा,तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन । आपके –शुक्र, शोणित, लार, मूत्र, स्वेद । पृथ्वी के–अस्थि, मांस, नाड़ी, रोम, त्वचा ।

सूक्ष्म देह के २५ और स्थूल देह के २५ तत्व बताये । इसके अतिरिक्त तीसरा कारण देह अर्थात अज्ञान और चौथा महाकारण देह अर्थात ज्ञान है । इन चारों देहों का निरसन होकर देह से आत्मा अलिप्त है, ऐसा ज्ञान हो जाने से अर्थात अहंकार भाव नष्ट होने से ये परब्रह्म शेष रहता है, उससे अनन्यता का अनुभव करना ही आत्मनिवेदन है । इस विवेक-धारणा से जन्म-मृत्यु का बन्धन टूट जाता है, नर-देह सार्थक होता है और परब्रह्म की प्राप्ति होती है । अतः इस पंचीकरण का निदिध्यास करते रहना चाहिए । इसी में जीवन की धन्यता है ।

नवाँ समास

शरीर चतुष्टय निरूपण

वक्ता कहते हैं –स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ये चार देह हैं । जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया ये चार देह की अवस्थाएं है । विश्व, तैजस, प्राज्ञ और प्रत्यागात्मन ये चार देह के अभिमानी हैं । नेत्र, कंठ, हृदय और मस्तक ये उनके स्थान हैं । स्थूल भोग, आनन्द भोग और आनन्दावभास भोग ये चार देहों के चार भोग है । अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा ये उनकी चार मात्राएं हैं । तमोगुण, रजोगुण, सत्वगुण और शुद्ध सत्वगुण ये चार देह के गुण हैं । तथा क्रिया शक्ति, द्रव्य शक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति ये चार देह की शक्तियाँ हैं ।

इस प्रकार चार देहों के ८×४=३२ तत्व हुए। पीछे बताये हुए स्थूल देह के २५ और सूक्ष्म देह के २५ मिलकर ५० तत्व होते हैं। उन्हें मिलाकर सब ८२ तत्व हुए। ये सारे तत्व मायिक हैं। अतः हम उन्हें पहचान कर केवल उनके द्रष्टा बनकर रहें। द्रष्टापन अर्थात साक्षी भाव यही ज्ञान है। इसी ज्ञान से हम अज्ञान का निराकरण करें और उपरोक्त ८२ तत्वों का निरसन करते हुए अन्ततः ज्ञान का भी साक्षी भाव से लोप कर नित्संग होकर रहें।

विराट, हिरण्य गर्भ, अव्याकृत और मूल माया ये ब्रह्माण्ड के चार देह भी केवल समझाने के लिए कल्पित ही हैं। इन सबका भी विवेक द्वारा निरसन करना चहिए आत्म-अनात्म विवेक अर्थात सार-असार-विवेक द्वारा ब्रह्माण्ड का पूर्ण निरसन करें और ब्रह्म का अनुभव कर आत्मनन्द मे लीन हो जावें। यही मोक्ष है, यही परब्रह्म की प्राप्ति है, यही ब्रह्मानन्द है। स्थूल-सूक्ष्म देह के सारे तत्वों का खूब मनन-चिन्तन द्वारा मूल वस्तु परब्रह्म का अनुसंधान कर मुक्तावस्था का अनुभव लेना चाहिए।

दसवां समास

अज्ञानी सिद्ध लक्षण

वक्ता कहते हैं—जब द्वीप आदि सात द्वीप मिल कर पृथ्वी है और पृथ्वी के चारों ओर क्षीर-सागर, सुरा-सागर, धृत-सागर, दधि-सागर, इक्षु सागर-क्षार सागर तथा शुद्ध जल के सात समुद्रों का आवरण है। उनके बीच हाटकेश्वर नामक शंकर जी का पाताल-लिंग है। उनको यहीं से नमस्कार है। उनकी महिमा अपार है पर वहाँ तक पहुँचना मनुष्य के लिए असंभव हैं। देह द्वारा उनका दर्शन नहीं हो सकता। अतः उनका विवेक द्वारा ही ध्यान करना चाहिए। सात समुद्रों के आवरणों के उस पर यह विस्तीर्ण भूमि है। वहाँ भूमंडल के खंड टूट

कर अलग अलग हो गये हैं। वहाँ पहुँच नहीं सकते। अतः विवेको पुरुषों के सत्संग द्वारा घर बैठे ही ब्रह्माण्ड का ध्यान कर संतोष मानना चाहिए। जो चर्म-चक्षु से दिखाई नहीं दे सकता उसे ज्ञान-चक्षु से देखना चाहिए। ब्रह्माण्ड के बीच में भूमि का अवरोध है, इसलिए ऊपर आकाश और नीचे पाताल ऐसे भेद दिखाई देते हैं पर उस अव-रोध की कल्पना त्याग देने पर सर्वत्र आकाश ही भरा हुआ प्रतीत होगा।

वह उपाधि रहित आकाश ही परब्रह्म है। दृश्य सृष्टि का वहाँ कोई स्थान नहीं। दृष्टि से जो दिखाई देता है, वह दृश्य और मन से जो भास होता है वह आभास। वह परब्रह्म दृश्य और आभास से परे है। वह इन्द्रिय और मन के परे है। वहाँ केवल विवेक से ही पहुँचा जा सकता है। आकाश के परे केवल ब्रह्म को देखने वाले ज्ञाता विरले ही होते हैं।

गुण नाशवान और निर्गुण अविनाशी है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने में विशेषता है। जो चर्म-चक्षुओं से नहीं दिखाई देता, उसे श्रवण, मनन एवं चिन्तन से जानने का प्रयत्न करना चाहिए। अष्टधा प्रकृति से यह विविध निर्मित हुई है पर इसका समग्र दर्शन कैसे हो सकता है? जो मूर्ख है, अज्ञानी है, उसे विवेक द्वारा सार-वस्तु का निर्णय करना नहीं आता। वह विवेक और अविवेक को एक समान समझता है। नाना प्रकार के ज्ञान से मोक्ष का सच्चा मार्ग नहीं मिल सकता।

परमात्मा ने सृष्टि में असंख्य भेद निर्माण किये हैं। सृष्टि भेद पर ही आधारित है। अतः सच्चा परीक्षक ही उसकी परीक्षा कर सत्य-असत्य का निर्णय कर सकता है। अज्ञानी जन उनकी पहचान कैसे कर सकते हैं? संत-सज्जन असार वस्तु की क्या परख करेंगे? जो स्वयं निर्मल नहीं है, वह दूसरे को निर्मल बनने का उपदेश कैसे दे सकता हैं? वह वेद, शास्त्र, पुराण आदि का ज्ञाता होने पर मूर्ख ही माना

जायगा। इसलिए प्रथम आचार विचार शुद्ध होने चाहिए। बाद में निर्मल अन्त:करण से सत्संग द्वारा सत् वस्तु का मनन-चिंतन करना चाहिए। आचार विचार में समता और शुचिता होने पर ही हम परमात्मा का अनुसंधान एवं साक्षात्कार कर सकते हैं। नियमानुसार चलने वालों को भी जिसका पार पाना कठिन है, उसे भ्राष्टाचारी अविवेकी पुरुष कैसे पा सकते हैं? पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक विवेक-अविवेक एक सा कैसे हो सकता है? अमृत और विष में समानता कैसे होगी? विष प्राण हरण करता है, कुकर्म से फजीहत होती है, सत्कर्म से कीर्ति होती है। जिसे इहलोक और परलोक का विवेक नहीं, उसका जन्म व्यर्थ है। इसलिए सदा सत्संग का लाभ लेकर सत्शास्त्र के श्रवण मनन से जीवन को परिशुद्ध बनना चाहिए।

●●

अठारहवां दशक

पहला समास

बहुदेव स्थान निरूपण

बुद्धिदाता श्री गणेश और सभी वाचाओं को स्फूर्ति प्रदान करने वाली शारदा को वन्दन कर इस समास में अनेक उपास्य देवताओं को धन्यवाद दिये गये हैं।

चतुर्मुख ब्रह्मा धन्य हैं, जिन्होंने यह सारी सृष्टि-रचना की और भिन्न-भिन्न वेदशास्त्रों को प्रकट किया। सारे संसार का पालन-पोषण करने वाले और सब जीवों का परिवर्धन करने वाले विष्णु भगवान धन्य हैं। भोले, वदान्यवर, राम नाम का अखण्ड जप करने वाले शङ्कर जी भी धन्य हैं। इन्द्र और यम धन्य हैं। इसी प्रकार अनेक सम्प्रदायों

के विभिन्न उपास्य देवी-देवता धन्य हैं, जिनके आश्रय और कृपा प्रसाद से भक्तों का कल्याण होता है। राम कृष्ण आदि अवतारों की महिमा तो अपार है। उनकी उपासना में लाखों लोग तत्पर रहते हैं। भारत में इस प्रकार नाना प्रकार की उपासनायें चल रही हैं पर इन सब उपासनाओं का मूल्य पुरुष अन्तरात्मा ही है और पूजा आदि सब भोग वस्तुयें उसे ही प्राप्त होती हैं।

सब देवता और उनकी शक्ति का मूल अधिष्ठाता अन्तरात्मा ही है और सब प्रकार के वैभव का भोक्ता भी वही है। स्तुति-निन्दा, कीर्ति-अपकीर्ति आदि सभी भोगों की प्राप्ति अन्तरात्मा को ही होती है। कुछ शरीरों में वह कार्य कर्ता बनता है और कुछ शरीरों में भोग-भोक्ता। भोगी और त्यागी सब कुछ वही है। प्राणी देह को देखकर देहाभिमानी बनते हैं और मुख्य संचालक अन्तरात्मा को जो सबमें समान रूप से विद्यमान है, भूल जाते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

इस सर्वव्यापी अन्तरात्मा की प्रवृत्तियों को देखने वाला कौन है? अगाध पुण्य के बल पर ही उन अनिर्वचनीय परब्रह्म परमात्मा का अनुसंधान हो सकता है। यह अनुसंधान ही असंख्य पापों का नाश करता है। इसलिए अन्तर्निष्ठ ज्ञानी पुरुष उसका ही शोध किया करते हैं। अन्तर्निष्ठ पुरुष ही इस संसार-सागर से सुखपूर्वक पार उतर जाते हैं और अन्तर्भ्रष्ट अर्थात बहिर्मुख जन बाह्य लोकोपचार में ही फँसे रहकर जीवन को व्यर्थ खो देते हैं।

दूसरा समास

सर्वज्ञ संग निरूपण

वक्ता कहते हैं—अज्ञान अवस्था में जो कुछ प्रमाद हुआ सो हुआ पर अब जान लेने पर तो कम-से-कम अनुशासन से चलने का निश्चय

करें ज्ञानी पुरुषों के सत्सङ्ग से ज्ञान की सब बातें अपने आप हममें प्रकट होने लगती हैं। ज्ञानी पुरुषों की सेवा करें और उनके सदुपदेशों को जीवन में उतारें। उनसे लेखन-वाचन का पाठ लें। उनसे अपनी शङ्काओं का समाधान करायें ज्ञानियों के सन्निध्य में रहकर कष्टमय जीवन बिताते हुए सदा आनन्द मग्न रहने का अभ्यास करें। उनका ही एकमात्र आश्रय लें। उनके रहन-सहन का अनुकरण करें। उनके कथा-वार्ता, उपदेश, मुक्ति, सम्भाषण, व्यवहार आदि से उचित बोध लें। वे लोगों की समस्याओं का किस प्रकार समाधान करते हैं, लोगों को किस प्रकार सन्तोष दिलाते हैं, इसका सूक्ष्मता से अध्ययन और अभ्यास करें। उनके उत्साह, उमङ्ग, धैर्य, शौर्य आदि सद्गुणों का निरन्तर निष्ठापूर्वक सहज भाव से अनुकरण करने का प्रयत्न करें। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, सहिष्णुता, दीर्घ सूत्रता, अध्यात्म-विवेक, भक्ति, योग, ज्ञान, ध्यान, अनाशक्ति, वैराग्य आदि गुणों को धारण करे। सबका साक्षी जो अन्तरात्मा है, उसके गुणानुवाद गाते रहें। उस जगदीश्वर ने संसार में जो-जो वस्तुयें निर्माण की है, उनके मूल-तत्व का अनुसन्धान कर इन सब पदार्थों से, यहाँ तक कि शरीर, प्राण, मन, इन्द्रियों से भी अपने को अलिप्त जानें। इन सब बातों का जो अहर्निश अभ्यास पूर्वक ध्यान रखता है, वही सच्चा प्रभु का भक्त है वही जगत का कल्याण कर सकता है। इसलिए हमें संसार के हर काम को पूरी कर्तव्य-भावना एवम् तत्परता से सम्पन्न करते हुए भी अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं भूलना चाहिये। हम शरीर, प्राण, इन्द्रिय यहाँ तक कि अन्तरात्मा भी नहीं, इन सब से परे विश्वात्मा अर्थात चर-अचर सब में व्याप्त परमात्मा के ही अंश हैं और अन्ततः उसी में विलीन होना है। इस तथ्य का सदा ध्यान रखते हुए आत्मानन्द में लीन रहें, परमात्म-सुख-ब्रह्मानन्द का अनुभव करते रहें।

तीसरा समास

निस्पृह प्रेरणा निरूपण

वक्ता कहते हैं—नर देह दुर्लभ है और उसकी आयु भी दुर्लभ है। अतएव उसका नाश नहीं करना चाहिये। आयु को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। हमें हमेशा विवेक से काम लेना चाहिए। विवेक के बिना प्राणी दीन हीन होता है। आलस, प्रसाद और कुसङ्ग से हम स्वयं अपना सर्वनाश कर लेते हैं। मूर्खता, स्वच्छन्दता और अविवेकी युवावस्था का परिणाम ही दैव्यावस्था है। इच्छित पदार्थों का प्राप्त न होना ही दैन्य है। अन्न-वस्त्र उत्तम गुण, शिष्टाचार आदि का अभाव दैन्यावस्था के लक्षण हैं। जिसे समय का घ्यान नहीं, शरीर और मन पर जिसका नियन्त्रण नहीं, जिसे लेखन-वाचन या श्रवण-मनन का अभ्यास नहीं, जो स्वयं मूर्ख होते हुए भी सज्जनों की निन्दा करता है, ऐसे मनुष्य का परमार्थ कैसे सफल होगा ?

अस्तु, जिसे स्वैराचार के पश्चात पश्चाताप हो रहा हो, उसे भविष्य में विवेक का अभ्यास करना चाहिए। उसे मन एकाग्र कर साधन करना चाहिए। दुर्गुणों का त्याग कर सद्गुणों का संग्रह करें। उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अवलोकन कर उनके गहन अर्थ का मनन-चिन्तन करें। अनेक लक्षणों के श्लोक, पद, भजन आदि कंठस्थ (मुखाग्र) करे। इससे मन आनन्दित रहता है। किस अवसर पर क्या कहा जाय इसका विवेक रखें। दूसरों के अन्तःकरण को समझें और जिसे सुनने की इच्छा हो ऐसे ही व्यक्ति को भजन-कीर्तन सुनायें। बिना समय अवसर को देखे चाहे जब गाते रहना मूर्खता का लक्षण है। जिसे जो उपासना प्रिय है, जिसका भजन प्रिय है, उसी का गुणानुवाद गायें। गाने, ताल, स्वर, राग आदि का अच्छा अभ्यास करें ताकि श्रोताओं को उससे आनन्द प्राप्त हो। साहित्य, सङ्गीत के माध्यम से श्रोताओं को प्रेम-सुख का

पान करायें। प्रवचन भजन के साथ-साथ लोगों को उनका अर्थ भी समझाते जायें। पाठान्तर —मुखाग्र भजन आदि का अच्छा अभ्यास करें और आम भाषण-कला द्वारा लोगों को परमार्थ का ज्ञान देते रहें। सत्सङ्ग द्वारा सुनी हुई बातों को खूब ध्यान में रखें उनके अर्थ पर गहरा चिन्तन करें। हमेशा अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का पठन-पाठन करते रहें और उन पर विवेक पूर्वक अनुसंधान करते हुए अनुभव द्वारा परम आनन्द का लाभ उठायें।

चौथा समास

मानव शरीर की श्रेष्ठता

वक्ता कहते हैं—मनुष्य देह के लिए ही सारे व्यापार करता है। भगवद् भक्ति, अध्ययन, ग्रंथ-लेखन, सत्सङ्ग, तीर्थाटन, श्रवण-मनन, कर्म-ज्ञान-उपासना आदि मार्ग, इहलोक, परलोक, विभिन्न साधन, पुण्य-पाप, सन्मार्ग-कुमार्ग, त्याग-भोग, भक्ति-मुक्ति-युक्ति, नाना प्रकार की विद्याएँ और कलायें सब कुछ देह के लिए ही हैं। देह के बिना सब व्यर्थ ही हैं। देह यह ब्रह्माण्ड का फल है। अतः जो प्रभु सङ्कल्प मूल में हुआ था, उसे ही फल में देखना चाहिये। लता के मूल में बीज और फल में भी बीज है। बीच में जल रूप से लता दिखाई देती है। मूल से फल और पुनः फल से मूल, इस प्रकार की सृष्टि का व्यापार चला करता है। देह के बिना कुछ नहीं किया जा सकता, इसलिए देह को सार्थक करना चाहिये। आत्मा के कारण देह और देह के कारण आत्मा इस प्रकार उभय सम्बन्धों से सृष्टि का कार्य चलता है। आत्मा से छिपकर गुप्त रूप से कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता। क्योंकि सब कर्तृत्व आत्मा का ही होता है।

देह में आत्मा का निवास है। देह का सम्मान होते ही आत्मा का सन्तोष होता है और देह को कष्ट देते ही आत्मा दुखी होता है। इस-

लिए जनता में ही जनार्दन का अनुभव कर सब को सन्तोष और सुख देने का प्रयत्न करना चाहिये। पुण्यशील सत्पुरुषों से प्राणी मात्र को सद् विचार प्राप्त होते हैं। और अनेक पुरुष उनके अनुसार चलकर संसार में धर्मस्थापना का महत्कार्य सम्पादन करते हैं। अतः पूजा एवम् सम्मान प्राप्त करने का अधिकार सन्त-सज्जनों को ही है। 'जनता में जनार्दन' मानकर सब को सन्तोष देना चाहिये पर सबका समान रूप से सम्मान नहीं किया जा सकता। अतएव पूज्य पुरुषों की ही पूजा करनी चाहिये तथा अन्य जीवों को सन्तोष देना चाहिये। किसी का भी अन्तःकरण न दुखायें। सब में व्याप्त अन्तरात्मा को यदि कष्ट देंगे तो संसार में हम सुख शान्ति से न रह पायेंगे, इस बात का ध्यान रखें मनुष्य को मनुष्य के आश्रय एवम् सहयोग से ही रहना होगा। परमेश्वर के गुण अनन्त हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। अध्यात्म-ग्रन्थों के अध्ययन से ही उनका ज्ञान एवम् अनुभव हो सकता है।

पांचवां समास

आगामी परीक्षा

वक्ता कहते हैं—किसी बड़े वर्तन में चाहे जितना गल्ला भरा रखा हो, यह वर्तन उसमें से एक दाना भी नहीं खा सकता, उसी प्रकार सैकड़ों ग्रन्थों के केवल पठन अथवा हजारों श्लोकों के पाठान्तर से कुछ लाभ नहीं होगा, यदि उनके अर्थ को हृदयंगम न किया जाय। कई लोग विना रुके सैकड़ों कवित्त, पद, भजन आदि का पाठ करते रहते हैं पर उनका अर्थ पूछने पर बताने में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार के शाब्दिक ज्ञान और अनुमान का कोई मूल्य नहीं है। केवल शब्दावडम्बर में डूब जाना व्यर्थ है। अतः शब्द रत्नों की अच्छी परख कर जो अनुभव सिद्ध हों उन्हें ही आत्मसात करना चाहिये। नाम रूपों को छोड़कर मूल वस्तु का ध्यान करना चाहिए। लेखक के भावार्थ को भली भाँति

समझ लेना चाहिए। बिना अर्थ समझे केवल पाठ करते रहना मूर्खता ही है। बहुत से ग्रन्थ पढ़ लिये पर अनुभव कुछ भी नहीं लिया तो सब पढ़ना व्यर्थ हुआ। जो एक क्षण भी स्वानंद चिन्तन के बिना व्यर्थ नहीं खोता वही सच्चा ज्ञानी है। ऐसा पुरुष संसार में धन्य है। अध्ययन करते समय अध्यात्मशास्त्र के सूक्ष्म शब्दों के गहन अर्थ को ध्यान में रख कर उसका विवेचन करना चाहिए। तथा शङ्काओं का उचित समाधान कर श्रोताओं को सन्तोष देना चाहिये। अनुभव के बिना ज्ञान का उपदेश करना व्यर्थ है। संसार में अन्ततः सत्य का ही सम्मान होता है। अतः सदैव सत्य वस्तु और सत्याचरण का ही आश्रय लेना चाहिए सत्य ही ब्रह्म स्वरूप है और असत्य ही पाप पुंज है। जो अखण्ड साधन एवम् मनन-चिन्तन करेगा, उसे ही इस तथ्य का ज्ञान और अनुभव हो सकेगा। नित्या नित्य विवेक से पिंड का और सरासर विवेक से ब्रह्मांड का विचार करना चाहिए। माया के निरसन के लिए ही सारे प्रयत्न करने होते हैं। माया निरसन होने के बाद फिर विवेक की भी आवश्यकता नहीं रहती। सब कार्य सहज प्रकृति से यथा उचित ढङ्ग से सम्पन्न होने लगते हैं। तत्व-विचार से समाधान होने पर महावाक्य (तत्वमसि) में प्रवेश हो जाता है और आत्म-निवेदन भक्ति से परम आनन्द उपलब्ध होने लगता है।

छठवां समास

श्रेष्ठ व्यक्तियों की पहिचान

(अफजुल खान का वध कर शिवाजी महाराज़ जब श्री समर्थ रामदास स्वामी के दर्शन के लिये आये तब स्वामी जी ने उन्हें यह उपदेश दिया)।

श्री समर्थ कहते हैं—जैसे वस्त्र, अलङ्कार आदि से शरीर को सजाया जाता है, वैसे ही विवेक, विचार और राजनीति से अन्तर को

सजाना चाहिये। शरीर सुन्दर सतेज़ और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होने पर भी यदि अन्तर में चातुर्य एवम् सावधानी न हो तो बाह्य शृङ्गार का कोई मूल्य नहीं। वाचाल, हठी, कठोर भाषी, अहङ्कारी, स्वच्छन्द, शीघ्र कोपी, राजनीति में समन्वय न साध सकने वाला, लुच्चा, बेईमाव, झूठा, पापी, परपीड़क मनुष्य को राक्षस ही समझना चाहिए। अत: उसे पास भी न फटकने दें। जीवन में अनेक प्रकार के अवसर आते हैं, सदा नित्य नियमों का पालन नहीं हो सकता, नित्य-नियमों के पालन से कभी-कभी राजनीति में बाधा होती है। अत: किसी भी बात का अतिक्रम नहीं करना चाहिये और समय तथा प्रसङ्ग के अनुसार व्यवहार करना चाहिये। विवेकी कार्य कर्ता को कभी हठ या दुराग्रह नहीं करना चाहिये हठ करने पर फूट पैदा होती है और फूट पड़ने पर कोई कार्य सफल नहीं हो सकता।

अस्तु, प्रभु तुम्हारे साथ है। खास कर भवानी माता का तुम पर वरद हस्त है। फिर भी कोई भी कार्य विचार पूर्वक ही करना चाहिये। हमेशा सावधान रहे। इससे अधिक और क्या कहें? महान् व्यक्तियों के समीप अनेक लोग आते हैं। उन सब के साथ आत्मीयता का व्यवहार करना चाहिये। ये म्लेच्छ लोग अति दुष्ट हैं और वे कई दिनों से उत्पात कर रहे हैं। अत: उनसे अत्यन्त सावधान रहें। ईश्वर सर्वकर्ता है और जिसे वह अङ्गिकार (स्वीकार) करता है, उसका मनोगत बहुत थोड़े व्यक्ति ही जान पाते हैं। यश, कीर्ति, प्रताप हमारे कर्तृत्व का फल नहीं, परमात्मा की देन है, ऐसा मानें। सावधान होकर महान पराक्रम करना कठिन प्रसङ्ग में धैर्य धारण करना, असामान्य लोकोत्तर कार्यों का बीड़ा उठाना, और उन्हें सफलतापूर्वक सम्पन्न करना यह सब ईश्वरी प्रेरणा से होता है।

यश कीर्ति, प्रताप, महिमा, अनेक सद्गुण, देव ब्राह्मणों के प्रति आदर भाव, जनसेवा, परोपकार वृत्ति, प्रपंच-परमार्थ का समन्वय,

अखण्ड सावधानता, सहनशीलता, प्रजा-पालन, आदि प्रवृत्तियाँ सब 'ईश्वरीय देन' हैं। धर्म-स्थापना करने वाला महापुरुष ईश्वर के ही अवतार हैं। ऐसे अनेक अवतार भूतकाल में हो चुके हैं। वर्तमान में विद्यमान हैं और भविष्य में होते रहेंगे। ऐसे महात्माओं का जन्म भी 'ईश्वरीय देन' ही है। गुण-ग्राहकता, तीव्र तर्क बुद्धि, स्वच्छ विवेक एवं प्रखर धर्म बुद्धि आदि पुण्य श्लोक सत्पुरुषों के दैवी गुण हैं। यह सब ईश्वरी वरदान ही है। इस संसार की अनेक प्रवृत्तियाँ नित्यानित्य विवेक और सारासार विचार की कसौटी पर कसकर ही चलानी चाहिए। इसी के द्वारा इहलोक और परलोक दोनों का साधन सुगम हो सकता है। यही सद्‌गुण-सम्पदा जीवन की सच्ची शोभा है, जीवन की सुगन्ध है और यही जीवन की सार्थकता है। इसे हम न भूलें।

सातवां समास

जन-स्वभाव विवेचन

वक्ता कहते हैं—मनुष्य का स्वभाव लोभी लालची होता है। जब वह किसी देवता की पूजा उपासना प्रार्थना करता है, तो उसके पीछे कुछ पाने की भावना रहती है। मालिक का काम न करते हुए उसकी सिर्फ खुशामद करके वेतन की मांग करना जैसे मूर्खता है, वैसे ही भगवान की निःस्वार्थ भक्ति न करते हुए उससे कृपा प्रसाद की अपेक्षा करना है। बिना परिश्रम के कोई फल नहीं मिल सकता। बिना किये कुछ साध्य नहीं हो सकता। आलस और प्रमाद से कार्य का नाश ही होता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव है। कष्ट का दुःख सहने के पश्चात ही सुख का मीठा फल प्राप्त होता है। जो प्रथम आलस में पड़े पड़े सुखोपभोग करते हैं, उन्हें बाद में दुःखों का-कष्टों का सामना करना ही पड़ता है। प्रपंच हो या परमार्थ, दोनों में विवेक से ही काम लेना चाहिए। मनुष्य को दीर्घ सूत्री होना चाहिए। आज जो प्राप्त हुआ, उसे आज ही समाप्त कर

देने वाला किसी दिन भूखा रहकर मर सकता है। अतः इस लोक में धन, साधन आदि का संचय और परलोक के लिए परोपकार द्वारा परमार्थ का संचय करना चाहिए। बिना संचय के मनुष्य जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है।

मनुष्य को संसार में रहते हुए जन्म-मरण की यातनाओं से पिंड छुड़ाने के लिए परमार्थ के साधन करते रहना चाहिए। सब कुछ परमात्मा की इच्छा से होता है, ऐसा मानते हुए भी प्रभु की उपासना कर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करते रहना चाहिए। विवेक से ही परमात्म-लाभ हो सकता है। वस्तुतः परमात्मा एक ही है। इसी से अनेक देवी देवताओं का विस्तार हुआ है। अतः हमें एक का ही ध्यान करना चाहिए। अन्तरात्मा और परमात्मा के कर्तृत्व का ठीक अनुसंधान करते रहना चाहिए सामान्य जन जो परमात्मा को न जानते हुए देवताओं का व्यर्थ गुणगान करते हैं, वे केवल अपना अज्ञान छिपाने के लिए ऐसा आडम्बर रचते हैं। परमात्मा को प्राप्त करने में कष्ट भोगना पड़ता है। कष्ट करने वाले ही भाग्यवान होते हैं और केवल बातें बधारने वाले कोरे रह जाते हैं। अभागी के दुर्भाग्य को ज्ञानी पुरुष समझ लेते हैं पर ज्ञानी के सौभाग्य का रहस्य अभागी अज्ञानी नहीं जान पाते। सामान्य जन विवेक हीन होते हैं। अतः उन्हें प्रभु प्राप्ति का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता है। विवेक द्वारा ही इहलोक और परलोक का सुधार हो सकता है।

आठवां समास

अन्तरात्मा के दर्शन

वक्ता कहते हैं—आत्मा (अन्तरात्मा) सविकार तथा चंचल और ब्रह्म निर्विकार और निश्चल है। आत्मा को ही सब लोग ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का पूर्ण निश्चय नहीं कर पाते। ईश्वर एक ही है यह वे

नहीं जानते । वे अनेक देवताओं में मुख्य ईश्वर-तत्व का अनुमान नहीं कर पाते । अतएव विवेक द्वारा मुख्य परब्रह्म-तत्व (परमेश्वर) का शोध करना चाहिए । बहु देवता वाद के चक्कर में न पड़े रहें । समाज में यह प्रथा है कि तीर्थ स्थान में जिस देवता की प्रतिमा होती है, उसीके अनुसार प्रतिमा की घर में पूजा-अर्चा किया करते हैं । पाषाण मूर्ति का विचार करने पर उसका मूल किसी न किसी देवता के अवतार में होता है । अवतारी भगवान किसी न किसी कार्य सिद्धि के लिए अवतरित हुए और कार्य की पूर्णता होने पर अपने मूल तत्व में समा गये । अतएव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनों देवताओं को प्रेरित करने वाला अन्तरात्मा ही वास्तविक कर्ता-भोक्ता है । युग युगन्तर से यह एक मात्र अन्तरात्मा हीं तीनों लोकों का संचालन कर रहा है । इस अन्तर्देव को न पहचानते हुए लोग बाग अन्य देवता की तलाश में तीर्थ क्षेत्रों में भटका करते हैं । तीर्थों की यात्राओं से ऊबने पर फिर मन में मनन-चिंतन करते हैं । कहा करते हैं—"सचमुच, तीर्थ स्थानों में पत्थर और पानी के अतिरिक्त और क्या है ? व्यर्थ ही भटकते रहने से क्या लाभ ?" ऐसा सोचकर बाद में वे सत्संग में प्रवृत्त होते हैं । सत्संग से ही अनेक जिज्ञासुओं को ईश्वर साक्षात्कार अर्थात आत्म-दर्शन हुआ है । विवेकी पुरुष ही इस मर्म को जानते हैं । प्रतिमा-पूजा अज्ञानियों के लिए है । प्रतिमा से प्रारम्भ कर विवेक द्वारा मूल तत्व तक जो अनु-संधान करता है, वही विवेकी सत्पुरुष है । परमेश्वर नाम रूप के परे है । अन्तरात्मा चंचल और ब्रह्म निश्चिल है, भ्रम रहित है । अतः प्रत्यय द्वारा भ्रम निरसन करना चाहिए । हमें ब्रह्म-स्थिति का अनुभव लेना चाहिए उसके बिना सारी क्रियायें व्यर्थ हैं । क्यों सगुण उपासना हो सकती है और सगुण छोड़कर भी निगुण का शोध किया जा सकता है । शान्त चित्त से इस पर मनन-चिंतन तथा निदिध्यास करना चाहिए ।

नवां समास

निद्रा विलास के लक्षण

इस दशक में श्री समर्थ वक्ता स्वामी जी आदि पुरुष परमात्मा को वंदन कर उससे उत्पन्न माया निद्रा के विलास का वर्णन करते हैं। वक्ता कहते हैं कि गाढ़ निद्रा की स्थिति में मनुष्य को भारी उलथ पुथल एवं शब्द-ध्वनि का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। निद्रा में मनुष्य नितान्त साब्ध अर्थात बेहोशी में रहता है। उस पर मच्छर, खटमल आदि कीटकों का आक्रमण होने पर भी प्रमाड़ निद्रा में उसका उसे भान नहीं होता। निद्रा कोई जमुहाई लेता है, कोई किसी करवट सोता है, कोई बड़बड़ाता है, कोई काँखता है। इस प्रकार निद्रा में कई व्यापार चलते हैं।

निद्रा समाप्त होने पर प्राणी पुनः अपने कार्य में मग्न हो जाता है। इसी प्रकार माया रूपी निद्रा का नाश होते ही-माया से जागृत होते ही साधक भी अपनी साधना में निष्ठा से प्रवृत्त हो जाते हैं। इसी साधना क्रम से साधक अन्ततः तत्व-शोधन द्वारा अपने आत्म-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर तुरीयावस्था को पार कर लेता हुआ ब्रह्म रूप हो जाता है।

दसवां समास

कथा श्रवण के विधान

वक्ता कहते हैं—मनुष्य जब कोई महत्व पूर्ण कार्य करने को उद्युक्त होता है, तब उसमें किसी न किसी प्रकार कोई विक्षेप भी आ जाता है। समय अनुकूल होने पर कार्य सिद्धि अनायास हो जाती है। कार्य यशस्वी होते देखकर मनुष्य सुखी और उत्साह पूर्ण हो जाता है। परिणाम स्वपरू उसकी विचार-शक्ति भी प्रबल हो जाती है। सब

प्राणियों को कभी न कभी अनुकूल समय प्राप्त होता ही है। दयालु परमात्मा प्रत्येक को दु:ख के बाद सुख के दिन भी दिखाता है। सभी समय अनुकूल होने पर तो सभी राजा बन जायेंगे। इसलिये परमात्मा ने सब के लिए अनुकूलता के साथ प्रतिकूलता भी निर्माण की है। यदि मनुष्य का विवेक प्रपंच और परमार्थ में जागृत रहे, सो परमेश्वर कृपा से बड़ी अघटित और अद्भुत घटनायें घट जाती हैं। बिना श्रवण किये और बिना शिक्षण के ज्ञान की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। श्रवण करते-करते क्रमशः ज्ञान की प्राप्ति होकर वृत्ति शुद्ध हो जाती है तब चित्त में सार-असार का विवेक जागृत हो जाता है।

श्रवण अर्थात सुनना और मनन अर्थात विचार करना। श्रवण में अनेक विक्षेप आते हैं। कई लोग सत्संग में सोने लगते हैं, कोई अन्य कल्पना और विचार में डूब जाते हैं। जो कुछ सुनें उसका मनन करने पर ही श्रवण का लाभ मिल सकता है। सत्संग के समय अचानक कहीं कोई गड़बड़ी होने से लोग इधर-उधर भागने लगते हैं। कई महिलाओं की ओर ही नजर लगाये रहते हैं, कोई अपने जूतों का ख्याल किये करते हैं। कोई आपस में चर्चा करते रहते हैं। इस प्रकार सत्सङ्ग में अनेक विक्षेप उत्पन्न होने से श्रोताओं को उसका यथा चित्त लाभ नहीं मिल पाता। कोई अहंकारी अपनी ही डींग हाँकता है, कोई क्रोध से उत्पन्न होता है। इस प्रकार अनेक भाँति के श्रोता होते हैं। इसलिए हमें सावधान होकर सत्सङ्ग का लाभ लेना चाहिये। अपने मन को एकाग्र कर शान्त चित्त से वक्ता के विचार श्रवण कर उन पर मनन-चिंतन करें। विवेकी मनुष्य का सभी व्यवहार विवेक पूर्ण होता है। दुर्जनों के पितंडावाद और मूढ लोगों की निन्दा-अपशब्दों से घबराकर सज्जन अपने विवेक को नहीं त्यागते।

मूर्खों को न्याय और विवेक का बोध नहीं होता और उनके द्वारा सत्सङ्ग में विक्षेप हो जाता है पर ज्ञानी सज्जन उनको सहन करते हुए स्वयं महान कार्य में प्रवृत होते हैं और अन्य लोगों को भी प्रेरित करते

हैं। संसार में करोड़ों आदमी निवास करते हैं पर सज्जनों से ही लोगों को समाधान मिलता है। सज्जन सबका मन संतुष्ट करते की कलायें जानते हैं। ऐसे पुरुषों का विवेक अति श्रेष्ठ होता है, जिसे जनसाधारण नहीं समझ पाते। वह महापुरुष अनेक मनुष्यों को प्रेरणा देकर उन्हें संगठित करता है।

परमात्मा को वश करने के लिए ध्यान-धारण का अवलम्बन करना चाहिए। हमें एकाँत में बैठकर उपासना द्वारा विवेक प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। विवेक से ही सब मार्ग उपभब्ध होते हैं। तर्क से ब्रह्मांड का पता लगाया जा सकना है। अन्तरात्मा के समान विशाल होकर सारे ब्रह्माँड का भ्रमण करना चाहिए। जिसने एकाँत-सेवन किया, उसे सर्वप्रथम ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त महानता प्राप्त करने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

उन्नीसवां दशक

पहला समास

लेखन अभ्यास

वक्ता कहते हैं—ब्राह्मणों को अपनी लिखावट बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखनी चाहिए जिसे देखकर चतुर पुरुषों को समाधान हो। अक्षरों को काली भोर स्याही से उठावदार, स्पष्ट और दूर दूर लिखना चाहिए और पंक्तियां एक समान मोतियों की माला के समान सुन्दर होनी चाहिए। सब अक्षर एक समान और एक ही शैली के हों। प्रथम कागज पर सीस से (पेन्सिल से) लकीरें खींच लेनी चाहिए और बाद

में उस पर सुचारु रूप से लेखन करना चाहिए। लेखन में कहीं कोई त्रुटि न रह जाये और न पाठक को लेखक से कोई बात पूछने की आवश्यकता पड़े। छोटे बालकों को तो अक्षर इतने सुन्दर लिखने चाहिए कि उन्हें देखकर लोग चकित हो जाय। कई व्यक्ति इतने महीन अक्षर लिखते हैं कि वृद्धावस्था में वे स्वयं ही उन्हें पढ़ पाते। अतः हमेशा मध्यम श्रेणी के ही अक्षर लिखने चाहिये। कागज के चारों ओर कुछ जगह (मर्जिन) छोड़कर बीच में बढ़िया चमकदार अक्षर लिखने चाहिये। कुछ बरसों बाद कागज भले ही गल जाय पर अक्षर ज्यों के त्यों बने रहें। यों बहुत ही सावधानी के हाथ ग्रन्थ-लेखन करना चाहिए जिसे देखकर दूसरों को भी प्रेरणा मिले और वे लेखक को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करें। हमें पर्याप्त परिश्रम द्वारा लोक-मंगल का कार्य करते हुए अपनी उज्ज्वल कीर्ति जगत में छोड़ जानी चाहिए। साथ ही लोगों के मन में अपने प्रति आदर उत्पन्न हो और उनमें उत्साह पैदा हो ऐसा वातावरण करना चाहिए। लेखन कार्य के लिए सब सामग्री उत्तम प्रकार की तैयार कर रखनी चाहिए ताकि लेखन में किसी प्रकार की त्रुटि न रहने पाये। जहां ग्रन्थ समाप्त हो, वहाँ अच्छे चित्र अंकित करना चाहिए। और ग्रन्थ को सुरक्षित रखने के लिए उस पर अच्छे वस्त्र का बेठन लपेटना चाहिए तथा उसे अच्छी पेटी में सभालकर रखना चाहिए, ताकि ग्रंथ को कोई हानि न पहुँच पावे। इस प्रकार हमें लेखन-कार्य को सुन्दर रूप से सम्पादन करना चाहिए।

दूसरा समास

विवरण निरूपण

वक्ता कहते हैं—पिछले समास में हमने लेखन-क्रिया की बातें बतलाईं। अब लेखन के अर्थ के बारे में विवरण करेंगे। लेख लिखते समय सब प्रकार के सम्वाद भली भांति समझ लेना चाहिए। विभिन्न शब्द, उनके भिन्न भिन्न अर्थ अनेक प्रकार के प्रबन्ध आदि का अच्छा अध्ययन कर लेना चाहिए। अनेक शंकाएं और समाधान, अनेक अनुभव और साक्षात्कार की बातें श्रोताओं को इस प्रकार समझा देना चाहिए कि उन्हें सुनकर वे आश्चर्य चकित हो जायें। प्रपंच हो या परमार्थ दोनों में प्रचति (अनुभव) के विना सारा ज्ञान भ्रम ही है। जैसे धूरे पर पड़ा हुआ कचरा प्रज्वलित नहीं हो सकता, उसी प्रकार अनुभाविक ज्ञान से ज्ञानाग्नि प्रकट नहीं हो सकती। दूसरों के भावों को ध्यान में रखते हुए उनका समाधान करना ही चातुराई का लक्षण है। बिना चातुर्य के विद्या व्यर्थ है। सभा-सम्मेलनों में वाद-विवाद बढ़ाते रहने से किसे समाधान मिल सकता है?

हमें सबकी बातें शाँति से सुनना चाहिए। बीच में नहीं बोलना चाहिए और थोड़े में ही लोगों की भावनाओं को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यर्थ विवाद करने वालों से बचकर रहें और ऐसे लोगों के साथ बहस न करें। हम अपनी नम्रता न छोड़ें, ज्ञान का अहंकार न करें और कोमल शब्दों द्वारा लोगों का हृदय अपने अनुकूल बनावें। बहुमत अपने विरुद्ध होने पर उनसे कलह न करें। अपनी बात यथार्थ होने पर भी उसका आग्रह करते हुए सभा को विघटित न होने दें। हमेशा सत्य शोधन करने में प्रमाद न करें, भ्रष्ट लोगों का का संग त्यागें और सज्ञ होने पर भी किसी पर मिथ्या दोषा रोपण न करें। अति अर्थात दुःखी एवं उत्सुक मनुष्य को अच्छे ग्रन्थों के

उपदेश सुनाकर उसका दु:ख हलका करें। सज्जनों में सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय की रुचि पैदा करें। सभा में बीचों बीच जाकर न बैठें तथा जहाँ सदावर्त बँट रहा हो, वहाँ जाकर भोजन न करें। सदावर्त में भोजन करने से हमारा जीवन तुच्छ और दयनीय हो जाता है।

हम हमेशा अपने उत्तम गुणों का परिचय देते रहें ताकि सब लोगों के साथ हमारा सम्पर्क सध सके पर मैत्री सज्जनों की ही करें। हम अपनी उपासना पद्धति के अनुसार ही उपदेश दें अथवा दूसरों की उपासना के अनुकूल भाषण करें ताकि सबको सन्तोष हो। सबके साथ समान बर्ताव करें। सब प्राणियों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करें। श्रेष्ठ-कनिष्ठ अथवा गरीब-अमीर का भेद भाव मनमें न रखते हुए सबकी आत्मा को सुख पहुंचायें। सूर्यास्त के समय किसी नये गाँव में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

सबके मित्र बनने की कला हमारी जिह्वा में है। उसके द्वारा हम सबके स्नेह पात्र बनें और सज्जनों को ढूंढ़ निकालें। जहां सत्संग हो रहा हो, वहाँ एक ओर बैठकर सारी चीजों का अध्ययन करना चाहिए और भले लोगों के साथ सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। सबमें श्रवण-मनन की रुचि पैदा करनी चाहिए और सब बातों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करना चाहिए।

तीसरा समास

भाग्यहीनों के लक्षण

वक्ता कहते हैं–अब स्थिर अन्त:करण से अभागी के लक्षण सुनिये। अभागियों के लक्षणों का त्याग करने पर भाग्यवानों के लक्षण अनायास उपलब्ध हो जाते हैं। पाप बढ़ने पर दरिद्रता आती है और दरिद्रता आने पर पाप बढ़ने लगते हैं, ऐसा यह दुष्ट चक्र है। अत: अभा-

गियों के लक्षण सुनकर उनका त्याग करें ताकि भाग्यवानों के लक्षण प्राप्त हो सकें।

अभागी मनुष्य आलसी अर्थात प्रमाद-प्रिय होता है। वह प्रयत्न करना नहीं चाहता। उसकी वासना अधर्म में ही रहती है। वह हमेशा भ्रमिष्ट और उनींदा रहता है और अनापशनाप बातें किया करता है। वह किसी को प्रिय नहीं लगता। न उसे पढ़ना लिखना आता है और न उसे व्यवहार-ज्ञान होता है। उसमें धारण शक्ति नहीं होती। वह चीजों को खो देता है, गिरा देता है, तोड़ फोड़ डालता है, भूल जाता है और नाना प्रकार के उत्पात करता है। उसे सत्संग की इच्छा नही होती। वह नीच, दुराचारी, नटखट, पापी लोगों की संगति करता है। सबसे लड़ाई-झगड़ा करता है। दूसरों का अनिष्ट की चोरी की इच्छा रखता है। न्याय-नीति की उसे पर्वाह नहीं होती। हमेशा दूसरों को लूटने की उसकी वासना रहती है। शरीर आलसी, कोई काम धन्धा करने की इच्छा नहीं और सदा नींद लेते रहना, यह सब अभागी के लक्षण हैं। ऐसा व्यक्ति हमेशा कठोर वचनों से दूसरों का दिल दुखाता है, मूर्खता के कारण किसी को प्रिय नहीं होता और सज्जनों का साथ करने में हिचकिचाता है। इसके विपरीत वह दुष्ट प्रवृत्ति वाले लोगों के साथ बिना हिचक हिलमिल जाता है। निंद्य कामों से अधिक प्रीति होती है। दूसरों का अनिष्ट चिंतन करने वाले इस अभागी में परोपकार भावना कैसी हो सकती है? वह पापी, अनर्थकारी भ्रमिष्ट और बिना विचारे बोलने वाला होता है। विश्वास, मैत्री, विद्या आदि का अभाव होते हुए भी उसमें अहंकार भरा रहता है। दूसरों का संतुष्ट रखने से ही हमारा भाग्योदय हो सकता हैं, इस तथ्य पर उसका विश्वास नहीं होता।

ऐसा मूर्ख मनुष्य न स्वयं कुछ जानता है और न जानकार की बात सुनना चाहता है। वह हवाई कल्पनाओं में उड़ा करता है पर उससे उसका कोई लाभ नहीं होता।

जो मनुष्य न्याय, नीति और नियम पूर्वक चलता है, उसे ही बहुजन समाज सम्मान देता है। बिना त्याग के यश-कीर्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जो सज्जनों का संग नहीं करता, स्वयं ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता और जिसे आत्म-कल्याण की चिंता नहीं, वह आत्मघातकी है। जो दूसरों के कल्याण में अपना कल्याण नहीं देखता जिसमें कोई उत्तम गुण नहीं हैं, वह अभागी ही है। यह संसार कार्य-कारण प्रधान है। यहां बिना किये कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। अतः बेकार व्यक्ति हमेशा दुःख सागर में ही डूबा रहता है। जो किसी को प्रिय नहीं ऐसा पातकी व्यक्ति बिना आश्रय के यहां वहां मारा मारा फिरा करता है। इसलिए हमें दुर्गुणों को त्यागकर उत्तम गुणों को धारण करना चाहिए, ऐसा करने पर सब कुछ मन के अनुकूल होने लगता है।

चौथा समास

भाग्यवानों की पहचान

वक्ता कहते हैं—पिछले समास में अभागियो के लक्षण बता चुके हैं। इन्हे विवेक पूर्वक त्याग देना चाहिए। अब भाग्यवानों के लक्षण सुनिये, जो परम सुखदायी होते हैं। भाग्यवान में अनायास अनेक सद्गुण विकसित होते हैं और उसके द्वारा अनेक लोगों का उपकार होता है तथा वह सबको प्रिय लगता है। उसे सुन्दर लिखना और शुद्ध पढ़ना आता है तथा वह सब गूढ़ बातों का अर्थ बतलाना जानता है। ऐसा व्यक्ति कभी किसी का जी नहीं दुखाता, सदा सज्जनों की संगति करता है और अन्य भाग्यवानों के लक्षणों को ग्रहण करता है। वह संदेह के भ्रमजाल में नहीं फंसता। उत्तम गुण वाला व्यक्ति संसार में सबका मित्र होता है। वह कीर्ति प्राप्त करते हुए सदा स्वतन्त्र रहता है। वह अध्ययनशील और दृढ़ प्रतिज्ञ होता है। वह नम्रतापूर्वक प्रश्न

करता है और जो अच्छे उपदेशों के अनुसार अपना आचरण रखता है। ऐसा मनुष्य सर्वमान्य होता है और उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

ऐसा महा-पुरुष उज्ज्वल पुण्य शशि होता है। वह लोक प्रिय, परोपकारी होता है फिर उसे इस भूमंडल में किस बात की कमी हो सकती है? अनेक लोग उससे सहायता की अपेक्षा करते हैं और वह सबकी सेवा के लिए सदा तत्पर रहता है। उसे किसी का अभाव देखा नहीं जाता। चौदह विद्याएं और चौसठ कलायें उसको उपलब्ध होती है। वह संगीत भी जानता है और अध्यात्म में भी उसकी उत्कट अभिरुचि होती है। वह सबसे नम्रता पूर्वक व्यवहार करता है। वह न्याय नीति से चलता है भजन पूजन करता है। ऐसे भाग्यवान को दारिद्रय आदि का कष्ट कैसे हो सकता है? ऐसा पुरुष जिस समाज में होता है, उसमें कलह नहीं होते। वह प्रपंच के साथ साथ राजनीति में भी प्रवीण होता है और परमार्थ में अध्यात्म का उत्कृष्ट विवरण करता है। जो दूसरों के अच्छे गुणों का भोक्ता होता है, वही भाग्यवान है। उसके आचार–विचार एक से होते हैं। वह कभी दुरङ्गी चाल नहीं चलता। वह सर्वत्र धन्य होता है।

ऐसा पुरुष कभी ऐसा व्यवहार नहीं करता, जिससे दूसरे को दुःख हो। वह सदा विवेक से काम लेता है। कर्म, उपासना, ज्ञान, वैराग्य स्थिर बुद्धि आदि सद्गुणों से वह सम्पन्न होता है। जैसे घट घट में आत्माराम का निवास रहता है, वैसे ही वह सर्वातर्यामी प्रिय हुआ करता है। जैसे छोटे-बड़े सब कोई अपने अपने काम में तत्परता से जुट जाते हैं, वैसे ही वह परमार्थ कार्य में निमग्न रहता है। वह दूसरों के सुख से सुखी होता है। वह सबको सुखी देखना चाहता है। जैसे भिन्न भिन्न स्वभाव के बालक होने पर भी पिता का सब पर समान प्रेम होता है, उसी प्रकार महापुरुष सबके कल्याण की चिंता करता है।

वह किसी का बुरा नहीं चाहता। जो निर्लोभी है और कितना भी धिक्कार किये जाने पर जो अन्तर में निश्चल रहता है। वही महापुरुष है। नश्वर एवं मिथ्या देह की निंदा से उसे भला क्या दुःख हो सकता है ? वह अपने को देह से सर्वथा अलिप्त मानता हैं। मनुष्य को कुछ न कुछ उत्तम गुणों का परिचय देना चाहिए। उत्तम गुणों से मनुष्य मात्र मोहित हो जाता है और अवगुणों से लोगों को खेद होता है। सामान्य लोगों को ज्ञानी की तीक्ष्ण बुद्धि की क्या कल्पना हो सकती है ? इसीलिए ज्ञानी लोगों के अवगुणों को शांति से सहन करता है और उसकी क्षमाशीलता का अनेक वार अनुभव आने पर लोग उसके अनुयायी बन जाते हैं। बहुतेरे लोग अपने आपको बड़ा समझने लगते हैं पर जिसे दूसरे लोग बड़ा मानें वही सच्चा महापुरुष है। महापुरुष सदैव धीर, गम्भीर एवं उदार हुआ करता है। जितने उत्तम गुण होते हैं, वे सब भाग्यवानों में प्रकट हुआ करते हैं। इसके विपरीत जो दुर्गुण दोष आदि होते हैं, वे सब अभागियों के लक्षण है। इस प्रकार भाग्यवानों के लक्षणों को बतलाने के बाद वक्ता ने श्रोताओं से अनुरोध किया कि यदि वे प्रपंच और परमार्थ दोनों का लाभ लेना चाहते हो तो उन्हें तत्परता के साथ अवगुणों को छोड़कर सद्गुणों का संग्रह करना चाहिए। यही सच्चा श्रेय मार्ग है।

पांचवां समास

देहमान्य निरूपण

वक्ता कहते हैं—लोग मिट्टी, पत्थर, सोने-चाँदी काँसा पीतल, तांबे आदि की बनी देव मूर्तियों की एवम् सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित चित्रों की जिन्हें चित्र लोक कहते हैं, पूजा किया करते हैं। कोई लकड़ी के और मूंगे देवता, बाण, उबड़ खाबड़ पत्थर, नर्मदा में पाये जाने वाले गोलमटोल पत्थर (नर्मदेश्वर) शालिग्राम, सूर्यकान्त एवम् चन्द्रकान्त

मणि आदि की भी पूजा करते हैं कई लोग ताँबे और सोने के सिक्कों की भी पूजा किया करते है। इस प्रकार अनेक विधि उपासना में प्रचलित हैं। हर व्यक्ति अपनी-अपनी पसन्दगी और रुचि के अनुसार देवता की उपासना करते हैं पर सर्वप्रथम हमें इन सब के मूल कारण का विचार करना चाहिए। सब देवता उसी के अंश मात्र हैं। सबके मूल में वही एक द्दष्टा ईश्वर विद्यमान है और उसी से अनेक देवी-देवताओं का विस्तार हुआ है। विवेकपूर्वक विचार करने से यह बात भली भांति समझ में आ जाती है।

बिना देह के न भक्ति हो सकती है और न ईश्वर-प्राप्ति ही हो सकती है। अतएव भजन का साधन देह ही है। यदि शरीर अर्थात देह को पहले से ही मिथ्या मान लिया जाय तो फिर भजन किस प्रकार किया जा सकता है ? भजन-पूजन, उत्सव-समारोह, गन्ध-पत्र, पुष्प-फल, तांबूल, धूप-दीप, पूजा सामग्री आदि सबका उपयोग देह द्वारा ही हो सकता है। देह के बिना कुछ नहीं हो सकता। देह के कारण ही भजन पूजन हो सकता है। अनेक देवताओं का भजन-पूजन करने पर भी वह मूल पूरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है। अतः विविध उपासना द्वारा सब देवताओं को सन्तुष्ट करना चाहिये। मूल माया से सृष्टि का विकास होते-होते वह नाना-देहों में प्रकट हुई है अर्थात देह यह मूल माया का फल है। मूल माया की चेतना ही सब देहों में प्रकट हुई है। अनेक देवी-देवातओं में भी मूल पुरुष परमात्मा का ही तन्तु है, यह जान कर सदा उसी का स्मरण रखना चाहिए।

मनुष्य प्राणी संसार छोड़कर भगवान को ढूँढते फिरते हैं पर सब जगह वे अनुमान और संशय से ग्रसित रहते हैं। लोग बाग रुढ़ि के अनुसार देवताओं का पूजन किया करते है अथवा अनेक तीर्थ स्थानों में जाकर वहाँ के देवताओं का दर्शन करते हैं। वे देवताओं के अवतारों का वर्णन सुनकर उनका भजन-कीर्तन किया करते हैं। यह सब ठीक

है पर यह सब देवता सगुण हैं। अतः हमें निर्गुण अर्थात गुणातीत जगदीश का ही निरन्तर ध्यान रखना चाहिए। उस परब्रह्म परमात्मा जगदीश्वर का कोई एक स्थान नहीं है, इसलिए उसका भजन-पूजन कैसे किया जा सकता है ? और इस सन्देह के रहते हुए ईश्वर दर्शन कैसे हो सकता है ? अतः वे साधु पुरुष धन्य हैं, जो इसका रहस्य जानते हैं। संसार में असंख्य देवता हैं और इन सब का पूजन करने पर भी परब्रह्म परमात्मा का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता। अतः उचित यही है कि प्रथम उस परमात्मा के कर्तृत्व अर्थात माया के दृश्य को, इस'सृष्टि को अलग किया जाय और उस परमात्मा का अनुसन्धान किया जाय तभी उस गुह्य और गूढ़ तत्व का पता लग सकता है। वह परम तत्व न दिखाई देता है और न उसका आभास ही मिल पाता है पर साथ ही वह कभी नष्ट भी नहीं होता और बिना पुण्य के उस पर विश्वास नहीं बैठता। जब तक मनुष्य देह बुद्धि से ग्रसित है, तब तक अनन्त कल्पना और अनन्त वासनाओं का वह शिकार रहता है। अतएव देहातीत होकर ही निर्विकल्प, शाश्वत अनन्त पर ब्रह्म वस्तु प्राप्त की जा सकती है। इस पर ज्ञान-दृष्टि से विचार कर उसी में तन्मय हो जाना चाहिये और उस आत्म-वस्तु के निदिध्यास से सर्वसंग त्याग कर तद्रूप होना चाहिये। उस तन्मय और तद्रूप अवस्था का क्या वर्णन किया जाय ? उस परमानन्द की हम जैसे देह बुद्धि वाले पामर मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकते। सत्संग और स्वानुभव से ही उस स्थिति का लाभ हो सकता है। इस सूक्ष्म स्थिति गति का अनुभव होने पर अधोगति से मुक्ति मिल जाती है और सद्गुरु के प्रसाद से सद्गति का लाभ हो जाता है।

छठवां समास

विवेक-दर्शन

वक्ता कहते हैं—जो पुरुष परमार्थी और विवेकी होते हैं, उनकी समाज में प्रतिष्ठा होती है। क्योंकि वे पूर्ण विचार कर कोई काम करते हैं, जिससे उनके कामों में कोई त्रुटि नहीं रह पाती। वे कोई ऐसा काम नहीं करते, जिससे लोगों में किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो। वे प्रत्येक कार्य सोच विचार कर करते हैं। जो स्वयं निस्पृह नहीं है, उसकी बात कोई नहीं मानता। जनता-जनार्दन को सन्तुष्ट रखना बड़ा कठिन है। कोई कड़ाई से उपदेश देते हैं, कोई किसी को मध्यस्थ बना कर उसके द्वारा पाठ पढ़ाता है पर अन्ततः उनकी स्वार्थपूर्ण लोभ वृत्ति का भण्डफोड़ हो जाता है। बाद में जिन्हें वे उपदेश देते हैं, वे ही उनके प्रतिकूल हो जाते हैं और अंत में उनकी सारी प्रतिष्ठा और प्रभाव नष्ट हो जाता है।

विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह निरपेक्ष भाव से लोगों को भक्ति मार्ग का उपदेश करे, उनके विवेक को जागृत कर उन्हें भजन-कीर्तन के लिये प्रवृत्त करे दूसरों को प्रसन्न रखना बड़ा कठिन कार्य है। लोगों को स्वेच्छा से स्वधर्म का पालन करना चाहिये और सन्त समागम का लाभ उठाना चाहिये। हमें खेल उत्कृष्ठ और भव्य भावनाओं को ही अन्तःकरण में स्थान देना चाहिये तथा निस्पृहता के आचरण द्वारा संसार में यश फैलाना चाहिये। जिसे प्रभु के गुणानुवाद का अखण्ड अभ्यास है और जो लोगों में नाम-स्मरण की अभिरुचि उत्पन्न करता है और सूर्य प्रकाश के समान उज्ज्वल ज्ञान का बोध करता है, वही सत्पुरुष है। ऐसा पुरुष दुर्जन को भी अपने अनुकूल बना लेता है और सज्जनों को

शान्ति एवम् सुख पहुँचता है। उसकी सत्सङ्गति से मनुष्य का दुष्ट स्वभाव बदल कर उसमें उत्तम गुणों का विकास होने लगता है और लोग सन्मार्ग में लग जाते हैं। ऐसा साधु पुरुष जहाँ जाता है, वहीं उसे लोग अपना लेते हैं पर वह किसी के लालच में नहीं फंसता वह सर्वत्र उत्कट भक्ति, चातुर्य, भजन और योगानुष्ठान आदि का प्रचार करता है। उसकी निस्पृह वृत्ति से सारे संसार में उसका यश फैल जाता है।

बिना उत्तम गुणों के किसी मनुष्य की कीर्ति नहीं होती। केवल भटकते रहने से क्या लाभ ? हमारे देह का कोई भरोसा नहीं है। आयु कब समाप्त हो जायगी इसको कौन जानता है ? कब क्या होने वाला हैं, इसे कौन बतला सकता है ? इसलिए हमें हरदम सावधान रहकर यथा संम्भव सत्कर्म करते रहना चाहिये। जो अनुकूल हो उसे शीघ्र कर लेना चाहिये और जो कुछ कठिन मालूम हो उस पर शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिए। विवेक से सब कार्य सुगमता से सम्पन्न हो जाते हैं। इसलिए एकान्त में बैठकर विवेक से किसी भी बात का निर्णय करना चाहिए। जहाँ नित्य विवेक और नियोजन का अभ्यास चलता है, वहाँ किस बात की कमी हो सकती है ? एकान्त के बिना मनुष्य की बुद्धि ठीक से निर्णय नहीं कर पाती। इसलिए किसी भी बात का विचार करना हो तो वह एकान्त में एकाग्रचित्त से ही करना चाहिए। हमें सदैव अपने आत्मा राम का आदेश मानना चाहिए और उस के अनुसार कार्य करना चाहिए फिर आदि से अन्त तक कोई उलझन पैदा नहीं हो सकती।
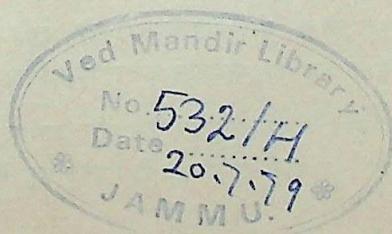
सातवां समास

वक्ता निर्देश

वक्ता कहते हैं—हमें हरिकथा-कीर्तन का भरसक प्रचार करना चाहिए और लोगों को अध्यात्म सम्बन्धी तत्वों को भली भाँति समझना चाहिए। वक्ता को संक्षेप में ही सब बातें समझाकर श्रोताओं का समाधान कर देना चाहिए। यदि किसी प्रसंग में श्रोताओं पर क्रोध भी आ जाय तो बाद में उन्हें प्रेम पूर्वक समाधान कर संतुष्ट कर देना चाहिए और उन्हें अपना बना लेना चाहिए। जो वक्ता सहनशील न होकर क्रोधी होता है, उसके प्रति श्रोताओं में प्रेम नहीं रहता हमें श्रोताओं के मनभावों का ठीक अनुसंधान करते रहना चाहिए। सब उपदेश और कार्य इस प्रकार सुसम्पन्न करना चाहिए ताकि हमारी चारों ओर कीर्ति फैले। यह समझना चाहिए कि जिस ओर जगत का रुझान होता है, उसी ओर जगन्नाथ का हाथ भी होता है। विवेकी पुरुष सबको संभाल कर चलता है। कुछ लोग समझते हैं कि ससार में सभी लोग दुष्ट हैं। यह भी भला कोई तर्क है कि सब लोग दुष्ट हों और संसार में हम अकेले ही सज्जन हों ?

जनता से अलग हम कैसे रह सकते हैं ? अतः इस मिथ्या धारण को छोड़कर हमें सदा सत्य का अनुसरण करना चाहिये। जो लोगों के साथ उचित व्यवहार नहीं कर सकता उसे उपदेशक बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जिसे स्वयं तैयार न आता हो, प्रेम-व्यवहार करना न आता हो—वह दूसरों को डूबते से कैसे बचा सकता है ? दूसरों को प्रेम का व्यवहार करना कैसे सिखा सकता है ?

मनुष्य में जब अनुराग, प्रेम और उत्साह सदा बढ़ता रहता है, तभी परमार्थ का लाभ हो सकता है। यदि हम में उपदेश करने की पात्रता

न हो तो व्यर्थ इस पचड़े में क्यों पड़ा जाये ? मूर्ख तो अपने अज्ञान के कारण भटकते रहते हैं और ज्ञानी अपनी विद्वता के अहंकार में लोगों में भ्रम और कलह उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार दोनों का अन्त में अधःपात होता है। अतः विवेकी पुरुष को भ्रमण करते हुए सदाचार पूर्वक अपना जीवन सार्थक करना चाहिये। हमारा उत्थान और पतन सर्वथा हमारे ही हाथ में है। हमें अपने मन में ही खूब सोच-विचार कर यथोचित निर्णय कर तदनुसार व्यवहार करना चाहिये।

आठवां समास

उपाधियों से सावधान

वक्ता कहते हैं—संसार में अनेक प्रकार के लोग हैं, जिनके विविध गुणों का परिचय भ्रमण करने से ही हो सकता है। प्रवास में अनेक भाँति के विवेकी पुरुषों का सत्संग होता है। कई पुरुष गृहस्थी में रहते हुए भी अनासक्त वृत्ती से जीवन यापन करते हैं और सुख-दुःख के प्रसंगों में भी उनका चित्त डाँवा डोल नहीं होता। उनकी बोलचाल में संतुलन होता है। उनके द्वारा सहज भाव से ही न्याय-नीति का पालन होता है। कभी कोई ऐसा पराक्रमी पुरुष पैदा हो जाता, जिसे सब लोग सदा अनुकूल हो जाते हैं और वह सब प्राणियों को प्रिय होता है। कभी कोई ऐसा उच्च कोटिका पुरुष भी मिल जाता है, जिसमें महानता के लक्षण अनायास दिखाई देते हैं। कुछ लोग गुण-ग्राहक होते हैं। अपने दोषों का गुण मान लेना महा पाप होते हैं। अपने दोषों को गुण मान लेना महा पाप है। किसी किसी का प्रभाव ही ऐसा होता है कि जो कार्य दूसरे प्रयत्न से भी नहीं कर पाते, वह सहजता से कर डालता है। उसे उस कार्य के करने में कोई कठिनाई नहीं होती। यह सब भागवान की महिमा है, जो अतर्क्य है।

जिसे उपाधियों का नियन्त्रण करना न आता हो, उसे अपनी उपाधियाँ बढ़ाना नहीं चाहिए तथा अपना मन सावधान रखकर चित्त में समाधान रखना चाहिए। अनेक लोग दौड़ धूप कर विभिन्न प्रवृत्तियों में (उपाधियों) में फंसते हैं। जिससे वे स्वयं कष्ट उठाते हैं और दूसरों को भी दुःख देते हैं पर इस प्रकार उपाधियों को—प्रवृत्तियों को—बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। प्रवृत्तियों में कुछ अच्छी भी होती हैं और कुछ बुरी भी ? इसलिये सोच समझकर ही किसी काम में पड़ना चाहिए। लोगों में सद्भावनाएं बहुत कम पायी जाती है। अतः हमें उनका प्रचार करना चाहिए। पर किसी पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। सब काम अन्ततः अन्तरात्मा की प्रेरणा से ही होते हैं। निगुर्ण पर ब्रह्म का इससे कोई सम्वन्ध नहीं होता। अनेक प्रकार के दोष चंचल आत्मा में ही नहीं होतेहैं। निर्मल निश्चल परब्रह्म ही शाश्वत शाँति का स्थान है। वहाँ सब विकारों का शमन हो जाता है। सब उद्वेगों का अन्त हो जाता है। और मनको परम शांति प्राप्त होती है। विवेक द्वारा हमें ऐसी दुर्लभ परब्रह्म परमात्मा की स्थिति का अनुभव प्राप्त करना चाहिए। यह समझना चाहिए कि ऐसा करने से हम सब उपाधियों से मुक्त हो जाते हैं और जो कुछ सुख दुख प्राप्त हो रहा है, वह हमारे कर्मों का ही शुभाशुभ फल हैं। सुख-दुख, हानि-लाभ से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है,ये आते जाते रहेंगे, ऐसा मानकर हमें सदा शाँत रहना चाहिए। जो बात हमारे की न हो, उसके लिए व्यर्थ परेशान होने से क्या लाभ ? संसार में कभी संघर्ष और कभी शांति का वातावरण हुआ करता है। हमें इन दोनों परिस्थितियों से अपने को अलिप्त रखते हुए मनमें शाँति रखना चाहिए उपाधियाँ सदा हमारा पीछा नहीं कर सकतीं। जब जब ऐसे अवसर आवें तब तक मन में समाधान रखना चाहिए। समाधान से बढ़कर सँसार में कोई

चीज नहीं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि मानव-देह बारबार नहीं मिलता। अतः हम उसे व्यर्थ के पचड़ों में न बरबाद कर दें।

नवां समास

राजनीतिक निर्देश

वक्ता कहते हैं—जो अज्ञानी होकर विरक्त भी होगा और जिसे समुदाय बढ़ाने की आकाँक्षा हो, उसे स्वस्थ होकर एकान्त सेवन करना चाहिए। एकान्त में अनेक उपाय और युक्तियां सूझने लगती हैं। वहाँ बैठकर अनेक समस्याओं का शांत चित से मनन-चिंतन किया जा सकता है और समाज की वर्तमान एवं भावी परिस्थिति का ठीक से अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा न करने पर उसे वस्तु स्थिति का सही आकलन नहीं हो सकेगा और उसकी स्थिति उस दिवालिये के समान हो जायेगी, जो अपने आय-व्यय के ठीक हिसाब न रखने के कारण कर्जदार हो जाता है।

कोई पुरुषार्थ से बहुत सम्पत्ति उपार्जन कर लेता है और कोई अपने पास की सम्पत्ति भी गंवा बैठता है। यह सब उद्योग एवं पुरुषार्थ के बल पर ही होता है। सब बातों का मन में यथार्थ विश्लेषण कर लिया जाय, तो मिथ्या और निरर्थक बातों का सहज ज्ञान हो जाता है

अति परिचय से अवज्ञा उत्पन्न होती है। इसलिये अधिक घनिष्ठता न बढ़ाई जाय, न एक ही स्थान पर अधिक दिनों तक ठहरा जाय। आलस्य और प्रमाद से सब काम नष्ट होते हैं और समाज-कल्याण या लोक-मंगल का उद्देश्य असफल हो जाता है। अतः उपासना आदि कार्यों के लिये लोगों को नित्य नई प्रेरणायें देते रहना चाहिए ताकि वे व्यर्थ के आडम्बरों से दूर रहें। किसी प्राणी को कष्ट नहीं होने देना चाहिये एवं राजनीति का यथायोग्य पालन करते

हुए लोगों को संगठित करना चाहिये। नष्ट अर्थात दुर्जन मनुष्य के मुकाबले में दुर्जन की और वाक्पटु व्यक्ति के मुकाबले मे वाक पटु की योजना करना चाहिये। अर्थात जो जैसे स्वभाव का हो, उसके लिये उसी स्वभाव के मनुष्य की नियुक्ति करनी चाहिये। कांटे से ही कांटा निकालते रहने चाहिये पर इस बात का किसी को अभ्यास नहीं होने देना चाहिये।

किसी की बढ़ाई और कीर्ति सुनकर मनमें उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होना चाहिये और उससे घनिष्ठता बढ़ाकर उसके अनुयायी बन जाना चाहिये।

कोई भी काम लगन पूर्वक करने से अवश्य पूर्ण हो जाता है। इसलिये किसी कार्य में ढिलाई या आलस नहीं करना चाहिये। जिसने दूसरे पर विश्वास किया, उसके सब काम बिगड़ जाते हैं। जो अपने काम आत्मनिर्भरता के साथ करता है, वही सफल हो सकता है। हमारी सब गोपनीय बातें किसी को मालुम नहीं करना चाहिये। वरना हमारे सारे उद्योग और मनोरथ विफल हो जायेंगे। किसी भी बड़े कार्य का मुख्य संचालन सूत्र अपने हाथ में रखना चाहिये और शेष छोटे मोटे कार्य और लोगों को सौंप देना चाहिये। इस प्रकार राज-नीति के गूढ प्रश्नों एवं समस्याओं का निवारण करना चाहिये। बहुत वाचाल, चालाक एवं धूर्त लोगों का भी अपनी राजनीति में उपयोग कर लेना चाहिये। विपक्षियों में जो अधिक वाचाल नेताओं हों उन्हीं से निपटना चाहिये और उनके छोटे मोटे अनुयायियों की उपेक्षा करनी चाहिये। दुर्जनों के विरोध से राजनीति में अवरोध न होने देना चाहिये जो विरोधी हों उन्हें अवसर पाकर पराजित करना चाहिये पर बाद में उनसे भी मेल करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि अधिक लोक संग्रह की इच्छा होतो हमें जुटकर काम कर अपना प्रभाव बढाना चाहिये। सज्जनों एवं दुर्जनों की यथार्थ पहचान कर लेनी चाहिये तथा

सज्जनों की तरह ही दुर्जनों को भी सम्मानपूर्वक अपने साथ मिलाकर रखना चाहिए। शासक ऐसा परमार्थी एवम् धर्मात्मा होना चाहिये कि जिसके सैनानियों में शत्रु का मुकाबला करने का अदम्य उत्साह हो। राजनीति में सब कार्य यथा विधि और दृढ़तापूर्वक होने चाहिये। चतुर राजनीतिज्ञ स्वयं कभी जनता के सामने नहीं आता पर उसके बारे में जनता में खूब प्रशंसा और चर्चा हुआ करती है। राजनीति में हमेशा जैसे को तैसा व्यवहार करना चाहिये। मूर्ख के सामने मूर्ख को, अज्ञानी के सामने अज्ञानी को और उद्धत के सामने उद्धत को खड़ा करना चाहिये। जब जैसे को तैसा मिलता है, तब उनकी लड़ाई में भी खूब आनन्द आता है। पर यह सब करते हुए भी किसी को इस बात का पता नहीं लगने देना चाहिये कि इस प्रकार की व्यूह-रचना का सूत्रधार कौन है?

दसवां समास

विवेक का स्पष्टीकरण

वक्ता कहते हैं—जिसके समीप अखण्ड रूप से नाना प्रकार की चर्चायें, विचार विनिमय एवम् राजनीति की वार्ता ये चलती रहती है और संसार के अनेक उत्कृष्ट गुणों का निरूपण हुआ करता है, जिसके पास बैठकर शङ्का-समाधान शास्त्राधार से निर्णय आदि हुआ करते हैं, जिसके सान्निध्य में भक्ति, उपासना ज्ञान, वैराग्य, अनासक्ति, आदि का सुलभ भाषा में अनुभव सिद्ध विवरण हुआ करता है, जिनके निकट सुन्दर काव्य का पाठान्तर और विद्वतापूर्ण भाषणों का सिलसिला चलता रहता है, ऐसे महापुरुष की जनता को परिचय होने के बाद उसके आगे किसी और की दाल नहीं गल पाती। एक विशेष बात यह यह है कि उसके पीछे लाखों की तादाद में जनता होते हुए भी उसके अन्तः स्वरूप का ज्ञान बहुत कम लोगों को होता है। ऐसा महापुरुष

भक्ति एवम् उपासना के प्रचार-प्रसार में जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ लोग उसका सम्मान करने लगते हैं पर उसकी आन्तरिक भावना को बहुत थोड़े लोग समझ पाते हैं। देश के कोने-कोने से लाखों लोग उनका दर्शन करने आते हैं और वह उन सब को अपने विवेक पूर्ण उपदेशों से अपना अङ्कित बना लेता है और उनके मानसिक भटकाव की स्थिति को स्थिर करता है।

सज्जन व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने ज्ञान को धीरे-धीरे सब लोगों में वितरण करे, जो कुछ उसे आता है, वह दूसरों को सिखाये और उन्हें बुद्धिमान बनाये। जो काम हम स्वयं कर सकते हैं, वह स्वयं करें और जो नहीं कर पाते, वह दूसरों से करायें।

अखण्ड भगवद् भजन प्राणिमात्र का धर्म-कर्तव्य है। उसे हम स्वयं भी करें और दूसरों से करायें। सब मिलकर भक्ति-मार्ग का प्रसार करें। यह सब करते हुए भी हम उपाधियों में न फँसें और अपने को सबसे अलिप्त रखें। प्रवृत्तियों में न फँसते हुए भी सब काम आलस और प्रमाद छोड़कर उत्साहपूर्वक करें।

जहाँ तक अलिप्त रह कर हम प्रवृत्तियों को चला सकते हैं, चलायें और व्याप अधिक बढ़ाने पर हम उसे छोड़कर स्वच्छन्द एवम् आनन्द पूर्वक कहीं भी विचरण करें। उपाधियों से विराग होने पर मनुष्य में निस्पृहता आती है। यदि हमें यश की इच्छा हो तो शरीर-सुख को त्यागना होगा और यदि शरीर-सुख की वासना हो तो यश-कीर्ति की कामना छोड़नी चाहिये।

जो कुछ होना होता है, वह अवश्य होकर रहता है। मनुष्य केवल निमित्त मात्र होता है। यदि हम किसी कार्य में पहले से निरुत्साही बने रहें, तो कार्य कैसे सफल हो सकेगा ? संसार प्रारम्भ से ही विनिष्ट है। उसे विवेकपूर्ण व्यवहार से सुन्दर बना लेने में ही पुरुषार्थ है। फिर धीरे-धीरे इस आकर्षक संसार से भी अरुचि होने लगती है और

बाद में मनुष्य अध्यातम मार्ग में प्रवेश कर धीरे-धीरे इससे विरक्त भी हो जाता है। यह सब विवेक-विचार से ही हो सकता है। अत हमें धैर्य धारण करते हुए सन्मार्ग पर चलना चाहिये।

बीसवां दशक

पहला समास

पूर्णापूर्ण निरूपण

श्रोता प्रश्न करते हैं कि प्राणी, मन, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश आदि पंच महाभूत, त्रिगुणा, अन्तरात्मा और मूल माया सब व्यापक हैं और निर्गुण ब्रह्म भी व्यापक है। फिर ये सब एक समान ही क्यों न माने जाँय ? यदि समान नहीं, तो फिर इनमें क्या विशेष भेद हैं ? साथ ही आतमा को निरंजन कहा जाता है। अतः आत्मा सगुण है या निर्गुण अथवा वह निरंजन है ? कृपया इन सब बातों का स्पष्टीकरण करें।

इस पर वक्ता कहते हैं—एक-एक शङ्का का समाधान शान्ती से सुनिये। विवेक को जागृत कर प्रत्यय द्वारा अनुसंधान करें। प्रत्येक प्राणी अपने शरीर और सामर्थ्य के अनुसार बड़े बड़े व्यापक कार्य किया करते हैं पर विचार करते से विदित होगा कि मन के समान व्यापक कोई नहीं है। फिर भी मन चंचल और एक देशीय है इसलिए वह पूर्ण व्यापक नहीं हो सकता। इसी प्रकार पृथ्वी, आप तेज और वायु से चार महामूत भी अपूर्ण और एक देशीय ही हैं। पूर्ण व्यापक नहीं। आकाश और निरंजन (निर्गुण ब्रह्म) पूर्ण व्यापक हैं। इसमें

सन्देह नहीं। त्रिगुण, गुण-माया, मूल-माया इनका विलय है। ये सब अपूर्ण और एक देशीय हैं अर्थात पूर्ण व्यापक नहीं। आत्मा (जीवात्मा) और निरंजन (निर्गुण) ये दोनों पद अन्तरात्मा (जीव) और मूल माया (शिव) के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं पर इनके कब किस अर्थ में कैसा उपयोग किया जाता है, यह संदर्भ से पहचानना चाहिये। जीवात्मा अर्थात मन अति चंचल अर्थात पूर्ण व्यापक नहीं है। जब वह आकाश में होता है, तो पाताल में नहीं होता और पाताल में होता है, तब आकाश में नहीं होता। वह आगे-पीछे, दायें बायें एक साथ नहीं रह सकता। वह एक साथ सब दिशाओं में नहीं रहता इसलिए वह व्यापक नहीं है।

सूर्य का जल में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है पर वह प्रतिबिम्ब सूर्य नहीं हो सकता। उसी प्रकार निगुण ब्रह्म मन बुद्धि आदि की उपाधि से जीवात्मा अथवा शिवात्मा के विशिष्ट नाम से जाना जाता है, तथापि जीव (आत्मा) अथवा शिव (मूल माया) निर्गुण ब्रह्म नहीं हो सकते। सूर्य के दृष्टान्त से भी निर्गुण ब्रह्म की पूर्णता व्यक्त नहीं की जा सकती क्योंकि सूर्य का उदय-अस्त होता है, जबकि निर्गुण सदा एक समान पूर्ण है। सूर्य की अपेक्षा आकाश का दृष्टान्त कुछ अधिक ठीक जँचता है। घटाकाश के समान देह-परिमित जीवात्मा है और मठाकाश के समान ब्रह्माण्ड परिमित शिवात्मा है, ऐसी कल्पना करने पर भी घट मठों का नाश होने पर आकाश व्यापक ही रहता है। इसी प्रकार जीव-शिव की कल्पना छोड़कर निर्गुण ब्रह्म का विचार किया जा सकता है। ब्रह्म का अंश आकाश और आकाश का अंश मन (जीवात्मा) है। मन से आकाश कई गुना व्यापक तत्व है और आकाश से ब्रह्म अनन्त गुना व्यापक है। मन आकाश की बराबरी भी नहीं कर सकता, फिर वह निर्गुण ब्रह्म की समानता कैसे कर पायेगा ?

जीवात्मा ही ज्ञान द्वारा शिवात्मा होता है और शिवात्मा ही जन्म लेकर जीवात्मा होता है। आत्मा जन्म-मरण धर्मी है। इसीलिए भग-

वान ने गीता में शिवात्मा की भूमिका से 'सम्भवामि युगे-युगे' का उद्‌घोष किया है।

जीव वास्तव में एक देशीय अर्थात पिंड की उपाधि से बद्ध है। वह विवेक द्वारा ही विश्वम्भर (शिव) होता है पर विश्वम्भर भी संसार से मुक्त नहीं होता। अज्ञान के समान ज्ञान भी एक वृत्ति ही है। वृत्ति रूप में दोनों समान हैं। इसलिये निवृत्ति रूह से ज्ञान को विज्ञान में परिणित करना चाहिये। जब तक ज्ञान विज्ञान में परिणित नहीं होता, तब तक वह अज्ञान ही है। पिंड के समान ही ब्रह्माण्ड के भी चार देह होते है। दोनों समान होने के कारण ज्ञान अर्थात मूल माया से ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। उसी के यह विस्तार हआ है। अर्थात ज्ञान यह नाना विकारों से युक्त है। ब्रह्माण्ड का आठवां देह स्थित अन्तरात्मा ही ज्ञान रूप है। उस ज्ञान का विज्ञान में रूपान्तर होना चाहिए तब निरंजन ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। ज्ञान के परे विज्ञान की प्राप्ति ही मुक्ति है, मोक्ष है।

दूसरा समास

त्रिविधि सृष्टि निरूपण

वक्ता कहते हैं—यदि चचल मूल माया का अस्तित्व न हो तो फिर निर्गुण ब्रह्म उसी भाँति निश्चल है, जिस भाँति सर्वत्र फैला हुआ आकाश है। दृश्य आता जाता रहता है परब्रह्म सर्वत्र व्याप्त आकाश के समान निश्चल है। वह अपार, स्वतन्त्र और अद्वैत है। अतएव हमें ब्रह्मांड के भी ऊपर पहुँचना चाहिये। यह सोचना चाहिए कि ब्रह्माण्ड का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इसी प्रकार आकाश को भी कल्पित मानना चाहिए। ऐसा होने पर आकाश भी शून्य ही प्रतीत होगा। यदि विवेक द्वारा दृश्य को हटा दिया जाय तो सर्वत्र ब्रह्म ही व्याप्त दिखाई देगा। दृश्य चलता है, दीखता है परब्रह्म न चलता है और न दिखाई ही देता है। ब्रह्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए महा-

वाक्य के तात्पर्य का ही सदैव मनन-चिन्तन करते रहना चाहिए। पर-ब्रह्म से और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। श्रवण से बढ़कर कोई साधन नहीं है और ज्ञान के बिना समाधान नहीं है।

साधक के लिए नित्य मनन चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। परब्रह्म निरूपम और अतुलनीय है। महानुभाव और पुण्य पुरुष ही उसको पा सकते हैं। चंचल माया से केवल दुःख ही प्राप्त होता है और निश्चल ब्रह्म में पूर्ण शान्ति मिल जाती है। अनुभव से ही निश्चल ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। आदि से अन्त तक का जों विचार करता है, उसी के मनमें अनुभव का निश्चय होता है। कल्पना की सृष्टि तीन प्रकार की होती है। मूल माया से ही तीनों गुणों की उत्पत्ति हुई है, जो सब एकदेशीय हैं। पंच महाभूतों की स्थूलता तो प्रत्यक्ष ही है। पृथ्वी से ही चारों खानियों की उत्पत्ति हुई है और उन चारों के कार्य भी अलग-अलग हैं।

अब सृष्टि के विविध लक्षणों को सुनिये। चैतन्य मूल माया प्रारंभ से ही सूक्ष्म कल्प मात्र है। जैसे नाभि स्थान से परावाचा का स्फुरण हुआ, वैसे ही ब्रह्म में मूल माया स्फुरित हुई है। अष्टधा प्रकृति का मूल केवल मूल माया ही है और सब वीज शुरू से ही उसमें सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते है। वह जड़ पदार्थों को भी चेतन करती है, इसलिए उसे चैतन्य शक्ति कहते हैं। संकेत से ही यह सब बातें समझ लेनी चाहिए। प्रकृति और पुरुष, धर्मनारी, नरेश्वर, और अष्टधा प्रकृति सब उसी का रूप है। तीनों गुण भी गुप्त रूप से उसी में रहते हैं। वे साधु पुरुष धन्य हैं, जो तीनों गुणों के रहस्य को समझते हैं। मूल माया से ही तीनों गुण प्रकट हुए हैं और वे सब चंचल है। ध्यान पूर्वक देखने से यह बात समझ में आ जाती है। इसी के अनन्तर पंच महाभूतों का इतना विशाल विस्तार हुआ है कि पृथ्वी के सातों द्वीप और नौ खण्ड उसमें समा गए हैं। इहीं तीन गुणों के कारण ही पृथ्वी पर प्रकृति के अनेक भेद दिखाई देते हैं। तीन गुण और पञ्चभूतों के अतिरिक्त एक

और तीसरी चीज है, जिसका वर्णन आगे करेंगे पृथ्वी में अनेक पदार्थों के बीज हैं, अंडज, जारज, स्वेदज और उद्भिज ये चारों खानियाँ और चारों वाणियाँ उत्पन्न हुई हैं। इनका हर घड़ी विस्तार होता रहता है पर पृथ्वी ज्यों की त्यों है। अनेक प्राणी उसमें नित्य जन्मते और मरते रहते हैं।

तीसरा समास

सूक्ष्मनामाभिधान

वक्ता कहते हैं—मूल माया से अन्त तक सृष्टि का विस्तार तीन प्रकार से कैसे हुआ, यह अब तक बतलाया गया है। अब उन पर विचार-मनन करते हुए पुनः हमें मूल माया तक वापस आना होगा। सृष्टि में चार खानियाँ, चार वाणियाँ, चौरासी लक्ष योनियों के अनन्त प्राणियों का जन्म होता है। ये सब पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं और अन्ततः पृथ्वी तत्व में ही विलीन हो जाते हैं। अनेक प्राणी एवम् पदार्थ पृथ्वी पर आते हैं और नष्ट हो जाते हैं पर पृथ्वी ज्यों की त्यों बनी रहती है। ये तो ऊपर के तत्व की बात हुई। दूसरा हिस्सा पंचभूतों का और तीसरा मूल माया से त्रिगुण तक के सूक्ष्म भाग का है। अतः स्थूल को छोड़कर सूक्ष्म का विचार करना चाहिए। गुणों से पीछे लौटते हुए सूक्ष्म मूल माया तक अनुसंधान करते चले। चेतन और अचेतन ये दोनों गुणों के रूप हैं। सूक्ष्म दृष्टि का विचार तो इसके आगे है। शुद्ध अचेतन अवस्था ही तमोगुण और शुद्ध चैतन्यावस्था ही सत्वगुण है। रजोगुण चेतन-अचेतन का मिश्रण है। गुणों का मिश्रण ही गुण माया कहलाती है। त्रिगुणों के अत्यन्त गूढ़ पन को ही महतत्व, प्रकृति-पुरुष, शिव-शक्ति, मूल माया, अर्धनारी नरेश्वर आदि कहते हैं पर यह महतत्व अर्थात मूल माया कर्दम रूप है। वही गुण साम्य चैतन्य है। मूल माया यह बहुरूपो है। ब्रह्माण्ड के चार देहों में चौथा देह जो महा कारण—वही मूल माया है। चार खानियां, पंचभूत और मूल माया सब सूक्ष्म रूप में रहते हैं, जिन्हें न जान पाने से अज्ञानी जीवों में संशय बना रहता है।

सकल सृष्टि का बीज मूल मात्रा में है। उसका ठीक से ज्ञान प्राप्त करना ही परमार्थ है। इसका जिसे यथार्थ ज्ञान हो गया उसे फिर भ्रम या सन्देह नहीं रहता। इस शब्दातीत के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है' उसे वाच्यांश कहते हैं पर वाच्याँश को छोड़कर शुद्ध लक्ष्यांश को विवेक द्वारा देखना चाहिये। यदि नीचे माया की ओर देखा जाय तो भेद ही बढ़ते हैं और ऊपर पर ब्रह्म की ओर दृष्टि रखने से सब भेद लुप्त हो जाते हैं।

जो निःसङ्ग और निर्गुण है, यही महायोगी है। यह जान लेने पर कि माया मिथ्या है, उसका भय क्यों रखा जाय? माया के भय के कारण ही हम स्व-स्वरूप की स्थिति प्राप्त नहीं कर पाते। मिथ्या माया के भय से सत्य पर ब्रह्म को क्यों छोड़ा जाय? आत्म-स्वरूप का ठीक दर्शन हो जाने पर व्यर्थ इधर-उधर भटकने की क्या आवश्यकता है? बिना साधु बने साधु की पहचान नहीं हो सकती। इसलिए माया मोह से अलिप्त होकर ही साधु-सन्तों से समागम का प्रयत्न करना चाहिए। बिना अनुभव के कोई सच्चा ज्ञानी नहीं हो सकता। अतः दिन-रात मनन-चिन्तन करते रहना चाहिये जो अध्यात्म के अर्थ पर विचार करता हुआ उसका अनुभव प्राप्त कर लेता है, वही समर्थ कहलाता है। एक बार किसी विषय को समझ लेने पर भी उस पर बार-बार चिन्तन करना चाहिये। इसी से लोक-परलोक दोनों सार्थक हो सकते हैं। साधकों को सत्य वस्तु का अनुसंधान कर सब सन्देहों का निराकरण कर लेना चाहिए।

चौथा समास

आत्म-विवेचन

वक्ता कहते हैं हे श्रोताओ! आप लोगों से प्रार्थना है कि व्यर्थ ही उदास न होते हुए अनुभव की जो बाते कही गई हैं, उन पर भली भाँति विचार करें। यदि अनुभव की बात छोड़कर मनमानी करते रहेंगे तो

सारासार का निर्णय होना असम्भव है। सृष्टि के कार्य में बहुत गड़बड़ी दिखाई देती है पर ईश्वरीय सत्ता में कभी कोई गड़बड़ी नहीं होती। पृथ्वी में जितने शरीर हैं, वे सब परमेश्वर के घर ही हैं। नाना प्रकार के सुख इन्हीं शरीरों के द्वारा प्राप्त होते हैं। उस परमात्मा की महिमा कौन जान सकता है ? वह कृपा निधान भगवान माता के समान प्रत्यक्ष सारी सृष्टि की रक्षा करता है। उसकी सत्ता सर्वत्र व्याप्त है और उसी से सृष्टि के सब कार्य सम्पन्न होते हैं।

यों देखने से लगता है कि सारी सृष्टि एक ही सत्ता के अधीन नहीं है पर वास्तव में एक परमात्मा ही अनेक शरीर धारण कर सृष्टि का सञ्चालन करता है वह ऊँच-नीच का और अच्छे बुरे का विचार नहीं करता। वह केवल यह चहता है कि सृष्टि के सब कार्य अच्छे ढङ्ग से चलते रहें यह नहीं कहा जा सकता कि अज्ञानियों की रचना उसने संसार के कार्यों में बाधा डालने के लिये की है या उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिये।

लोगों के अन्त:करण का अध्ययन करना ही ध्यान है। ध्यान तथा ज्ञान एक ही वस्तु है। राम का झण्डा सर्वत्र फहरा रहा है और वही आत्मा राम ज्ञान धन है। वह विश्वम्भर सब जगह विद्यमान है पर उसका पता भाग्य से ही मिलता है। यह ठीक ही कहा गया है कि उस पर ब्रह्म की महिमा अपरम्पार है। अत: उस अनन्त रूपी परमात्मा को पहचानना चाहिए। सज्जनों की सङ्गति और भगवद् भजन में प्रीति से मन को विश्राम मिलता है पर बिना अनुभव के सच्चा समाधान नहीं मिल सकता।

उपासना ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान तुरीयावस्था में प्राप्त होता है। अत: सब प्रकार के सङ्कल्प छोड़कर सोचना चाहिए कि वह पर ब्रह्म आकाश के समान विशाल व्यापक, सघन और कोमल है। हम स्वयम् उपासना स्वरूप हैं। जीव वस्तुत: शिव स्वरूप ही है पर हम जीव को अर्थात शरीर का ही विचार करते हैं और शिव का विचार छोड़ देते

है। इस प्रकार द्वैत की भावना बनी रहती है। वानों पर पशुओं की, जलों में जल चरों की और पृथ्वी पर मानवों की सत्ता रहती है। आन्दोलन से ही सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। जो जैसा आन्दोलन करेगा, उसे वैसी शक्ति प्राप्त होगी पर उसमें सत्यरूपी परमात्मा का अधिष्ठान होना चाहिये। जगन्नाथ ही सब कुछ करता है पर उसकी सत्ता सब प्राणियों में विभक्त है और परमात्मा उन्हीं के द्वारा सब कार्य करता है। इसलिए 'हरिदासा हरि भोक्ता' ऐसा मान लेने से अहङ्कार भाव नष्ट हो जाता है। कर्ता धर्ता वह परमेश्वर ही है। मैं करने वाला कौन हूँ? जो कुछ जैसा कुछ होता है, सब परमेश्वर की इच्छानुसार होता है। वही सब कुछ कर रहा है ऐसा मनमें दृढ़ विश्वास रखना चाहिये और हमें सदैव ईश्वर की इच्छा के अनुकूल रहकर ही कार्य करना चाहिये।

पाँचवां समास

पदार्थ--विवेचन

वक्ता कहते हैं—आदि से अन्त तक निरीक्षण किया जाय तो सृष्टि में केवल चार प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं। एक सनातन ब्रह्म, दूसरे में चौदह मूल माया, तीसरे में पञ्च महाभूत और चौथे में चार खानियाँ। परब्रह्म इन सब में श्रेष्ठ और निराला है। वह सब कल्पनाओं के परे है। वह निर्मल, निश्चल, निर्विकार और अखण्ड है। पर ब्रह्म की मुख्य पदार्थ जिसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। वही मुख्य पदार्थ है।

दूसरा पदार्थ है, अनन्त कल्पना रूप मूल माया। वह अनेक सूक्ष्म रूपात्मक तथा कर्दम रूप है। ब्रह्म में 'एकोहं ब्रहुस्याम्' यह जो आदि सङ्कल्प हुआ, वही मूल माया है। उसी को परिचय के लिये चौदह विभिन्न संकेत नाम दिये गये हैं। निश्चल से चंचल होने के कारण उसी को चैतन्य, गुणों की समानता के कारण गुण साम्य, अर्ध नारी नटेश्वर,

प्रकृति-पुरुष, शिवशक्ति, षड्गुणेश्वर आदि कहा जाता है। त्रिगुण, मन, माया, अन्तरात्मा सभी उसी के रूप हैं।

तीसरा पदार्थ है पञ्च महाभूत। पञ्चभूतों में चेतन अचेतन दोनों का समावेश है। इनका आदि अन्त अर्थात उत्पत्ति-विपत्ति विनाश भी हुआ करता है।

और चौथा पदार्थ अर्थात सृष्टि की चार खानियाँ, इन चार खानियों के अनन्त प्राणी चैतन्य रूप हैं। इस प्रकार इन चार पदार्थों की कहानी है। एक बीज से अनेक बीज पैदा होते हैं। उसी प्रकार आत्माराम से ही चार खानियाँ, चार वाणियाँ, एवम् चौरासी लाख योनियों का विस्तार हुआ है। यही आत्मा राम नर-देह द्वारा सृष्टि का अनेक प्रकार से उपभोग करता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध अर्थात पञ्च-विषयों का भोग नर देह द्वारा ही होता है। अमूल्य वस्त्रालङ्कार, अनेक वाहन एवम् शस्त्र, अनेक विद्या तथा अलाओं का ज्ञान शर देह से ही होता है। सारी सृष्टि ईश्वरी सत्ता से व्याप्त है। सर्वत्र वही विद्यमान है। सारी विद्याएँ, धारणाएँ, और कलाएँ उसी पर आश्रित हैं।

इहलोक और परलोक, विवेक और अविवेक मनुष्य ही जानता है। पिंड-ब्रह्माण्ड की रचना, अनन्त कल्पना, धारणा, अष्ट भोग, नव रस, नाना विलास सब नर देह में ही सम्भव हैं। मनुष्य ने सब पञ्चभूतों को अपने वश में कर लिया है पर मनुष्य का पालन कर्ता परमेश्वर है। यह भी सब नर देह में ही ज्ञान होता है। नर देह अत्यन्त दुर्लभ है। उसके द्वारा अलाभ लाभ प्राप्त होते हैं, दुर्लभ हो जाते हैं। वन्य देह कष्ट कारक हैं। केवल नर देह ही सर्वोत्तम है। अतः हमें अत्यन्त सूक्ष्म विचार द्वारा उसका उचित उपयोग कर जन्म सार्थक करना चाहिये। आलस्य और प्रमाद से यदि हमने ऐसा नहीं किया तो सर्वनाश ही समझिए। सदा अनुभव का चिंतन करने पर नर का नारायण हो सकता है। जिसे स्वयम् तैरना आता हो, वह दूसरे की कमर क्यों पकड़ेगा? उसे अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से ही सत्य का अनुसंधान करना चाहिये।

सत्य स्वरूप का ज्ञान होने पर सब सन्देह नष्ट हो जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

छठवां समास

आत्मानुसंधान (१)

वक्ता कहते है—इस भूमण्डल का विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कहीं कहीं तो जल ही जल भरा हुआ है और कहीं कहीं बिलकुल रुक्ष मैदान है कि जहाँ पर जल का नामोनिशान तक नहीं। इसी भांति इस दृश्य जगत का हाल है। इसके कुछ पदार्थों में तो पर्याप्त चेतना शक्ति है और कुछ पदार्थ बिलकुल चेतनाशून्य है। चार खानियों, चारवाणियों और प्राणियों की चौरासी लाख योनियों का वर्णन शास्त्रों में जिनमें चार लाख मानव, बीस लाख पशु, ग्यारह लाख कृमि कीटक, दस लाख खचेर, नौलाख जलचर और और तीन लाख स्थावर योनियों के भेद बतलाये गये हैं। इन चौरासी लाख योनियों के प्राणियों में चैतन्य रहता है उनके देह विभिन्न प्रकार के होते हैं। अनन्त प्राणी प्रतिदिन जन्म लेते हैं और मरते हैं पर उन सब का आधार पृथ्वी ही है। पंचभूतों में पृथ्वी, आप और तेज व्यक्त हैं और वायु तथा आकाश अव्यक्त हैं। चैतन्य का लक्षण चंचलता है।

सुख-दुःख का अनुभव जीव और शिव दोनों का गुण है। अन्तःकरण पंचक, स्थूल देह में आकाश के अंश, त्रिगुण, हलचल और धृति, नव विधा भक्ति और चतुर्विधा मुक्ति, अलिप्तता, सहजावस्था ये सब आत्मा के गुण हैं। दृष्टा साक्षी ज्ञान घन, सद्रूप, चिद्रूप, ये भी आत्मा के ही गुण हैं। वेद शास्त्र, पुराण-चर्चा गुप्त परमार्थ सर्वज्ञता आदि सब सामर्थ्य आत्मा में ही है। बद्ध, मुमुक्ष, साधक, सिद्ध, जागृति, स्वप्न सुषुप्ति तुरीया अवस्था, पिंड-ब्रह्मांड के कुल आठ देह सूक्ष्म नामरूप आदि सब कुछ आत्मा के ही गुण हैं। मूलमाया, चौबीस प्रकार के चार पदार्थ, अज्ञान-ज्ञान, देव, असुर, गन्धर्व आदि देव

योनियां भूत भौतिक सब कुछ आत्माराम के ही गुण हैं। आत्मा ही एक देशीय और पूर्णकाम है। इसी का अनुसंधान और अनुभव करना ही आत्माराम की उपासना है, जिससे निर्गुण पद की प्राप्ति होती है।

सातवां समास

आत्मानुसंधान (२)

वक्ता कहते हैं—आत्माराम के और भी अनेक गुण हैं। काशी-विश्वेश्वर, सेतुबन्ध रामेश्वर, मुख्य बारह शिवलिंग, नाना तीर्थ क्षेत्रों की महिमा, साक्षात्कार, चमत्कार, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, ये सब आत्माराम के ही गुण है। जो कुछ संसार में श्रेष्ठ है, वह सब आत्मा राम के गुण से ही है। जो कुछ संसार में भला बुरा होता है, वह भी आत्मा का ही प्रभाव है। साधु सन्तों में निवास करने वाला शुद्ध आत्मा उत्तम गुणवाला और पामर व्यक्तियों में रहने वाला शबल(मिश्र) आत्मा कुलक्षणी है। आत्मा में भलाई और बुराई सबकुछ है। नाना भांति के अभिमान करना, प्रतिसृष्टि निर्माण करना शाप-उःशाप देना यह सब आत्मा के ही गुण हैं। पंचीकरण का अध्ययन कर पिंड के तत्वों का शोध करना चाहिए। जड़ देह पंचभूतों का बना है और चंचलता, चैतन्य आत्मा का गुण है। पर सब में निश्चल ब्रह्म की व्यापकता अबाधित है। निश्चल ब्रह्म, चंचल आत्मा और जड़ देह इनसबका अनुभव नर देह में रहते हुए ही करना चाहिए। अनुभव के समान सार्थक कोई भाषण नहीं। पिंड (देह) छोड़कर आत्मा चला जाता है, इससे पिंड से आत्मा भिन्न है, यह सिद्ध हो गया। देह प्रेत होकर पड़ा रहता है और चंचल आत्मा निकल जाता है। अतः जड़ःचंचल का निर्णय हो गया। अब निश्चल ब्रह्म सर्वत्र है, बारबार बतलाने की अब आवश्यकता नहीं है। ब्रह्म में आत्मा के समान गुण-विकार नहीं है। जो विचार पिंड का वही ब्रह्मांड का है। उसमें भी जड़-चंचल का यही खेल चलता है। पंच महाभूतों के पिंजरे में आत्मा को बिठाकर एक पुतला तैयार होता है और इस प्रकार प्राणियों को उत्पत्ति होकर सृष्टि

का क्रम निरन्तर चलता रहता है। माया के सब विकार आत्मा के कारण ही प्रकट होते हैं पर हम उनका आरोपण ब्रह्म पर किया करते हैं।

ब्रह्म की व्यापकता अखण्ड है और अन्य सब व्यापकताएं खण्डित हैं। महा प्रलय द्वारा सृष्टि का संहार होने पर भी आकाश अखण्ड ही बना रहता है। जिसका संहार हो जाता है, वह नाशवान ही है। ज्ञानी पुरुषों को यह गूढ़ बातें समझ लेनी चाहिये। एकान्त में बैठकर मनन चिन्तन करने से सब बातों का निराकरण हो जाता है। अनुभवी सन्तों का सत्सङ्ग ही सच्चा एकान्त है। उनके पास बैठकर सावधान चित्त से इन बातों को समझ लेना चाहिये। विवेक दृष्टि प्राप्त होने पर माया जाल का पटल दूर हो जाता है। निश्चल ब्रह्म के निश्चय के अतिरिक्त अन्य सब निश्चय अनुमानिक है, सत्य नहीं। बोलने वाले मनमाना बोलते रहते हैं पर अनुभवी सन्तों को उनका कथन मान्य नहीं हो सकता। मनमाना विचार, विचार नहीं, अविचार है। एकाकार अर्थात गोलङ्कार का विचार भ्रष्टाकार है। अतः असत्य-कृत्रिम का त्याग कर शुद्ध निश्चल ब्रह्म का ही सारासार विचार से अनुभव करना चाहिये।

आठवां समास

शरीर के गुण

वक्ता कहते हैं—ब्रह्मा का यह संसार-वृक्ष बढ़ा और बढ़ते-बढ़ते इतना विशाल हो गया। जब इसमें फल लगे, तब उन्हें चखकर बहुत से प्राणी सन्तुष्ट हो गये। अनेक फल (बिषयें प्रिय संयोग से होने वाले सुख) बड़े मीठे लगे और उनमें रुचि उत्पन्न हुई फलतः उनका स्वाद लेने अनेक प्रकार के प्रकार ब्रह्मा ने निर्माण किये। विषय उत्तम होने पर भी बिना शरीर के उनका भोग नहीं हो सकता। इसलिये अनेक शरीरों का होना आवश्यक ही था। विधाता ने पंच ज्ञानेन्द्रियाँ निर्माण कर उनमें विभिन्न गुणों की स्थापना की। ये सब गुण एक शरीर में रहते हुए भी भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के विषय हैं। श्रोत्रेंद्रिय (कान) को

शब्द विषय मिला। त्वचा को अर्थात त्वागिंद्रिय को शीतोष्ण का अनुभव करने की शक्ति मिली और चक्षुरिन्दिय को (आँखों को) रूप देखने का जिव्हा को रस चखने का और घ्राण (नाक) को सुगन्ध लेने का विषय प्राप्त हुआ। वायु पंचक अर्थात प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ये पंच प्राण में आकाश पंचक अर्थात चित्त, अहंकार, बुद्धि, मन और अन्तः करण के अन्तःकरण पंचक को सम्मिलित कर नि.शक भ्रमण करने और उसे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेद्रियों का निरीक्षण करने की शक्ति प्रदान की। अर्मेन्द्रियों द्वारा जीव को विषयोपभोग करने की शक्ति विधाताने प्रदान की। विषयों को भोगने के लिए ही नाना प्रकार के शरीर उत्पन्न किये। आस्थि माँस के इस शरीर को सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से अलंकृत किया गया। इस प्रकार हाड-माँस का यह पुतला ज्ञान के द्वारा सकाम कला और गुणों में प्रवीण बन सका। सृष्टि के उत्पत्ति कार्य में अनेक भेद हैं पर संहार में सब भेद नष्ट हो जाते हैं। परमात्मा ने सृष्टि में एक विलक्षण गूढ़ निर्माण किया है। एक महद्भुत दूसरे को निगल जाता है! जैसे आप पृथ्वी को, तेज आपको आदि। फिर भी सारी सृष्टि व्यवस्था सुव्यवस्थित चलती रहती है। आत्मा के ही ये सब अनन्त खेल हैं। अवाहन और विसजंन यही हमारी उपासना का लक्षण है।

नवां समास

निराकार विवेचन

वक्ता कहते हैं—मृत्तिका-पूजन (मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसका पूजन) कर बाद में उसका विसर्जन का देना मनको अच्छा नहीं लगता जिस देवता का पूजन करें, उसी को थोड़ी देर में विसर्जित कर दें, यह बड़ा अटपटा-सा लगता है पर इस पर गहराई से चिंतन करना चाहिए। भगवान ऐसे नहीं है, जिनकी प्रतिष्ठा की जाय और फिर उन्हें

त्याग दिया जाय। अतः आवाहन और विसर्जन के अर्थ के बारे के में ठीक से—सोच-विचार करना चाहिए। देवता (अन्तरात्मा) अनेक शरीर धारण करते हैं और फिर उन्हें त्याग देते हैं। इसलिये उनका विवेक से ही परिशीलन करना चाहिये। श्रवण-मनन आदि साधन तथा निरूपण आदि सब भगवान के शोध के लिए ही करना है, इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये ब्रह्मज्ञान के विधान का स्वयं अनुभव किये बिना दूसरों को नहीं बताया जा सकता। ब्रह्मज्ञान ऐसा दृश्य पदार्थ नहीं है, कि जो किसी को उठाकर दे दिया जाय। सब चाहते हैं कि उन्हें भगवान का साक्षात्कार हो जाय पर विवेक द्वारा भगवान को प्राप्त करने का मार्ग कुछ और ही है। जो विचार की कसौटी पर खरा न उतर सके, उसे भगवान नहीं कह सकते।

लोग महापुरुषों की प्रतिमायें गढ़कर उनका आदर-सत्कार करते हैं, वैसा ही प्रकार उपासना का भी हो गया है। यह अज्ञान-जन्य भोला भाव है पर अज्ञान द्वारा ज्ञान स्वरूप परमात्मा का परिचय कैसे हो सकता है ? अतएव हमें अनुभवी ज्ञानी सिद्ध पुरुषों का ही अनुगमन करना चाहिये। विवेक बुद्धि से माया मोह को त्यागकर मूल तत्व का अनुसंधान करने पर ही प्रभु-प्राप्ति का समाधान मिल सकता है। अन्यथा इधर-उधर मन दौड़ाते रहने से कोई लाभ नहीं। दृढ़ निश्चय और अध्यात्म के श्रवण-मनन से ही प्रभु का प्रत्यय हो सकता है।

ब्रह्म सत्य है और अन्य सब कुछ मिथ्या एवं मायिक है। अध्यात्म श्रवण से ही इसका बोध होता है। सूत के उरझने पर जैसे उसे साव-धानी से उरझना पड़ता है, वैसे ही मनको विषयों से विलग कर उसे मूल ब्रह्म की ओर मोड़ना चाहिये। इस नर देह में ही इसका सरासार विचार हो सकता है।

मूल माया संकल्प रूप है और वह हमारे देह में अन्तःकरण रूप में रहती है। जड़ को चेतन करने वाला चैतन्य तत्व भी शरीर में ही विद्यमान रहना है। सबगुण इसी देह में गुण साम्यावस्था में स्थिर हैं। इन सब सूक्ष्म विचारों का शब्दों से वर्णन करना असंभव है। ज्ञानी

महात्माओं द्वारा ही इसका परिचय हो सकता है। अतः उन्हें नम्र भाव से वन्दन करना चाहिये। देह में ही दायाँ और बायाँ ऐसे दो भाग हैं, जिनमें एक चैतन्य रूप और एक वायु रूप है। उसे ही पिंड में अर्धनारी नटेश्वर कहते हैं। चैतन्य, गुण साम्य, अर्ध नारी नटेश्वर, षड्‌गुणेश्वर, प्रकृति पुरुष, शिवशक्ति, शुद्ध सत्व, गुण माया, सत्य, रज, तम, मन, माया और अन्तरात्मा ये सारे चौदह नाम सूक्ष्म मूल माया के ही हैं। मूल कर्दम रूप है और उसी में इन चौदह तत्वों का मिश्रण हुआ है। यह सारा प्रपंच इसी पिंड (देह) में ही है, जिसे विचार पूर्वक जानना चाहिए। पिंड अर्थात देह के समाप्त होते ही सब कुछ नष्ट हो जाता है, केवल पर ब्रह्म शेष रहता है। अतः वही एकमात्र शाश्वत है, इस निश्चय के साथ उस पर ब्रह्म को ही हृदय में धारण करना चाहिए।

दसवां समास

सूक्ष्म-ब्रह्म-दर्शन

वक्ता कहते हैं—परब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। उससे हम विलग नहीं हो सकते। जैसे मनुष्य कहीं भी जाय, आकाश उससे अलग नहीं हो सकता। जहाँ जायें, वहां आकाश साथ में रहता है, वैसे ही पर ब्रह्म सदा हमारे सभी ओर साथ रहता है। उसकी प्राप्ति के लिए कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। अनेक देशों के अनेक तीर्थ स्थानों की मात्रा के लिए शरीर कष्ट उठाना पड़ता है पर पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए कोइ दौड़ धूप नहीं करनी पड़नी। वह सदा हमारे सन्निकट ही है। वह सब प्राणी मात्र में व्याप्त है।

पर ब्रह्म प्रत्येक पदार्थ में भरा हुआ है। सारे ब्रह्माण्ड सब दृश्य पदार्थों में, अणुरेणु में वह सर्वत्र भींतर बाहर भरा है। इस विमल ब्रह्म की समानता कौन कर सकता है? बैकुंठ, कैलास, स्वर्गलोक, इन्द्रलोक, चौहद भुवन, पन्नगादि पाताल लोक, काशी से रामेश्वर तक सर्वत्र ब्रह्म का ही विस्तार है। उसका कोई अन्त पार नहीं है। साधु-सन्त, देव-दानव, मानव सबका अन्तिम विश्राम स्थल परब्रह्म ही हैं। पर उसे ज्ञान

दृष्टी द्वारा जाने बिना समाधान नहीं मिल सकता । उस पर ब्रह्म तक शब्द की पहुँच नहीं है । अतः वह निःशब्द है । उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतएव वह निर्विकल्प और निरंजन है । उसे विवेक द्वारा ही पहचानना चाहिए । शुद्ध विमल ब्रह्म का श्रवण, मनन, चिंतन करते रहने से प्रत्यय होता है और प्रत्यय (साक्षात्कार) होने पर मन सहज ही उन्मन हो जाता है ।

अन्त मे वक्ता स्वामी समर्थ रामदास कहते हैं कि जपने भक्तों के अभिमानी दाशरथी भगवान श्री राम ने कृपा की । उस समर्थ की कृपा से जो वचन निकले, उन्ही का संग्रह यह 'दासबोध' है । इस ग्रन्थ को जो भली भांति ध्यान पूर्वक श्रवण मनन करेगा और उस पर गहरा चिन्तन करेगा, उसका परमार्थ अवश्य सिद्ध होगा । इस ग्रन्थ के बीस दशकों का, जिनके दो-सौ समास हैं, मुमुक्ष, साधक को अच्छा अध्ययन और परिशीलन करना चाहिये । इसका गहन मनन करने से इसकी विशेषतायें स्वयं प्रकट होने लगेंगी । ग्रन्थ की अधिक प्रशंसा करना व्यर्थ है । साधक जिज्ञासु अनुभव से ही उसका मूल्य आंक सकते हैं । यह शरीर पञ्च महाभूतों से बना हुआ है और इसमें आत्मा कर्ता है । इस लिए इस ग्रंथ में जो पद दिये गये हैं, (मूल मराठीं ग्रंथ पद्य मय है) वे मनुष्य कृत कैसे हो सकते हैं । यह सब परमेश्वर की प्रेरणा का ही परिणाम है सब कुछ ईश्वर ही करता कराता है, तब यह व्यर्थ अभिमान क्यों किया जाय कि यह मेरी रचना है । शरीर को देखा जाय तो वह पञ्च तत्वों का पुतला मात्र है और जब सब तत्व ही नश्वर हैं, तब किस पदार्थ को अपना कहा जाय और किस चीज का अभिमान किया जाय ये सब सोचने विचारने की बातें हैं । हमें व्यर्थ की बातों में अपना अमूल्य समय नहीं गँवाना चाहिये और भ्रम में पड़कर इधर-उधर मन को भटकाना चाहिए यह ग्रंथ जगदीश्वर की ही रचना है । अतः अन्त में यह उसी के चरणों में अर्पित है । अन्त में आत्मस्वरूप सभी श्रोताओं को सादर प्रणाम ।